।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 1 से 4



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

– अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति

परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन

श्री हरिपददास अधिकारी

डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार

आवरण व अन्य चित्रों के लिए

Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी

वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत

दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

द्वितीय संस्करण-2000 प्रतियाँ

श्रीरामनवमी, 19 अप्रैल 2013

तृतीय संस्करण-2000 प्रतियाँ

श्रीरामनवमी, 15 अप्रैल 2016

ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की 92 वीं आविर्भाव तिथि

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान : मुद्रण-संयोजन

श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,

वृन्दावन-281121 - मोबाइल : 07500 987654

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 1 से 4

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य

अनिरुद्ध दास अधिकारी

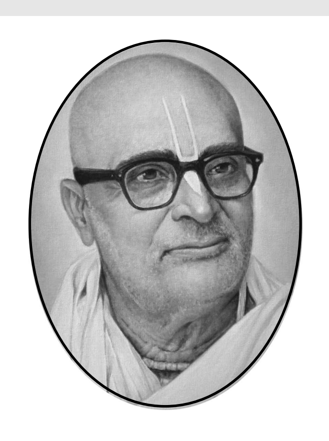
कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मंझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भंवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

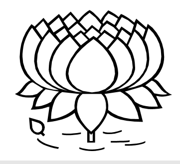
हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।

***



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। **''इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति''** के चारों भाग का तीसरा व संशोधित संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

''इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति'' नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी—यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार सभी को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा—ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

अतः मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

विषय-सूची

भाग– 1

भाग– 2

भाग– 3

भाग– 4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध दास प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, ''**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग एक से चार का तीसरा संस्करण)**'' सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'**इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति**' नामक पाँचों भाग श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का प्राण है। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? – इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा केवल हरे कृष्ण महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा– ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के भाग–एक व भाग–दो के द्वितीय संस्करण की एक विशेषता और भी है कि इसमें श्री अनिरुद्ध दास प्रभु के संक्षिप्त जीवन–चरित्र के साथ–साथ उनके श्रील गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012

एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **3000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **1000 प्रतियाँ**
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2016

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से गत सात वर्षों में बीस हजार (20,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग सत्रह हजार (17,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, बेवसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुंच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम–संख्या में बहुत बढ़ोतरी हुई कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रुप से दर्शन भी हुये हैं। श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के मोबाइल फोन से उनके मोबाइल फोन पर SMS आये, Miss calls आईं जबकि प्रभु जी ने उन्हें न तो SMS किया और न ही Call किया। SMS करना तो उन्हें आता ही नहीं। यह उस नटखट श्रीकृष्ण की ही लीला है।

इन बीस हजार (20,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधा गोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे–ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठ्को! इन पत्रों में कई बातों को बार–बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें। अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रंथों को बार–बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्ण–प्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

"*Arise, awake & stop not, till the goal is reached*"

-Swami Vivekananda

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास
हरिपद दास

शरणागत–भक्त के हृदय में भगवद्–तत्त्व का आविर्भाव होता है। शरणागति से पहले कोई भी क्रिया भक्ति नहीं है। शरणागति ही सब समस्याओं का समाधान और सब क्लेशों के निवारण की राम–बाण औषधि है।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ, श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने इसी वर्ष 13 मार्च से 30 मार्च तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही उन्होंने श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया और उसके तुरन्त बाद वे परमवैष्णव संत पूज्यपाद श्रीमहानिधि स्वामीजी महाराज के दर्शनों के लिये उनकी भजन कुटिया पर पहुँचे।

गत वर्ष कार्तिक, 2012 में वे कई बार पूज्यपाद श्रीमहानिधि स्वामीजी महाराज का दर्शन करके भावविभोर हो चुके थे। अतः इस बार भी श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही वे उनके श्रीचरणों में गिरकर लोटने लगे। उन्हें अपने शरीर की सुध-बुध न रही और वे भावविभोर होकर अश्रु बहाते रहे।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुये। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्‌गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण ● जय महात्मा सूरदास।।

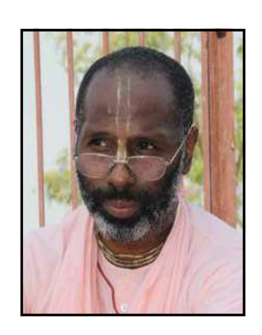
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
क. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब–अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।
ख. कण्ठ मेरा अति कर्कष वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम–सुधा–रस बरसाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
ग. चिनद्म मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
घ. तन–मन में और श्वांस–श्वांस में, रोम–रोम में बस जाओ।
रग–रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
ङ. पुत्र की जीवन नैया के खवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

Glorifications

It's Amazing

Srila Bhaktivedanta Ashram Maharaja

Jai Gaur



With the greatest of gratitude, I am writing some words of appreciation about Sri Anirudha prabhu. He has revolutionized my chanting of the holy names. In fact, he has totally changed my life. After meeting him and following some of his instructions, I have an eagerness to take shelter of the holy names and I now have a dependence on the holy names that I have never even remotely had for the last 35 years. Anarthas are still there but not as prominent as before and I can feel the purificatory process due to the holy names working very strongly.

To be honest, I find it a bit difficult to understand the intricacies of his position in the spiritual world and his travels within that realm. But I thought , “let me give him the benefit of the doubt”, the result was that the potency that I felt coming from him for chanting the holy names was so immense that I had never experienced anything like it before. As a result of chanting under his guidance, I am having more faith and eagerness to follow my guru-parampara and their line of conceptions. An urgency has arisen within me to take more seriously the processes of sadhu sanga and guru-

seva. In fact, I can say that so far, only good things have come. The truth is that my life has changed in such a wonderful way. The reason is sadhu sanga, guru seva and an increased commitment to Harinam. All I am doing is chanting the holy names? But the scriptures are full of the extraordinary effects and benefits of chanting the holy names in sadhu sanga.

Sri Anirudha prabhu is definitely not in the conventional Gaudiya Rupanuga sanyassa mode. In fact, in one sense,he is not in the traditional grhastha mode, although he is an ideal and exemplary grhastha to the highest degree. He is a living testament that everything can be attained by full dependence on Sri Hari Nama and the instructions of one's guru. He has been living in isolation with his family for the last 30 years or so, totally immersed in the holy Names. In that time. he has had very little association of travelling preachers, he has not studied vastly the Goswami literatures of the Gaudiya Vaishnava sampradaya, all he has had were the instructions of his guru, Nitya lila pravistha Om Visnupada Bhakti Dayita Madhava Goswami Maharaja and the firm conviction that Sri Hari Nama can give all perfection and that absolutely everything is contained within Sri Harinam. And Sri Harinam and his guru's mercy has made him overwhelmingly successful. Up until now he has chanted 500 crores of names(5 billion names)

A devotee with the aspiration to serve in Vraja Dham might feel uncomfortable approaching Sri Anirudha prabhu for guidance or help. His bhava is not Vraja bhava, he is from Dvaraka. In this regard, I onced asked him that I have been initiated, trained and directed towards Vraja bhava but he is a resident of Dvaraka. The scriptures state that one should have association of devotees who are more advanced than you

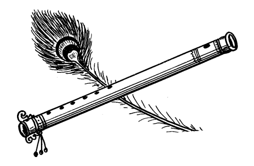
and who are in the same bhava as oneself. His reply was very simple and practical. " You just take from me what help you can along the way" Sri Anirudha is a totally practical person. If one was to think about it. If a devotee is still plagued with anarthas and by good fortune came in the association of personalities like Narada Muni, the four Kumaras, Prahlad Maharaja, Advaita Acarya, Srivas Thakura, Haridas Thakhura, etc, would that devotee be wrong to take advice and guidance from such dear associates of the Lord even though they are not Vraja bhaktas? Obviously not, such devotees can help immensely. Although I am not saying that Sri Anirudha is on the same platform as these aforementioned devotees,(who can judge?) nevertheless, the same principle applies. Ultimately, one aspiring for Vraja bhakti will have to be under the shelter of Vraja bhaktas of one"s specific bhava but along the way, one can get help from devotees situated in other bhavas. There are numerous examples of this, such as Raghunath Dasa Goswami, Sri Shyamananda prabhu, etc

As far as I can see, it does not matter what spiritual line one follows or where your desired spiritual destination is. Sri Anirudha prabhu's teachings are universally beneficial. In fact, they are the teachings of Caitanya Mahaprabhu, "Hari Nama. Hari Nama, Hari Nama eva kevalam............. There is no other way in Kali Yuga than Hari Nama. In this process he is deeply faithful, extraordinarily experienced and supremely confident. Sri Anirudha prabhu never budges an inch from total dependence on Sri Hari Nama, specifically the Maha Mantra. **Hare Krishna, Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare, Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare.** And because of his practical application of this principle, he is able to im-

part such faith onto his hearers according to their eligibility and receptivity.

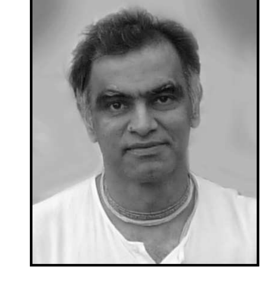
Although Sri Anirudha prabhu’s guidance may not be for everybody. we all have our individual tastes and preferences. I strongly recommend anybody that would like to take exclusive shelter of the holy names to approach, hear and possibly get instructions from Sri Anirudha prabhu. **With his instructions, one can follow one’s specific spiritual line, implement the teachings of one’s specific guru parampara and achieve perfection.** One may have to do some reconciling between one’s guru’s instructions and his, but not much. I have had experience that reconciliation is sometimes needed even between advanced Vaishnavas who are even of the same bhava. Sri Anirudha prabhu just basically tells you to chant the holy name and cry like a baby is crying for his or her mother. He says that everything is in the holy Name, no need to add anything else. (I still chant and sometimes meditate on lilas as I have been trained by my siksha guru) Even if one is in a deviant path, I am having faith that chanting under Sri Anirudha prabhu's guidance, one's position will be rectified and one will be placed in one's proper path, because ultimately, every living entity has their specific path that is inherent for them.

I have not seen the book that these words are going in, so I cannot speak about it. I can only speak of my experiences and convictions that have come from my brief association with Sri Anirudha prabhu. And I must say that I have been overwhelmed by his purity, power,sincerity and sweetness.



Humble offerings to a pure devotee of the Lord

Shri Akhilesh Das Adhikari, Australia



It was only by my great fortune that I was able to come in contact with Sri Anirudha Prabhuji in 2012.

The miraculous influence of Prabhuji in my life started even while I was in Australia, and when I met him in Radha Kunda in the kartik of 2012, my complete life became enriched.

Some devotees ask me what I get from him. All I can say in synopsis to this is that he is the embodiment of humility and full of joy. Just being near him is enough to ensure the smooth flow of my rounds. By his guidance I personally have improved my chanting tremendously. Below I give an example of his mercy.

Once I drove to Delhi from Vrindavan and back again later in the evening, on the same day. The next morning just 2 minutes before my alarm was about to go off at 3 AM, at 2:58 I switched off my alarm as I felt very exhausted and felt I would not be able to chant my rounds that day. Exactly one minute later, at 2:59 I heard my telephone ring and I saw Anirudha Prabhu calling me. He said to me, "Get up Akhileshji its time to chant". Out of my respect for him I got up and chanted and finished all my rounds in one go that day. That was the first and last day that he has ever called me.

Many such incidents have happened between me and Anirudha prabhuji, some are very confidential and some very elaborate. I sincerely pray to My Gurudev and Thakurji to keep me in his association for this life and the next.

My Gurudev, Nitya lila pravista Bhakti Vedanta Srila Narayan Goswami Maharaj left behind a treasure house of Hari-Katha. But due to my misfortune I could not digest all of it while he was on the planet. Now Anirudha Prabhuji has come to help me in my spiritual life to understand what my Gurudev wanted to give us.

स्वप्न में दर्शन

श्री रवि कुमार, दिल्ली



मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ जो मुझे यह ग्रंथ ('इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति') और इनके लेखक पूजनीय श्री अनिरुद्ध दास महाराज जी का सानिध्य प्राप्त हुआ। मैं हरिनाम पहले से ही कर रहा था पर महाराज जी ने बताया कि इसको कान से सुनना ज़रूरी है। इसमें वैज्ञानिक रहस्य यह है कि जब हम सुनते हैं तो कान के माध्यम से यह हमारे हृदय में प्रवेश कर हमारे अंतःकरण को शुद्ध करता है। इसका परिणाम मैंने देखा कि मेरे स्वप्न बहुत सुन्दर हो गये। स्वप्न में सन्तों, मन्दिर के दर्शन और एक बार ऐसा भी देखा कि मैं हरिनाम का प्रचार कर रहा हूँ। दूसरी बात जो महाराज जी ने बताई कि हरिनाम भगवान् के सुख के लिए करना चाहिए। जैसे जीव भगवान् का नित्य दास है और दास का काम हमेशा भगवान् की सेवा करना है। ऊपर दिये गये ग्रन्थ में जो साधक के लिए सावधानियाँ बताई गई हैं इससे मुझे बहुत लाभ हुआ जो सामान्यतः कोई बताता नहीं है।

महाराज जी बहुत ही सरल स्वभाव के हैं। इनको किसी भी प्रकार का कोई लालच नहीं है। हमेशा हमें एक लाख हरिनाम के लिए प्रेरित करते हैं और अपना कीमती समय निकाल कर टेलिफोन पर भी सत्संग सुना देते हैं जो कि आध्यात्मिक पथ पर इंजेक्शन का काम करता है और हमारी जिज्ञासाओं को शान्त कर देते हैं। मैं उनके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

'आज के युग में महाराज जी जैसा संत मिलना बहुत दुर्लभ है जो स्वयं इस अवस्था में पांच लाख हरिनाम रोज़ करते हैं।'

पूर्ण गुरु, पूर्ण सन्त एवं हरिनाम की महिमा

श्री दीनानाथ दुग्गल, चण्डीगढ़



आज से लगभग 4–5 वर्ष पहले जब श्री अनिरुद्ध प्रभु जी मेरी कुटिया पर पधारे थे तो उन से वह मेरी पहली भेंट थी। वे पूरे गृहस्थी होते हुये भी उच्च कोटि के एक पूर्ण सन्त हैं। वह कई वर्षों से निरन्तर और नित्य प्रति रात को एक बजे उठकर तीन लाख हरिनाम रोज कर रहे हैं। यहाँ ही बस नहीं, कुछ समय से तो वह अब पाँच लाख हरिनाम रोज करने लग गये हैं। इनकी इस समय 85 साल की अवस्था है। इतनी बड़ी–आयु में अर्थात् इतने बुढ़ापे में भी इतना अधिक भजन करना वास्तव में ही अत्यधिक कठिन कार्य है, परन्तु जिन्हें पूर्ण गुरु मिल जायें और पूर्ण गुरु की पूर्ण कृपा प्राप्त हो जाए, उनके लिये कोई भी कठिन से कठिन कार्य अत्यन्त ही सुलभ एवं अत्यन्त ही सुगम हो जाता है।

भारतीय गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य परम पूज्य श्रीतीर्थ महाराज जी के भी गुरुदेव परम पूज्य श्रीमाधव गोस्वामी जी महाराज से श्री अनिरुद्ध प्रभु जी को दीक्षा प्राप्त हुई है। जिन्हें ऐसे पूर्ण गुरु मिले हों तथा जिन्हें ऐसी महान् विभूति की पूर्ण कृपा प्राप्त हुई हो उन पर तो प्रभु की पूर्ण कृपा का बरसना स्वाभाविक ही है।

श्री अनिरुद्ध प्रभु जी से उनके श्रीगुरु महाराज जी ने निरन्तर कई वर्षों तक नित्य प्रति आधी रात को उठा–उठा कर हरिनाम की महिमा पर अब तक 500–600 पत्र लिखवाए हैं। इन बहुमूल्य पत्रों का प्रभुजी ने तीन वर्षों तक अपने मोबाइल द्वारा प्रत्येक रविवार को गर्मी–सर्दी की परवाह न करते हुये सवेरे–सवेरे रोज प्रचार भी किया है। जिनसे अनेक साधकों को बहुत लाभ भी हुआ

है। उपर्युक्त सब बहुमूल्य पत्रों को पुस्तक का रूप देकर एक परम वैष्णव चण्डीगढ़ निवासी श्रीहरिपद दास प्रभु जी के अनथक परिश्रम से, अबतक पाँच भागों में छपवाया भी जा चुका है। इस पुस्तक का शीर्षक श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के परामर्श से '**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति**' रखा गया है।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा निरन्तर कई वर्षों तक हरिनाम की महिमा का प्रचार करने से तथा ऊपर लिखित पाँच पुस्तकों को पढ़ने का परिणाम यह हुआ है कि आज हमारे देश में अनेक साधक तथा विदेशों में कई साधक हरिनाम करने लग गये हैं। एक–एक लाख हरिनाम तो कई वैष्णव करने लग गये हैं, अपितु दो–दो, तीन–तीन लाख तक भी कुछ साधक हरिनाम करने लग गये हैं। इसे आप पूर्ण गुरु का अथवा पूर्ण सन्त का चमत्कार कहें, सब ठीक है, परन्तु मैं तो इसे पूर्ण गुरु एवं पूर्ण सन्त (श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी) दोनों का ही चमत्कार मानता हूँ। देखिये! पूर्ण गुरु की महिमा इसलिये कि वह प्रभु के गोलोक धाम में विराजते हुये भी, उन्होंने उपर्युक्त बहुमूल्य पत्र लिखवा कर अपने शिष्यों तथा साधकों का परलोक सुधारने के लिये कितना महान् कार्य किया है। इसके पश्चात् पूर्ण सन्त अर्थात् श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की महिमा इसलिये कि उन्होंने अपने श्रीगुरुमहाराज जी की आज्ञा को स्वयं अपने आचरण में लाने के पश्चात् ही हरिनाम का प्रचार किया है। तभी तो उनकी बातों पर सभी साधकों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ रहा है। अब जहाँ तक हरिनाम की महिमा का प्रश्न है 'इसकी पुष्टि के लिये तो हमारे धर्म–ग्रन्थों में एक नहीं, अनेकों ही प्रमाण मिलते हैं। और तो क्या, करोड़ों जन्मों के पापों को भस्म करने की शक्ति केवल और केवल मात्र प्रभु के नाम में ही है। श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की आज्ञा से भी जिन वैष्णवों ने हरिनाम किया है। उनमें से कुछ भक्तों के तो कठिन से कठिन रोग भी ठीक हुये हैं तथा कुछ भक्तों की अति कठिन समस्याओं का भी समाधान हुआ है। अतः मुझे भी ऐसे पूर्ण सन्त से मिलकर बहुत ही हार्दिक प्रसन्नता हुई है। इतना

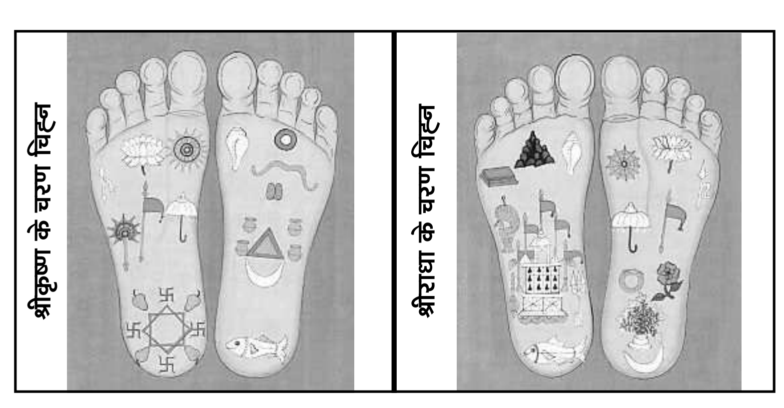
ही नहीं, उनके चरित्र से मुझे भी बहुत कुछ सीखने को मिला है।

अन्त में उन सभी वैष्णवों और भक्तों से, मेरी दो कर जोड़ अति ही विनम्रता से प्रार्थना है कि जो भी '**इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति**' नामक पुस्तक के किसी भी भाग को पढ़ने से प्रभावित होकर हरिनाम करते हैं, उन्हें केवल और केवल मात्र 'भगवद्–प्राप्ति' की ही शुभकामना रखकर हरिनाम करना चाहिये।

तब तो इसी जन्म में भी और इसी जन्म के पश्चात् भी उन्हें भगवद्प्राप्ति का होना बड़ी सुगमता से हो सकता है, परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उन्हें सभी प्रकार की सांसारिक और पारिवारिक ऐसी सभी कामनाओं का पूर्णतया परित्याग करना पड़ेगा, जो इस मार्ग की प्राप्ति में बाधक बनती हों।

अतः सभी साधकों से मेरा भी दोनों हाथ जोड़कर अति विनम्रता से निवेदन है कि वे सब भी पूरे का पूरा मन श्रीहरि के चरण–कमलों में समर्पित करते हुये, अभी से ही हरिनाम करने में पूरी लगन और तड़प से जुट जाएँ, क्योंकि मरने के पश्चात् केवल और केवल मात्र मेरे प्रभु का अति ही प्यारा एवं अति ही प्रभावशाली नाम ही सब के साथ जाएगा और कुछ भी साथ नहीं जायेगा। अपना शरीर तक भी यहीं जलकर भस्म हो जाएगा।

सभी वैष्णवों एवं सभी प्रभु–भक्तों की चरण–रज और कृपा–दृष्टि का अति ही विनम्र भिक्षुक लेखनी को यहाँ विराम देता हूँ।



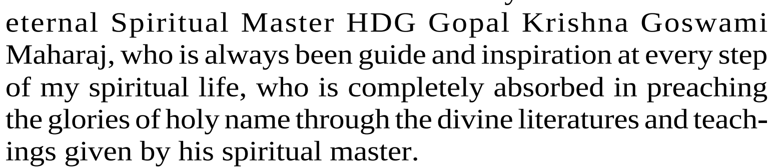
Glorification

Go-rakshak **Pundarika Vidyanidhi Dasa**
ISKCON-Goshala, Vrindavan

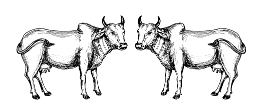
Please accept my humble obeisances. All glories to HDG Aniruddha Prabhu and all glories to all Guruvarga's.

Here by, I your humble servant is presenting a small drop out of oceanic experience with respect to the vital role of HDG Aniruddha Prabhu in my spiritual life is given below.

First of all, I offer my respectful prostrated obeisance's at the cool shade of my eternal Spiritual Master HDG Gopal Krishna Goswami Maharaj, who is always been guide and inspiration at every step of my spiritual life, who is completely absorbed in preaching the glories of holy name through the divine literatures and teachings given by his spiritual master.



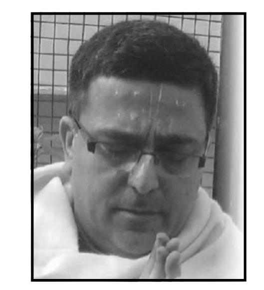
When I was in search of a sadhu, who is incessantly chanting the Holy Name of Krsna and crying for Krishna day and night, surprisingly I came across Krishna's eternal associate Srimad Aniruddha Baba. Since then my heart is craving for chanting more and more holy name. Like a contagious decease, a similar miracle happened with many sincere chanters from all around the world. Only an empowered eternal associate of Krsna can inspire devotees to chant daily lakhs of Holy Name. Aniruddha Babaji quotes in his lecture that "By the processing of milk, one can get butter. This butter is the essence of the milk. Krsna tastes butter. Similarly, the essence of all scriptures and essence of teachings of all saints is the Holy Name. Holy Name is non-different from Krishna and so on …" I have presented only a small drop out of oceanic experience with respect to the vital role of my Siksha Guru Srimad Aniruddha Prabhu in my spiritual life. By the causeless mercy of Srimad Aniruddha Prabhu, your humble servant of all vaishnavas have been chanting three lakhs of holy name since 7th November 2014.

एक ही उदाहरण

दासाभास डॉ गिरिराज

एम.ए., पी-एच.डी, साहित्यरत्न, सम्पादक शिरोमणि, प्रधान सम्पादक : श्रीहरिनाम



परम श्रद्धेय, नाम-आश्रयी, नामनिष्ठ, पूज्यवर श्रीअनिरुद्धदासजी अधिकारी, वैष्णव-जगत् के एक अति दुर्लभ सन्त हैं। आप अपनी करुणा एवं श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त शक्तियों-वाक्सिद्धि आदि से जीव-जगत् का परम कल्याण साधित कर रहे हैं।

मुझे आपका परिचय कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था। तभी से मन में आपके दर्शन करने की अभिलाषा सुप्त रूप में थी। अचानक एक दिन आप कृपा करके श्रीधाम स्थित मेरे निवास पधारे। मैं गद्गद् हो गया। वैष्णवोचित दैन्य इतना कि मेरे लिये एक नवीन उदाहरण था। मैं तो इन्हें प्रणाम करने के प्रयास में ही था, लेकिन बार-बार पुनर्वार ब्रजवासी होने का वास्ता देकर मुझे प्रणाम करने ही नहीं दिया।

ऐसा एक बार नहीं, सदैव होता है। मैं एकबार श्रीराधाकुण्ड में कुछ घण्टे भी आपके साथ रहा। आपका यह दैन्य स्वाभाविक एवं सभी के साथ देखने को मिला। आपके दर्शन को अनेक वैष्णव आते हैं। सभी को श्रीनाम ग्रहण एवं नाम आश्रय का उपदेश, आग्रह आप करते हैं। आपके द्वारा बताने पर वे सारे कार्य सिद्ध भी होते हैं।

मैं भी अनेक समय से बिना संख्यापूर्वक नाम ग्रहण करता था। मैं जब पहली बार आपसे मिला तो मैंने इनसे वही मांगा जो विशेष रूप से आपके पास था। आपने कहा तुम आज-कल से एक निश्चित संख्या से नाम करो। आपकी कृपा से मैं आज तक संख्यापूर्वक नाम का आश्रय ग्रहण करता हूँ एवं नाम प्रारंभ करने से पूर्व आपका-स्मरण चिन्तन-प्रणाम करता हूँ। मैं आपसे जब इसके लिये कृतज्ञता की बात करता हूँ तो सदैव दैन्यतापूर्वक यही उत्तर होता है-आप तो ब्रजवासी हैं। वास्तव में दैन्य ही भक्ति का मापदण्ड है। जिसमें जितनी अधिक भक्ति होगी, उसमें उतना ही अधिक दैन्य होगा। मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि आपमें श्रीनाम सदैव विराजमान रहे और आप हम सब जीवों में इसी प्रकार श्रीनाम बांट्ते रहें और हमारा कल्याण साधित करते रहें। मैं तो आपके श्रीचरणों में यह प्रार्थना करता हूँ कि- ऐसा दैन्य, ऐसी नाम-निष्ठा, ऐसा नाम-आश्रय मुझमें भी किंचित् उत्पन्न हो-ऐसी कृपा हो जाय तो मेरा जीवन सफल हो जाय।

आशा की किरण अब उजाले में बदलने लगी

अनुराधा देवी दासी, न्यूजीलैंड



सबसे पहले मैं अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिवेदांत नारायण गोस्वामी महाराज जी के श्रीचरणकमलों में कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ जिनकी अहैतुकी कृपा से, मुझ जैसी दीन-हीन को हरिकथा सुनने को मिली और श्रीश्रीराधाकृष्णजी के श्रीचरणकमलों में प्रेम उत्पन्न हुआ। उसके बाद मैं उन सभी वैष्णववृन्दों को प्रणाम करती हूँ जिन्होंने मुझे आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मैं अपने शिक्षागुरु, श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भी शत-शत प्रणाम करती हूँ जिनकी कृपा से मेरा हरिनाम बढ़ता ही गया और मुझे अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली।

अप्रैल 2011 में, मैं श्रीगौरमंडल परिक्रमा पूरी करके भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करने पुरी (उड़ीसा) में गई थी तब मेरी माता जी ने मुझे श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखी दो पुस्तकें पढ़ने को दीं। ये पुस्तकें मेरी माताजी, वृन्दावन के किसी भक्त से लेकर आईं थीं और पढ़ने के बाद इन्हें वापस करना था। पुस्तकों का शीर्षक पढ़कर ही मेरे मन में उन्हें पढ़ने की जिज्ञासा प्रबल हो गई और मैंने उसी दिन काफी पृष्ठ पढ़ भी लिये। इस पुस्तक को पढ़कर मुझे बहुत आध्यात्मिक बल मिला। मुझे लगा कि श्रीनवद्वीप धाम और श्रीजगन्नाथपुरी की परिक्रमा का कई गुणा फल मुझे मिल गया। वह दिन और आज का दिन-मेरा एक लाख हरिनाम उसी दिन से शुरु हो गया। कई बार जब मैं ज्यादा व्यस्त नहीं रहती हूँ तो डेढ़लाख या दो लाख हरिनाम भी हो जाता है।

यह कलियुग का ही प्रभाव है कि जीवों का शारीरिक बल, मानसिक बल और आयु दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। खाने-पीने की चीजों में मिलावट और रासायनिक दवाईयों के छिड़काव से न पानी शुद्ध रहा और न ही हवा शुद्ध है। ऐसे समय में, जब सब और दूषित वातावरण पनप रहा है, ठाकुरजी ने हमारे उद्धार के लिये श्रीअनिरुद्ध

प्रभु जी जैसे महापुरुष को इस धराधाम पर भेजा है। जो कोई भी उनके संपर्क में आता है और उनपर श्रद्धा करता है उसकी हरिनाम में रुचि बढ़ जाती है। श्री अनिरुद्ध प्रभु जी को मिलने के बाद मुझे बहुत से अनुभव हुये हैं, उनमें से कुछेक का संक्षिप्त रूप में, मैं यहाँ वर्णन कर रही हूँ।

मेरे पति श्रीकृष्ण मिरचकर की अपनी शीट मैटल (Sheet Metal) की कंपनी है। वे बहुत व्यस्त रहते हैं पर अनिरुद्ध प्रभुजी की उन पर इतनी कृपा है कि वे हर रोज तड़के साढ़े तीन बजे (3.30AM) जाग जाते हैं और डेढ़ लाख (1,50,000) हरिनाम करते हैं। मंगल आरती, ग्रंथों का अध्ययन तथा रविवार को मठ में जाकर हरिकथा भी सुनाते हैं। यह सब श्री अनिरुद्ध प्रभुजी तथा सभी वैष्णवों की ही कृपा से हो रहा है।

इतना ही नहीं मेरी माता उर्मिला जी की आयु है सत्तर (70) वर्ष। श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी मिलने से पहले वह हर रोज एक लाख हरिनाम करती थीं। क्योंकि प्रभुजी को वाक्‌सिद्धि प्राप्त है, उनके आशीर्वाद से मेरी माताजी दो लाख हरिनाम प्रतिदिन करने लगीं। जब इससे भी उनकी तृप्ति नहीं हुई और उनकी हरिनाम करने की रुचि दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी तो वे अनिरुद्ध प्रभु के पास आशीर्वाद लेने गईं। अब तो वे हर रोज तीन लाख हरिनाम कर रही हैं। वे मठ में रहकर हरिकथा भी सुनती हैं और कुछ सेवा के कार्य भी करती हैं। यह बेहद आश्चर्यजनक बात है।

इसीप्रकार मेरे गुरुभाई संजय प्रभुजी दिल्ली में रहते हैं। हम स्काई पे द्वारा उनसे हरिकथा सुनते रहते हैं। उन्हें भी चमत्कारिक अनुभव हुये हैं। जब वे पहली बार अनिरुद्ध प्रभुजी से मिले तो तब वे प्रतिदिन सोलह (16) माला हरिनाम की करते थे। अनिरुद्ध प्रभुजी ने उन्हें कहा कि सोलह माला करने से हरिकथा का लोगों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा इसलिये कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करो और फिर हरिकथा करो। एकलाख हरिनाम करने वाले की हरिकथा सुनकर लोगों के हृदय में परिवर्तन होने लगेगा और वे भी हरिनाम करने लगेंगे। अनिरुद्ध प्रभुजी की कृपासे अब संजय प्रभु भी दो लाख हरिनाम हर रोज करते हैं और हरिकथा भी सुनाते हैं। अब तो उनकी हरिनाम करने की लालसा बढ़ती ही जा रही है। उन्हें श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की विशेष कृपा प्राप्त है। एक गृहस्थी होते हुये भी वे नित्यप्रति दो लाख हरिनाम भी कर रहे हैं और अपनी कंपनी भी चलाते हैं। इनके

पास हरिकथा सुनने के लिये आने वाले सभी भक्त कम से कम एक लाख हरिनाम कर रहे हैं और जो नये भक्त जुड़ते हैं उनका भी हरिनाम बढ़ जाता है।

मेरे पति के भाई लिंगराजु अपने परिवार के साथ बेंगलूर में रहते हैं। जब वे अपनी पत्नि के साथ पहली बार अनिरुद्ध प्रभु जी से मिलने गये तो उनके पैर पकड़कर फूट–फूटकर रोये। पता नहीं अनिरुद्ध प्रभु जी के दर्शन करते ही उन्हें क्या हो गया था। एक बहुत बड़ा चमत्कार हुआ। उसी दिन से वे दोनों पति–पत्नि, ब्रह्ममुहुर्त्त में उठते हैं और हरिनाम करते हैं। आज कल दोनों पति–पत्नि डेढ़–डेढ़ लाख हरिनाम कर रहे हैं। यह सब एक नामनिष्ठ संत की कृपा का प्रभाव है।

और भी बहुत से भक्त हैं जिन्होंने प्रभु जी के ग्रंथ पढ़े और उनका हरिनाम बढ़ गया, उनका जीवन ही बदल गया। ऐसे भक्त भी हैं जिन्हें अश्रु पुलकित होता है, विरह होता है जो संभव ही नहीं था। मेरी सभी भक्तों से प्रार्थना है कि वे अनिरुद्ध प्रभुजी के ग्रंथों को पढ़ें, उनका आशीर्वाद प्राप्त करें तभी उनका एक लाख हरिनाम हो सकेगा और उनकी हरिनाम में रुचि दिन–प्रतिदिन बढ़ेगी। उनके जीवन में भी आशा की किरण उजाले में बदल जायेगी और भगवत् प्राप्ति होगी।

दीपक तले अँधेरा



दीपक का प्रकाश चारों दिशाओं को प्रकाशित करके अंधकार को दूर भगा देता है परंतु दीपक के नीचे जो जगह होती है, वहाँ अंधेरा ही रहता है। यद्यपि यह स्थान दीपक के बिल्कुल साथ होता है। जिस प्रकार दीपक के नीचे अंधकार रहता है, प्रकाश नहीं होता ठीक उसी प्रकार भगवद्–भक्तों को न पहचानने के कारण, उनके अत्यन्त निकट के कुछ व्यक्ति उनसे वह ज्ञान व भक्ति प्राप्त नहीं कर पाते और उस परमानन्द से वंचित रह जाते हैं, जिस ज्ञान व भक्ति को प्राप्त करके सौभाग्यशाली जीव का अज्ञानरूपी अंधकार सदा–सदा के लिये समाप्त हो जाता है और उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

हमारा तो जीवन ही बदल गया

श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता
श्री पूर्णसिंह शेखावत




सबसे पहले हम अपने श्रीगुरुदेव ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्-भक्तिबल्लभतीर्थ गोस्वामी महाराजजी के चरण-कमलों में कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं। उसके बाद हम अपने शिक्षागुरु श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी को दण्डवत्-प्रणाम करते हैं जिनकी कृपा से हमें परमवैष्णव श्रीगुरुदेव की प्राप्ति हुई। हम लोग तो संसार में बुरी तरह फंसे हुये थे और दुःख पा रहे थे। हमारा काम खाना-पीना, धन कमाना और सोना था। इसके बिना हमें कुछ भी पता नहीं था पर श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने हम पर कृपा कर दी। हमें जीवन के लक्ष्य के बारे में बताया, हमारा मार्ग दर्शन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने हमें 'हरे कृष्ण' महामंत्र की महिमा बताई और अब उनकी कृपा से हम खूब हरिनाम कर लेते हैं। हमारा तो जीवन ही बदल गया। घर स्वर्ग बन गया। अब हमारे परिवार में सभी हरिनाम करते हैं। अंत में हम सभी वैष्णवों के चरणों में प्रणाम करते हैं।



इन ग्रंथों को पढ़कर और भी बहुत सारे प्रभु भक्तों ने हमें अपने अनुभव भेजे हैं पर उन सबको छापने से इस ग्रंथ का आकार और बढ़ जाता। हम सभी भक्तों की भावनाओं की कद्र करते हैं और उनके आभारी हैं। हमें इस बात की अति प्रसन्नता है कि इन ग्रंथों को पढ़कर आज हजारों भक्त हरिनाम कर रहे हैं और अपना अमूल्य समय देकर हरिनाम का प्रचार भी कर रहे हैं। ऐसे सभी संतों, आचार्यों, वैष्णवों को शत-शत नमन।

– सम्पादक



अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

इस पुस्तक के लेखक
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय

(श्री हरिपददास अधिकारी)

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे
श्रीहरिगुरु-वैष्णवप्रियमूर्ति, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 83 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्-पूर्णिमा (रास-पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी विरक्त सन्त थे, को अवलंबन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म-स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्री जय सिंह शेखावत हुये। गांव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। बड़े भाई एक कमरा किराये पर लेकर रहते। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस वक्त आपकी उम्र

लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधागोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुंदर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबंधकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों संत–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असंतुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना संभव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्द देवजी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करतालों इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊंचे, लंबे कद एवं अलौकिक सौंदर्य वाला संन्यासी कीर्तन कर रहा था। श्री श्रीराधागोविन्द जी के मंदिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहा था और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहा था। ''ये संन्यासी कौन है ? ये रो क्यों रहा है ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति अनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे गुरुदेव! यही हैं मेरे गुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव अनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

अनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो अनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम ?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को अनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र जपकर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाड़ू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्तिसे कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुये हो गया था परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्तहों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक-एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति-अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया-रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन-काल बहुत बढ़िया, बीता। सरकारी नौकरी के साथ-साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। कर्ज ले-लेकर तीनों बच्चों को पढ़ाया। अपनी नेक-कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये श्रील गुरुदेव को भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह-सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी-

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears."

यह नाम-संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप से

तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप ही उनके अकेले शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने Voluntary Retirement लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। परम–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गांव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गांव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहां के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतो के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढ़ाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

> **''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बांटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग– राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,**

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध दास प्रभु जी एक अनुभूति–प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों–शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिन्हों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज का संक्षिप्त परिचय

(श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज)

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्री मते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्णचैतन्य-आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिब्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा

असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप–लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृ भक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र–ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते–करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी

हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था–भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुये श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा–

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका तज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोनीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु–निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थित में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख–दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर (आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा

सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुये हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इस में किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

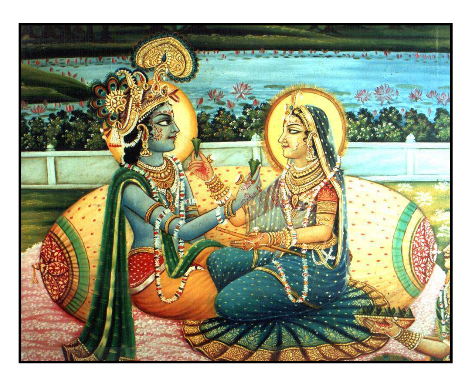
आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

–Srila Prabhupada

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो मिनट का समय लगता



है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ गोविंद ! जब मेरी मौत आवे और मेरे अंतिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।''

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और जब मैं भूल जाऊँ, तो मुझे याद करवा देना।''

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! गोविंद! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणीमात्र में आपका ही दर्शन करूँ।''

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।



Chant ...
Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram Ram Ram Hare Hare
... and Be Happy.

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियां हैं, वे गोपियां हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ?

अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की, अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

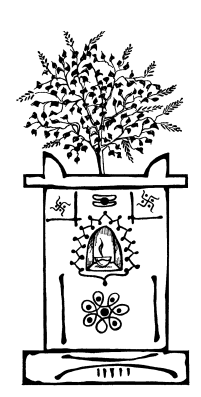
जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। इससे पहले, पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला– झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जाप के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन

प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरुप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी।

आप कहाँ हो ?



हा गौरांग! हा गौरांग !

कहां गौरांग। कहां गौरांग।

कहां जाऊं ?

कहां पाऊं आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप !

हे दयानिधान ! आप कहां हो ?

मैं आपको ढूंढ रहा हूँ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ।

आप कहां हो ?



कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद।

दर्शन दो स्वामी!

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो!

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

श्रील गुरुदेव प्रणति

नमः ॐ विष्णुपादाय रुपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिन।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म-स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्-भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणावरुणालय-स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु-देव-भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु-प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म-स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी-गुरुदेव को नमस्कार है।

।। जय जय श्रीनिताई-गौर ।।

॥ श्रीश्रीनिताई-गौर चालीसा ॥

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा-

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानँद गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
जन्म जन्म सुमिरन करूँ, हरि दासन कौ दास।।

चौपाई-

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2।।
मास फाल्गुन तिथी पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5।।
शिशू रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।10।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।11।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।12।।
मात पिता वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।13।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।14।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।15।।
त्रेता में श्रीराम-लक्षमन। द्वापर में बलराम-कृष्ण बन।।16।।
कलि में गौर-निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्द रूप घन।।17।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध प्रभु घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गरजन कीना। नित्यानन्द हरि वरजन कीना।।21।।
मारण हित नहिं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधू भये जगाई–मधाई। प्रभु किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप धर्‌यौ तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। वचन दिया है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उधारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रताप रुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ती वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़फत प्राण प्रिये बिन हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधी, हरीनाम का सार।।

ग्रंथकार की प्रार्थना.....



हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!

आप कहाँ हो?

कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात-दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते–करते आपके नाम की महिमा लिखते–लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ–स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके दुःखों का समुद्र उछलने लगता है। प्राण–विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसूओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद–मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों–संतों की चरण–रज का सेवन करने से, भजन–साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न–बाधा नहीं आती। यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम–संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्–प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

पृष्ठभूमि

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति के पाँचों भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग-अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

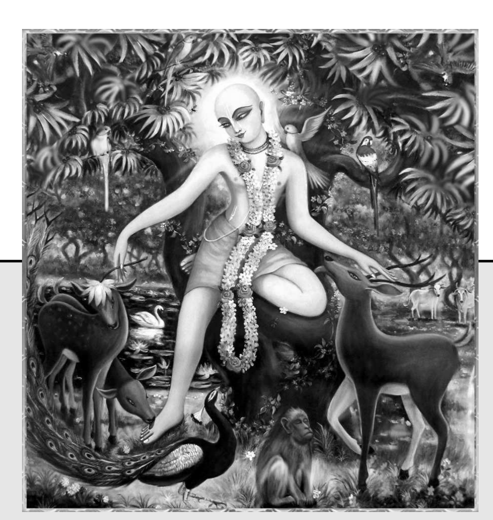
श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बख़ूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' का पाँचवा भाग वर्ष 2012 में छप चुके थे। अब तक हमारे पास पहले चार भाग भी समाप्त हो चुके थे।

अतः पहले व दूसरे भाग को इकट्ठा करके अप्रैल 2013 में श्रीहरिनाम प्रेस ने छापा। मेरी इच्छा थी कि तीसरा व चौथा भाग भी नवम्बर 2013 में छप जाता पर किन्हीं कारणों से यह संभव नहीं हो सका। अब तीसरा व चौथा भाग भी आपके हाथों में है। इस तरह 'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँचों भाग अब श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन में उपलब्ध हैं।

ये ग्रंथ अनुपम हैं क्योंकि इन ग्रंथों में मेरे श्रीगुरुदेव की वाणी का अमृत भरा पड़ा है, इन ग्रंथों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी भाषा बड़ी सहज एवं सरल है। कोई भी इन ग्रंथों को पढ़कर, इनमें बताई पद्धति द्वारा हरिनाम करके इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति कर सकता है।

– प्रकाशक



जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा–कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण–कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।
साभार : श्रीहरिनाम

आमुख

परम भागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास अधिकारी (श्री अनिरुद्ध प्रभुजी) ने अपने लेख ''अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे'' के अन्तर्गत **'श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग'** बताया है जो अति गोपनीय था पर उन्होंने सब पर कृपा करके, उस परम गोपनीय रहस्य को उजागर कर दिया है। उन्होंने स्वयं इस रस का कराकर वे आत्यन्तिकी प्रीति के भाजन हो रहे हैं। स्वयं भगवान् श्रीगौर-सुन्दर और उनके निजजन एवं श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी भी उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव एवं अखिल भारतव्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजजी ने अहैतुकी कृपा करके 'श्रीगौर पार्षद' एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत नामक अपने ग्रंथ के रूप में शुद्ध भक्ति प्रार्थी साधकों को एक महान प्रेरणादायक एवं अनमोल उपहार दिया है। इस ग्रंथरत्न में से, मैं कुछ श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस लेख में इसलिये दे रहा हूँ क्योंकि इसका श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के लेख से संबंध है। इन श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की कृपा के बिना श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होना दुर्लभ ही नहीं, असंभव है।

श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी का भजन है-

''शुद्ध भक्त चरण रेणु भजन-अनुकूल
भक्त-सेवा परमसिद्धि प्रेम लतिकार मूल।''

''शुद्ध-भक्तों की चरण रज भजन के अनुकूल है। भक्तसेवा ही सर्वोच्चसिद्धि है एवं प्रेम भक्ति लता का मूल है।''

शुद्ध भक्त–साधु भगवान् का बड़ा प्रिय होता है इसलिये भगवद्–भक्त के जीवनामृत का रसास्वादन श्रीभगवान् की कृपा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। भगवान् अपनी पूजा से अधिक अपने भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं। अपने प्यारे भक्तों का गुणगान सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। भक्तों के गुणों का गुणगान करते हुये वे अपने आपको भूल जाते हैं। जिन पर भक्तवत्सल भगवान् के प्रिय भक्तों की कृपा हो जाती है, उनके हृदय में भगवान् अति शीघ्र अपनी लीला को प्रकाशित कर देते हैं। भक्तकृपा से ही भगवद्–कृपा प्राप्त होती है।

1. श्रीगुरुदेव

श्रीगुरुदेव साक्षात् हरि स्वरूप हैं और वे हरि स्वरूप हैं भी। भक्ति–शास्त्रानुसार श्रीगुरुदेव श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त हैं। श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त होते हुये भी शास्त्रों ने श्री गुरुदेव को श्रीकृष्ण तुल्य ही कहा है। श्री कृष्ण में जैसी प्रीति करनी चाहिये, वैसी ही प्रीति श्रीगुरुदेव में करनी चाहिये, जैसे श्रीकृष्ण पूज्य हैं, श्रीगुरुदेव भी उसी प्रकार पूज्य हैं। इसलिये गुरु भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण–भक्ति करने से ही अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्णमान लेते है और श्रीकृष्ण भक्ति छोड़कर केवल श्रीगुरु भक्ति में लगे रहते हैं, वे भटके जाते हैं। उनके निस्तार में शंका है। गुरु दो प्रकार के हैं– दीक्षा गुरु तथा शिक्षा गुरु। भगवान् का भजन करने के लिये जिनसे मूल मंत्र ग्रहण किया जाये, वे दीक्षा गुरु होते हैं और जो भजन संबंधी शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा गुरु कहलाते हैं। शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु में कोई फर्क नहीं है। वास्तव में श्रीकृष्ण की शक्ति ही श्रीगुरुदेव के चित्त में आविर्भूत होकर शिष्य पर कृपा करती है। इसीलिये श्रीगुरुदेव का वैशिष्ट्य है।

2. श्री नृसिंह देव

श्रीमद्भागवत पुराण के सातवें स्कन्ध में भगवान् नृसिंह देव के आविर्भाव का प्रसंग मिलता है। अपने प्रिय भक्त प्रहलाद जी की रक्षा करने के लिये, वे वैशाख की शुक्ला चतुर्दशी को आविर्भूत हुये थे। श्रीनृसिंह देवजी का स्वरूप दो प्रकार का है। अभक्तों के लिये उनका उग्ररूप है और भक्तों के लिये वे वात्सल्ययुक्त हैं, स्नेहपूर्ण हैं। श्रीनृसिंहदेव जी की भक्ति, प्रतिकूल भावों का नाश करके, भक्ति को समृद्ध करती है। अनर्थयुक्त साधकों को भक्ति विघ्न विनाशन श्रीनृसिंह देव की कृपा की आवश्यकता है इसलिये सभी भक्तों की भगवान् नृसिंह देव से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही, रात को सोते समय और सुविधानुसार दिन में दो बार किसी भी वक्त इस प्रार्थना को चार–बार करना चाहिये।

1. इतो नृसिंह : परतो नृसिंहो, यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहों, नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।
2. नमस्ते नरसिंहाय प्रहलाद्–आहलाद् दायिने
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटकं नखालये।
3. वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदय संवित तं नृसिंह महं भजे।।
4. श्री नृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह
प्रह्लाद देसा जय पद्मा मुखा पद्मा भृंग।।

3. श्रीगौरहरि

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीगौरहरि हैं और वे ही कलियुग में श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से अवतीर्ण हुये हैं। कलियुग का युगधर्म हरिनाम है। उस हरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण पीले वस्त्र धारण करके, श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये। उनका शरीर परमोज्जवल सोने के समान सुंदर एवं आकर्षक है। उनकी कण्ठ ध्वनि अति मधुर हैं। उनका मुखचन्द्र भी अति सुंदर

एवं ज्योतिर्मय है। कमल के समान बड़े–बड़े एवं सुंदर उनके नेत्र हैं और उनकी भुजायें लंबी है, नासिका भी बहुत सुंदर है। अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा उठाकर जब वे 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते हैं और अपने प्रेम पूर्ण नेत्रों से जिसे देखते हैं उसी क्षण उस जीव के जन्म–जन्मान्तरों के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है और उस जीव को कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
गदाधर प्राणधन संकीर्तन बिहारी।।
जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी।।
जय शचीनन्दन गौर गुणाकर।
प्रेम पारसमणि भाव रस सागर।।

श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात महाप्रभु ही श्रीगौरहरि हैं। अपनी अहैतुकी कृपा से, अपनी सेवा के अत्यन्त उत्कृष्ट रस को हरिनाम के रूप में प्रदान करने के लिये वे अवतीर्ण हुये। जो साक्षात् कृष्ण होते हुये भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा स्वरूप में प्रकट हुये हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

4. भगवान् श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं तथा वे स्वयं भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। वे स्वयं अनादि हैं किन्तु सबके आदि हैं। वे गोविन्द हैं तथा सब कारणों के कारण हैं। वे ब्रजराज श्रीनन्दराज के पुत्र हैं। उनमें समस्त ऐश्वर्य है, समस्त शक्ति है तथा वे समस्त रसों से पूर्ण रसस्वरूप हैं। वे श्रृंगार रस की मूर्ति हैं इसलिये दूसरों की तो बात ही क्या, वे तो अपने चित्त को भी हरण करने वाले हैं।

श्रीकृष्ण चन्द्र का ऐसा अद्भुत सौंदर्य–माधुर्य है कि वे अपने आपको आलिंगन करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की चरण–सेवा ही जीव

की एकमात्र अभीष्ट वस्तु है और वह प्राप्त होती है हरिनाम करने से। हरिनाम करने में जो सुख है, वह अतुलनीय है, सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है।

5. श्रीराधा

भगवान् श्रीकृष्ण की अनंत शक्तियाँ है, श्रीराधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं। श्रीराधा के महाभाव को अंगीकार करके ही श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से प्रकट हुये हैं। श्रीराधा जी की भावमयी भक्ति में जीव का अधिकार नहीं है। जीव तटस्था शक्ति है, उसका श्रीराधाभाव की आनुगत्यमयी सेवा में ही अधिकार है। उस आनुगत्यमयी सेवा में जो सुख है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्रीराधा दयामयी हैं, कृपामयी एवं करुणामयी है।

श्रीराधाजी की कृपा प्राप्त करने के लिये जरुरी है कि उनके श्रीचरणकमलों में बैठकर उन्हें कृष्णनाम सुनाया जाये। हरे कृष्ण महामंत्र में 'हरे' का अर्थ है– 'श्रीराधा'। जब हम हरे कृष्ण महामंत्र का जप या कीर्तन करते हैं तो सबसे पहले हरे (श्रीराधा) का नाम लेते हैं। 'हरे' शब्द को सुनकर श्रीकृष्ण गद्‌गद् हो जाते हैं और 'कृष्ण' नाम सुनकर श्रीराधा कृपा करती हैं। अतः उच्चस्वर में हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन करने से श्रीराधाकृष्णजी दोनों की कृपा प्राप्त होती है।

जय जय श्रीराधे!

6. भगवान् जगन्नाथ, श्रीबलदेव एवं सुभद्राजी

भगवान् जगन्नाथ ही श्रीकृष्ण हैं एवं भगवान् बलदेव जी उनके बड़े भाई हैं। सुभद्राजी इनकी बहिन हैं। ये तीनों श्रीजगन्नाथ पुरी में, महासमुद्र के किनारे, सुवर्ण के समान सुंदर, नीलाचल के

शिखर में अपने मंदिर में विराजमान हैं। भगवान् जगन्नाथ करुणा के सागर हैं। उनका मुख निर्मल कमल के समान है, उनके नेत्र दिव्य हैं।

भगवान् जगन्नाथ, भगवान् बलदेव एवं सुभद्रा जी, जब ये तीनों विशाल रथों में बैठकर निकलते हैं तो समस्त देवी–देवता उनका स्तुति गान करते हैं। ब्राह्मण–समुदाय के द्वारा पद–पद पर उनकी स्तुति का गान होता है। भगवान् शेष जी के सिर पर अपने चरणों को स्थापित करने वाले भगवान् जगन्नाथ जी का चारु चरित्र शिवजी गाते रहते हैं। श्रीलक्ष्मीजी, शिव–ब्रह्मा, इन्द्र एवं गणेश आदि देवी–देवता उनके श्रीचरण कमलों की पूजा करते हैं। भगवान् जगन्नाथ, श्री बलदेव एवं सुभद्रा जी की कृपा से व्यक्ति सब पापों से रहित होकर, विशुद्ध चित्तवाला होकर आनन्दपूर्वक श्रीहरिनाम कर सकता है।

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतुमे।
भगवान् जगन्नाथ! मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायें।

7. श्री गौर हरि का विलाप

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।।
कहां कृष्ण प्राणनाथ मुरली वदन ?
कहां जाऊँ कहां पाऊँ ब्रजेन्द्र नन्दन ?
काहरे कहिब कथा केबा जाने मोर दुःख।
ब्रजेन्द्र नन्दन बिना फाटे मोर बुक।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने इसी महामंत्र द्वारा नाम संकीर्तन करने का उपदेश दिया है। इसी महामंत्र का रात–दिन कीर्तन करते हुये श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण–विरह सागर में निमग्न रहते थे। श्रीकृष्ण के विरह में ऐसी अद्भुत शक्ति है जो श्रीकृष्ण को भी रुलाती है, भक्त को भी रुलाती है। विरह में भक्त और भगवान् दोनों आंसू बहाते हैं।

8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर

ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः।
प्रह्लादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन्।।

ऋचीक मुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा था, वही प्रह्लाद के साथ जन्म ग्रहणकर अभी हरिदास रूप से आये हैं। एक दिन मुनि कुमार तुलसी पत्र लेने गया। उसने तुलसी पत्र तोड़े और बिना धोये ही अपने पिता को दे दिये जिससे पिता ने उसे यवनकुल में जन्म लेने का शाप दिया था। वही मुनिपुत्र परमभक्त हरिदास के रूप में प्रकट हुये थे।

श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से उनके आविर्भाव से पहले ही आविर्भूत हो चुके थे। नवद्वीप माहात्म्य में लिखा है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बछड़ों और ग्वालों का हरण करके उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। इन सभी गाय, बछड़ों तथा ग्वाल–बालों को ब्रह्माजी ने एक वर्ष तक सुमेरु पर्वत की गुफा में छुपा कर रखा था। बाद में जब उन्हें अपनी भूल का पता चला तो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में क्षमा याचना की और भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा करके ब्रह्माजी को अपना स्वरूप दिखाया था। वही नंदनंदन श्रीकृष्ण जी गौरांग रूप में उत्तीर्ण हुये थे।

नवद्वीप धाम के अन्तर्गत, अन्तर्द्वीप में बैठ, ब्रह्माजी इस बात की चिन्ता कर रहे थे कि जो भूल उन्होंने श्रीकृष्ण के समय की थी, वही गौरावतार में दुबारा न हो जाये। ब्रह्माजी के मन की व्यथा भगवान् श्रीकृष्ण जान गये और उन्होंने गौरांगरूप में ब्रह्माजी को दर्शन दिया और कहा–''गौरांग अवतार के समय तुम यवन कुल में आविर्भूत होकर हरिदास ठाकुर के रूप में नाम–माहात्म्य का प्रचार करके, जीवों का कल्याण करोगे।''

इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ही हरिदास ठाकुर के रूप में अवतीर्ण हुये और नाम–महिमा का प्रचार किया। ''हरिनाम–चिंतामणि'' नामक ग्रंथ में इसका वर्णन है।

श्रील हरिदास ठाकुरजी का चरित्र अद्भुत है। जो प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम लेते हैं, जिनके गुण अनंत है, श्रीअद्वैताचार्यजी जिनको श्राद्ध का भोजन करायें, जिनके गुण समूह प्रह्लाद के समान है, यवनों द्वारा पीटने पर जिनका बाल भी बांका नहीं हुआ, उन हरिदासजी महिमा कहने की सामर्थ्य किसमें है ?

श्रील हरिदास ठाकुर निर्जन स्थानों में कुटिया में रहा करते थे। प्रतिदिन तुलसी सेवा और तीन लाख हरिनाम करते। ब्राह्मणों के घरों पर जाकर भिक्षा करते थे। उनकी कृपा से एक वेश्या प्रसिद्ध वैष्णवी–परम महान्ती हो गई। बड़े–बड़े वैष्णव भी उनके दर्शन करने आते थे।

श्रीहरिदास ठाकुरजी के दर्शन से ही अनादिकाल के कर्म–बंधन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। उनका संग ब्रह्माजी–शिवजी को भी वांछनीय है और गंगा मैया भी उनके स्पर्श की कामना करती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वयं अपने मुख से श्रीहरिदासजी की महिमा का कीर्तन किया है। महाप्रभुजी नित्यप्रति उनको मिलने आते थे। उनके शरीर त्यागने पर महाप्रभु जी ने उनकी देह को अपनी गोद में उठाकर, महानन्द के साथ नृत्य किया था।

श्री महाप्रभु जी के अवतार का प्रयोजन है– श्रीहरिनाम–प्रचार। उन्होंने श्री हरिनाम–प्रचार का अपना काम श्रीहरिदास जी के द्वारा करवाया। श्रीहरिदास ठाकुर जी ने श्रीहरिनाम का आचरण एवं प्रचार दोनों कार्य किये अतः वे सबके गुरु हैं तथा समस्त जगत् के पूज्य हैं।

मैं, नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी को मैं प्रणाम करता हूँ एवं उनके प्रभु श्रीचैतन्य देव को नमस्कार करता हूँ।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की जय।

9. श्रीषड् गोस्वामी

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ।।
एइ छय गोसाञिर करि चरण-वंदन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट पूरण।।
एइ छय गोसाञि यबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण–नित्यलीला करिला प्रकाश।।

श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी इन छः गोस्वामियों की जय हो। मैं इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करता हूँ। इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करने से सभी विघ्नों का नाश हो जाता है तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। इन छः गोस्वामियों ने ब्रज में वास किया और श्रीश्रीराधा–कृष्णजी की नित्यलीलाओं को प्रकाशित किया।

वन्दे रूप–सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव–गोपालकौ।।

मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ तथा उनका संक्षिप्त परिचय देकर उनके चरण कमलों में कृपा–प्रार्थना करता हूँ।

10. श्री रूप गोस्वामी

श्रीधाम वृन्दावन के षड्–गोस्वामियों में और गौरलीला में, श्रीरुपगोस्वामी जी प्रधान हैं। श्रीमती राधारानी की अनुगता मंजरियों में प्रधान हैं– श्रीरूप मंजरी। पूर्वकाल में, वृन्दावन की लीला में श्रीरूप मंजरी के नाम से जो प्रसिद्ध थीं, गौर लीला में वही रूप गोस्वामी के रूप में प्रकट हुये थे।

रामकेलि ग्राम में श्रीकेलि कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के नीचे श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का पहला मिलन हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से रूप–सनातन के हृदय में तीव्र वैराग्य पैदा हो गया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी के माध्यम से वृन्दावन की रसक्रीड़ा के संबंध में और ब्रज–प्रेम प्राप्ति के साधन विषय की शिक्षा प्रदान की है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' नामक ग्रंथ लिखने के लिये श्रीमन्महाप्रभुजी का प्रत्यक्ष निर्देश उन्हें प्रयाग में प्राप्त हुआ था। उन्होंने 'ललितमाधव' और 'विदग्ध माधव' के प्रचार अंक के मंगलाचरण में लिखे दो श्लोकों को सुनकर श्रीराय रामानंद जी ने अपने हजार मुखों से उनकी प्रशंसा की थी।

एत शुनि राय कहे प्रभुर चरणे।
रुपेर कवित्व प्रशंसि सहस्त्रवदने।।
श्रीनरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं–
श्री रूप मंजरी पद, सेई मोर संपद,
सेई मोर भजन–पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आमरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।

''श्रीरूप मंजरी के चरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन–पूजन हैं। वे ही मेरे प्राण धन हैं, वे ही मेरे आमरण हैं। वे ही मेरे जीवन के जीवन हैं।''

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीरूपगोस्वामी जी के चरण कमलों की धूलि को अपना सर्वस्व माना है। वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर के पीछे श्रीरूप गोस्वामीजी का मूल समाधि मंदिर और भजन कुटीर है।

11. श्री सनातन गोस्वामी

जो श्रीकृष्णलीला में, रूप मंजरी की प्रिय रतिमंजरी अथवा लवंग मंजरी थीं, गौर लीला में वही श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अभिन्न तनु श्री सनातन गोस्वामी जी के रूप में अवतरित हुये थे। छोटी उम्र में ही उनका श्रीमद्भागवत शास्त्र में अनुराग था। उनके श्रीगुरुदेव का नाम था– श्रीविद्या वाचस्पति जी।

श्रीसनातन गोस्वामी जी श्रीभक्तिसिद्धान्त के आचार्य तथा संबंध ज्ञान के दाता हैं। उन्होंने जगत्वासियों को जो शिक्षा दी, उसका परमयत्न के साथ चिंतन व पालन करने के लिये श्रील प्रभुपाद जी उपदेश है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीसनातन के प्रति खुश होकर, उनमें शक्ति का संचार किया था। शुद्ध–भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना तथा वैष्णव सदाचार के लिये उन्होंने चार ग्रंथों की रचना की। उन्होंने ब्रजमंडल में लुप्त हो चुके तीर्थों का उद्धार किया और वृन्दावन में श्रीराधामदनमोहन जी के श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश किया। गोकुल महावन में उन्होंने दूसरे गोप बालकों के साथ मदनगोपालजी को क्रीड़ा करते हुये देखा था।

श्रीसनातन गोस्वामी जब गोवर्धन में थे तो अयाचित भाव से प्रतिदिन गिरिराज जी की परिक्रमा करते थे। एक दिन गोपीनाथ जी ने गोपबालक के रूप में उनको दर्शन दिया और श्रीकृष्ण के चरणों से चिन्हित एक शिला देकर कहा–'अब आप बूढ़े हो गये हो। क्यों इतना परिश्रम करते हो? लो! यह गोवर्धन शिला ले लो, इसकी परिक्रमा करने से ही आपकी गिरिराज जी की परिक्रमा हो जाया करेगी।' इतना कहकर वह गोप बालक अन्तर्धान हो गया।

गोप बालक को न देखकर सनातन गोस्वामी जी रोने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी जी द्वारा सेवित वही गोवर्धन शिला आजकल वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर में विराजमान है और भक्तलोग उस शिला का दर्शन करते हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी जी ने नन्दग्राम के पावन सरोवर के तट पर स्थित कुटिया में रहकर भजन किया था वहां भी एक गोपबालक के रूप में उन्हें श्रीकृष्ण ने दूध दिया था। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा श्रीसनातन को खीर का भोजन करवाने की इच्छा करने पर, श्रीमती राधारानी ने एक गोपबालिका के वेष में खीर की सामग्री घी, दूध, चावल व चीनी आदि लाकर दी थी।

पुराने श्रीराधा मदनमोहन मंदिर के पिछवाड़े में श्रीसनातन गोस्वामी जी का समाधि मंदिर है।

12. श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी

''रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमंजरी।
कृत श्रीराधिका-कुण्डकुटीर वसतिः स तु।।''

(गौर गणोद्देश दीपिका)

''श्रीकृष्णलीला में जो रागमंजरी हैं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की लीला की पुष्टि के लिये वे ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के रूप में प्रकटित हुई है।''

श्रीमन् महाप्रभु जी जिस समय बंगला देश में गये थे, उसी समय रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी के पिता श्रीतपन मिश्रजी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था।

श्रीरघुनाथभट्टजी लगभग 28 वर्ष तक घर में रहे। फिर समस्त सांसारिक कार्य परित्याग करके श्रीमन्महाप्रभु से मिलने नीलाचल धाम में चले गये थे। नीलाचल पहुँचकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुजी के दर्शन किये। आठ महीने तक वे नीलाचल में रहे। आठ महीने के

बाद महाप्रभु जी ने उन्हें काशी जाकर वृद्ध वैष्णव माता–पिता की सेवा करने का आदेश दिया और विवाह कराने से मना कर दिया। महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर उनका आलिंगन किया और अपने गले की माला उनके गले में डालकर, फिर नीलाचल आने को कहा।

जब तक रघुनाथ भट्ट जी के माता–पिता प्रकट थे तब तक उन्होंने उनकी खूब सेवा की। उसके बाद वे पुनः नीलाचल में आकर श्रीमन् महाप्रभुजी के पास रहने लगे। वे रसोई बनाने में अत्यन्त निपुण थे। श्रीमन् महाप्रभु जी अपने भक्त द्वारा प्रेम से दिये, अमृत के समान पकाये व्यंजनादि का भोजन करके परम तृप्ति का अनुभव करते थे। तब रघुनाथ भट्टजी को भी महाप्रभु जी का उच्छिष्ट प्रसाद पाने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

आठ महीने पुरी में वास करने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें वृन्दावन में जाकर श्रीरूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी के आश्रय में रहकर नित्य भागवत पाठ और कृष्णनाम करने को कहा। श्रीमन् महाप्रभु जी का प्रेमालिंगन प्राप्त करके और उनके हाथों से भगवान् जगन्नाथ जी की चौदह हाथ लम्बी तुलसी माला एवं प्रसादी पान बीड़ा पाकर श्रीरघुनाथ भट्ट जी प्रेमोन्मत्त होकर गिर पड़े।

श्रीरघुनाथ भट्ट जी का अपूर्व कण्ठस्वर था जब वे समधुर कण्ठ से एक–एक श्लोक का पाठ करते तो भक्तगण उनके प्रति परम आकृष्ट हो उठते थे। श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रंथ में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी की गुण महिमा का वर्णन हुआ है।

13. श्री जीव गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो विलास मंजरी हैं, वे ही गौरलीला की उपशाखा रूप से श्रीजीव गोस्वामी रूप में आविर्भूत हुई हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी की इच्छा से जीव गोस्वामी जी के हृदय में तीव्र वैराग्य

उत्पन्न हो गया था। नाना रत्नों से जड़ित सुखमय सुंदर वस्त्र, आरामदायक बिस्तर, नाना की प्रकार भोजन सामग्री इत्यादि इन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और राज्य आदि की चर्चा तो ये बिल्कुल भी नहीं सुनते थे।

जब श्रीजीव गोस्वामीजी ने स्वप्न में संकीर्तन के मध्य नृत्य अवस्था में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के दर्शन किये तो वे प्रेम में व्याकुल हो उठे। जब इन्होंने भक्त वात्सल्य में व्याकुल, भक्तों के प्राणप्रिय, श्रीनित्यानंद प्रभु के दर्शन किये तो नित्यानंद जी ने अपने पावन चरण कमलों को इनके माथे पर रखा। श्रीमन्‌नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें उठाया और दृढ़ प्रेमालिंगन प्रदान करके अतिशय कृपा की और उन्हें शीघ्र ही व्रज में जाने को कहा।

श्रीमन् नित्यानंद प्रभु की कृपा से इन्होंने नवद्वीप धाम का दर्शन किया। फिर वे काशी चले गये। उसके बाद वृन्दावन जाकर श्रीरूप–सनातन गोस्वामी जी का चरणाश्रय ग्रहण किया। भक्ति रत्नाकर ग्रंथ में जीव गोस्वामी जी के पच्चीस ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। श्रीश्रीराधादामोदरजी के विग्रह जिनकी श्रीजीव गोस्वामी सेवा करते थे, आज भी वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मंदिर में विराजमान हैं। मंदिर के पीछे श्रीजीव गोस्वामी जी का समाधि स्थान है। श्रीराधाकुण्ड के किनारे तथा श्रीललिताकुण्ड के पास इनकी भजन कुटी आज भी है।

14. श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी

श्रीकृष्ण लीला में जो अनंग मंजरी हैं, गौर लीला में वे ही श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के रूप में अवतरित हुई है। श्रीकृष्ण लीला के पार्षद होने के कारण, श्रीगोपाल भट्टजी को यह ज्ञान हो गया था कि नंदनंदन श्रीकृष्ण ही शचीनंदन गौरहरि के रूप में अवतरित हुये हैं। जब वे छोटी आयु के थे तभी उन्हें महाप्रभु जी के चरण कमलों की साक्षात् सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीकृष्ण चैतन्य

महाप्रभु जी की कृपा से उनका सारा परिवार श्रीश्रीराधा कृष्ण जी की सेवा में लग गया था।

श्रीगोपाल भट्ट जी ने अपने चाचा त्रिदण्डि यति श्रीमान् प्रबोधानन्द सरस्वती पाद से दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रीरूप गोस्वामीजी ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को अपने प्राणों के समान प्रिय मानकर, उन्हें श्री राधारमणजी की सेवा में नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी छः गोस्वामियों में से एक बन गये थे। वे अपने आप को बहुत दीन मानते थे। श्रीनिवासाचार्य जी इनके शिष्य थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपालभट्ट जी का स्नेह देखकर ही उनको अपनी डोर कौपीन तथा काली लकड़ी का आसन भेजा था। आज भी वृन्दावन के श्रीराधारमण मंदिर में उस डोर, कौपीन और आसन की पूजा होती है। श्रीराधारमण मंदिर के पीछे उनका समाधि मंदिर है।

15. श्री रघुनाथ दास गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो रसमंजरी हैं, श्रीगौर लीला में वे ही श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई हैं। श्रीरघुनाथ दासजी ने बचपन में ही हरिदास ठाकुर के दर्शन किये थे और श्रीहरिदास जी ने भी उन पर कृपा की थी। उसी कृपा के प्रभाव से उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की प्राप्ति हुई थी। जिस समय महाप्रभु जी संन्यास लेकर शान्तिपुर में आये थे, उस समय श्रीरघुनाथ दासजी को उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का पहला अवसर मिला था। महाप्रभु जी के दर्शन करके, उनके चरणों में लेटकर श्रीरघुनाथजी भावविभोर हो गये थे और जब महाप्रभुजी शान्तिपुर से नीलाचल चले गये तो महाप्रभु के विरह में प्रेमोन्मत्त होकर रघुनाथ दासजी जोर–जोर से रोने लगे थे। पुत्र को व्याकुल देखकर, पिता ने चिन्तित होकर, रघुनाथ जी को महाप्रभु के पास भेज दिया। महाप्रभु का दर्शन करके मानो रघुनाथ जी को दुबारा प्राण मिल गये और

उन्होंने महाप्रभु जी से अपने दुःखों की बात कही और संसार से मुक्ति कैसे होगी ? यह जिज्ञासा की। महाप्रभु ने उन्हें समझाते हुये वापस घर चले जाने को कहा। श्रीमन्महाप्रभुजी के उपदेशों के अनुसार रघुनाथ दासजी घर वापस आ गये और युक्त वैराग्य का सहारा लेकर अंदर से वैराग्य और बाहर से विषयी की भांति रहने लगे।

उनके पिता ने कुछ समय बाद रघुनाथ दास को संसार में बाँधने के लिये उनका विवाह कर दिया। एक साल बीतने पर श्रीरघुनाथ दासजी फिर महाप्रभु जी से मिलने के लिये घर से भाग गये।

श्रील रघुनाथदासजी का वैराग्य मानो पत्थर पर लकीर हो। उनके साढ़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घंटे) कृष्ण–कीर्तन व स्मरण में बीतते थे। आहार और निद्रा आदि के लिये केवल चारदण्ड (डेढ़ घण्टा) का समय ही रखते थे। वे केवल प्राणरक्षा के लिये ही भोजन करते थे और परिधान में केवल एक फटी गुदड़ी ही रखते थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'स्तवावली' के 'चैतन्यकल्पवृक्ष स्तव' में श्रीमन्महाप्रभु जी की करुणा का सजीव वर्णन किया है।

श्रीस्वरूप दामोदर जी के आनुगत्य में रहकर, श्रीरघुनाथ दासजी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तरंग सेवा की थी। श्रीमन्महाप्रभुजी और स्वरूप दामोदर जी के इहलीला संवरण करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी एवं श्रीराधाकृष्ण के विरह में, उन्होंने अन्न और जल त्याग दिया था। वे केवल मात्र थोड़ी सी छाछ पीते थे। वे हजार दण्डवत्, एक लाख हरिनाम, रात–दिन राधाकृष्ण की अष्टकालीन सेवा, महाप्रभुजी का चरित्र–कथन तथा तीनों संन्ध्याओं में राधाकुण्ड में स्नान आदि करके साढ़े सात प्रहर बिताते थे। राधाकुण्ड पर राधारानी का नित्य सानिध्य प्राप्त करके भी, वे थोड़े समय का विरह भी सहन नहीं कर पाते थे। राधाकुण्ड पर ही श्रीदास गोस्वामी जी ने अन्तर्धान लीला की। वहीं पर उनका समाधि मंदिर है।

●

जिनकी प्रेरणा से, मेरे हृदय में वृन्दावन के इन छः गोस्वामियों का गुणगान करने की शक्ति मुझे प्राप्त हुई, उन श्रीचैतन्य देव श्रीगौरहरि के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ।

संख्यापूर्वक नामगाननतिभिः कालावसानी कृतौ।
निद्राहार–विहारकादि–विजितौ चात्यन्त–दीनौ च यौ।।
राधाकृष्ण गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ।
वन्दे रूप सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ।।

''जो अपने समय को संख्यापूर्वक नाम–जप, नाम संकीर्तन एवं संख्यापूर्वक प्रणाम् आदि के द्वारा व्यतीत करते थे, जिन्होंने निद्रा–आहार–विहार आदि पर विजय प्राप्त कर ली थी एवं जो अपने को अत्यन्त दीन मानते थे तथा श्रीश्रीराधाकृष्ण जी के गुणों की स्मृति से प्राप्त माधुर्यमय आनन्द के द्वारा विमुग्ध रहते थे। मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ। मैं उनकी कृपा प्राप्त करने की कामना करता हूँ।

षड् गोस्वामिपाद जी की जय!!

16. श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद

श्रील माधवेन्द्रपुरी पाद जी श्री, ब्रह्म, रुद्र व सनक – इन चारों भुवन–पावन–वैष्णव सम्प्रदायों में से ब्रह्म–सम्प्रदाय के अन्तर्गत गुरु हैं। इन्हीं के अनुशिष्य श्रीचैतन्य देव जी हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादजी का प्रेममय कलेवर था और उनके संगी साथी भी प्रेम में मत्त रहते थे।

कृष्ण रसास्वादन के बिना उनका दूसरा कुछ भी आहार नहीं था। जिनके शिष्य स्वयं अद्वैताचार्य प्रभुजी हों, उनके प्रेम की बड़ाई कौन कर सकता है!

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद भक्तिरस के आदि सूत्रधार हैं– ये बात श्री गौरचन्द्र जी ने बार–बार कही है।

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय।
यार नाम स्मरणे सकल सिद्धि हय।।

(भक्तिरत्नाकर)

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति के रस स्वरूप हैं जिनके स्मरण मात्र से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। माधवेन्द्रपुरी जी नित्यानंद जी को अपना बंधु समझते थे और नित्यानंद जी माधवेन्द्र जी के प्रति गुरुबुद्धि रखते थे। जब नित्यानंद जी ने माधवेन्द्रपुरी जी को देखा था उसी क्षण वे प्रेम में मूर्छित हो गये थे और माधवेन्द्रजी भी नित्यानंद जी को देखकर अपने आपको भूलकर मूर्छित होकर भूमि पर गिर गये थे। माधवेन्द्रपुरीजी ने नित्यानंद को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वे उन्हें कुछ कहना चाहते थे पर प्रेम के कारण गला रुंध गया था। इन दोनों के परस्पर मिलने पर जिस प्रेम का प्रकाश हुआ, वह वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब बालेश्वर रेमुणा में पधारे तो वहां क्षीरचोर गोपीनाथजी के दर्शन करके प्रेमोन्माद में डूब गये थे। अपने श्रीगुरुदेव, श्रीईश्वरपुरीपादजी से उन्होंने श्रील माधवेन्द्रपुरी पादजी के बारे में सुना था कि श्रीगोपीनाथ जी ने कैसे उनके लिये क्षीर चोरी की थी।

एक दिन गिरिराज गोवर्धन की परिक्रमा करके व श्रीगोविंदकुण्ड में स्नान करके, माधवेन्द्रपुरी जी एक वृक्ष के नीचे बैठकर सन्ध्या कर रहे थे कि तभी एक बालक दूध का बर्तन लेकर उनके पास आया और मुस्कराते हुये बोला–''तुम क्या चिंता कर रहे हो ? मांग कर क्यों नहीं खाते ? लो, मैं यह दूध लाया हूँ, पीलो।''

बालक का अद्भुत सौंदर्य देखकर माधवेन्द्रपुरीजी हैरान रह गये और बालक से पूछने लगे–

''तुम कौन हो ? कहां रहते हो ? मैं भूखा हूँ, ये तुम्हें कैसे पता चला ?''

''मैं गोप हूँ। इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई भी भूखा नहीं रहता। कोई मांग कर खा लेता है। जो मांगकर नहीं खाता उसे 'मैं' देता हूँ। अब मेरा गो–दोहन का समय हो गया है और मुझे जल्दी जाना होगा। मैं बाद में आकर दूध का बर्तन ले जाऊँगा–'' इतना कहकर बालक चला गया।

उसी रात माधवेन्द्रपुरी जी ने एक स्वप्न देखा कि वही बालक उनका हाथ पकड़कर एक कुँज में ले गया और कहने लगा– ''मैं इस कुँज में रहता हूँ। मैं यहाँ सर्दी, गर्मी व वर्षा में बहुत दुःख पा रहा हूँ। गाँव के लोगों से मिलकर, पर्वत के ऊपर एक मठ स्थापन करके मुझे वहाँ स्थापित करो और बहुत सारा जल लाकर मेरे अंगों का मार्जन करवाओ। मैं तुम्हारी सेवा स्वीकार करुँगा एवं सभी को दर्शन देकर संसार का उद्धार करुँगा। मेरा नाम है **'गोवर्धनधारी गोपाल'**। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र व अनिरुद्ध के पुत्र ने मुझे यहाँ स्थापित किया था। मलेच्छों के डर से, मेरे सेवक, मुझे इस कुंज में रखकर भाग गये थे, तभी से मैं यहाँ हूँ। आप आये हैं, बहुत अच्छा हुआ आप मेरा उद्धार करो।''

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी का स्वप्न भंग हुआ और उस बालक की आज्ञा पालन करने के लिये उन्होंने गाँव के लोगों को इक्ठा किया और स्वप्न की बात बताई। गाँव के लोगों ने परमोल्लास के साथ घास, मिट्ठी हटाई तो देखा–महाभारी ठाकुरजी का विग्रह! श्रीमूर्ति प्रकट हुई। महाभिषेक हुआ। बहुत दिनों से भूखे गोपाल जी ने सारी भोग सामग्री ग्रहण की। गाँवों के गाँव गोपालजी के दर्शन करने आते। एक मंदिर भी बन गया, दस हजार गौएँ भी हो गईं। एक दिन गोपालजी ने माधवेन्द्रपुरी जी को स्वप्न में कहा कि उनके अंगों की गर्मी अभी नहीं गयी है इसलिये मलयज चन्दन लाओ और लेप करो। गोपाल जी की आज्ञा पाकर वे चन्दन लेने के लिये पूर्व देश की ओर चल दिये। रास्ते में रेमुणा में गोपीनाथ जी का अपूर्व दर्शन करके वे प्रेम–विह्वल हो उठे। ठीक उसी समय 'अमृतकेलि' खीर का भोग ठाकुर जी को निवेदन किया गया।

आरती करके वे मंदिर से बाहर चले गये और एकांत में बैठकर हरिनाम करने लगे। उनके मन में विचार आया कि यदि थोड़ा खीर प्रसाद मिल जाता तो मैं भी उसका रसास्वादन करता। ठाकुर गोपीनाथ उनके मन की इच्छा जान गये।

जब पुजारी मंदिर बंद करके सो गया तो ठाकुरजी ने स्वप्न में उससे कहा कि मैंने माधवेन्द्रपुरी सन्यासी के लिये एक पात्र खीर रखी हुई है जोकि मेरे आंचल के कपड़े से ढकी हुई है। शीघ्र वह खीर ले जाकर उसे दे दो।

पुजारी ने श्रील माधवेन्द्रपुरी जी को खीर दी, दण्डवत् प्रणाम किया और अपना स्वप्न सुनाया। माधवेन्द्रपुरी जी ने खीर प्रसाद का सम्मान किया और रात्रि समाप्त होते ही प्रतिष्ठा के भय से नीलाचल की ओर प्रस्थान किया। नीलाचल में पहुँचकर जगन्नाथ जी के दर्शन करके वे प्रेमाविष्ट हो उठे। चन्दन लेकर दुबारा रेमुणा में आकर रुके। उसी रात फिर गोपालजी ने स्वप्न में आदेश दिया।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी जगद्गुरु थे। वे अपने शिष्य श्रीईश्वरपुरीजी की सेवा से बहुत प्रसन्न थे और ईश्वरपुरीपादजी को कृष्ण प्रेम दान कर निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुये वे अन्तर्धान हो गये।

अयि दीनदयार्द्रनाथ!
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।।
हृदयं त्वदलोककातरं।
दयितं भ्राम्यति किं करोम्यहम्।। (पद्यावली)

''ओहे दीनदयार्द्र नाथ! ओहे मथुरानाथ! मैं कब आपका दर्शन करूँगा। आपके दर्शन के बिना मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित, मैं अब क्या करूँ?

इस श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमोन्मत्त हो गये थे तथा नित्यानंद जी ने उन्हें गोद में बिठा लिया था।

ऐसी थी श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादजी की अलौकिक प्रेम-पराकाष्ठा।

पतित पावन, परमाराध्य श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के श्रीपादपद्मों में अनंतकोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

17. श्री ईश्वरपुरी पाद

श्रीईश्वरपुरीपाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद के शिष्य थे। श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद भक्ति रस के आदि सूत्रधार हैं, ऐसा श्रीगौरचन्द्रजी ने बार–बार कहा है। यद्यपि श्रीगौरचन्द्र (श्रीचैतन्य महाप्रभु) स्वयं भगवान् हैं, फिर भी सद्गुरु चरणाश्रय की शिक्षा देने के लिये उन्होंने श्री ईश्वरपुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहण करने की लीला की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी का श्रीकृष्ण–प्रेम प्रकाशित हुआ। श्रीईश्वरपुरीपाद ने जब नवद्वीप में शुभ पदार्पण किया था तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने हाथों से रसोई बनाकर व अपने हाथों से परिवेषण करके, गुरु–सेवा का सर्वोत्तम आदर्श स्थापन किया था।

एकबार श्रीईश्वरपुरीपादजी ने स्वरचित 'श्रीकृष्ण लीलामृत' ग्रंथ की भूल–चूक देखने के लिये निमाई (श्रीगौरहरि) को कहा तो गौरहरि ने कहा–"एक तो भक्त वाक्य फिर उसमें भी श्रीकृष्ण का वर्णन इसमें जो दोष देखेगा, वह पापी ही होगा। इसमें अर्थात् भक्त के लेख में जो दोष देखता है वह दोष स्वयं देखने वाले में होता है। भक्त के वर्णन मात्र से ही कृष्ण का संतोष होता है। इसलिये आपका जो ये प्रेम–वर्णन है इसमें दोष देखने का साहस कौन कर सकता है?"

श्रीईश्वरपुरीपाद जी ने अपने मन, वाणी तथा शरीर द्वारा अपने श्रीलगुरुदेवजी की सेवा करके एवं हर समय कृष्ण नाम व कृष्ण लीलाऐं सुना–सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था।

श्रीईश्वरपुरीपादजी ने अप्रकट होने से पहले अपने दो शिष्यों– काशीश्वर तथा गोविन्द को श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा के लिये

निर्देश किया। ''श्रीगुरुजी की आज्ञा अवश्य पालनीय है'' इस विचार से श्रीमन्महाप्रभु जी ने उन दोनों को सेवक रूप में ग्रहण किया था।

श्री ईश्वरपुरीपादजी मुझ अधम पर कृपा करें ताकि मेरी हरिनाम में रुचि नित्य–निरंतर बढ़ती रहे। उनके श्रीचरणकमलों में शत–शत नमन।

18. देवर्षि नारद जी

देवर्षि नारद जी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और भक्त शिरोमणि हैं। वे सभी गोपनीय रहस्यों को जानने वाले हैं। वे वीणा बजाते हुये और 'नारायण' 'नारायण' नाम का मधुर स्वर में कीर्तन करते हुये तीनों लोकों में स्वछन्द विचरण करते रहते हैं। देवर्षि नारद इसलिये भी धन्य हैं क्योंकि वे शार्ङ्गपाणि भगवान् की कीर्ति का गान करके स्वयं तो आनन्दमग्न रहते हैं और इस जगत् के प्राणियों को भी आनन्दित करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी का दर्शन सभी पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है। जब किसी मनुष्य का भाग्य उदय होता है, तभी उसे नारदजी के दर्शन होते हैं। हरिनाम में हमारी रुचि बढ़े और हमारा हरिनाम तैलधारावत् चलता रहे, इसलिये देवर्षि नारद से प्रार्थना करनी चाहिये।

''देवर्षे! मैं अति दीन हूँ और आप स्वभाव से ही दयालु हैं। इसलिये मुझपर अवश्य कृपा करो। हे करुणानिधान! मैं संसार सागर में डूबा हुआ और बहुत अधम हूँ। आप इस संसार सागर से मेरा उद्धार कीजिये। मैं आपकी शरण लेता हूँ।''

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि।।

'देवर्षे! आपका केवल एकबार का उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रहलाद ने माया पर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुव ने

भी आपकी कृपा से ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमंगलमय और साक्षात् ब्रह्मा जी के पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

19. श्री सनकादिक जी

भगवान् ने कौमार सर्ग में सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ये चारों भाई बड़े योगी, बुद्धिमान और विद्वान् हैं। देखने में तो पाँच–पाँच वर्ष के बालक से जान पड़ते हैं किन्तु हैं पूर्वजों के भी पूर्वज। ये सदा वैकुण्ठ धाम में निवास करते हैं। ये निरंतर हरि कीर्तन में तत्पर रहते हैं। एकमात्र भगवान् का नाम ही इनके जीवन का आधार है। 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) – यह वाक्य सदा उनके मुख में रहता है।

20. श्री ब्रह्मा जी

ब्रह्मा जी को 'स्वयंभू' भी कहते हैं। तीनों लोकों के परमगुरु आदिदेव ब्रह्मा जी का जन्म भगवान् की नाभि से हुआ है। गर्भोदशायी के नाभिकमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्माजी व्यष्टि जीवों की सृष्टि करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं उन्होंने अपने तत्त्व का ज्ञान सबसे पहले, सृष्टि के प्रथम जीव, चतुर्मुख ब्रह्माजी को ही दिया था।

21. श्री शिव जी

शिवजी परम वैष्णव हैं। उन्हें कैलासपति भी कहते हैं। वे हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर है। उनके सिर पर सुंदर गंगा जी विराजमान हैं। उनके ललाट पर द्वितीय का चन्द्रमा और गले में सांप रहते हैं। उनके कानों में विशाल कुण्डल हैं, उनके नेत्र विशाल हैं। वे प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं। वे सिंह चर्म का

वस्त्र धारण करते हैं और मुण्डमाल पहने रहते हैं। वे रुद्ररूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखंड, अजन्मा, कल्याणस्वरूप और हाथ में त्रिशूल धारण किये रहते हैं। वे निराकार, ओंकार के मूल, महाकाल के भी काल, गुणों के धाम तथा कामदेव के शत्रु हैं। शिवजी की कृपा के बिना भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति नहीं हो सकती। भोलेनाथ सबके गुरु और माता–पिता हैं।

''हे शम्भो! मैं न योग जानता हूँ, न पूजा जानता हूँ। मैं तो सदा–सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! मुझे हरिनाम करने की शक्ति प्रदान कीजिये। हे ईश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।''

श्री शिवजी से यही प्रार्थना करनी चाहिये।

22. श्री नित्यानंद प्रभु

जय जय नित्यानंद चरणारविंद।
जाहां हैते पाइलाम श्रीराधागोविन्द।।

''श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की जय हो। जय हो। जिनकी कृपा से मुझे श्रीराधागोविन्द देव के दर्शन प्राप्त हुये।''

श्रीनित्यानंद प्रभु कृपा के अवतार हैं, वे कृपा की प्रकट मूर्ति हैं। श्रीमन्नित्यानंद प्रभुजी 'ईश्वर का प्रकाश' हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानंद में कोई भेद नहीं है। वे एक ही हैं। केवल देह से वे भिन्न–भिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के अवतार हैं। वे स्वयं भगवान् हैं और उन्हीं का दूसरा विग्रह हैं श्रीबलराम। श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण के सहायक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप से नवद्वीप में अवतरित हुये तो बलरामजी नित्यानंद रूप में अवतीर्ण हुये। श्री बलराम संकर्षण के अंशी हैं अथवा मूल हैं। ब्रजलीला में जैसे श्रीबलराम श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं उसी तरह नवद्वीप लीला में नित्यानंद जी भी कभी गुरु, कभी सखा, कभी दास भाव से लीला करते हैं।

त्रेतायुग में श्रीकृष्ण ही श्रीराम रूप में लीला करते हैं और बलराम जी उनके साथ श्रीलक्ष्मण रूप से सहायता करते हैं। श्रीराम जी श्रीकृष्ण का अंश हैं और श्रीलक्ष्मण जी बलराम जी का अंश है। वही श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप में अवतीर्ण हुये तो श्री बलरामजी नित्यानंद रूप से अवतीर्ण हुये।

श्री नित्यानंद जी की महिमा का सिंधु अनंत एवं असीम है। उनके गुणों की महिमा का वर्णन अपार है। शेष भगवान् भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सके।

आईये श्रीनित्यानंद प्रभु के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि दण्डवत् प्रणाम करके, उनसे अपने अपराधों की क्षमा मांगें और प्रार्थना करें कि हरिनाम में हमारी रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे।

जय जय नित्यानंद नित्यानंद राम।
जय जय नित्यानंद जय कृपामय।।

23. श्री अद्वैताचार्य

श्री अद्वैताचार्य प्रभु महाविष्णु हैं। हरि से अभिन्न तत्त्व होने के कारण ही उनका नाम 'अद्वैत' है तथा भक्ति–शिक्षक होने के कारण उन्हें 'आचार्य' कहा जाता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी की अलौकिक प्रेम–चेष्टाएं देखकर ही, श्री अद्वैताचार्य जी ने उनसे दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले ही अद्वैताचार्य जी ने जान लिया था कि कलियुग की प्रथम संध्या में तथा भविष्य में अनाचारों की प्रबलता होगी। सारा संसार श्रीकृष्ण भक्ति शून्य होगा। ऐसी स्थिति में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने से ही जगत् का कल्याण होगा। इसलिये श्रीअद्वैताचार्य जी गंगाजल व तुलसी मंजरी के द्वारा श्रीकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करते हुये, उन्हें अवतीर्ण करवाने के लिये हुंकार भरने लगे। श्री अद्वैताचार्यजी की प्रेम–हुंकार से गोलोकपति श्रीहरि की अवतीर्ण होने की इच्छा हुई और वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुये।

श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है कि महाप्रभु जी कहते हैं– ''श्री अद्वैताचार्य जी के कारण ही मेरा अवतार हुआ है। आज भी मेरे कानों में उनकी हुंकार गूंज रही है। मैं तो बड़े आराम से क्षीर सागर में सो रहा था, इन्हीं अद्वैताचार्य की हुंकार ने मुझे जगा दिया।''

श्री अद्वैताचार्य श्री चैतन्य महाप्रभुजी से अभिन्न शरीर हैं। उनकी कृपा के बिना श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानंद प्रभुजी की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती।

महाविष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः।
तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः।।

मैं भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य ईश्वर का आश्रय ग्रहण करता हूँ। जो महाविष्णु, माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं, उन जगत्कर्ता के ही अवतार हैं– ईश्वर अद्वैताचार्य जी।

एकबार महाप्रभुजी का महाऐश्वर्य दर्शन करके श्रीअद्वैताचार्य स्तम्भित हो गये थे और उन्होंने निम्न मंत्र द्वारा उन्हें प्रणाम किया था–

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो–ब्राह्मण हिताय च।
जगद्–हिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः।।

श्री अद्वैताचार्य जी के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि प्रणाम है। हमारी हरिनाम में रुचि निरंतर बढ़ती रहे, यही कृपा–प्रार्थना है।

24. श्री गदाधर पण्डित

श्रीकृष्ण लीला में जो राधिका हैं, श्रीगौरलीला में वे ही गदाधर पण्डित गोस्वामी हैं। गौर नारायण जी की शक्ति हैं लक्ष्मी प्रिया तथा विष्णुप्रिया और गौर कृष्ण की शक्ति हैं– श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में से सर्वप्रधान भक्त हैं। श्रीराधागोविन्द जी का मधुररस से

भजन करने वाले शुद्ध भक्त, श्रीगदाधरजी का आश्रय ग्रहण करते हैं और इनका आश्रय लेने पर ही उनकी गिनती श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में होती है। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के अन्तरंग पार्षदों के अतिरिक्त, श्रीगदाधरजी की अद्‌भुत गौरांग प्रीति को समझने की और किसी में सामर्थ्य नहीं है।

श्री मन्महाप्रभु जी के अन्तर्धान होने के बाद श्रीगदाधर पण्डित मात्र ग्यारह महीने प्रकट रहे। श्रीगौरांग महाप्रभुजी के विरह में श्रीगदाधर पण्डित जी की जो दारुण अवस्था हुई थी, उसका वर्णन 'भक्ति–रत्नाकर' ग्रंथ में हुआ है।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी आप मुझ दीन पर कृपा करें कि तैलधारावत् मेरा हरिनाम चलता रहे। आपके श्रीचरणों में कोटि–कोटि प्रणाम।

25. श्रीवास पण्डित

श्रीवास पण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।।

श्रीनारद मुनि ही गौरलीला में श्रीवास पण्डित के रूप में अवतरित हुये थे। चैतन्य चरितामृत में लिखा है–

शचीर मंदिरे, आर नित्यानंद नर्तने।
श्रीवास कीर्तने, आर राघव भवने।।
एइ चारि ठाञि प्रभुर सदा आविर्भाव।
प्रेमाकृष्ट–हय, प्रभुर सहज स्वभाव।।

''शचीमाता के भवन में, श्रीनित्यानंदप्रभु के नृत्य में, श्रीवास पण्डित के कीर्तन में तथा श्री राघवजी के भवन में– इन चार स्थानों पर श्रीमहाप्रभु नित्य निवास करते हैं।''

श्रीमन्महाप्रभुजी ने एक साल तक सारी–सारी रात श्रीवास आंगन में संकीर्तन किया था। उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी केवल अपने पार्षदों को लेकर ही संकीर्तन विलास करते थे। एकदिन महाप्रभु जी ने, श्रीवास आंगन में 'महाप्रकाश लीला' प्रकट की थी

और सात प्रहर तक चलने वाली इस लीला में, उन्होंने विष्णु के अवतारों के सभी रूपों को प्रकाशित किया था। श्रीवास आंगन में संकीर्तन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु अपने गणों के साथ गंगा–स्नान के लिये जाया करते थे।

एकदिन श्रीवास आंगन में रात को संकीर्तन के समय, उनका इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र वियोग में घर की स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीवासजी तुरंत घर के अंदर गये और सबको चुप करा दिया। कीर्तन चलता रहा। कुछ देर बाद महाप्रभुजी ने पूछा–

पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है क्या ? महाप्रभुजी की बात सुनकर श्रीवासजी ने कहा–

प्रभु मोर कौन दुःख?
यार घरे सप्रसन्ने तोमार श्रीमुख

''हे प्रभो! जिस घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख हो, वहां भला क्या दुःख हो सकता है।''

जब भक्तों ने बताया कि श्रीवासजी का इकलौता पुत्र आधी रात में गुजर गया था पर आपके कीर्तन में बाधा न हो, इसलिये श्रीवासजी ने आपको बताने से मना कर दिया था तो महाप्रभु रोने लगे और मृत–शिशु के पाकर आकर बोले– अहो बालक! तुमने श्रीवास जैसे भक्त के घर को क्यों त्याग दिया ?

इस पर मृत–शिशु बोला– ''प्रभो! मैं आपका नित्य दास हूँ। आपकी इच्छा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। जितने दिन मुझे इस घर में ठहरना था, उतने दिन मैं यहाँ रहा। अब आपकी इच्छा से मैं यहाँ से जा रहा हूँ। आपका मुझ पर कृपा कीजिये कि मुझे कभी भी, किसी भी अवस्था में आपके चरण–कमलों की विस्मृति न हो''– मृत–शिशु के मुख से ये बातें सुनकर, श्रीवास और उनके परिवारजनों का शोक दूर हो गया और उनको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीवासजी ने कहा– '' अब मैं और नित्यानन्द जी तुम्हारे दो पुत्र हैं और हम कभी भी तुम्हें छोड़कर नहीं जायेंगे।''

श्रीवास जी की नित्यानंदजी में दृढ़–निष्ठा देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने इन्हें वर प्रदान किया था कि उनके घर में कभी भी लक्ष्मी का अभाव नहीं होगा और उस घर के कुत्ते–बिल्ली तक की भी श्रीभगवान् में अचला भक्ति होगी।''

वस्तुतः श्रीगौरांग महाप्रभु! श्रीनित्यानंद प्रभु! श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर तथा श्रीवास – इन पंच तत्त्वों में कोई भेद नहीं हैं परन्तु रसास्वादन के लिये, वह विचित्र लीलामय एक ही तत्व पांच भागों में बंटा हुआ है। श्रीगौरांग महाप्रभुजी, श्रीनित्यानंद प्रभु जी तथा श्रीअद्वैताचार्यजी यह तीनों ही विष्णु तत्त्व हैं और भक्तरूप, भक्त स्वरूप एवं भक्तावतार के रूप में प्रकट हुये हैं जबकि श्रीगदाधरजी भक्तशक्ति और श्रीवास जी शुद्ध भक्त हैं।

पंचतत्त्वात्मकं कृष्ण भक्तरूप स्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त शक्तिकम्।।

मैं, पंचतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण को अर्थात् श्रीकृष्ण के भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त और भक्तशक्ति को प्रणाम करता हूँ।

– हरिपद दास

विषयी व्यक्ति का अन्न खाने से चित्त मलिन हो जाता है। चित्त मलिन होने से कृष्ण–स्मृति का अभाव हो जाता है तथा कृष्ण–स्मृति के अभाव में जीवन निष्फल हो जाता है। इसलिये सभी लोगों के लिये यह निषिद्ध है, विशेषतः धर्माचार्यों के लिये तो विशेष रूप से निषिद्ध है।
(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 1



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

– अनिरुद्ध दास अधिकारी



व्रज का खेल कुलेल-मगन-मन।
नदिया का रज-लुण्ठित-तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग-जल-वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल-बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग-बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड़ की ढाणी
5-10-2008

परमाराध्यतम, प्रेमास्पद, भक्तगण तथा शिक्षागुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़कर वैराग्य उदय होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

सच्चे रूप में शत-प्रतिशत रसमय परमानंद से भजन कैसे हो?

यह मानव-जन्म सुकृतिवश भगवत्-कृपा परवश मिला है। इसको व्यर्थ में गंवाना सबसे बड़ा शोचनीय नुकसान है। इसमें मन ही एक मुख्य कारण है। श्रीगुरुदेव बारंबार साधकों को चेता रहे हैं, जगा रहे हैं, अब भी गहराई से विचार द्वारा अपने मन को व्यर्थ के कर्मों में न लगाकर, परमार्थ कर्म में नियोजित करें, यह मानव-जीवन, जो भगवत्-कृपावश बड़ी मुश्किल से उपलब्ध हुआ है, केवल भगवत-प्राप्ति के हेतु मिला है। हरिनाम-स्मरण रूपी सत्संग में लगाकर, अपना यह दुर्लभ जीवन सफल कर लो वरना अब आगे यह सुअवसर हाथ नहीं आने का। 28 प्रकार के नरक भोगकर चौरासी लाख योनियों में, जो दुःखों का सागर है, जाना होगा, कोई बचाएगा नहीं, अपना किया कर्म स्वयं को ही भोगना पड़ेगा।

मैं मार्ग बता रहा हूँ। इस मार्ग से जाने से भगवान के शरणागत् होने पर, भगवान तुम्हें अपना लेंगे। सारा भार आपका स्वयं उठा लेंगे। तुम्हारा पूरा जीवन सुखमय हो जाएगा, भगवान तुम्हारा दर्शन करने स्वयं आएंगे एवं तुमको दर्शन लाभ निश्चय ही हो

जाएगा, जैसे मीरा को, नरसी भक्त को, सनातन, रूप, माधवेन्द्रपुरीपाद आदि को हुआ है। तुमको भी अवश्य होगा। इसमें एक प्रतिशत भी अनिश्चितता नहीं होगी।

निम्न प्रकार से अपना जीवनयापन करना होगाः–

1. एक लाख हरिनाम कान से स्वयं सुनकर व गुरु, संत, हरिदास आदि, माधवेन्द्रपुरी, रूप, सनातन, गौर, निताई, प्रह्लाद, ध्रुव, नृसिंहदेव, बजरंग, नारद जी– कितने ही संत भगवत अवतार हैं, इनके चरणों में बैठकर इनको हरिनाम सुनाते रहो तो तुम्हारा मन एक क्षण इधर–उधर कभी भी भटकेगा ही नहीं।

प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी साधक आज़माकर देख सकता है। अनुभव सदैव ही सभी के लिए शत–प्रतिशत सच्चा होता है।

विराहाग्नि प्रज्ज्वलित होने का एक मात्र उपायः–

अन्तःकरण से पुकारकर बोलो "हा निताई! हा निमाई! कृपा करो! इस अपराधी पर कृपा करो!" यही है विदीर्ण–हृदय की पुकार! यही है इन्जैक्शन! इसी से रोग दूर होगा! आज़माकर देखो। एक लाख हरिनाम जपने से कुछ तो शुद्धनाम अवश्य आविभूत होगा ही। यही शुद्धनाम नामाभास–नाम को अपनी ओर खींचकर अपने शुद्धनाम में नियोजित कर लोग क्योंकि शुद्धनाम में एक अलौकिक शक्ति निहित रहती है, एवं नामाभास इससे कमज़ोर रहता है अतः शक्तिशाली कमजोर को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह ध्रुवसत्य सिद्धांत है ही। इसी प्रकार से श्रीगौरहरि ने अपने सभी जनों को आदेश दिया है कि जो भी एक लाख हरिनाम नित्य करेगा उसी के घर में मैं प्रसाद पाऊँगा अर्थात् उस घर को छोड़कर मैं कहीं नहीं रहूँगा। कितना सरल सुगम उपाय इस कलियुग में हैं। घर बैठे भगवान मिल जाएँगे। जंगल में भटकना नहीं पड़ेगा, जहां सर्दी, गर्मी, बरसात, खाना–पीना दूभर, कितनी–कितनी तकलीफें सामने आती रहती हैं।

इस सुअवसर को हाथ से निकाल देना कितना अज्ञानता है।

2. कम से कम रात में 3 बजे ब्रह्म मुहूर्त में उठकर हरिनाम करना होगा जैसा कि पिछले गुरुवर्ग ने 2–3 बजे उठकर हरिनाम किया है। जल्दी उठना तब ही हो सकेगा, जब शाम व रात को भोजन नाममात्र का पा सकोगे या दूध पर रह सकोगे वरना आलस्य–शत्रु भजन में बाधा डालेगा। आरंभ में आलस्य आवेगा, एक माह बाद आलस्य आना बंद हो जाएगा।

3. 2 माला हरिनाम की, सोते समय कान से सुनकर करनी होगी ताकि यह नाम रात भर सोते रहने में भी सारे बदन में Circulate होता रहे। एक दिन में ऐसा नहीं होगा, कुछ दिनों बाद में इसका प्रभाव होकर भगवत–संबंधी स्वप्नों में परिवर्तित हो पड़ेगा। कृष्ण, अर्जुन को बारंबार कहते हैं–''अभ्यास से सब होगा।'' प्रत्यक्ष में देखा भी गया है कि Typist बातें भी करता है, Type भी। वाहन चालक बातें भी करता है, Accident से भी बचाता है। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ?

4. नित्य ही समय मिलने पर श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीचैतन्य चरितामृत तथा अन्य हरिनाम संबंधी पुस्तकों से सत्संग करते रहें ताकि हरिनाम को अच्छी खुराक मिलती रहे। यदि शुद्ध संत का समागम हो सके तो उनसे विचार–विमर्श करते रहें तो हरिनाम में रुचि अवश्यमेव होगी ही। इसमें एक प्रतिशत भी विचारने की आवश्यकता नहीं हैं।

5. ब्रह्मचर्य पालन परमावश्यक है। ब्रह्मचर्य का प्रमुख आशय है सभी इन्द्रियों को अपने गोलक में नियोजित रखें। संसार के विषयों की तरफ जाने न देवें। इन ग्यारह इन्द्रियों को आध्यात्मिक विषय में लगाए रहें। ताकि इन पर संसारी विषयों का आवरण नहीं चढ़ सके क्योंकि मन ही सब इन्द्रियों का राजा है। यही सब इन्द्रियों को आदेश देकर संसारी विषयों में नियोजित करता रहता है।

टी.वी., रेडियो, अखबार, मोबाइल, बाहरी वातावरण, बेढंगे–चित्र, पशु–पक्षी–रमण, बेढंगा पहनावा आदि का सबसे अधिक आकर्षण व प्रभाव मन पर पड़ता रहता है। इनसे बचने का उपाय

भी श्रीगुरुदेव बता रहे हैं। टी.वी., रेडियो, अखबार से दूर रहने में कोई आपत्ति नहीं है। अन्य से बचने के लिए आंखों का कंट्रोल परमावश्यक है। आंखें तो स्वाभाविक जावेंगी ही परंतु एक बार जाने पर दूसरी बार न देखो। दूसरी बार देखने पर मन पाजी उसे पकड़ लेता है। फिर तो समस्या काबू के बाहर हो जाती है। फिर मनोहर–भजन कैसे हो सकता है? यह साधक की कमज़ोरी ही बतानी पड़ेगी। एक बार के स्त्री–संग से पूरा सात्विक भाव समूल नष्ट हो जाता है। हजारों साल की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है। यह श्रीगुरुदेव ही नहीं, शास्त्र की भी वाणी है।

6. ग्राम्य–चर्चा तथा फालतू बातों से मुंह मोड़ लें। हर समय बिना माला भी श्रीहरिनाम का स्मरण करते रहें। दूसरा संकल्प–विकल्प फिर आ ही नहीं सकता। इसमें अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। घर की आसक्ति भी इससे कम होती चली जाएगी तथा भगवत–आसक्ति बढ़ती चली जाएगी। आसक्ति ही तो मूल शत्रु है। इसे ही समूल नष्ट करना है। पर यह सब हरिनाम से ही होगा। पौधे को इस क्यारी से उखाड़ कर दूसरी क्यारी में ही तो लगाना है! क्या मुश्किल है? केवल इसमें मन ही की कमज़ोरी है।

7. अहिंसावृति का पालन परमावश्यक है। किसी भी जीव को सतायें नहीं। सभी भगवान के पुत्र हैं। क्या पुत्रों को दुःख देने से पिता (भगवान) खुश रहेगा? कदापि नहीं। सब पर दया करें, हो सके तो तन–मन और वचन से सेवा कर दें, सतावें तो नहीं। सन्मार्ग का उपदेश देकर उनकी भलाई में जीवन यापन करता रहे।

विशेषः–जिसने जीभ पर नियंत्रण कर लिया, उसकी सभी इन्द्रियाँ वश में हो गईं। जीभ का तथा उपस्थ इंद्रिय का सीधा संबंध रहता है। ''रूखा सूखा खावो, भगवत–प्रेम पावो।'' जो भगवान के प्यारे साधुजन हैं, उनकी तो भूल कर भी निन्दा न करें, न ही उनको सतावें, वरना भगवान उसे घोर दंड देगा। पापी चाहे कितना ही पाप करे, उस पर भगवान इतना रुष्ट नहीं होते जितना रुष्ट अपने भक्त को दुःख देने से होते हैं। पापी तो अपने पाप का

फल भोग कर लेगा, उसमें भगवान का क्या जाता है परंतु भक्त को सताने वाला भगवान का भी घोर दुश्मन है। भगवान उसे रौरव नरक में या करोनिक बीमारी देकर घोर दंड देते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है–गोपाल चापाल विप्र, जिनका अपराध श्रीनिवास के प्रति हुआ था। कोढ़ से दंड दिया। अम्बरीष को सताने वाले शिव के अंश से उत्पन्न अत्रि–अनुसूया पुत्र दुर्वासा जी को सुदर्शन चक्र से दुःख भोगना पड़ा।

8. शुद्ध–कमाई का प्रसाद ही भक्ति को बढ़ाता है। अशुद्ध–कमाई से भक्ति नष्ट होती रहती है जैसा कि देखा जा रहा है। जो उपलब्ध हो, उसी में संतोष रखें। हाय–हाय के चक्कर में नहीं फंसे। अधिक वस्तुएं नहीं बटोरें। सभी बाद में संकट में डालती हैं। परिमित वस्तुएं घर में रखें, जितने से जीवन निर्वाह हो जावे। ऊपर की ओर नहीं देखें। नीचे की ओर देखें तो सदा सुख से रह सकोगे वरना जी जलता रहेगा। उसके पास कार है, बंगला है। मेरे पास भी हो, पा नहीं सकता तो दुःखी रहेगा या गलत मार्ग अपनाएगा।

9. प्रसाद पाते हुए नाम–स्मरण करने से दिन भर अष्ट सात्विक धाराएं बहती रहेंगी। ''जैसा अन्न, वैसा मन''। पानी पीते हुए हरिनाम स्मरण करने से भगवान का चरणामृत बनकर पेट में जाएगा तो वचन, वाणी सत्य निकलेगी। झूठ से पाला ही नहीं पड़ेगा। ''जैसा पानी, वैसी वाणी''।

1 0. मान–सम्मान की चाह न रखें। यदि मान–सम्मान हो तो इसे भगवत् कृपा ही समझें ताकि अहंकार न आ सके। अपनी अहम्–बुद्धि को भगवत–चरणों में चढ़ा दें। अन्तःकरण से गहरा विचार करें कि तू किस लायक है ? तेरे से अच्छे तो पशु–पक्षी ही हैं, जो मर्यादा से चलते हैं, भक्ष्य–अभक्ष्य का ध्यान रखते हैं, नियमों में बंधे हैं। मालिक को पहचान कर प्यार करते हैं। तुम में तो प्रेम का लेशमात्र भी नहीं है। तू अपने माँ–बाप तक का नहीं है, अन्य का तो होने का सवाल ही नहीं है। ऐसा विचार करने से अहम्

समूल नष्ट हो जाएगा। फिर उसका सिर उठाना ही दूभर हो जाएगा।

11. भगवत्–त्योहारों व भक्त–जनों के आविर्भाव–तिरोभाव पर उनको अधिक याद करते हुए उनका जीवन–चरित्र सुनें तथा सुनावें व हरिकीर्तन तथा भक्तों के रचे पद्यों द्वारा दिन का सत्संग करता रहे तो संसारी कामों या चर्चाओं में समय ही कहां मिल सकेगा ? दिन–रात, भगवत–चरणों में ही साधक अपनी साधना में लगा रहेगा। मरने पर उसका अंत प्रशंसनीय होगा। नामनिष्ठ को भगवान् अपने पार्षदों को लेने न भेज कर, स्वयं लेने आते हैं क्योंकि साधक ने दिन–रात अपना जीवन हरिनाम पर ही व्यतीत किया है। हरिनाम तथा भगवान एक ही तो हैं। भगवान ही कलियुग में नामरूप से अवतरित हुए हैं। भगवान ही उस नामनिष्ठ की जिह्वा पर रात–दिन नृत्य करते रहते हैं। भगवान उससे अलग हुए ही कब हैं ? निरंतर उससे चिपके रहते हैं। मरते समय भी कहीं गए थोड़े ही हैं, ले जाने के लिए उसी के पास में चिपके बैठे हैं। अपना स्वयं का उड़नखटोला (विमान) मंगाकर नामनिष्ठ–भक्त को बिठाकर अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं। वहां पर उसका भव्य स्वागत होता है। रमणीय स्थान उसे उपलब्ध होता है। मनवांछा, कल्पतरु तथा चारु चिंतामणि से विभूषित हो जाता है। क्योंकि मन ने ही तो उसे गोलोक धाम में पठाया है। मन की सभी कामनाएं उसे वहां उपलब्ध हो जाती हैं। तब ही तो कहा गया है–''मन ही जीव का मित्र है, मन ही जीव का शत्रु है।''

भगवान से मिलाता है तो मित्र तथा माया में फंसाता है तो शत्रु है। अनन्त जन्मों से, अनन्त युगों से तथा आदिजन्म से इस ने मन जीव को माया में फंसा रखा है।

जब इसे साधुसंग की कृपा उपलब्ध हुई तब यह माया के चंगुल से छूट सका। साधु–कृपा बिना माया से छूटने का कोई अन्य उपाय ही नहीं है। अतः कहा गया है–मन के कहे न चालिए, यदि चाहो तुम कल्याण। यदि मन के कहने पर चलते रहोगे तो कर देगा तुम्हारा संहार। मन भूत है, यदि इसको काम पर नहीं लगाया तो यह तुम्हें ही मार देगा।

उदाहरण से बताया गया है कि किसी ने भूत पाल लिया। जो काम कहे उसे बहुत शीघ्र करके आ जाए और कहे–अब मैं क्या करूँ? उसने कहा–''अब तो काम नहीं है, बाद में बता दूंगा।'' भूत ने कहा–''मैं खाली रह नहीं सकता, यदि काम नहीं बताया तो मैं तुम्हें मार दूंगा।'' अब तो भूत के मालिक पर मुसीबत आ गई। इससे पिंडा कैसे छूटे? मैंने भूत पाल कर अपना ही नाश कर लिया। सबसे पूछता फिरे, मैं कैसे बचूं?

किसी ज्ञानी पुरुष ने कहा–''कोई तुम्हें बचा नहीं सकता है। संत–महात्माओं के पास अनेक उपाय हैं। वे ही तुम्हें बचने का उपाय बता सकते हैं। तुम अमुक साधु के पास जाकर पूछो। वे सिद्ध महात्मा हैं।''

भूत के मालिक ने उस सिद्ध–महात्मा से अपने बचने का उपाय पूछा। महात्मा ने कहा–''यह तो तुम्हें खा जावेगा। इसका कोई उपाय नहीं है।'' सभी आपको सिद्ध महात्मा कहते हैं, भगवान से पूछकर बता सकते हो। उस महात्मा को दया आ गई, उसने कहा–''मैं पूछूँगा, तुम कल अभिजित मुहूर्त में आकर पूछ जाना।'' उसने कहा–''अभिजित मुहूर्त कब होता है?'' महात्मा ने कहा–''पौने बारह बजे से सवा बारह बजे तक में आ जाना।'' उसने कहा–''तब तक तो वह भूत मुझे खत्म ही कर देगा।''

सिद्ध बोला–''कुछ देर ठहरो, मैं भगवान से ध्यान लगाकर पूछता हूँ, वे क्या उपाय बताते हैं? वह अंदर गया और उसने अंदर जाकर क्या किया, मालूम नहीं।'' वह बाहर आकर बोला–''तुम आंगन में एक दस फुट का बांस गाढ़कर भूत से कह दिया करो जब काम न हो इस बांस पर चढ़ो–उतरो, तो काम का अंत ही नहीं होगा।'' उसने कहा–''बहुत ठीक उपाय है, अब तो मैं ही उसे परेशान कर दूंगा।'' यही है मन का भूत! इसको खाली मत छोड़ो वरना खा जाएगा। उक्त नियम पालन करने से भगवत् शरणागति होकर भगवत्–दर्शन हो जाता है। भगवान को स्वयं भक्त का दर्शन करने को बाध्य होना पड़ता है।

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड़ की ढाणी

25-09-2008

प्रेमास्पद, भक्त-प्रवर-गण तथा शिक्षा-गुरुदेव श्री श्री108 श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

इसी जन्म में भगवत्-दर्शनमय अलौकिक प्रेम-प्राप्ति

पढ़ा गया तथा सुना गया है कि भूतकाल के गुरुगण ने हरिनाम की शरणागत होकर अर्थात् नित्य प्रति एक लाख से तीन लाख हरिनाम-स्मरण करके भगवान का दर्शन प्राप्त किया था।

कलिकाल में इस भक्ति-साधना के अलावा कोई भी अन्य साधन है ही नहीं। इस साधन से साधक इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थ उपलब्ध कर लेता है तथा अंत में इस दुःखसागर को पार कर जाता है। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है। इससे साधक को सभी तरह की मन न लगने की असुविधाएं दूर हो जावेंगी तथा ऐसा करने से शीघ्रातिशीघ्र भक्ति-स्तर की उन्नतावस्था अवश्यमेव उपलब्ध होगी ही।

भगवत-चर्चा अर्थात् भगवान का नाम एक ऐसा द्रुतगामी तीर है जो एक गर्भस्थ शिशु पर भी प्रभाव कर देता है। चार माला धीरे-धीरे तथा एक माला उच्चारण से जपना चाहिए। कलि में कीर्तन प्रधान है। मन इसी विधि से रुकता रहता है। मन ही मन जपने से मन भटक जाता है या सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है। प्रत्यक्ष करके देख सकते हो। भक्त को नाम सुनाने से मन रुक जाता है। अनन्त भक्तगण हैं, जिनका कोई अन्त नहीं है। प्रयास

तो स्वयं को ही करना है। प्रयास के अभाव में तो संसारी काम भी विफल हो जाता है।

अनन्त जन्मों की बाधाएं एक जन्म में हट जावेंगी। मुक्ति का द्वार स्वतः ही खुल जावेगा, यदि इसके अनुसार अपना जीवन यापन करता रहा। अपराध का विचार परमावश्यक है। अपराध से तो साधक नीचे स्तर पर आ पहुँचता है।

श्रीगौरहरि के पूछने पर नामाचार्य, श्रीहरिदास जी बता रहे हैं कि माना किसी वैष्णव का जन्म छोटी जाति में हुआ हो और कोई भक्त उसका जाति–दोष देखे या किसी ने श्रीकृष्ण चरणों में पूर्ण–शरणागति लेने से पहले अगर कोई पाप किया हो या कोई उस पाप को याद करवा कर उस भक्त की निंदा करे अथवा अचानक किसी वैष्णव से कोई पाप कर्म हो जावे या कोई वैष्णव ऐसी स्थिति में हो कि पहले पाप करता था परंतु अब वह शरणागत रह कर भजन करता है परंतु थोड़े बुरे संस्कार अभी बाकी हैं, इनको देखकर ही कोई उसकी निन्दा करे या उसका जी दुखाए तो वह अज्ञानी, वैष्णव–निंदक, यमदंड का भागीदार बनता है। वैष्णव के मुख से ही श्रीकृष्ण–माहात्म्य का प्रचार होता है। ऐसे वैष्णव की निंदा को श्रीकृष्ण सहन नहीं करते अतः निंदक को भक्ति–स्तर से गिरना पड़ता है।

नामनिष्ठ–भक्त के निकट कुछ समय बैठ कर उसे हरिनाम सुनावे तो उसके शरीर से श्रीकृष्ण शक्ति निकल कर श्रद्धावान्–भक्त के हृदय से स्पर्श करके, उसके शरीर को कंपा कर, उसके अन्तःकरण में भक्ति उदय करा देती है। जिसके पास में बैठने से मन भगवान की ओर खिंचता है तो समझना होगा कि वह भगवान का प्रियजन है। उसका संग करने पर सारे दुर्गुण बाहर निकल कर सद्गुणों का उद्गम हो पड़ेगा। यदि नामनिष्ठ संत के चरणों में बैठ कर साधक उच्चारणपूर्वक हरिनाम सुनाता रहेगा तो उसके अतंःकरण पर नामनिष्ठ संत की तरंगें (वाइब्रेशनज़) प्रभाव करती रहेंगी। उसका मन स्थिरता उपलब्ध करेगा जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण हरिदास तथा

वेश्या है। सुनाने में हनुमानजी, नारदजी, श्रीगौरहरि, श्रीनित्यानंदजी, प्रह्लादजी, नरसिंह भगवान तथा माधवेन्द्रपुरीपाद आदि के चरणों में बैठकर भी हरिनाम सुनाया जा सकता है।

नामनिष्ठ–भक्त का अन्य जो भी संग करेगा, नामनिष्ठ संत उसे भी नामनिष्ठ बनाकर उसकी संसारी आसक्ति को नष्ट कर देगा। उसका मन नाम में रमने लग जाएगा। प्रेम से उसका हरिनाम होने लगेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए लेकिन ऐसा नामनिष्ठ मिलना बहुत जन्मों के बीतने की बात है। यदि मिल जावे तो उसका लाभ लेना परमावश्यक है। साधु की पहचान है–जो किसी की निंदा न करता हो, जिसमें उग्रता न हो, जिसके पास बैठने से भगवान की ओर मन खिंचता हो व जो निष्किंचन हो। जो इसके विपरीत हो वह साधु कपटी ही है।

हृदय में भगवत्–दर्शन की उक्ति

''मन थिर करि तब शम्भू सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना।।''

एक 10 फुट गहरा पानी का टैंक भरा हुआ है। कोई सज्जन उसकी दीवार के ऊपर बैठकर पानी की ओर पेंदे (तले) में झांक रहा है। हवा बिल्कुल बंद है। ऊपर आकाश से सूर्य की रोशनी उस पानी के ऊपर पड़ रही है। पानी एकदम स्थिर है।

दीवार पर बैठा सज्जन टैंक के पेंदे की ओर देख रहा है। उसे टैंक के पेंदे की सभी वस्तुएं (कंकड़,पत्थर) पानी स्थिर होने के कारण साफ दिखाई दे रहे हैं, यहां तक कि मेंढ़क, मछली भी पेंदे में दिखाई दे रहे हैं।

यही स्पष्ट उदाहरण साधक के अंतःकरण का भी है। साधक अंदर झांक कर देख रहा है। मन के संकल्प–विकल्प रूपी पवन बंद है, अंदर में आत्मा रूपी सूर्य का प्रकाश हो रहा है व साधक को भगवत–दर्शन (श्रीकृष्ण) स्पष्ट नज़र आ रहा है। भगवत्–दर्शन

इतना आकर्षक व मोहक है कि साधक का मन एक क्षण भी इधर–उधर नहीं जा सकेगा। उसे मन की, आनंद की वस्तु उपलब्ध हो गई। इसी प्रकार से साधक हरिनाम रूपी आंखों से गुरुवर्ग के चरणों में बैठकर संत–दर्शन भी कर रहा है एवं नामामृत भी संग–संग पीता जा रहा है। अब इससे उन्नत ध्यान क्या हो सकता है ? मन इसी ठौर चिपक जाएगा। मन के इसी ध्यान में आनंद रस निकल कर आंखों की राह से बाहर टपक पड़ेगा।

कितना सरल व सुगम मार्ग साधक को उपलब्ध हो गया। जो आनंद कोटि जन्मों से प्राप्त न था और जो मन साधक को भटका रहा था, वह अब पिंजरे में बंद हो गया। इसी पिंजरे ने इसे गोलोक धाम का वासी बना दिया। इसी पिंजरे में इसे आदि जन्म का साथी (भगवान) जिससे वह बिछुड़ा हुआ था, सदैव के लिए मिल गया। अब इसे आनंदसिंधु का रसानंद प्राप्त हो गया।

कृष्ण केशव ! कृष्ण केशव ! कृष्ण केशव ! पाहिमाम्।
राम राघव ! राम राघव ! राम राघव ! रक्षमाम्।
राम राघव ! राम राघव ! राम राघव ! त्राहिमाम्।

स्वयं श्रीगौरहरि हरिनाम के बीच–बीच में उपरोक्त पंक्तियों का उच्चारण किया करते थे। इनमें भगवत–शरणागति का भाव ओत–प्रोत है। अतः श्रीहरिनाम की दो–चार माला करने के बाद इन पंक्तियों का उच्चारण करना होगा। इससे मन जगता रहेगा, भटकेगा नहीं।

किसी भी गुरुवर्ग (संत) के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाने से सन्त की वाईब्रेशनज़ (तरंगें) सुनाने वाले के हृदय से टकरा कर हृदय का मैल जलाती रहेंगी। जब पूर्ण मल जल जावेगा तो हृदय रूपी दर्पण एक दम साफ हो जाने से उसमें सद्गुण चमकने लग जायेंगे। यह सद्गुण दूसरों को भी आभायुक्त बनाते रहेंगे। दुःख रूपी अंधकार विलीन होता रहेगा तथा सुख रूपी आभायुक्त वातावरण फैलाता रहेगा।

यही है स्पष्ट, सत्यमय ध्यान की स्थिति। जो भी इस मार्ग से गुज़रेगा, अलौकिक आनंद की उपलब्धि कर पावेगा लेकिन यह मार्ग हरिनाम से ही प्राप्त हो सकेगा। अन्य कोई भी साधन कलि में नहीं है। चार माला मन से धीरे–धीरे करें, एक माला उच्चारण से करते रहें तो मन इधर–उधर भटकना बंद कर देगा तथा सुषुप्ति अवस्था में नहीं जावेगा। कलि में कीर्तन प्रधान–साधन होने से चार माला बाद एक माला उच्चारण से करना परमावश्यक है। इससे मन काबू में आ सकेगा। मन ही मन करने से 30–40 साल में स्थिर नहीं हो सका जिसका कारण है कि उच्चारण से हरिनाम नहीं हुआ। कीर्तन का अभाव रहा। तब ही तो श्रीगुरुदेव ने आदेश किया है–"Chanting Harinam sweetly & listen by ear"

शिव–उक्ति

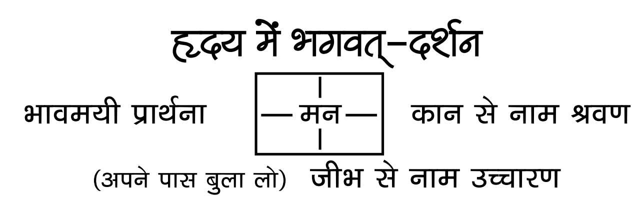
''सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।''

जो साधक प्रेम से हरिनाम करता है उसका सारा जीवन इसी तरह से गुज़र जाता है जिस प्रकार कोई गाय के पैर के ख़ुर से बने खड्डे को उलांघ जाए। एक चार इंच के ख़ुर के खड्डे को उलांघने में क्या परिश्रम होगा ? एक छोटा सा शिशु भी इस खड्डे को उलांघ सकता है। कहने का आशय यही है कि हरिनाम–जापक का पूरा जीवन सुख में बीत जायेगा। ऐसे साधक को किसी भी प्रकार की तकलीफ या दुःख नहीं होगा। भूतकाल में जो भक्त, भक्ति करते थे, उनको दुःख व कष्ट आए परंतु उनको कभी भी छू भी नहीं सके। भगवान ने उनके कष्ट दूर से ही टाल दिये। जैसे–मीरा, द्रौपदी, नरसी भक्त आदि। अंत में भगवान् जापक को अपने साथ गोलोक धाम में ले गए। जब भी भगवान के मन में जीवों के प्रति दया का भाव आता है, इन भक्तों में से किसी भक्त को, किसी भी

ब्रह्मांड में अवतरित करवा कर, जीवों का उद्धार करने को भेजते रहते हैं जैसे– कबीर जी, गुरुनानक जी, श्रीगुरुदेव, श्रीतीर्थ महाराज, श्रीप्रभुपाद जी, भक्ति विनोद ठाकुर जी, इस्कॉन के गुरुदेव ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी जी आदि।

मन को स्थिर करने तथा चतुर्थ पुरुषार्थ से भी ऊपर पंचम पुरुषार्थ–''प्रेम'' प्राप्त करने का एक सरल एवं सुगम उपाय श्रीगुरुदेव लिखवा रहे हैं।

यह तरीका एक नया साधक भी अपना सकता है, यह है चतुर्भुज में मन को रोक देना–



नाम–श्रवण रूपी जल कान में डालने से हृदय रूपी ज़मीन में एक पौधा अंकुरित होगा। वह पौधा होगा– भगवान श्रीकृष्ण का वपु (शरीर)।

उदाहरण–''सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय स्नेह बिसेषे।'' नाम–श्रवण से स्वतः ही रूप प्रगट होगा। जब उक्त प्रकार से साधक–हरिनाम–जापक, नाम की चार माला भी करेगा तो उसे शत्–प्रतिशत् भगवान् के प्रति रोना आ जावेगा क्योंकि जीव–आत्मा की परमात्मा ही आदि–जन्म की मैया है। अतः मैया के लिए भाव उत्पन्न हो जावेगा जैसे दूध पीता शिशु अपनी माँ को रो–रो कर पुकारने लग जाता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं–श्रीभक्ति विनोद ठाकुर। भाव कुछ भी हो सकता है– सखा, सखी, वात्सल्य, पुत्र आदि। अनन्त जन्मों से जो संबंध होता आ रहा है, वह नाता क्षणिक है, अनित्य है। भगवत्–नाता नित्य है। जब तक जीवात्मा को परमात्मा की गोद नहीं मिलेगी तब तक वह दुःख पर दुःख पाते

हुए रोता ही रहेगा। रोने से उसका पिंडा ही नहीं छूटेगा। अतः सज्जनों! मेरे गुरुदेव की लेखनी की ओर ध्यान देकर, अपना मानव जन्म सार्थक बनावें तथा मेरी भी लज्जा रख कर मेरा भी मान रखें। जिस काम के लिए भगवान ने गुरु रूप से आदेश दिया है, उसका भी पालन करें, मेरी भी प्रार्थना सुनें तो मैं आपके चरणों का आभारी रहूँगा। सबसे मेरी चरण–स्पर्श कर बारम्बार प्रार्थना है कि सभी इस पत्र को पढ़कर, नित्य एक लाख हरिनाम, उक्त प्रकार से करते रहें। जो भी इस प्रकार से मेरी प्रार्थना अपनाएगा उसके घर पर श्रीगौर–निताई वास करेंगे जैसा कि श्रीगौरहरि ने एक लाख हरिनाम करने वाले के घर वास करने का प्रण किया है। जहाँ श्रीगौरहरि रहेंगे वहां कलि महाराज कैसे घुस पायेंगे ?

परीक्षित महाराज से कलि महाराज की आपस में बातचीत हुई है कि भक्त के घर में कलि महाराज जाने का भाव रखते ही जलकर राख हो जायेगा, अतः इसी डर से कलि महाराज भक्त के घर की ओर झांकता भी नहीं है। पाठकगण कह सकते हैं कि भक्त पर भी विपत्ति आती नज़र आती है, ऐसा क्यों होता है ?

इसका स्पष्ट उत्तर है कि यह मायामय संसार है। जहाँ बर्फ पड़ेगी, सभी को ठंड महसूस होगी ही परंतु भक्त ने भगवान् की दया रूपी कंबल ओढ़ा हुआ है अतः ठंड नहीं व्याप सकेगी, न गर्मी लग सकेगी क्योंकि भगवत–कृपा रूपी ठंडी बयार उसको व्याप्ति रहेगी। गर्मी उसे छू तक नहीं सकेगी।

इस मायामय संसार में तो स्वयं भगवान् भी नहीं बच सके। उनको भी बारम्बार विपत्ति में से गुज़रना पड़ा लेकिन माया भगवान को प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरों को प्रभावित करती रहती है। श्रीराम जी को वनवास में विपत्ति में से गुज़रना पड़ा, श्रीकृष्ण को राक्षसों से विपत्ति झेलनी पड़ी, पांडवों को कौरवों से परेशानी हुई। केवल मात्र भक्तों के लिए भगवान को सब कुछ करना पड़ता है। यह भगवान् की लीला मात्र है। लीला के अभाव में भगवान का मन कुंद रहता है। लीला से ही आनन्दानुभूति महसूस होती है।

भगवान केवल मात्र भक्तों से खेल करने हेतु ही प्रत्येक ब्रह्मांड में अवतरित होते रहते हैं। दुष्टों को तो भगवान् भृकुटि विलास मात्र से ही मार सकते हैं। दुष्टों को मारना तथा भक्तों से खेल करना ही उनकी अनन्त लीलाओं का उद्गम मात्र है। मूर्ख और अज्ञानी इस लीला को समझ नहीं सकते। जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वही भगवत्–लीलाओं का रहस्य समझ सकता है। अतः भगवान ने शिवजी को आदेश दे रखा है कि ऐसे शास्त्रों का प्रचलन करो जिससे मानव भ्रमित होता रहे। मेरी भक्ति तक न आ सके। मेरी कृपा से ही कोई मेरे पास आ सकेगा जिसकी सुकृति केवल मात्र साधु–सेवा से बनेगी।

सच्चे रूप में देखा जाए तो हरिनामनिष्ठ ही सर्वोतम सच्चा साधु है। कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, यज्ञनिष्ठादि सच्चे साधु नहीं हैं। यह सभी नाम पर ही आश्रित हैं लेकिन इनका नाम–अवलंबन, अवहेलनापूर्वक है, वास्तविक रूप में नहीं है। सच्चे रूप में देखा जाए तो इनका भाव तो अन्याभिलाषायुक्त ही है।

सच्चा नामनिष्ठ स्वयं को दीन–हीन समझता है। दूसरों को मान देता है। स्वयं मान से संकुचित रहता है। हर क्षण नाम के शरणागत रहता है। निंदा–स्तुति से दूर रहता है। कभी उग्रता धारण नहीं करता। यदि कोई उसकी बुराई करे तो बुरा न मान कर उससे प्रेम की बात कर अपनाता रहता है। नामनिष्ठ समझता है कि इसमें उसका कोई दोष नहीं है, यह दोष इसके पूर्वजन्मों के स्वभावानुसार इसे ढकेलता रहता है। सत्संग से स्वच्छ हो जायेगा।

नामनिष्ठ के मुख से उच्चारित कृष्ण–नाम, दूसरों के हृदयों को श्रीकृष्णप्रेम से प्रकाशित कर सकता है। यज्ञनिष्ठ तथा तपोनिष्ठ से नहीं। नामनिष्ठ के मुख से निकला कृष्ण–नाम, श्रवणकारी, श्रद्धावान्–भक्त को कृष्ण प्रेम में डुबो सकता है।

श्रीकृष्ण–कृपा को प्राप्त करने का नामनिष्ठ साधु के संग के सिवाय और कोई सफल उपाय नहीं हो सकता। इसमें केवल मात्र एक ही रुकावट हो सकती है–वह है नामापराध। नामापराध तो

इतना खतरनाक है कि यह नामापराधकारी को पूरा नास्तिकता की छोर पर पहुंचा सकता है जिससे वह भगवान् के अस्तित्व को मानने को ही तैयार नहीं होता। इससे अधिक कोई नुकसान है ही नहीं। कई युगों तक रौरव नरक में दुःख भोगना पड़ेगा। जो चरमसीमा का कष्ट है। इसके बाद चौरासी लाख कष्टदायक योनियाँ भुगतनी पड़ेंगी। अनन्त युगों के बाद जब भगवान् की कृपा होगी, तब मानुष देह प्राप्त हो सकेगी, वह भी दीन–हीन तथा रुग्णावस्था में होगी और वहां पर भी दुःख पर दुःख भोगना पड़ेगा।

साधु–सम्पर्क के अभाव में, फिर मानव जन्म बेकार कर, उसी दुःख में जा गिरेगा। इसके दुःख का अन्त कभी नहीं हो सकेगा। वर्तमान समय कैसा चल रहा है ? आंखें खोल कर देखो, सभी दुःखी हैं। सुख कब मिलेगा ? जब साधु–संग मिलेगा। वह भी, हरि की कृपा होगी तब ही मिल पावेगा।

अतः प्रियजनों! उक्त लेख में श्रीगुरुदेव जी जो लिखा रहे हैं, उसे बड़े ध्यानपूर्वक पढ़कर गहन विचार करो कि भविष्य में जीवन कितना दुःखदायी होगा। अभी से एक लाख हरिनाम का अवलंबन कर लो वरना गहरे पश्चाताप् की अग्नि में जलना होगा।

श्रीगुरुदेव समझा–समझा कर हैरान हो गए परंतु अब भी समझ में नहीं आया। मेरी सेवा तभी होगी जब एक लाख हरिनाम करोगे। पैसा, कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं की भेंट, मेरी सेवा नहीं है। यह तो अनित्य वस्तुएँ हैं जो मुझे संतुष्ट नहीं करतीं, उल्टा दुःख देती हैं।

जो एक लाख ''**हरिनाम**'' (महामंत्र) नित्य करेगा, वही मेरा, श्रीगुरुदेव तथा भगवान् का प्रिय होगा। वह इसी जन्म में निहाल हो जाएगा। उसको संसार में कुछ पाना बाकी नहीं रहेगा। उसे सभी संपत्ति मिल गई। सभी ओर से धनाढ्य बन गया।

सभी को एक लाख हरिनाम करने का समय मिल रहा है। केवल बहानेबाज़ी है कि समय नहीं है। जब मौत आवेगी तब भी

कह देना कि बाद में आना, अब समय नहीं है। जबरन खिंचते हुए जाना ही होगा।

रात में कम खा कर सोओ ताकि ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाओ, आलस्य से बच जाओ तथा 3.00 बजे उठ कर हरिनाम कर सको। Early to bed & early to rise makes a man healthy wealthy & wise. स्वस्थ, धनाढ्य व बुद्धिमान् तब ही बन पाओगे, जब बह्ममुहूर्त में जागकर एक लाख हरिनाम करोगे वरना दुःख सागर में डूबे रहोगे। कोई बचाने वाला नहीं होगा। अपना कर्म स्वयं भोगोगे। दूसरा इसमें क्या करेगा ? रोते हुए जाओगे और आगे भी रोते रहोगे।

श्रीगुरुदेव प्रत्यक्ष उदाहरण देकर समझा रहे हैं कि नामनिष्ठ का प्रभाव, श्रद्धालु नामनिष्ठ बनने वाले पर कैसे पड़ता हैः–

नामनिष्ठ–भक्त एक प्रकार से चुंबक है। चुंबक लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः नामनिष्ठ–भक्त, नामनिष्ठ बनने वाले भक्त को ही अपनी ओर आकर्षित करेगा। तपोनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, यज्ञनिष्ठादि को कदापि नहीं कर सकता। चुंबक–चांदी, सोना, पीतल, तांबा, आदि को आकर्षित नहीं कर सकता। क्यों नहीं कर सकता ? इसका खास कारण है कि ये सजातीय नहीं हैं, विजातीय हैं। इसी प्रकार तपोनिष्ठ आदि भी चुम्बक से विजातीय हैं। कबूतर, कबूतर के पास ही जाएगा, कौवे के पास नहीं क्योंकि कौवा विजातीय है।

नामनिष्ठ–भक्त के अन्तःकरण में नाम का प्रकांड प्रकाश फैला हुआ है। इसके बाहर–भीतर के रोम–रोम में हरिनाम गूंज रहा है। अतः जो भी उसके सामने या चरण में रहेगा उसे भी वह अपनी तरंगों (वाईब्रेशनज़) के ज्योर्तिपुंज में ओत–प्रोत कर देगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अर्जुन हैं। जब श्रीकृष्ण अर्जुन के शयनागार में गए तो पास में बैठकर देखा तथा सुना कि अर्जुन के प्रत्येक रोमकूप से हरिनाम की गूंज निकल रही थी। अर्जुन हर क्षण ''कृष्ण–कृष्ण'' मन ही मन स्मरण किया करता था अतः यही शब्द त्वचा के रोम–रोम में व्याप्त हो गया।

भगवत्–चर्चा अर्थात् भगवान का नाम एक ऐसा द्रुतगामी तीर है जो एक गर्भस्थ–शिशु पर भी प्रभाव कर देता है। जब उसकी माँ भगवत्–कथा, सत्संग करती है तो शिशु पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। जब शिशु ही प्रभावित हो जाता है तो जो सामने बैठकर, हरिनाम निष्ठ भक्तों के चरणों में बैठकर सुनता है, उसका तो कहना ही क्या है!

कलिकाल में श्रीहरिदास जी, जो जाति के मुसलमान थे, तीन लाख नाम नित्य स्मरण किया करते थे। एक लाख नाम उच्चारणपूर्वक, एक लाख उपान्शु (कंठ में) तथा एक लाख मानसिक (मन–मन में) जब उनको बिगाड़ने के लिए उनके पास उस गांव के जमींदार रामचन्द्र खां ने एक प्रवीण वेश्या को भेजा तो वह अपने मन की बात। श्रीहरिदास जी को बोली, तो श्रीहरिदास जी उसकी इच्छा पूरी करने को राजी हो गए। उन्होंने कहा–''तुम्हारी भिक्षा ज़रूर स्वीकार करूँगा लेकिन मैंने हरिनाम का नियम ले रखा है, उसे पूरा करने पर ही मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी कर सकूंगा। अतः तुम्हें तब तक इंतज़ार करना पड़ेगा।'' वेश्या ने कहा–''तैं तुम्हारे पास बैठ जाती हूँ, आप अपना नियम पूरा कर लीजिए।'' यह कह कर वह वेश्या उनका उच्चारण किया नाम बैठ कर सुनती रही। शाम को हर रोज़ नामनिष्ठ को अपने मन की बात कहती रही। श्रीहरिदास जी भी अपना नियम पूरा न होने की बात बताते रहे। तीन दिन तक यही चर्चा चलती रही।

तीसरे दिन, वह वेश्या श्रीहरिदास जी के चरणों में गिरकर ज़ोर–ज़ोर से विलाप करने लगी–''मैं बहुत दुष्टा हूँ! पापिन हूँ! कामुक हूँ। अनन्त अवगुणों की खान हूँ! मुझे क्षमा कर दीजिए! अपनी शरण में मुझे ले लीजिए! आप तो क्षमा की मूर्ति हो! मेरे अन्तःकरण में न जाने क्या हो गया! मेरा मन श्रीकृष्ण ने आकर्षित कर लिया अब मैं श्रीकृष्ण के बिना नहीं रह सकती। मेरा मन संसार से घृणा करने लग गया। आपने मुझ पर क्या जादू कर

दिया? अब मैं एक क्षण भी आपके चरणों से अलग नहीं रह सकती।''

यह है नामनिष्ठ की असीम कृपा का फल। नामनिष्ठ की भगवान् हर दिशा से रक्षा करते रहते हैं तथा नामनिष्ठ हर जीव का मंगल चाहता रहता है। भगवान् से जीव का मंगल करने की प्रार्थना करता रहता है। भगवान् नामनिष्ठ-भक्त की प्रार्थना सुनने को मज़बूर होते रहते हैं। नामनिष्ठता ही सब भक्ति-साधनों में सर्वोत्तम भक्ति-साधना है। कलियुग में ही नहीं, सतयुग, त्रेता, द्वापर में भी हरिनाम ही भक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

कृतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होइ सो कलि हरिनाम तें पावहिं लोग।।

कलियुग में घर बैठे भगवान मिल जाते हैं। गर्मी में कूलर, पंखा। सर्दी में हीटर। कितना सुगम-सरल साधन तथा सुगम सत्संग मिल गया। खाने-पीने की, रहने की चिंता नहीं, फिर भी मानव सोता रहता है, कैसी विडंबना है! शर्म आनी चाहिए। पश्चाताप् होना चाहिए। मन को धिक्कारना चाहिए वरना भविष्य में जीवन अत्यंत कष्टदायक मिलेगा।

मैं गुरुदेव जी के आदेश का पालन करते हुए, सभी से चरण पकड़ कर तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरी प्रार्थना भी सुनकर, मार्ग अपनाओ, मैं आप सबका आभारी व कृतज्ञ रहूँगा। प्रेमास्पदो! मुझ पर कृपा करो। मैं झोली फैलाकर आप सबसे भिक्षा मांग रहा हूँ। मुझे अपने द्वार से खाली न भेजना। बस यही मेरी अंतिम प्रार्थना है।

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्दराय अवधूत।।
श्री नवद्वीप के चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दन की जय हो। जय हो।
अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। जय हो।

भगवत्–प्राप्ति में अड़चन

ब्रह्मचर्य–पालन ही भगवत्–प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है। वैसे तो ग्यारह इन्द्रियों को अध्यात्म–मार्ग में नियोजित करना ही विस्तृत रूप में ब्रह्मचर्य पालन है लेकिन इसका एक मोटा अर्थ है अपने शरीर में जो घी (वीर्य) 40 दिन के भोजन से बनता है, वह एक बार के स्त्री–संग से नष्ट हो जाता है। उसकी रक्षा करना भजनानंदी को बहुत ही ज़रूरी है वरना भजन में रस आना बंद हो जाएगा।

शरीर में जो शक्ति है, वह एक अमूल्य वस्तु है, उसे नष्ट करना, शरीर को भूसा तुल्य बनाना है। इससे पूरे–शरीर में दर्द होकर दुखते रहना, बार–बार सर्दी–जुकाम का आक्रमण होना, बीच–बीच में ज्वर आ जाना आदि रोग आकर दबा लिया करते हैं। यदि शरीर में बल (घी) ओत–प्रोत है तो उक्त दुश्मनों का ज़ोर नहीं चलता। यही माया के हथियार हैं जो भक्ति–पथ में जाने से रोकते रहते हैं।

जब भी कोई भक्ति–पथ में उन्नत होता है तो इन्द्र महाराज उस पर कामदेव को भेज कर उसका ब्रह्मचर्य नष्ट करवा देते हैं। इससे उसका भक्ति–मार्ग, जो एकदम खुला रहता है, वह बंद हो जाता है। जब भक्ति का पथ उज्ज्वल रहता है तो कामदेव की शक्ति क्षीण हो जाती है। वह डर की वजह से भाग जाता है। उसे मालूम है कि यदि इसने मुझ पर क्रोध कर दिया तो भस्म हो जाऊँगा। कामदेव, ब्रह्मचर्य को नष्ट करने में समर्थ होने से ही भक्ति–रस को सुखाने में सबसे प्रवीण माने जाते हैं।

श्रीगौरहरि ने इस पर गहरा विचार करके ही अपने भक्तों को स्त्री–सम्भाषण करने से सावधान किया है। स्त्री जाति, माया का अमोघ हथियार है। इससे बचना बहुत ही मुश्किल है। घी एवं आग पास–पास होने से घी अवश्य पिघलेगा। स्वयं को भी विचार कर सावधान रहना होगा। अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हो, फिर कह

रहे हो, हमें बचाओ। कैसी मूर्खता है ? 40–50 साल की उम्र के बाद वीर्य बनता नहीं है। श्रीगुरुदेव मुझे सब कुछ बता देते हैं। कोई मुझसे छिपा नहीं सकता। सभी को इस पत्र की कापी देनी होगी ताकि सभी सतर्क हो जावें। जो भगवान् को सच्चे दिल से चाहेगा, वही सतर्क होगा। जो नहीं चाहेगा, वह नाटकबाज़ है। कोई–कोई चुभने वाली बात भी मुझसे लिखाई जाती है। जो पात्र होगा, वह बुरा नहीं मानेगा। जो अपात्र होगा, वह मुझे गालियाँ देगा। इसमें भला सबका है, चाहे कोई माने या न माने।

दूसरा उदाहरण सामने देख रहे हो। श्रीहरिदास जी, जो तीन लाख हरिनाम नित्य जपते रहते थे। वेश्या उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकी। वेश्या भेजने वाला जानता था कि एक बार का संग, तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति नष्ट कर देगा। फिर तीन लाख हरिनाम का आवेश समाप्त होने से मन नीचे गिर जाएगा। माया का बस चल जाएगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि हरिनाम की शक्ति, वेश्या के भाव की शक्ति से कहीं अधिक थी। अतः मन गिरा नहीं, वरना तो देखते ही मन चंचल हो जाता है। कहां भक्ति, कहां काम का मज़ा ? श्रीहरिनाम ने ही हरिदास जी की रक्षा की थी। उनका मन ज़रा भी गिरा नहीं। वेश्या का मन ही भक्ति की ओर गिर गया।

मैं देख रहा हूँ, सभी काम के वश में हो रहे हैं। ऊपर से नाटक बाज़ी करते रहते हैं। भक्ति–रस आने पर फिर कभी कम नहीं होता। इस काम की वजह से ही रस आने में व्यवधान पड़ जाता है। इसका अन्य कोई कारण नहीं है। अपराध होने से माया ही काम का आक्रमण करा देती है, फिर कामुक मन भरता नहीं है। सीमा तोड़ देता है। जितना भोगोगे, उतनी उग्रता लाएगा। आग में जितना घी डालोगे उतनी भड़केगी। ज्यादा घी डालने पर बुझ जाएगी। ज्यादा संग करने पर शरीर अशक्त होने से काम–शक्ति निर्बल होकर बेहोश हो जाएगी।

इसके बचने का इलाज है–कम खाना, दूर–दूर सोना। इससे होने वाले कष्ट के बारे में आपस में विचार–विमर्श करना। तब ही भक्ति–पथ में आगे बढ़ना होगा वरना दिखावे के अलावा कुछ नहीं होगा। जहां भक्ति–रस प्रेममय होगा, वहां काम आ ही नहीं सकता। जहां उजाला होगा वहां अंधेरे की दाल कैसे गल सकती है ? जहां काम है, वहां सच्चा प्रेम नहीं है, केवल दिखावा है। दिखावा भी सच्चा हो जाता है, यदि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन हो तो।

कृष्ण आकर्षये सर्व विश्वगत जन।
सेइ नित्य धर्मगत कृष्णनाम धन।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण सारे विश्व को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण–नाम रूपी परमधन में भी यह आकर्षण–धर्म नित्य विराजित है।

हरिनाम की संख्या के लिये जो आपने संकल्प लिया है,
उसमें ढीलापन न हो,
इसके लिये बार–बार व खासतौर पर
ध्यान देना होगा।

(नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर)

निरंतर या'र मुखे शुनि कृष्णनाम
सेइ से वैष्णवतर सर्वगुणधाम

– श्री हरिनाम चिंतामणि

जिसके मुख से निरन्तर कृष्ण नाम सुनाई पड़ता है अर्थात् जो निरन्तर श्रीकृष्ण–नाम करता रहता है–वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा वैष्णव सभी गुणों की खान होता है।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28–08–2008

परमाराध्यतम, प्रेमास्पद भक्तगण तथा शिक्षा–श्रीगुरुदेव भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दंडवत् प्रणाम तथा प्रेम–सहित भगवत्–भजन होने की करबद्ध बारम्बार प्रार्थना।

श्रीगुरुदेव की भगवान् से भी अधिक महत्वशील उत्कर्षता

श्रीमद् भागवत् महापुराण में जय–विजय के प्रसंग में पढ़ने को मिलता है। भगवान्, सनकादिक–चारों भाईयों को इंगित करके बोल रहे हैं कि मेरे प्यारे भक्तगणों! मैं आपको सत्य–सत्य कह रहा हूँ कि भक्त ही मेरे आराध्यदेव हैं। भक्तों के बिना मुझे चैन नहीं मिलता। भक्तों से लीला करने हेतु मैं प्रत्येक ब्रह्मांड में अवतरित होता रहता हूँ। भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ। ब्रह्मांड में मेरे अवतरित होने का और कोई कारण नहीं है। राक्षसों को तो मैं अपनी भृकुटि मात्र से ही मार सकता हूँ ।

जब भक्त ही भगवान् के सर्वस्व हैं तो श्रीगुरुदेव, जो साक्षात् भगवत्‌रूप ही हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? शास्त्रों का कथन है–

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

ध्यान मूलं गुरुमूर्ति, पूजा मूलंगुरुपदम्।
मंत्रमूलं गुरुवाक्यम्, मोक्षमूलं गुरुकृपा।।

श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमरत दिव्य–दृष्टि हिय होती।।

उघरहिं विमल विलोचन हिय के।
मिटहि दोष दुःख भव–रजनी के।।

सूझहिं राम–चरित मनि–मानक।
गुप्त प्रगट जहं जो जेहि खानिक।।

कवच अभेद गुरु–पद पूजा।
एहि सम विजय उपाय न दूजा।।

राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

जो सठ गुरु सन इर्षा करहिं।
रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।

त्रिजग जोनि पुनि धरहिं शरीरा।
अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।

प्रत्यक्ष में साक्षात् देखा व अनुभव किया गया है कि जिस भक्त ने श्रीगुरुदेव से विरोध किया है तथा करता है, वह कभी भी चैन से नहीं रह पाता है। उसके मुख से हरिनाम नहीं आता क्योंकि हरिनाम तो स्वयं भगवत्–अवतार रूप में कलिकाल में प्रगट हैं। उसका तो स्वयं भगवान् से ही विरोध भाव हो गया। उसको तो रौरव नरक में सज़ा होगी ही।

श्रीगुरुदेव तो भगवान् के साक्षात् प्रियजन हैं। भगवान् ही श्रीगुरुदेव के रूप में जीव पर कृपावर्षण करने आते हैं। इनका आदेश–पालन ही शास्त्रों के अनुसार जीवन–यापन करना होता है। जो ऐसा जीवन–यापन करता है, उसे ही भगवत्–दर्शन होता है। वही, भगवान् को खरीद लेता है।

हरिनाम–जापक का हरिनाम–स्मरण से प्रत्यक्ष प्रभाव तब ही होगा जब वह आरंभ में माला हाथ में लेते ही, श्रीगुरुदेव से स्मरण–पूर्वक प्रार्थना करेगा क्योंकि यह हरिनाम श्रीगुरुदेव की कृपा से ही उपलब्ध हुआ है। बाद में कुछ भी स्मरण कर हरिनाम

जप सकता है। अपनी शक्ति से मन हरिनाम में नहीं लगेगा। मन या तो भटकता रहेगा या सुषुप्ति अवस्था में चला जाएगा।

हरिनाम को मानसिक रूप से भक्तों के चरणों में बैठ कर उच्चारण–पूर्वक या मन–मन में जप कर उनको सुनाते रहने से मन स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। 2–4 माला करने के बाद–

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहिमाम।।

बोलकर भगवान् को सुनाते रहना चाहिऐ ताकि शीघ्र भगवत्–कृपा वर्षण होती रहे। उक्त प्रार्थना में साक्षात् शरणागति का भाव ओत–प्रोत है।

स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु रो–रो कर, हरिनाम करते हुए, बीच–बीच में उक्त वाक्य का उच्चारण किया करते थे। "कहां जाऊँ! कहां पाऊँ! ब्रजेन्द्रनन्दन! हे मुरली वदन! हे यशोदा–नन्दन! हे कंसनिकन्दन!" आदि नाम ले–ले कर ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाते व रोते रहते थे। जापक यदि इन्हीं का अनुसरण करता रहे तो हरिनाम की कम संख्या में भी प्रेमावस्था प्रगट हो सकती है लेकिन उच्चारण, अन्तःकरण से हो तथा अपराधों से बचता रहे तब ही शत–प्रतिशत अवश्यमेव प्रेमावस्था प्रगट होगी ही। यह श्रीगुरुदेव की गारंटी है।

अवहेलनापूर्वक हरिनाम होने पर भी संसार से चौरासी लाख योनियों में जाने से जीव बच जाता है तो शुद्ध–नाम लेने पर तो सारे मार्ग खुले पड़े हैं। उसे कोई रोक ही नहीं सकता। वह भगवत्–धाम में पहुँच जाता है।

भगवत्–धाम कैसा है ? जिह्वा से वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि जिह्वा के पास आंखें नहीं और आंखों के जिह्वा नहीं। ऊपर से कुछ वर्णन करने का श्रीगुरुदेव का आदेश हुआ है। गोलोक धाम कैसा होगा ? जो चिंतन में आता रहता है। श्रीगुरुदेव की शक्ति से वर्णन करने का साहस बटोर कर कह रहा हूँ। भक्तगण आशीर्वाद करें ताकि मैं वर्णन कर बता सकूँ।

वहां की भूमि का एक–एक कण इतना तेज़ चमकता रहता है कि आंखें चुंधिया जाती हैं। वहां के वृक्ष–पौधे अनेक दिव्य अलौकिक रंगों के हैं जो अपनी दिव्य छटा चारों ओर बिखेरते रहते हैं। वहां मनमोहक रंग वाली रोशनी दसों दिशाओं में अपनी सुंदर छटा बिखेरती रहती है।

उस गोलोक धाम में एक ऐसी कानों को आकर्षण करने वाली मीठी, सुरीली ध्वनि गूंजती रहती है कि वहां के निवासियों को मादक–सा रस आने पर निद्रा–सी लाती रहती है। उस परमानंद का जीभ से वर्णन करना असंभव सा ही है। भांति–भांति के पक्षी, डालियों पर बैठ कर राधा–कृष्णमय ध्वनि निकाल कर सुनने वालों को मस्ती में डुबोते रहते हैं।

यह गोलोक धाम इतने विस्तार में फैला है कि इसका नाप बताना, नाप के बाहर की बात है। भांति–भांति के भावों के रसिक अपने–अपने क्षेत्र में राधा–कृष्ण की भांति–भांति की लीलाओं में मस्ती से झूमते रहते हैं।

गिरिराज की छटा ही निराली है। गिरिराज, गगनचुम्बी छटा बिखेरता रहता है जिसमें से अनन्त झरनों का कल–कल शब्द गूंजता रहता है। अनेक भांति की वृक्षावली की छटा निराली ही है, जिन पर भांति–भांति के पक्षीगण अपनी–अपनी बोली में राधा–कृष्ण की लीलाओं के गुण मीठे–स्वर में गाकर, सुनने वाले को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

श्रीगिरिराज की तलहटी में श्रीयमुना जी की आकर्षित करने वाली लहरें किल्लोल करती रहती हैं तथा राधा–कृष्ण के गुणों के रूप में उछल–उछल कर आनंदमग्न होती रहती हैं। किनारों पर वृक्षावली लहराती रहती है जिनसे मीठा मधु चूता रहता है। वहां सूर्य–चंद्र का प्रकाश नहीं है। वहां प्रत्येक वस्तु ही रोशनी फैलाती रहती है।

वहां वही जाता है जिसने श्रीकृष्ण के चरणों में अपने मन को अर्पित कर दिया है। वहां जो भी जाता है, उसको भूख–प्यास, आधि–व्याधि, बुढ़ापा अर्थात् दुःख–कष्ट की गंध भी नहीं रहती है। मन की मस्ती उस पर सदैव छायी रहती है। जहां जाना चाहे, वहीं विमान प्रगट हो जाता है। वहां सभी साधन मनोकल्पितमय हैं। कुछ करना नहीं पड़ता, स्वतः ही प्रगट हो जाता है। इसके परमानंद का कोई अन्त नहीं है। इस परमानंद को कोई जीभ से बता नहीं सकता, केवल अनुभव में ही आता है। न बताने की समर्थ है। कुछ–कुछ लेखनी से लिखा जा सकता है। यहां इस मृत्युलोक में सबकी इन्द्रियां जड़ हैं। यह उस भाव तक नहीं पहुँच सकती। जैसे गूंगा किसी चीज़ का स्वाद बता नहीं सकता, वैसे ही भक्त भी इस लोक की अलौकिकता को बताने में असमर्थ है। जो थोड़ा बहुत जड़ रूप में बताया है, उसे ही पाठकगण अपने अनुभव व बुद्धि से समझ कर अपना लें।

हरिनाम करते हुए इसका भी चिंतन हो सकता है। इससे मन कहीं भटकेगा नहीं। अनेकों भक्तगणों के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाते रहो। भक्तगणों का कोई अन्त नहीं।

श्रीगोलोक–धाम का साक्षात् वर्णन लेखन में आ ही नहीं सकता। अनन्त युगों तक भी लिखा जाए तो इसकी दिव्यता का अन्त नहीं होगा। यह जो भी श्रीगुरुदेव ने लिखवाया, मैंने आपके चरणों में अर्पित कर दिया। यही मेरी सेवा है।

जो कुछ इस जड़ बुद्धि से तथा जड़ जिह्वा से, श्रीगुरुदेवजी ने वर्णन करवाया है वह तो गोलोकधाम की छाया मात्र है, मायिक वर्णन है। जैसी गोलोकधाम की आभा व ध्वनि है उसका तो कोई परमहंस भक्त भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

यह गोलोक धाम तो सभी लोकों से ऊपर, नित्य विराजमान रहता है। इसका कभी नाश होता ही नहीं है। यहां पर जीव सदैव अमर रहता है। भगवान जिस जीव को इन अखिल लोक–ब्रह्मांडों में जीवों के उद्धार हेतु, कृपा परवश होकर भेजते हैं, वही जीव

पार्षद रूप से अवतरित होकर श्रीगुरु रूप में आता है। जो भी जीव उनके संपर्क में आता है, गुरु–दीक्षा देकर, व भक्ति–आचरण करने का आदेश देकर उसका मंगल विधान करते रहते हैं। उस पार्षद में भगवत्–शक्ति निहित रहती है, तब ही उस पार्षद का आचरण देख–सुनकर, साधारण जीव उनकी ओर खिंचता हुआ चला आता है। उस पार्षद में श्रीमद् भागवत् के कथनानुसार, वे अपने आयुधों (शस्त्रों) के चिह्न, हाथ–पैरों में रेखांकित कर देते हैं ताकि साधारण जीव इनका अवलोकन कर उन पर अटूट श्रद्धावान बन सके। जब तक साधक इन आयुधों तथा आचरण को नहीं देखेगा/सुनेगा तब तक उसकी गुरुदेव पर अटूट श्रद्धा नहीं बन सकेगी।

श्रद्धा ही भगवत्–दर्शन करा सकती है। बिना श्रद्धा भजन नीरस ही रहता है। मंदिर–सेवा भी तब ही फलीभूत होती है जब श्रद्धा अन्तःकरण में जमती है वरना तो कठपुतलीवत् सेवा रहती है। इससे भविष्य उज्ज्वल नहीं बन पाता। देखा भी जाता है कि जन्म भर मंदिर की सेवा करते हो गए परन्तु हरिनाम में रुचि उदय नहीं हुई। इसमें केवल श्रद्धा की ही कमी रही। साथ–साथ में हरिनाम होना परमावश्यक है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीगौरहरि ने गांव वालों के पूछने पर बताया कि अर्चन–पूजन भी वैसे तो ज़रूरी है पर यदि न भी हो सके तो दो काम अवश्य करो–पहला हरिनाम और दूसरा–भक्तों की मन, कर्म तथा वचन से सेवा करते रहो तो तुम्हें अंतिम पुरुषार्थ–प्रेम की प्राप्ति हो जाएगी क्योंकि गृहस्थी में समय मिल नहीं पाता। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि एक लाख हरिनाम प्रत्येक साधक को करना परमावश्यक है। मन चाहे लगे, न लगे नामाभास तो होगा ही। नामाभास करते–करते शुद्ध नाम भी उदय हो जायेगा।

नामाभास तो कर्म मार्ग व ज्ञान मार्ग से अनंत गुणा श्रेष्ठतम है। संकेत से, परिहास से, क्रोध से, अवहेलनापूर्वक लिया हुआ नाम तो सभी वेदों के पढ़ने, सभी तीर्थों के करने, दान करने तथा अनेक शुभकर्मों के करने से भी अधिकतम सर्वोत्तम है। तब ही तो

संसार में देखा जाता है। कि आपस में मिलने पर राम–राम सा, जै गोपीनाथ जी की, जय सीया–राम सा आदि नाम आपस में बोला करते हैं। इस आचरण से भी सुकृति बनती रहती है। कई जन्मों के बाद यही सुकृति साधु–संग करा देती है। साधु–संग होने से जीव का शुभ मार्ग खुल जाता है।

भगवान् को कौन चाहता है ? सब माया मोहित रहते हैं। कलि में कोई करोड़ों, अरबों में से एक ही भगवान को चाहने वाला मिलता है क्योंकि सभी साधु–संग से वंचित रहते हैं। यह साधु–संग भी सुकृतिवश, भगवत्–कृपा से ही मिला करता है। भूल से भी साधु–सेवा किसी की बन जाए तो उस पर भगवत्–कृपा स्वतः ही हो जाती है। भगवान् उस जीव का बहुत बड़ा एहसान मानते हैं कि उसने मेरे पुत्र की सेवा कर दी। भगवान् के दो ही पुत्र हैं–एक साधु, दूसरा नास्तिकजन। नास्तिकजन की भगवान् परवाह नहीं करते व आस्तिक जन का हर क्षण ध्यान व रक्षा करते रहते हैं। श्रीनारद जी ने दासी पुत्र होते हुए भी बचपन में साधुओं की जूठन खाई थी। उसी का फल है कि आज वे सारे लोकों में इकतारे की धुन में नारायण–नारायण उच्चारण कर घूमते रहते हैं। साधुओं की सेवा ही सर्वोपरि है। भगवान की सेवा से भी बढ़कर है।

पुन्य एक जग में नहीं दूजा।
मन क्रम वचन साधु–पद पूजा।
तिन पे सानुकूल मुनि देवा।
जो तज कपट करे साधु–सेवा।

दश अपराध छाड़ि नामेर ग्रहण।
इहाइ नैपुण्य हयं साधन–भजन।।
दसों अपराधों को छोड़कर हरिनाम करना ही
भजन–साधना में निपुणता है।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौजयतः

छींड की ढाणी
5-7-2008

प्रेमास्पद, भक्त-प्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज के युगल-चरणारविंद में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम करने की प्रार्थना।

ॐ (प्रणव) शब्द में अपार-असीम शक्ति - विवेचन

भगवत-मुखारविंद से प्रणव (ॐ) का आविर्भाव हुआ। इस ॐ से स्वर-अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः तथा व्यंजन-क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ त थ द ध न ट ठ ड ढ ण प फ ब भ म य र ल व श ष स ह का प्राकट्य हुआ।

इन स्वर व व्यंजनों से शब्द का प्राकट्य हुआ तथा शब्द से वाक्य का संचार हुआ। जब वाक्य, कान द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश किया तो हृदय को सुख-दुःख का अनुभव हुआ। इस सुख-दुःख ने स्थूल इन्द्रियों में हरकत की जिससे कर्म करने की प्रवृति जागृत हुई जिसने संसार के व्यवहार का संचालन किया।

शब्द के अभाव में अखिल-कोटि ब्रह्मांडों का व्यवहार चल ही नहीं सकता। सभी जीवसमूह, शब्द के माध्यम से कर्म करते रहते हैं। तब ही धर्म-शास्त्र उद्घोष कर रहा हैः-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।

यदि कर्म का विधान न होता तो न तो सृष्टि का प्राकट्य होता और न ही भगवान् का अवतार ही होता। लीलाधारी भगवान् ने लीला रचने हेतु कर्म का विधान रचा। भगवान् का मन भी भक्तों

के अभाव में प्रसन्नता प्राप्त नहीं करता। भगवान् का संसार ही भक्तों से है।

कर्म ही मानव के पीछे लगा हुआ है। मानव यदि शुभ कर्म, जो धर्म–शास्त्रों में अंकित हैं, करता है तो सुखी लोकों में गमन करता है एवं यदि शास्त्रों के विरुद्ध कर्म करता है तो दुःखी लोकों में जाता है। भगवान् के एक लोभ कूप में अनन्त कोटि ब्रह्मांड समाए हुए हैं। अतः लोकों की कोई गिनती नहीं है।

अलौकिक शब्द मिलकर आध्यात्मिक शास्त्रों का उद्‌भव होता है तथा लौकिक शब्द मिलकर भौतिक शास्त्रों का उद्‌भव होता है। दोनों ही सुख–दुःख के कारण बनते रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि वह कौन सा अलौकिक शब्द है जो परमानन्द का कारण बना तथा वह कौन सा लौकिक शब्द है जो दुःख सागर में डुबोए रखता है? लौकिक नाम अज्ञान का द्योतक है। आध्यात्मिक नाम ज्ञान का द्योतक है। भगवत्–नाम ही ज्ञान का द्योतक है जिससे दुःख का समूल नाश हो जाता है। भगवत्–नाम से ही मानव को भगवत्–धाम का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। सान्निध्य प्राप्त होने के बाद वापस संसार रूपी दुःख सागर में गिरना नहीं पड़ता।

अब भौतिक नाम का प्रभाव भी देखिये। जैसे किसी ने किसी को अपशब्द (गाली) कह दिया। उसने उस शब्द को कान द्वारा सुन लिया। वह शब्द अन्तःकरण में जा पहुंचा। बस फिर क्या था? उसका हृदय आगबबूला हो गया जिससे क्रोध उदय हो गया और क्रोध से उसकी बुद्धि का ज्ञान चला गया। ज्ञान का लोप होने से उसने कोई विचार नहीं किया, तुरन्त उस पर धावा बोल दिया तथा छुरे से उसका गला ही काट दिया। एक शब्द ने एक जिन्दगी ही समाप्त कर दी। यदि वह मन ही मन में गाली देता तो कान से सुनता नहीं और हृदय में वह शब्द जाता नहीं, फिर यह दुर्घटना नहीं होती। अतः निष्कर्ष यह निकला कि सुनना ही प्रभाव करता है।

इसी प्रकार हरिनाम जब कान द्वारा नहीं सुना जाएगा तो नाम का प्रभाव हृदय में नहीं होगा। अतः नाम को सुनना ही लाभप्रद होगा। नाम को सुनने से इस शब्द का प्रभाव, क्रोध न जगा कर प्रेम उदय करा देगा।

शास्त्रों के अवलोकन से भी जाना जाता है कि शब्दभेदी बाणों से समुद्र सोख लिया जाता था। शब्दभेदी बाणों से प्रचंड ज्वाला भभक उठती थी। शब्दभेदी ज्ञान से, जो दीपक राग कहलाती थी, दीपक जल जाते थे। मेघराग से बरसात हो जाती थी। तानसेन व बैजूबावरा इन रागों के पंडित थे। बिगुल द्वारा शब्दघोष होने पर घमासान युद्ध छिड़ जाता था। मोबाइल द्वारा शब्द पूरी दुनियाँ को हिला रहा है। अतः शब्द में बड़ी शक्ति है। अतः हरिनाम–शब्द को साधकगण को अपनाना होगा तथा कानों द्वारा सुनना होगा।

जब भौतिक नाम दुनियाँ को हिला सकता है तो क्या हरिनाम भौतिक नाम से कम प्रभावशाली है ? इसमें केवल मात्र श्रद्धा–भाव की कमी है। हरिनाम ही कलियुग का पारक मंत्र है।

कान से सुने बिना कोई भी शब्द, चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, प्रभाव करने में सक्षम नहीं होगा। भौतिक शब्द तो स्पष्ट उच्चारण करने पर ही प्रभाव करता है लेकिन हरिनाम शब्द तो अवहेलनापूर्वक लेने पर भी प्रभाव कर देता है।

भौतिक शब्द, जो गाली दी गई थी उस शब्द से तो सामने वाले को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा किन्तु आध्यात्मिक शब्द–हरिनाम लेने पर तो 'अहम्' का गला ही कट जाएगा। अहम् (मैं–मेरा) का गला कटा नहीं कि शरणागति स्वतः ही उदय हो जाएगी।

जिस साधक ने हरिनाम को अपना लिया उसे भगवत् प्राप्ति का सरलतम, सहज व सुगम रास्ता मिल गया। इतना होने पर भी मानव का कितना दुर्भाग्य है कि उसे भगवत्–नाम–शब्द उच्चारण करने में कितना आलस आ रहा है। यह बड़ी शोचनीय बात है। थोड़ा विचार करके तो देखो कि अब भविष्य में मानव जन्म नहीं

मिलने का तथा अनन्त काल तक दुःख सागर में डूबना होगा। इस समय भी ज़रा विचार कर अनुभव करो! क्या अब इस समय सुखी हो? युवक पढ़ने से दुःखी, रोज़गार न होने से दुःखी, गरीबी से दुःखी, राज से दुःखी, पड़ौसी से दुःखी, आपस में स्वभाव न मिलने से दुःखी–सुख का तो लेश मात्र भी नहीं। मानव फिर भी भगवान से, जो सुख के सिंधु हैं, लगाव नहीं करता और रात–दिन रोता रहता है। आगे भी रोयेगा।

मेरी हाथ जोड़कर तथा चरण छूकर प्रार्थना है कि जो भी इस पत्र को पढ़े कृपया, नित्य ही 64 माला हरिनाम की कान से सुनकर करे तो गुरुदेव जी गांरटी ले रहे हैं कि एक लाख हरिनाम करने वाला अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थ प्राप्त करने का अधिकारी बन जायेगा तथा अन्त में भगवत्–धाम में गमन कर जाएगा, जहां परमानन्द का समुद्र लहरें लेता रहता है। उसके दुःखों का सदा के लिए समूल नाश हो जाएगा।

हरिनाम अपनाने वाले को लेने, भगवत् दूत नहीं आते। स्वयं भगवान् अपने नाम के शरणागत को लेने आते हैं। इसी जीवन में उसका संसार सुखमय हो जाएगा। कलि उसकी तरफ झांक भी नहीं सकेगा। इसमें एक प्रतिशत भी संदेह नहीं करना।

जैसा कि शिवजी अपनी धर्मपत्नी उमा को कथा में सुना रहे हैं:–

1. सादर (सुनकर) सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिध गो पद–इव तरहिं।।

2. कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई।।

3. सुनहुं उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होयं विषय अनुरागी।।

4. लाभ कि किछु हरि–भक्ति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराना।।
5. हानि कि जग एहि सम किछु भाई।
भजिए न रामहि नर तन पाई।।

यह मनुष्य–तन ही वैकुंठ जाने का द्वार है। यह द्वार चूक गए तो फिर यह द्वार मिलेगा नहीं। काल का कोई भरोसा नहीं है। एक क्षण में इस द्वार को नष्ट कर देगा। नरक का भोग भोगना होगा जो अकथनीय दुःख पाने का स्थान है। अब भी समझ जावो, यही मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है। मेरा भी भला, आपका भी भला। यदि श्रीगुरु आदेश से एक लाख हरिनाम लिया जावे तो मेरी खुशी का अन्त नहीं होगा।

वैष्णव उत्तम सेइ याहारे देखिले।
कृष्णनाम आसे मुखे कृष्णभक्ति मिले।।

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से जीवों के मुख से श्रीकृष्णनाम उदित हो जाता हो तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति हो, वही उत्तम वैष्णव है।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

एक नाम या'र मुखे वैष्णव से हय।
तारे गृही यत्न करि, मानिबे निश्चय।।

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण–नाम का उच्चारण होता है, उसे वैष्णव समझना चाहिये। गृहस्थ भक्तों को चाहिये कि वे अति यत्न के साथ इस सिद्धांत को मानें।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
एकादशी
01-05-2008

परमाराध्यदेव, भक्त-प्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में इस नराधम, दासानुदास, अधमाधम, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम भजन रूपी हरिनाम में रुचि हो, ऐसी प्रार्थना।

स्वयं के भजन-स्तर की जांच की कसौटी का दर्पण

(भगवत्-प्रेरित दर्पण-दृष्टिगोचर आख्यान)

1. भगवत्-भजन में मन स्वाभाविक रमण करता है कि नहीं ?
2. कोलाहल में मन स्थिर रहता है कि नहीं ?
3. मान-प्रतिष्ठा से मन दुःखी होता है कि नहीं ?
4. संकट में मन में स्थिरता रहती है कि नहीं ?
5. भजन हेतु उत्साह होता है कि नहीं ?
6. इन्द्रियों में संयम रहता है कि नहीं ?
7. दुःख में भगवान याद आता है कि नहीं ?
8. किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर स्वयं को दुःख होता है कि नहीं ?
9. किसी की निन्दा व अपनी स्तुति सुनकर मन में घृणा होती है कि नहीं ?
10. भगवत्-चर्चा सुनकर अधिक सुनने की इच्छा होती है कि नहीं ?

11. प्रत्येक प्राणी का उपकार करने की इच्छा होती है कि नहीं ?
12. सन्त से मिलकर परमानन्द की अनुभूति होती है कि नहीं ?
13. सन्त से बिछुड़ने पर अपार दुःख का अनुभव होता है कि नहीं ?
14. सन्त के चरणों में बैठने से अधिक समय बैठने का मन करता है कि नहीं ?
15. भजनानन्द की भूख पहले से अधिक हो रही है कि नहीं ?
16. भजन का ह्रास होने पर अन्तःकरण दुःखी होता है कि नहीं ?
17. कभी भगवत्, सन्त, मंदिर, तीर्थ के स्वप्न आते हैं कि नहीं ?
18. स्वप्न में अष्ट–विकार कभी आते हैं कि नहीं ?
19. रात में 2–3 बजे भजन हेतु उठने का मन करता है कि नहीं ?
20. भजन से मन में मस्ती की लहर दौड़ती है कि नहीं ?
21. ग्राम्य–चर्चा से घृणा होती है कि नहीं ?
22. इन्द्रियों का वेग पहिले से कम हो रहा है कि नहीं ?
23. सभी कर्म भगवान पर छोड़े हैं कि नहीं ?
24. संसार को दुःख सागर समझा है कि नहीं ?
25. मौत को शीघ्र आने वाली समझा है कि नहीं ?
26. स्वयं से नीचे स्तर के भक्त को भी झुककर सम्मान दिया है कि नहीं ?

27. श्रीगुरुदेव को भगवत् का प्यारा–जन अनुभव कर, सेवा में लीन रहा कि नहीं ?
28. शत्रु का भी उपकार करने का भाव रहा कि नहीं–'तृणादपि सुनीचेन' भाव आया कि नहीं ?
29. अन्य के हक का अधिकार न चाह कर, सच्ची कमाई का पैसा कमाया है कि नहीं ?
30. सीमित आवश्यकताओं का भाव मन में है कि नहीं ?
31. जितना मिल रहा है, उस पर संतोष है कि नहीं ?
32. मंदिर में ठाकुर का भाव से दर्शन होता है कि नहीं ?
33. स्मरण–कीर्तन में अष्ट–सात्विक विकार उदय होते हैं कि नहीं ?

उक्त अवस्थाएं उदय होने पर स्वयं का भजन–स्तर दर्पण की तरह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। यही है भगवत्–शरणागति का असली रूप।



कृष्णनाम, भक्तसेवा सतत करिबे।
कृष्ण–प्रेम–लाभ ता'र अवश्य हइबे।।

हमेशा श्रीकृष्णनाम व भक्त सेवा करते रहें। ऐसा करने पर श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।

ब्रह्मचर्य से भगवत्-प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि

(श्रीगुरु-प्रेरित आदेशानुसार)

1. अग्नि व घी पास में रहने से घी अवश्य पिघल जाता है। (अग्नि=पत्नी+घी=पुरुष शक्ति)।

2. अलग-अलग शैय्या पर सोना श्रेयस्कर होगा।

3. रात में लंगोट लगाना तथा उपस्थ इंद्री को नाभि की ओर मोड़ कर सोना-इससे टेंशन नहीं होगा।

4. हाथ, पैर व मुख ठंडे पानी से धोकर बायीं करवट से सोना।

5. सोने से पहले हरिनाम की एक-दो माला गुरुदेव जी के चरणों में बैठकर सुनाना-इससे हर प्रकार की रक्षा होगी। यही गुरु-कवच है।

6. एक बार के संग से 40 दिन के आहार से भी अधिक शक्ति निरस्त हो जाती है। शरीर का घी जब शीघ्र ही निकलता रहेगा तो कोई भी रोग शरीर पर आक्रमण कर देगा। शीघ्र ही सफेद बाल, नज़र कम, दांत गिरना, एसिडिटि, ब्लड-प्रेशर, दमा, शरीर में दर्द आदि होगा।

7. पर्व त्यौहार, मंगलवार, एकादशी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, संध्या, दिन के समय, मासिक-धर्म के दौरान, रुग्णावस्था में व बेमन से किया हुआ संग-आयुक्षीण, चिन्ता व लक्ष्मी का नाश करता है। देवता नाराज़ हो जाते हैं।

8. रिच मील (गरिष्ठ भोजन) खाने से काम जाग जाता है अतः हरिनाम आश्रित होकर भोजन पावो अर्थात् नाम लेते हुए भोजन करो।

9. इन्द्रियों को जितना भोग दिया जाएगा, वे उतनी ही प्रबल होंगी, न देने से मरेंगी, अतः इन्हें विषय भोग न दो।

10. गुरुवर्ग के आचरण अनुसार चलने पर काम पर विजय होगी। दोनों (दंपति) आंखें खोल कर चलें।

11. दिन में काम–भोग के पद–पद पर दर्शन होने से, एक बार दृष्टि जाने पर दुबारा मन को रोक दो वरना मन पकड़ लेगा तो आपके शरीर का घी, खून से निकल कर, नीचे की ओर बहता रहेगा। अतः सतर्क रहो।

नोटः–भजन में प्रवृत्त रहने वालों को इस लेख को देने से भगवान् का आशीर्वाद मिलेगा। ऐसी शिक्षा कहीं भी प्राप्त नहीं होगी।

अब प्रश्न उठ सकता है कि ब्रह्मचर्य प्रसंग में जो लिखा गया है, वह तो हमें बिल्कुल भी जंचता ही नहीं है। आप सच ही बोल रहे हैं, पर इसका जवाब नीचे हैः–

उत्तरः–धन–वैभव में एक प्रतिशत भी सुख नहीं है, सुख केवल दिखता है। धन–वैभव वालों को पूछकर देखो कि उनके मन का क्या हाल है ? तुम्हें उत्तर मिलेगा–''बहुत बुरा। एक क्षण भी शांति नहीं। केवल प्रतिष्ठा मिल रही है। उसमें क्या शांति होगी ? स्वप्न में भी नहीं। रात में सो नहीं सकते। अनन्त टेंशन (चिंताएं) अंदर भरे पड़े हैं, सोचते–सोचते रात बीत जाती है। भूख कभी लगती नहीं। खाने–पीने की कोई कमी नहीं। अकेले कहीं स्वतंत्रता से जा नहीं सकते, मौत सिर पर सवार रहती है फिर हमें सुख कहां ?''

अब उनके पूछो कि फिर भी तुम ऐसा धंधा क्यों करते हो ? उत्तर मिलता है कि केवल तृष्णा की भूख है, अज्ञान है। इनके यहां जो लक्ष्मी है, वह चाण्डालिनी लक्ष्मी है जो बुरे रास्ते से उनके पास आती है और जो उन्हें नरक भोग कराएगी।

इस कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है कि जो चाण्डालपना करेगा, वही सुखी दिखेगा। जो सज्जनताई (ईमानदारी) से रहेगा, वह दुःखी दिखेगा। लेकिन सुखी तो सज्जन ही होगा और अंत में जीत भी उसी की होगी। कौरव और पांडव इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

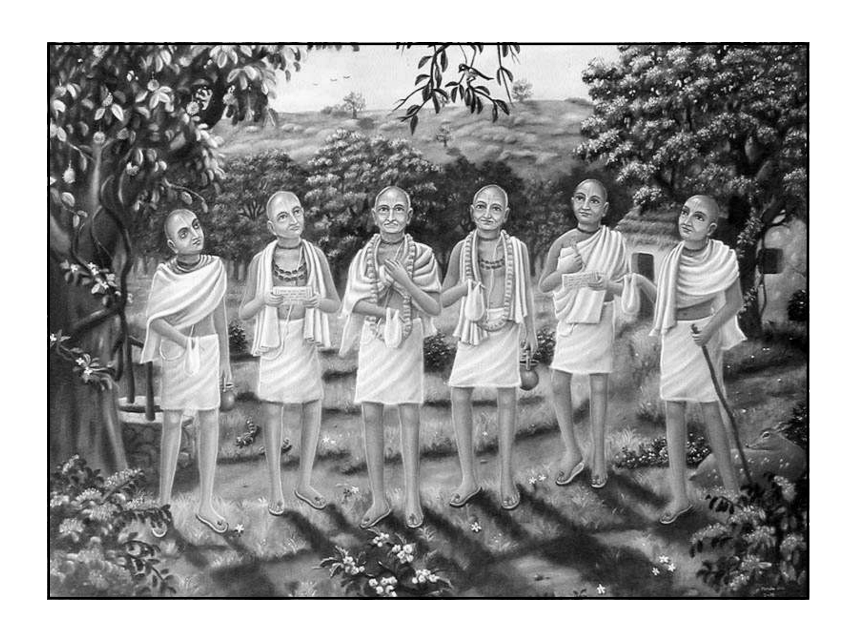
धन–वैभव वालों को पिछले जन्मों के कर्मानुसार ही ये भोग मिल रहे हैं, जब पुण्य समाप्त हो जायेगा तो वे रास्ते के भिखारी बन जायेंगे।

धर्म शास्त्र जो बोल रहा है, मानव के सुख का रास्ता दिखा रहा है, इसी रास्ते पर चलना श्रेयस्कर होगा। अतः जो भी ब्रह्मचर्य प्रसंग में लिखा गया है, श्रीगुरुदेव प्रेरित ही लिखा गया है, जो कि शत–प्रतिशत सुख का रास्ता ही दिखा रहा है।

इसको जो सच मानकर जीवन यापन करेगा, वही सुखी रहेगा।

हरे कृष्ण कहिए
सदा प्रसन्न रहिए

Chant Hare Krishna Mahamantra
and Be Happy



6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
25-05-2008

परम श्रद्धेय व परमाराध्यतम् श्रीगुरुदेव तथा भक्त-प्रवरों के चरण-युगलों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमा-भक्ति स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

प्रेमा-भक्ति का शाश्वत, अलौकिक, चिन्मय बीज – केवल मात्र "हरिनाम"

हरिनाम चाहे जैसे भी उच्चारण किया जाए, समय आने पर साधक के अन्तःकरण को एक दम निर्मल बना देता है। यह शत-प्रतिशत सत्य सिद्धांत है। जिस प्रकार अग्नि जाने-अनजाने में छुए जाने पर अपना जलाने का प्रभाव दिखाती ही है, विष व अमृत जाने-अनजाने में पीने से मरने तथा अमर बनाने का प्रभाव करता ही है। सूर्य अपने ताप का तथा चन्द्रमा अपनी शीतलता का प्रभाव सभी जीवों पर करता ही है। किसी भी वस्तु की स्वाभाविक शक्ति इस बात का इन्तज़ार नहीं करती कि इसकी मुझ पर श्रद्धा है कि नहीं, वह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती।

इसी प्रकार साधक को हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा रखकर, उच्चारणपूर्वक, कान के मार्ग से अन्तःकरण में ले जाकर नाम-बीज को अंकुरित करना चाहिए। शास्त्र भी घोषणा कर रहा है। ज़रा ध्यानपूर्वक सुनोः-

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह बिसेषे।।

प्यार से नाम उच्चारण करने से नाम में से ही श्रीकृष्ण अंकुरित हो जाएंगे। जब श्रीकृष्ण अंकुरित हो जाएंगे तो उसमें से टहनियाँ,

पत्ते व फूल रूपी भगवान की लीलाएँ–अन्तःकरण रूपी ज़मीन में प्रगट हो जायेंगी। श्रीगौरकिशोर बाबा जी, जो अनपढ़ थे–इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सभी शास्त्र उनके हृदय में प्रगट थे। शास्त्र बोल रहा हैः–

राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त, पुराण उपनिषद् गावा।।
जाना चहिए गूढ़गति जेऊ। जीह नाम जप जानहि तेऊ।।

आदरपूर्वक नाम सुमिरन करने से शीघ्र ही प्रेमावस्था प्रगट हो जायगी। जहां आदर नहीं, वहां सब कुछ निस्सार है, कपट है, दिखावा है।

उपजाऊ, उर्वरा–भूमि में बीज कैसे भी पड़े, अवश्य ही अंकुरित होगा। इसी तरह हरिनाम का कैसे भी उच्चारण हो, पाप का विध्वंस करेगा ही, जैसे अजामिल पापी का हुआ।

सादर सुमरन जो नर करहिं।
भववारिधि गौ पद–इव तरहिं।।

हरिनाम से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। जिसने भगवत्–नाम को अपने जीवन में अपना लिया उसने तो पृथ्वी की अनन्त कोटि परिक्रमाएँ, तीर्थाटन, यज्ञ, वेद–शास्त्रों का पठन, समस्त सेवाएं, अर्थात् सभी शुभ कर्म कर लिए। ये सभी हरिनाम के सौवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं।

हरिनाम में शुद्धि–अशुद्धि, देश–काल, विधि–विधान कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। केवल जिह्वा से स्पर्श मात्र होना चाहिए। हरि का एक नाम ही इतना शक्तिशाली है कि जीव उतना पाप कर ही नहीं सकता। हरिनाम बार–बार इसलिए करना पड़ता है कि भविष्य में पापवृत्ति जगने की सम्भावना रहती है। पाप तो समाप्त हो जाते हैं परन्तु पापवासना हरिनाम बार–बार लेने पर ही जाती है। नाम से त्रिकालिक–भूत, भविष्य, वर्तमान के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण कहा गया है कि इंद्रिय–संयम रखना आवश्यक है वरना भविष्य में पाप होंगे ही।

भगवान स्वयं बोलते हैं कि भय, शोक, गिरते, उबासी लेते, छींकते, डर से, किसी भी अवस्था में मेरा नाम तारकब्रह्म है लेकिन प्रेम तो, प्रीति से हरिनाम लेने पर ही प्रगट होगा। एक ब्रह्मदेव ने नरकवासियों का दुःख देखकर ज़ोर से गोविन्द नाम उच्चारण कर दिया तो समस्त नरकवासियों के हेतु विमान आ गए क्योंकि उन्होंने दिल से नाम को ग्रहण किया था। अतः सभी का उद्धार हो गया। भागवत् पुराण में लिखा है–शिवजी स्वयं पार्वती से बोल रहे हैं–''सम्पूर्ण जगत् का स्वामी होने पर भी, मैं विष्णु भगवान् का नाम अहिर्निश जपता रहता हूँ। मुझे नाम से ही सभी 18 सिद्धियाँ तथा आनन्द मिला है। तुम भी मेरे संग हरिनाम जपा करो। पार्वती, कलियुग में भगवत्–प्राप्ति का मार्ग कितना सरल है। इसके लिए देवता भी तरसते रहते हैं कि कलियुग में हमारा जन्म भारतभूमि में हो जावे तो हमारी यह दुःखदायिनी योनि छूट जावे। जब सभी पाप–वासना नष्ट हो जाती है तो स्वतः ही भगवत्–प्रेमावस्था प्रकट हो जाती है। जब पाप–वासना हृदय में रहती है तो प्रेमावस्था आने में देर रहती है। अतः इंद्रिय–संयम परमावश्यक है। इनमें कामप्रवृत्ति रहती है। भगवान् के नाम अर्थवादियों को नरक भोग कराते हैं क्योंकि वह कहते हैं कि नाम की अधिकतम बड़ाई कर दी है।

प्रथम में जब सृष्टि थी तो भगवान् ने आदेश दिया कि सृष्टि का वर्धन करो लेकिन सृष्टि नहीं बढ़ी तो भगवान् ने कहा–''तप करो अर्थात् मुझे स्मरण करो, मेरा नाम करो,'' तब दक्ष ने उनके आदेश का पालन कर हरिनाम किया तब सृष्टि बढ़ने लगी।

जब दक्ष ने भगवान् की भक्ति की तो भगवत्–शक्ति की शक्ति से दस हज़ार पुत्र पैदा किए। बाद में एक हज़ार पुत्र पैदा हुए। नारद जी ने सभी को वैरागी बना दिया।

कहने का आशय यह है कि हरिनाम के अभाव में साधक निःशक्तिवत् रहता है। अपनी शक्ति से जीव कुछ भी नहीं कर

सकता। अतः मैं बार–बार सभी से प्रार्थना करता रहता हूँ कि अधिक से अधिक हरिनाम करने से ही सुखविधान हो सकेगा।

मानव देह बार–बार नहीं मिलेगी। इस सुअवसर को न गंवाओ इससे बड़ा कोई नुकसान नहीं होगा। ऐसा सोचकर मेरी प्रार्थना सुनो। मेरा भी कल्याण, आप सबका भी कल्याण होगा। मेरी प्रार्थना नहीं सुनोगे तो घोर दुःखदायी कष्ट पाना पड़ेगा। मास्टर जी का फोन आया था कि श्रीतीर्थ महाराज आपको याद करते हैं। मेरा तो उद्धार हो गया। इस नीच को याद किया।

माया का सबसे बड़ा शक्तिशाली हथियार है–कामवासना। काम, शक्तिहीन करता है तथा मन को गिरा देता है। संकल्प–विकल्प से इसकी जागृति होती है। यह प्रथम चित्त से जागृत होता है। यदि यहीं इसको नहीं दबाया जाए तो यह मन पर आकर इंद्रियों तक पहुंच जाता है, फिर बेकाबू हो जाता है। अतः संकल्प–विकल्प के समय ही इसकी जड़ काट देनी चाहिए।

काम बुरी चीज़ नहीं है। कामवासना बुरी चीज़ है। काम का तो भक्ति से दमन हो जाता है, परन्तु कामवासना अंतःकरण में रंगी रहती है। जब हरिनाम का बारम्बार उच्चारण होता है तो नाम और जिह्वा का घर्षण होने लगता है। इस घर्षण से विरहाग्नि जगने लगती है। भगवत् के लिए छटपट होने लगती है। जब छटपट होने लग जाती है फिर तो सात्विक अष्टविकार प्रगट होने लग जाते हैं। जब ऐसा होता है तो इन्द्र काम को आदेश देकर उसे गिराने की कोशिश करता है। तब भक्त कामवश होकर स्त्री–संग करता है। इससे जो शक्ति भक्तिरस को बाहर बहा रही थी अर्थात् जो अश्रुपुलक हो रहा था, एकदम वह शक्ति, माया में बह जाती है। गृहस्थ करो परंतु उसमें लिप्त नहीं होओ। गुरुवर्ग सभी भक्त गृहस्थ थे, उनके भक्त–पुत्र प्रगट हुए। वे गुहस्थ में लिप्त नहीं थे। उनमें काम था परन्तु वासना नहीं थी।

श्रीकृष्ण की हर पत्नी के 10 पुत्र, एक पुत्री थी, फिर भी वे योगीराज कहलाए। ब्रह्मा जी की सन्तानों से सारा संसार भर गया।

अंतर केवल इतना ही है कि उन्होंने कर्म किया परन्तु उसमें फंसे नहीं अर्थात् वासना नहीं की। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा था कि यह काम ही सबसे बड़ा शत्रु है। इच्छाओं के बिना संसार चलता ही नहीं है परन्तु इन इच्छाओं में रमो मत, फंसो मत। कमल की तरह जल में रहो। जल में रहकर भी जल का प्रभाव कमल पर नहीं पड़ता।

भगवत्–प्राप्ति करना बहुत दुष्कर नहीं है, केवल जीवन को थोड़ा सा बदलना है। घी और आग जब पास में रहेंगे तो ताप से अवश्य ही घी पिघलेगा। यही शरीर का, मन का बड़ा शक्तिशाली तत्व है। इसे बचाने से मन भक्ति में लग जाता है। भगवान् भक्ति के वश में हैं। श्रीहनुमान जी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मैंने पिछले दिनों एक पत्र लिखा था कि कलियुग के समय में भगवत्–प्राप्ति करना सहज है। जब तक पूर्ण–शरणागति का भाव अन्तःकरण में नहीं आवेगा, तब तक भगवत्–प्रेमावस्था स्वप्न में भी नहीं आ सकेगी।

इस स्थिति को प्राप्त करने हेतु, मुझे अपना महत्वशील पिछला जीवन लिखना पड़ा एवं श्री जौहर महात्मा से प्रार्थना की कि इस पत्र को किसी को नहीं पढ़ाना क्योंकि इस पत्र में मेरे अहम् भाव का खुलासा झलकता है। जब इसे कोई भक्त पढ़ेगा तो उसके हृदय में मेरा अहंभाव दृष्टिगोचर होगा। इस भाव से उसे घोर अपराध हो सकता है। उसकी जो थोड़ी–बहुत हरिनाम में रुचि है, वह समाप्त हो सकती है। इससे मुझे भी अपराध का भागी होना पड़ेगा क्योंकि मेरे द्वारा ही उसकी हरिनाम से रुचि समाप्त हुई है। अतः मैंने यह पत्र दूसरों को पढ़ाने से मना कर दिया था।

मैंने ऐसा अहंभाव का पत्र क्यों लिखा? इसका एक खास कारण है कि मुझ में भक्तों की अधिक श्रद्धा बन जाये और वे मेरे कहे अनुसार हरिनाम में अधिक से अधिक लग जावें। दूसरा कारण है कि श्रीबजरंगबली ने मुझे आदेश दिया था, जब वे मुझे बीकानेर में मिले थे और मेरा हाथ देखा था। उन्होंने कहा था कि तुम्हारे हाथ

में भगवत्–आयुधों के तीन चिह्न हैं, जिसके एक चिह्न भी होता है, वह भगवान् का प्रियजन होता है। भगवत्जन का आदेश मानकर, सभी उसके मार्ग अनुसार चलने लग जाते हैं। ऐसा हो भी रहा है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए। बहुत साधक मेरे कहे अनुसार, अधिक से अधिक हरिनाम रुचिपूर्वक कर भी रहे हैं। इसमें मेरा कोई प्रभाव नहीं है। यह गुरुदेव के आदेश का ही प्रभाव है जो मैं तीन लाख हरिनाम नित्य कर रहा हूँ तथा हमारे घर में हर महीने लगभग साढ़े तीन करोड़ हरिनाम भगवत्–कृपा से हो रहा है।

बड़ाई कौन चाहता है ? वही जिसको तन, मन व धन की सेवा लेनी हो। इनसे तो मैं घोर घृणा करता हूँ। जो कोई जबरन करता भी है तो मुझे बहुत दुःख अनुभव होता है लेकिन अपराध न हो जावे इसलिए लेनी भी पड़ जाती है। श्री निष्किंचन महाराज व श्री जौहर महात्मा जी मेरे मन की पूरी हालत जानते हैं, वे इसे अहंभाव न समझकर, भक्तों को हरिनाम में लगाने का हेतु समझेंगे। जो इस पत्र को पढ़कर मेरी बड़ाई समझ लेंगे तो वे अपराधी बन जाएँगे।

मुझे ऐसा अपना अहंभाव लिखना भी नहीं चाहिए था लेकिन लिखना पड़ गया। इसका कारण सभी भक्त नहीं समझेंगे। इसमें मेरा व उनका अपराध बन सकता है। गहरा विचार करना होगा कि क्या कोई अपनी शक्ति से तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? इसमें अलौकिकता नज़र आती है तभी तो वह दूसरों से एक लाख हरिनाम करवा सकता है। श्रद्धा से लाभ ही है।

जो भी अहंभाव लिखा है, हुनमान जी के आदेश से लिखा है कि 70 साल की उम्र के बाद सभी को बता देना ताकि तुम्हारे आदेशानुसार सभी भक्त तुम्हारा अनुसरण कर सकें।

मुझे ऐसा मालूम भी नहीं पड़ता कि मैं भगवत्जन हूँ। यह पर्दा भगवान् अपने जन पर रखते हैं। श्रीगौरहरि के सभी पार्षद भगवत्जन थे लेकिन उनको मालूम नहीं था कि हम कृष्ण के समय में कौन थे ? अर्जुन को मालूम नहीं था कि मैं नर हूँ तथा

कृष्ण नारायण हैं। यह भगवान ने ही उनको बताया था कि तुम कौन हो। श्रीहनुमान जी को मालूम नहीं था कि मैं इतना बलशाली हूँ। जामवन्त ने बताया, तब बल–निधान बन गए। यशोदा जी को मालूम नहीं था कि मैं भगवान की माँ हूँ अतः हर वक्त लाला की चिंता करती रहती थी। दाऊ जी को कहती रहती थीं कि बेटा कान्हा की देखभाल रखना, यह भोला–भाला कहीं यमुना में डूब न जावे। कोई राक्षस इसे उड़ाकर न ले जावे। बचपन में इसे भगवान ने ही कई बार बचाया है। वह कन्हैया से कहती थी–''कान्हा वहां मत जाना, हाऊ खा जावेगा।''

कहने का मतलब है कि कोई अपने आपको जान नहीं सकता। कोई जनाता है, तब ही जानता है। कई भक्त कहा करते हैं कि आपसे भेंट होने के बाद से हरिनाम में रुचि होने लगी है, पहले जबरन हरिनाम होता था। नवीन का फोन आया था कह रहा था कि आपके दो दिन के संसर्ग ने मेरी हरिनाम में रुचि पैदा कर दी। पहले भार समझकर हरिनाम करता था। श्री गुरुदेव जी ने अपना जीवन सभी को दर्शाया कि ऐसे–ऐसे मुझे हरिद्वार की पहाड़ियों में आकाशवाणी हुई आदि। इसमें क्या अहं नहीं झलकता है ? अतः इस पत्र को पढ़ कर ही किसी भक्त को मेरे अहंभाव का पत्र पढ़ा सकते हो ताकि झूठ न समझकर सच्चे रूप में मेरी शरणागति से हरिनाम में रुचि कर सके और अधिक से अधिक हरिनाम जप सकें।

मैं किसी को डुबोने नहीं आया हूँ। मैं तो गुरु आदेश से तराने आया हूँ। मुझे सभी क्षमा करें।



7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

एकादशी
31-05-2008

परमाराध्यतम गुरुदेव तथा भक्तप्रवर के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

हरिनाम की शरण लो

हरिनाम की शरण में जाने के बाद ऐसी तीव्र इच्छा जग जाती है कि स्वाभाविक ही नित्य-प्रति एक लाख हरिनाम होने लगता है। जिस प्रकार पक्षी के पंखहीन नन्हें-नन्हें बच्चे, माँ की बाट में फुदकते रहकर चीं-चीं करते रहते हैं, माँ के पास में आते ही मुख खोल लेते हैं, जैसे गाय का भूखा बछड़ा, मां का दूध पीने के लिए आतुर रहता है, जैसे वियोगिनी सति-स्त्री अपने प्रवासी पतिदेव प्रियतम से मिलने के लिए आतुर रहती है, जैसे शराबी, कामी व जुआरी इतना तीव्र आतुर रहता है कि 10 मील दूर अपने गंतव्य स्थान पर सर्दी-गर्मी, बरसात, नदी-नाला की भी परवाह न करके, न रात देखता है न दिन, पहुंच जाता है। इसी प्रकार नाम की शरण हुआ भक्त भी भगवान के दर्शन के लिए रात-दिन विरहाग्नि में झुलसता रहता है। जहां भी उसे भगवत्-चर्चा उपलब्ध होती है, वहां अत्यंत दूर भी पहुंच जाता है। वह किसी भी परेशानी की परवाह नहीं करता है। यही नामनिष्ठ की सच्ची लग्न है।

ऐसे भक्त को देह व गेह की परवाह नहीं रहती। जहां हरिनाम की सरिता बहती है, बस! उसमें गोता लगाने की उसे परवाह रहती है। उसे न तो भूख की और न ही नींद की परवाह होती है। चन्द्रमा की शीतल किरणें भी उसके कलेजे को जलाती रहती हैं। बरसात में मोर, चातक, मैना की बोली उसके लिए असहनीय दुःख का कारण बन जाती हैं। याद पर याद उसे सताती रहती है। संसार उसकी आंखों से ओझल हो जाता है। वह केवल भगवत्चिंतन में ही डूबा

रहता है। जहां भी उसे भगवत् गुणानुवाद उपलब्ध दिखाई देता है, वहीं चिन्तन में डूब कर रोता रहता है तथा वहां जाने के पूरे प्रयास में जुटा रहता है। यही है, सच्चे नामनिष्ठ की पहचान।

उक्त अन्तःकरण की स्थिति, नाम की शरण के अभाव में कभी स्वप्न में भी नहीं होगी। कलि से बचने का यह अमोघ–शस्त्र है।

नोटः– जैसे गर्म लोहा सारे कूड़े–करकट को जलाकर राख कर देता है, पर ठंडा लोहा ऐसा करने में सक्षम नहीं है। वैसे ही भक्तिहीन रूपी ठंडा लोहा संग करने वाले की अशुभ वासनामयी प्रवृति को जलाने में सक्षम नहीं है। इसी प्रकार नामनिष्ठ संत रूपी गर्म लोहे की तपन संग करने वाले की अशुभ वासनाओं की प्रवृति को जलाकर, अंतःकरण को निर्मल बनाने में समर्थ व सक्षम होती है।

श्रीगौर प्रियजनों! इस शस्त्र को बड़ी सावधानी से अपने पास में रख लो, आपका बाल भी बांका नहीं होगा। यह शास्त्र की घोषणा है। चूको मत! नित्य प्रति एक लाख हरिनाम के अभाव में यह शस्त्र उपलब्ध नहीं होगा। इस शस्त्र से यहां भी सुरक्षित तथा परलोक में भी सुरक्षित। शिवजी सभी मानवों को चेतावनी दे रहे हैं कि उन्होंने भी हरिनाम से ही शक्तिमान होते हुए ही, सब कुछ उपलब्ध किया है। काल आ रहा है, यह सभी को खा रहा है। बस! केवल हरिनाम ही बचायेगा। सब कामों को छोड़ो तथा हरिनाम करो।

नाम के प्रभाव से ही हनुमान जी पूजे गए। नारदजी अनन्त कोटि ब्रह्मांडों में जाने का अवसर पा सके। सनकादिक चारों भाईयों ने नाम से अमर पद ले लिया। नाम तो चारों युगों का ही तारक मंत्र है लेकिन कलिकाल में तो विशेषकर प्रभावशाली तारक मंत्र है। कलिकाल में कितना सरल, शुभ अवसर हाथ लगा है। इसे बिसराओगे तो पछताओगे। यहां तक की देवता भी इस अवसर को तरसते रहते हैं कि यदि कभी प्रभु हम पर दया करके, कलियुग में भारतवर्ष में, जन्म दे दें तो हम इस दुःखदायिनी योनि से छुट्टी पा

जावें। सदा के लिए निहाल हो जावें।

सज्जनों! अपनी दुःखदायिनी भटकन, इसी जन्म में हटा लो। यह शुभ, सरलतम अवसर फिर हाथ में नहीं आयेगा। समय बीत जाने के बाद रोना ही रोना हाथ लगेगा। रोना ही है तो अपने परमपिता परमात्मा को याद करके रोवो। सदैव सुखी बन जावोगे। दुःख समूल नष्ट हो जायेगा।

मैं श्रीगुरुदेव को साक्षी कर, गांरटी से कह रहा हूँ कि जो भी एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करेगा, मन चाहे लगे या नहीं, स्मरण करते–करते उसका मन भी भजन में लग जायेगा। गौरहरि इसके साक्षी हैं। क्यों नहीं लगता ? इसका कारण है जन्म–जन्म की मन की भटकन। शनैःशनैः रुचि बन जायेगी, चिंता न करें।

श्रीगुरुदेव की शत–प्रतिशत गारंटी है कि जो उक्त लेखानुसार अपना जीवन–यापन करता रहेगा वह इसी जन्म में पंचम पुरुषार्थ–कृष्ण–प्रेमावस्था को प्राप्त होकर भगवत्–दर्शन की प्राप्ति भी कर सकेगा। जापक का संसार से मन हटेगा एवं भगवत् व भक्तों में मन रमेगा लेकिन यह स्थिति तब ही प्रकट हो सकेगी जब किसी नामनिष्ठ का, भगवत् कृपा–परवश संग उपलब्ध हो सकेगा। स्पेशल सर्जन के संग के बिना कोई मेडीकल विद्यार्थी निपुण सर्जन नहीं बन सकता। यह उपलब्धि भी पूर्व जन्मों की सुकृति से मिल सकती है। यह तो एक भौतिक उपलब्धि है। आध्यात्मिक उपलब्धि को तो अकथनीय उपलब्धि समझें। यह तो किसी अत्यन्त सुकृतिशाली करोड़ों अरबों में से, किसी एक जीव को प्राप्त होती है, जिसका जन्म–मरण रूपी दुःखदायी आवागमन के हटने का समय आता है।

इसलिए ही भगवान किसी जीव को कृपा कर मनुष्य जन्म देते हैं ताकि भटका हुआ जीव अब की बार उनकी गोद में चला जावे। परन्तु अभागा जीव, माया के चक्कर में फंस कर, यह अमूल्य समय बातों व धन्धों में गंवाकर, फिर से अधोगति में चला जाता है। यह जीव से भगवान की गोद से हटा है, तब से लेकर अब तक

स्थायी गोद को उपलब्ध नहीं कर सका। कितना अज्ञान है! इसकी कोई सीमा नहीं है। इस जीव को भगवान ने कृपा कर कई बार मानुष देह अर्पण की, परन्तु वह अज्ञानवश इसका अमूल्य लाभ नहीं ले सका। फिर से भटकन में भटक गया।

जितने भी महाबलशाली राक्षस हुए, जो श्रापवश राक्षस हो गए तथा जितने भी ज्ञानी–भक्त हुए, उन्होंने संसार की कोई मांग नहीं की, केवल जन्म–जन्म में साधु–संग ही मांगा क्योंकि इस संग के अभाव में आज तक कोई भगवत् की प्राप्ति नहीं कर सका, न ही दुःखदायी योनि से छूट सका। यह भी भगवत्–कृपा बिना नहीं मिल सकता। भगवत्–कृपा मिलती है जब पिछले जन्मों की सुकृति पुंजीभूत होती है। सुकृति भी तब ही रहती है जब किसी सन्त का अपराध न बना हो। संत–अपराध, सुकृति को भी समूल नष्ट कर देता है। जब किसी जीव पर संयोगवश, साधु–कृपा बन जाती है तो भगवत्–कृपा उसके पीछे दौड़ती आ जाती है।

अतः सन्त, भगवान के प्यारे आश्रितजन हैं। उनका अपराध होना पूरे कुल का नाश कर देता है। उनकी तन, मन धन व प्राण से सेवा कुल में एक भी जन यदि करता है तो समस्त कुल के जन भगवत्–चरणों में चले जाते हैं।

सन्त के तुल्य कोई भी दयावान नहीं होता। कष्ट देने पर भी वह सबका भला ही चाहता है क्योंकि उसे सच्चा ज्ञान होता है। वह सोचता है कि यह बेचारा जीव अज्ञानी है, अच्छा–बुरा नहीं जानता। यदि इसने मुझे सताया है तो क्या हुआ क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। वह उसे क्षमा कर देता है।

भगवान् का संसार सन्तों से ही है। सन्तों की वजह से ही भगवान् अवतार लेकर पृथ्वी पर आते हैं। सन्तों के बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। अतः वे सन्तों से अनेक लीलाएँ करवा कर जीवों का उद्धार करते हैं। उन लीलाओं का चिंतन करके जीव सन्त श्रेणी में आ जाते हैं। अनन्त योनियों में अन्तिम योनि सन्त की ही होती है। बाद में उसे माया के पिंजरे में आना ही नहीं पड़ता।

अतः पूरी लेखन–सामग्री जो लिखाई गई है, उसका आशय, निचोड़ यह है कि नित्य प्रति एक लाख हरिनाम–स्मरण करना। पाठशाला में छोटा शिशु जाने पर रोता है। उसे किसी तरह का लोभ देकर भेजा जाता है। कई बार वह मार भी खाता है लेकिन कुछ माह बाद वह, रोकने से भी नहीं रुकता क्योंकि पहले उसका मन वहां नहीं लगता था, अब लगने लग गया। साथियों से प्यार हो गया और खेलने का संयोग बन गया।

सज्जनों! इसी प्रकार हरिनाम में मन लगे या नहीं लगे, बेमन से भी नाम लेते रहो, बाद में धीरे–धीरे सतसंग रूपी पाठशाला के बच्चों से संग हो जाने पर हरिनाम में मन अवश्य लगने लगेगा, रुचि बनने लगेगी। बस! अनन्तकोटि जन्मों की मन की भटकन सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। इस लेख में श्रीगुरुदेव गांरटी ले रहे हैं। चूको मत! अमूल्य धन लूट लो। निहाल हो जाओगे।

नोटः–सच पूछा जाये तो भगवान को कौन चाहता है, जो चाहते हैं तो वे केवल मात्र एक प्रतिशत हैं। बाकी 99 प्रतिशत संसार की चाहना रखते हैं। अतः भगवत् से लगाव नहीं है। भैया! करोड़ों में से कोई एक सच्चे दिल से भगवान् को चाहता है। मैं श्रीगुरुदेव के आदेश का पालन कर रहा हूँ। जो करेगा पार हो जायेगा।

"CHANTING HARINAM SWEETLY AND LISTEN BY EAR"

By Order Sri Gurudev in 1966

प्रति घरे–घरे गिया कर एइ भिक्षा।
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण भिक्षा।।

प्रत्येक घर में जाकर यह भिक्षा मांगो कि ‘कृष्ण बोलो, श्रीकृष्ण का भजन करो और श्रीकृष्ण संबंधी शिक्षा ग्रहण करो।

(महाप्रभु की श्रीनित्यानंद जी व श्रीहरिदास जी को आज्ञा)

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
2-6-2008

श्रीयुत शिक्षा गुरुदेव तथा भक्तप्रवर महात्माजन, दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की प्रार्थना।

सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में 'हरिनाम' अमर औषधि की घोषणा

श्रीधन्वन्तरि वैद्य जी ने, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं, हरिनाम की अनन्त कोटि सृष्टियों में घोषणा की है-

अच्युतानन्त गोविंद नामोच्चारण भेषजात् (औषधि)।
नश्यन्ति नश्यन्ति सकला, सत्यम् सत्यम् वदाम्यहम् ते।

जो अपनाएगा, सुख पाएगा, नहीं तो जन्म गंवाएगा। चौरासी लाख योनियों के चक्कर खाएगा। अन्त समय पछताएगा। सर्व रोग कौन से हैं ? जितने भी भवरोग सृष्टि में दिखाई दे रहे हैं, ये सकल रोग हैं। सतो, रजो तथा तमोगुण से ये रोग प्रकट होते हैं। ये सभी हरिनाम-स्मरण से समूल नष्ट हो जाते हैं।

शिवजी उमा को बता रहे हैंः-

जाको नाम लेत जग मांहिं। सकल अमंगलमूल नसाहिं।।
जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ । जीह नामजप जानेउ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
सादर सुमरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद-इव तरहिं।।

स्वयं शिव राम-नाम जपते रहते हैं-

जबते सती जाय तन त्यागा। तब ते शिव मन भयउ विरागा।
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहं तहं सुनहिं राम गुन ग्रामा।

माता सीता जी जप रही हैं-

जेहि विधि कपट कुरंग संग, धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।

महर्षि बाल्मीकि वचन–

राम नाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग व्यापे नहीं महारोग मिट जाय।
सुमरिए नाम रूप बिन देखे आवत हृदय स्नेह बिसेषे।।

हरिनाम का बीज जब कान द्वारा अन्तःकरण में डलेगा तो वह अन्तःकरण में अंकुरित होगा। अंकुरित होकर एक दिन पौधे के रूप में राधा–कृष्ण जी उग जायेंगे। जब राधा–कृष्ण जी के रूप का दर्शन होगा तो सेवा करने की प्रबल इच्छा जागृत हो जायेगी। जब सेवा नहीं हो पायेगी तो इसके लिए छटपटाहट होगी। छटपटाहट होने पर स्वतः ही विरह–ज्वाला प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। जब ज्वाला प्रकट हो जायेगी तो अष्ट–सात्विक विकारों की बाढ़–सी आ जायेगी। जब बाढ़–सी आ जायेगी तो मूल सहित भवरोग का नाश हो जायेगा अर्थात् वैराग्यमय जीवन उदय हो जायेगा। भक्ति, प्रेम–प्राप्ति का यही क्रम है।

श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने अपने सभी जनों को क्यों आदेश दिया कि जो 64 माला (एक लाख) नाम करेगा मैं उसी के घर में प्रसाद पाऊँगा। क्या वे नहीं जानते थे कि गृहस्थी एक लाख में कैसे मन लगा सकते हैं अर्थात् नहीं लगा सकते। वे जानते थे कि एक लाख में ज़रूर ही कभी–कभी शुद्धनाम उच्चारण होगा ही। बाद में धीरे–धीरे मन लगने से पूरा हरिनाम ही शुद्ध होने लगेगा।

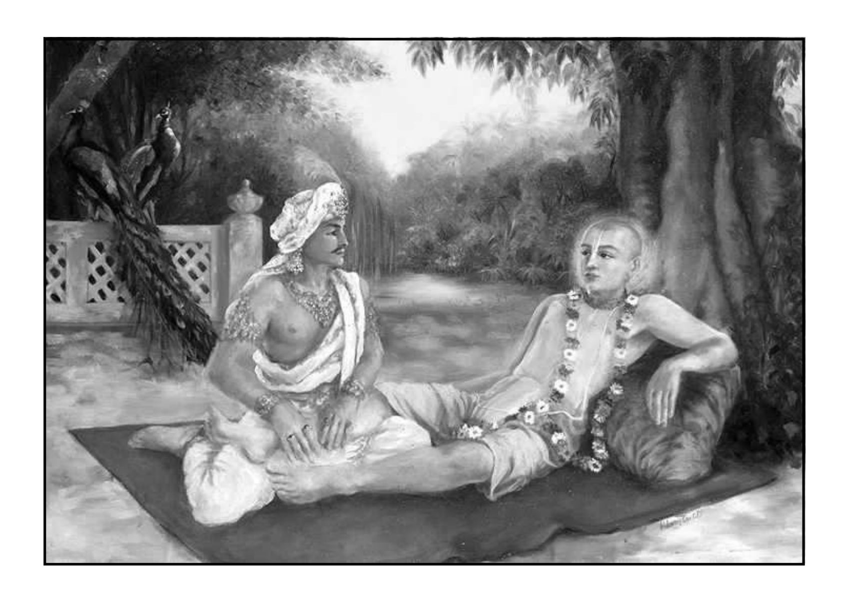
साधक ऐसा कहा करते हैं कि इससे अच्छा तो थोड़ी माला ही करनी चाहिए। यह बिल्कुल असंगत चर्चा है। मन ऐसा पाजी (दुष्ट) है कि यह कभी आपके कहे अनुसार चलता ही नहीं है। यह एक तरह से भूत है। इसको तो हरिनाम में लगाए रखना ही श्रेयस्कर होगा वरना यह मन (भूत) आपको बुरे विचारों में लगाए रखेगा। कहते हैं–खाली मन शैतान का घर। मन को कभी खाली न छोड़ो। यह तुम्हें मार देगा। इसको काम में लगाए रखना ही सर्वोत्तम होगा। किसी ने कहा, भूत को मैंने काबू में कर लिया। जब काम नहीं हुआ तब एक बांस को गाढ़ कर उससे कहा कि जब काम न

हो तो इस पर चढ़ो–उतरो। भूत ने कहा था यदि मुझे काम नहीं दिया तो मैं तुझे खा जाऊँगा। तब सन्त ने ही यह युक्ति उसे बताई थी। मन तो भूत से भी खतरनाक है। इसे फुर्सत मत दो वरना परेशान कर देगा

अतः जब भी फुर्सत हो मन को हरिनाम में लगाए रखो।

एक लाख नाम तो प्रत्येक गृहस्थी कर ही सकता है। टी. वी. आदि से समय निकाल सकते हैं।

नवद्वीप दरशन करे जेइ जन।
जन्मे जन्मे लभे सेइ कृष्ण प्रेम धन।।
जो व्यक्ति श्रीनवद्वीप धाम का दर्शन करता है,
उसे जन्म–जन्मान्तर में कृष्णप्रेम रूपी धन की प्राप्ति होती है।



9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

4-6-2008

श्रीयुत भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

भगवान से अपने जन हेतु प्रेरणात्मक चिन्मय बहस

मैं हैरान हूँ, बाप! आप मेरी कभी सुनते नहीं। क्या मैं आपका नहीं हूँ? यदि नहीं हूँ तो मुझे आपने क्यों अपनाया? यदि अपनाया है तो मेरी बात सुननी भी पड़ेगी। मैं आपका पुत्र हूँ, आप मेरे बाप हो। पुत्र की बात बाप को सुननी ही पड़ती है। यदि ऐसा नहीं है तो बाप-बेटे का रिश्ता कैसा? फिर तो बाप नकली है। मैं डेढ़-दो साल का शिशु हूँ अतः गोद में रखना तुम्हारा कर्तव्य है तथा गोद में रहना मेरा अधिकार है। रोना मेरा अधिकार है रूठना मेरा अधिकार है। मनाना, राजी करना आपका कर्तव्य है। मेरे से ठिठोलियां करना आपका कर्तव्य है। बात मानना भी बाप का कर्तव्य है। यदि ऐसा व्यवहार बाप-बेटे का नहीं है तो न किसी का बाप न किसी का पुत्र।

भगवान बोले-तुम तो इतनी छोटी उम्र के हो, फिर बोलते कैसे हो? मेरा शरीर मायामय नहीं है। मेरा शरीर चिन्मय है, जैसा चाहूं वैसा बन सकता हूँ। ठीक है, तुम क्या चाहते हो?

जो आपने बोला-मैंने कहा।

क्या बोला-भगवान् ने पूछा।

आपने बोला–''खुद आचरण करो एवं दूसरों से करवाओ। क्या आचरण करूं ?''

''अधिक से अधिक मेरा नाम–स्मरण करो तथा अधिक से अधिक दूसरों से करवाओ।''

मैंने कहा–''कैसे कराऊं ? सभी को कोई न कोई झंझट लगा ही रहता है। सभी कहते रहते हैं कि हम पर कृपा करो। हमारा मन नाम में लगता ही नहीं। और न ही एक लाख हरिनाम पूरा हो पाता है। बीच में कम हो जाता है। हमारा नाम में मन लगाओ। मैं उनका मन नाम में कैसे लगा सकता हूं ? जब झंझट पर झंझट आते रहते हैं। मैं सक्षम नहीं हूँ।''

भगवान ने कहा–तुम्हारी बातें मानने वाली नहीं हैं। सभी को अपने–अपने कर्म भोगने पड़ते हैं। औरों की तो बात ही क्या है, मुझे भी भक्तों ने कर्म–भोग भुगतवाएं हैं। इस मर्यादा को मैं, कभी भी, किसी हालत में हटा नहीं सकता। यदि हटा दूं तो अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों का नाश हो जाय। इसलिए मैं तुम्हारी बातें मानने को तैयार नहीं हूँ। हां, कर्मभोग कम कर सकता हूं। **मेटत अंक कुअंक भाल के**। जगत में किसको झंझट नहीं आए ? सभी को झंझटों से गुज़रना पड़ता है। झंझटों में मंगल ही मंगल–विधान है। झंझट न आने से निखार नहीं आ सकता। सोना तपाने से निखरता है। जो इनमें होकर गुज़रता है वह मुझे प्राप्त करता है। जो इनमें डूब जाता है, वह माया जाल में फंस जाता है।

मैंने कहा–''भक्तों के कहने पर झंझट कम तो कर सकते हो।''

''हां–वह तो करता ही रहता हूं। मैंने तुम्हारे कहने पर किसका नहीं किया ? बोलो, चुप क्यों हो ? सीता का क्या मैंने नहीं किया ? द्रौपदी, नरसी, प्रह्लाद–कितने नाम गिनाऊं ? किसका झंझट मैंने कम नहीं किया। अरे! झंझट आना तो सौभाग्य की जड़ है। इसमें मेरा मंगल–विधान है। इन से गुज़र कर मेरी गोद में बैठ जाता है।

दूसरों को शिक्षा मिलती है। तुम बार–बार किसी भक्त के लिए, किसी सन्त के लिए मुझे हैरान करते रहते हो। इसका ऐसा कर दो। इसका वैसा कर दो। मैं कर भी देता हूँ परन्तु तुम फिर भी चैन नहीं लेने देते।''

मैंने कहा–''ठीक है, आप मुझे तिलांजलि ही दे दो। फिर मैं क्यों कहूंगा ?''

''क्या करूं ? मैं तुमको छोड़ नहीं सकता। तुम मेरे अंतरंग भक्त हो! भगवान बोले!''

''तो मैं छोड़ देता हूं!''

''मैं जब ही तुमको जानूं, तुम छोड़ो। सूर्य की प्रभा सूर्य से अलग नहीं हो सकती। फूल की सुगन्ध फूल से अलग नहीं रह सकती। बेटा! जब ही तुम को जानूं, जब तुम मुझे छोड़ कर तो देखो फिर क्या गुल खिलता है ? अनन्त कोटि ब्रह्मांडों से कर्म बीज को जला दूं या मिटा दूं तो पूरी सृष्टियों का ही अन्त हो जाय। अतः मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार नहीं हूँ। मैं भक्त के कर्म को हल्का बना सकता हूं, बनाता भी हूं, बनाया भी है परन्तु मूल सहित नहीं मिटा सकता। क्या तुम नहीं जानते ? फिर बहस किस बात की ? झंझटों में ही मेरा मंगल–विधान है।''

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जसि करहि सो तसि फल चाखा।।

कहकर मोहर लगा दी।

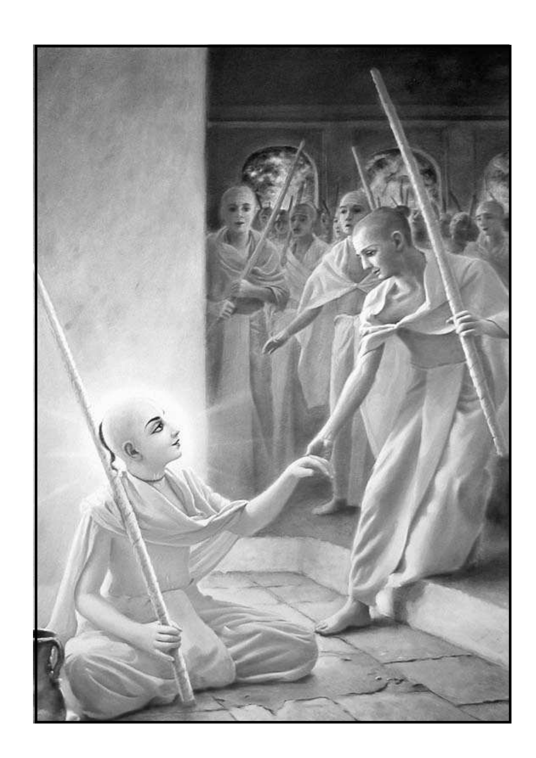
प्रेरणा टूटते ही न जाने मेरी हालत क्या हो गई, बता नहीं सकता। विकारों ने मुझे डुबो दिया। समय देखा रात के ढाई बजे हैं। हरिनाम करने बैठ गया। मन चिपक गया। किस दिव्य लोक का गमन हुआ, भगवान ही जानें।

गोविंद गोपाल राम श्रीनंदनंदन
राधानाथ हरि यशोमत्ती-प्राणधन।
मदनमोहन श्यामसुन्दर माधव
गोपीनाथ ब्रजगोप राखाल यादव।।

उपरोक्त सभी नाम भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य नाम हैं। ये सभी नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। इन मुख्य नामों का कीर्तन करने से श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है।

आइये! हम संकल्प करें कि भगवान् श्रीकृष्ण के उपरोक्त लिखे नामों का कीर्तन कम से कम पाँच मिनट, हम सब सपरिवार, प्रतिदिन अवश्य करेंगे।

हरिबोल



10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20–6–2008

परमाराध्यतम, भक्त–प्रवर तथा श्रीगुरुदेव जी के चरण कमलों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन–स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

अमूल्य, अमर वचन

मंत्र को मानसिक (मन से) तथा हरिनाम को जिह्वा से उच्चारण करना सर्वोत्तम है। उदाहरणः–

1. श्रीगुरुदेव आदेश–

Chanting Harinam Sweetly and Listen By Ear

2. ज़ीह नाम जप जागहिं जोगी।
विरत विरंचि प्रपंच वियोगी।।
(मन से नहीं, उच्चारणपूर्वक)

3. जाना चहिए गूढ़ गति जेउ।
जीह नाम जप जानेउ तेउ।। (जीभ से जपना)

4. सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद इव तरहिं।। (उच्चारण से)

5. जाको नाम लेत जग माहिं।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।। (उच्चारण से)

6. भाव कुभाव अनख आलसहूं।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुं।। (उच्चारण से)

7. जपहिं नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होय सुखारी।। (उच्चारण से)

8. जाको नाम मरत मुख आवा।
अधमहुँ मुकुत होय श्रुति गावा।। (उच्चारण से)

9. जासु नाम जप एकहिं बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।। (उच्चारण से)

10. पुलक गात हिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
11. बैठे देख कुशासन जटा मुकुट कृशगात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नैन जल जात।।
12. नाम सप्रेम जपत अनयासा।
भक्त होय मुद मंगल वासा।। (उच्चारण)
13. नाम लेत भव सिंधु सुखाहिं।
करहु विचार सुजन मन माहिं।। (उच्चारण)
14. नाम प्रभाव जान शिव नीको।
कालकूट फल दीन्ह अमीं को।।
15. राम राम कहि जे जमुहाहिं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहिं।। (उच्चारण)
16. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।। (उच्चारण)
17. उल्टा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीक भए ब्रह्म समाना।। (उच्चारण)
18. बिबसहुं जासु नाम नर कहहिं।
जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।। (उच्चारण)
19. जानि आदि कवि नाम प्रतापू।
भयउ शुद्ध कर उल्टा जापू।। (उच्चारण)
20. शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।
21. राम नाम शिव सुमरन लागे।
जाना सती जगत्पति जागे।। (उच्चारण)
22. श्वपच, शबर, खस जमन अरु, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत परम विख्यात।। (उच्चारण)
23. बारक राम कहत जग जेउ।
होत तरण तारण नर तेउ।। (उच्चारण)

24. कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं सो तसि फल चाखा।।
25. कृश तनुशीश जटा एक बेनी।
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेणी।।

शास्त्रों में ऐसे हरिनाम जपने व उच्चारण करने के अनंत उदाहरण हैं। जो भी अपनायेगा, सिद्धि पायेगा।

हरिनाम को जिह्वा से उच्चारण करने से कान व जीभ का घर्षण गर्मी प्रकट कर देता है, जिससे विरहाग्नि उदय हो जाती है। भगवत्–मिलन की इच्छा जागृत हो जाती है। उच्चारण करने से मन इधर–उधर भटकता नहीं है। अन्तःकरण में भगवत् तथा भक्तों की रील (फिल्म) चलती रहती है तो संसार की रील गायब रहती है। इतनी बड़ी रील बनती रहती है कि जिसका कोई ओर–छोर ही नहीं होता।

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव के चरणों का ध्यान उच्चारणपूर्वक आरम्भ करना होगा।

श्रीगुरुपदनख मनि गन जोती।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
उघरहिं विमल विलोचन हिय के।
मिटहिं दोष दुःख भव–रजनी के।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक।
गुप्त प्रगट जहां, जो जेहि खानिक।।

श्रीगुरुदेव को हरिनाम सुनाते रहो, कम से कम एक माला। उसके आगे परमगुरुदेवादि, नारदजी, सनकादिक, नृसिंह, कपिल, निताई, गौर, ठाकुर हरिदास जी, शची मां, यशोदा मां, मीरा, पाण्डव–शास्त्रों में अनंत उदाहरण हैं। इनको हरिनाम सुनाते रहो तो संसार हृदय से गायब रहेगा वरना संसार आता रहेगा और भगवत्–प्रेम उदय होने में समय लग जायेगा। हरिनाम मन–मन में जपने से मन भटकता रहता है। थोड़ा–थोड़ा अभ्यास करते रहना चाहिए ताकि थकान न हो। बाद में आदत हो जाती है।

इस जगत में देखा तथा अनुभव किया जाता है कि शब्द में कितनी अपार शक्ति निहित है। इस शब्द की आवाज अन्तःकरण में प्रवेश करते ही अन्तःकरण को उथल–पुथल तथा विकृत कर देती है जैसे किसी ने किसी को अपशब्द बोल दिया तो जिसको वह बोला, उसके क्रोध का पारा आसमान में पहुंच जाता है तथा इतना उग्र रूप धर लेता है कि उस जीव को मौत के घाट उतार देता है।

यदि वह उसे मन ही मन में गाली देता तो उसको न सुनने के कारण उसका अन्तःकरण शान्त ही रहता। शब्द का कान पर खास प्रभाव है। कान के द्वारा ही शब्द मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार में प्रवेश कर जाता है। तब ही शब्द का गहरा प्रभाव पड़ता है। अच्छा या बुरा। सत्संग कान से सुना जाता है। उच्चारण करने से ही कान द्वारा हृदय में पहुंच पाया। अतः हरिनाम का प्रभाव भी उच्चारण करने पर ही हृदय को प्रभावित करेगा। मन ही मन में किया हरिनाम प्रभाव नहीं करता क्योंकि इसका कारण है मन के अंकुश का न होना अंकुश न होने से मन भटक जाता है। मन भटकने पर हरिनाम प्रभाव नहीं करता। इन्द्रियों में कान ही सबसे महत्वशील है। कान ने ही भवसागर दिया है।

हरिनाम मन ही मन करने पर अन्तःकरण सोता रहता है। अतः हरिनाम का प्रभाव दूर चला जाता है। हरिनाम उच्चारण से अन्तःकरण मन, बुद्धि चित्त तथा अहंकार तरंगित होता रहता है। हृदय तरंगित होने से मन को भटकने का अवसर नहीं मिलता अतः केन्द्रित रहता है। मन रुक जाता है। मन रुका नहीं कि हृदय में प्रेम–तरंग उठी नहीं, फिर देर नहीं होती।

अतः साधकों से मेरी चरण छूकर प्रार्थना है कि हरिनाम, उच्चारणपूर्वक अवलम्बन करें ताकि कान और जीभ के घर्षण से शीघ्र प्रेमावस्था उदय हो सके। स्वाभाविक ही अन्तःकरण अकुलाहट व विकलता से भरने लगेगा। विरहाग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वालाएं उठने लगेंगी। भगवत्–वियोग का गहरा दुःख अन्तःकरण में कसकने लगेगा।

बस! फिर रोना ही भगवत्–दर्शन कराता रहेगा। इन अश्रु–धाराओं में भगवान बह कर आता रहेगा। भगवान अपनी शक्ति से रुक नहीं सकेंगे। मन कैदखाने में जकड़ जायेगा। संसार विलीन हो जायेगा, जो असत् है। सत् प्रकट हो जायेगा। बस, सारा का सारा दुःख हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि साधक जितना अधिक हरिनाम उच्चारण कर, हरिनाम माला जपेगा उतना ही शीघ्र भजन स्तर बढ़ा सकेगा।

अभ्यास करने पर सब सुलभ है, घबराने की कोई बात नहीं है। जैसा कि अनुभव में भी साधकों के जीवन में देख रहे हैं। बहुत कम भजन–स्तर बढ़ता देख रहे हैं। इसका खास कारण है–मन ही मन में हरिनाम जपना। कान को महत्व देने हेतु श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का आविष्कार किया है।

कोई भी साधक, साधना कर आज़मा सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अवश्य ही शत्–प्रतिशत् लाभ होगा ही। संयम में शत्–प्रतिशत् लाभ की उपलब्धि होगी। हरिनाम का उच्चारण सभी गन्दी स्पृहा बाहर निकाल फेंकेगा। अन्तःकरण एकदम निर्मल बन जायेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा–स्तुति जड़ से उखड़ जायेगी। साधक सिद्धता को प्राप्त कर लेगा। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं समझना। सभी मित्र बन जायेंगे। हिंसक जीव भी साथ देने लगेंगे–

जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करे सब कोई।।

सुना गया है कि मेघराग, दीपकराग तथा अन्य राग इत्यादि गाने से प्रत्यक्ष फल देने लगते हैं। गाना उच्चारणपूर्वक ही हुआ करता है। मन ही मन में गाने से कुछ नहीं मिलता।

नोटः–उच्चारणपूर्वक जपने पर भी मन भटकता रहता है तो उसको रोकने का एक मात्र उपाय होगा कि आप के मुख से जो

बात निकल रही है, वह आप किस को सुना रहे हो ? उस पर मन टिकाना होगा। जिस प्रकार आप किसी से बात कर रहे हो तो उस समय क्या कोई दूसरा ध्यान या बात आती है ? यदि आवेगी तो पास वाले से बात करने पर बात बिगड़ती जावेगी। वह समझेगा कि पागल है। क्या बोल रहा है ? वह नाराज़ होकर चल देगा। इसी प्रकार भगवान भी चल देते हैं। यह मुझसे नहीं, संसार से नाता जोड़ रहा है। देवता के आने का सवाल ही नहीं। जैसे पहले था वैसा अब भी है। पूरी जिन्दगी बेकार में खो देगा। फिर भवसागर में हमेशा के लिए डूब जायेगा।

अतः प्रेमियों ! जितना बन सके, उच्चारणपूर्वक हरिनाम जपने का अभ्यास बनावो। एक माला से 64 माला तक होने में कोई कठिनाई नहीं आती। केवल मात्र अभ्यास की कमी रहती है।

जितना कान को काम में लोगे उतने अनुपात में भगवान के चरण में पहुँच पावोगे। कान ने भवसागर में डाला तथा कान ही भवसागर से पार लगावेगा।

नाम जपने के लिये यह विशेष छूट है कि
शुद्ध, अशुद्ध, प्रातः, सायं, रात्रि, कभी भी,
कहीं भी, रेल में, बस में, नहाकर, बिना नहाये,
हम जप कर सकते हैं कैसे भी करो

हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप व कीर्तन करते रहो।

11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
08-07-2008

परम पूजनीय, भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा आप सब के चरणारविंद में मेरे से अपराध न हो, इसकी चरण-स्पर्श कर के प्रार्थना।

मार्मिक चर्चा

इस गोविंद-आश्रम में ही हरिभजन करने हेतु कुछ कारण विशेष-

चण्डीगढ़ मठ तथा अन्य मठों में अधिक दिन न रहने के कुछ कारण हैं जिनका उल्लेख नीचे विवशता से कर रहा हूं। भक्तगण, क्षमा करना।

1. यहां के निवासी नहीं चाहते कि मैं कहीं और जाकर भजन-साधन करूँ। इससे यहां के निवासी सत्संग से वंचित रह जाते हैं और उनका भजन कमज़ोर पड़ जाता है।

2. धर्मपत्नि का रोगों में ग्रस्त रहना। अतः मेरा इनके पास रहना परमावश्यक हो गया। रात में गिरने का डर। अचानक तबीयत खराब होने का डर।

3. मुझे भी चलने में असुविधा रहती है। गिरने पर हाथ-पैर टूटने का डर रहता है।

4. भक्तों द्वारा मेरी सेवा करना, खतरे से खाली नहीं। सेवा तन से, मन से तथा धनादि से की जाती है। शास्त्रानुसार यह गृहस्थी के लिए वर्जित है। मठ में मुफ्त का खाना-पीना, बिजली-पानी का खर्चा करता रहता हूं। ठाकुर जी मेरे से कुछ लेते नहीं। अतः दुःख होता है। प्रथम तो मैं इस योग्य हूं भी नहीं, जो

सेवा लेता रहूं। केवल मात्र 3 लाख हरिनाम करने पर क्या मैं महात्मा बन गया ? केवल बिडम्बना ही है! दुर्गुणों से भरा मानव क्या पंडित हो गया ? जो भक्तजन मेरे कहे अनुसार एक लाख हरिनाम कर रहे हैं, यह सब मेरे श्रीगुरुदेव ही करा रहे हैं तथा जो पत्र अब तक लिखे जा रहे हैं उनमें केवल मात्र श्रीगुरुदेव का ही हाथ है। गांव का एक तुच्छ मानव क्या ऐसी कलाकृति कर सकेगा ? यह केवल वहम् है।

5. सबसे खतरे की बात तो यह है कि मेरा तो धर्म है कि मैं संन्यासियों के चरणारविंद में साष्टांग दण्डवत् करूँ पर संन्यासीगण का यह धर्म नहीं कि वे एक तुच्छ गृहस्थी में फंसे मानव को झुककर प्रणाम करें। मेरा अन्तःकरण कांप जाता है। अतः कभी–कभी तो मैं टाल–मटोल कर जाता हूं परन्तु सब करते हैं, अतः करना पड़ जाता है। अकेले में करना और बात है।

6. मैं दस–पन्द्रह दिन के लिए ही आ सकूंगा। बाद में फोन द्वारा भी मेरी उपस्थिति रह सकती है तथा मेरे गुरुदेव जी के पत्रों द्वारा भी मेरी हाज़री होती रहेगी। मेरे गुरुदेव जी के आदेश का पालन भी काफी हो चुका है। मुझे डर है कि 10–15 दिन बाद भी भक्तगण आने नहीं देंगे, फिर मैं कैसे ज़बरदस्ती कर सकूंगा।

7. पत्र फिर भी मेरे से श्रीगुरुदेव लिखाते रहेंगे। जो पत्र होंगे, वे शीघ्र भगवत्–प्राप्ति अथवा पंचम पुरुषार्थ–प्रेमावस्था कैसे प्राप्त हो इसी से सम्बन्धित होंगे। यह पत्र सबको मिलना चाहिए ताकि भक्त–गणों के चरणों में मैं अपराधी न बन सकूं।

पत्र का सार यही है कि जो ठाकुर (गुरु) जी की मर्ज़ी है उसको पलटने में किसकी सामर्थ्य है ?

होई है सोई जो राम रचि राखा।
क्यों करे तर्क बढ़ावहि साखा।।

अधिक लिखना घोर दुःख का कारण बन रहा है। अतः भक्तगण मुझे क्षमा करें।

12

एकादशी

14–07–2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव श्री भक्ति सर्वस्व निर्श्किचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन–स्तर बढ़ते रहने की हाथ जोड़ कर प्रार्थना।

मन की एकाग्रता बिना कुछ भी संभव नहीं

मन की एकाग्रता के बिना कोई भी भौतिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धि स्वप्न में भी नहीं हो सकती। मन ही प्राणी का शत्रु व मन ही मित्र है। मन कहता है कि यदि मुझे बेकार रखा तो मैं तुझे बर्बाद करके छोडूंगा। कुरान–शरीफ ने इसे शैतान बोला है। धर्मशास्त्र ने इसे भूत बोला है। अतः इसे काम पर लगाए रखना चाहिए वरना यह खा जायेगा। मन ही इन्द्रियों को चलाने वाला है। मन ही शुभमार्ग पर ले जाता है। मन ही अशुभ मार्ग पर ले जाता है। **मन के कहे न चालिए, जो चाहे कल्याण।** मन ही भगवान से मिला देगा तथा मन ही दुःख सागर में डुबो देगा। कोई भी साधक मन को बस में कर सकता है यदि इसे लोभ बन जाये, भय बन जाये, बदनामी नज़र आ जाये।

निम्नलिखित उदाहरण मेरे श्रीगुरुदेव लिखा रहे हैं जिनको हृदयंगम करने पर मन वश में हो सकता हैः–

परीक्षार्थी, 3 घंटे मन को एकाग्र करता है। बैंक का कैशियर 4–5 घंटे मन लगाता है। लैक्चरार यदि मन से न पढ़ावे तो विद्यार्थी धज्जियां उड़ा दें। नेता यदि उचित भाषण न दें तो प्रजा भड़क जाये। सन्तगण यदि शास्त्रसम्मत प्रवचन न करें तो कोई भी श्रोता प्रवचन में उपस्थित नहीं होगा। यज्ञ में यदि शुद्ध मंत्र बोलकर आहुति न देवें तो यजमान का नाश हो जायेगा। वाहन चालक का

मन पास में न हो तो दुर्घटना घट जाये। मरते समय यदि भगवत्–चरण में मन न हो तो दुर्गति बन जाये। हलवाई का मन न हो तो सारा किया कराया मिष्ठान–भोजन, धूल में मिल जाये। नमक थोड़ा अधिक हो जाये तो सब भोजन बेकार–ऐसे अनंत उदाहरण हैं। मन के बिना भौतिक मार्ग सब कंटीला बन जाये। इसी प्रकार से आध्यात्मिक उदाहरण हैं। वहां भी मन को रोकना परमावश्यक है वरना अनंत जन्म लेने पर भी भगवत्–प्राप्ति नहीं होगी। मानुष जन्म बारम्बार नहीं मिलता। मिलता है, तो बेकार चला जाता है।

जिस साधक का मन अपने जीवन में रुका है, उसका ही अन्त समय में, मरते समय भी रुकेगा वरना कदापि नहीं। भीष्म पितामह का मन मरते समय कृष्ण–चरण में रुक गया था अजामिल का अपने पुत्र के बहाने ''नारयण'' नाम उच्चारण करने पर रुक गया था। मन तब ही रुकेगा जब किसी चर्चा को कान सुनेगा। यदि कान से नहीं सुना तो मन सो जावेगा। इधर–उधर भटक जायेगा। किसी भी चर्चा को कान से सुनना बहुत ही ज़रूरी है वरना चर्चा समझ में आयेगी ही नहीं। इसी प्रकार सन्त का प्रवचन कान नहीं सुनेगा तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। मन साथ में होगा तब ही कान सुन सकेगा। मन साथ में नहीं होगा तो कान सुनेगा ही नहीं।

इसी प्रकार से हरिनाम का जीभ से उच्चारण करना होगा तब ही कान सुनेगा। जब उच्चारण बन्द हो जायेगा तो मन भटक जायेगा या सो जायेगा। इसी कारण संकीर्तन व कीर्तन का श्रीगौरहरि ने आविष्कार किया है। इतना ज़रूर है कि उच्चारण करने पर थकान हो जाती है परन्तु अभ्यास होने पर रसानुभूति होने लगेगी तो थकान महसूस नहीं होगी। ध्रुव ने उच्चारण से भगवान को पुकारा था तो छः माह में भगवान को प्रकट होना पड़ा। यदि साधक इसी प्रकार छः माह तक हरिनाम (1 से 3 लाख) उच्चारणपूर्वक करे तो भगवत–दर्शन शत्–प्रतिशत् होगा ही। किसी को एक लाख में ही हो सकता है लेकिन सन्त अपराध न हो। अपराध

तन–मन–वचन से होता रहता है। ध्रुवजी ने तो एकान्त में भजन किया था तो अपराध से बच गये लेकिन अपराध होने पर भी अगला जन्म ऐसी जगह पर होगा जहां अपराध का डर नहीं रहेगा। रसानुभूति होने पर मन व तन थकता नहीं है।

यदि मन को एकाग्र कर नाम सुना नहीं तो बहुत बड़ी दुर्घटना घट जायेगी जिसका कोई पारावार नहीं। मन पर दुनियाँ कायम है। मन बिगड़ा नहीं कि बम डला एवं दुनियाँ समाप्त। सब मन का खेल–तमाशा है। दुनियाँ दुर्दशा के कारागार पर है, कभी भी नष्ट हो सकती है क्योंकि हर ठौर पर खतरनाक बम छूटने को तैयार है। पाप बढ़ने की कोई सीमा नहीं। भगवान ही किसी को प्रेरणा कर बम छुड़ा देंगे अथवा समुद्र मर्यादा छोड़ देंगे या पृथ्वी हिलाकर भूकम्प करवा देंगे। सुना भी है कि 13 दिसम्बर सन् 2012 को कोई ऐसा खतरनाक विपलव होगा जो पहले कभी नहीं हुआ, जिसमें दुनियाँ का प्राणी बहुत कम बच पायेगा।

अतः हरिनाम की शरण में जो रहेगा उसका बाल भी बांका नहीं होगा। अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र, क्या परीक्षित का बाल भी बांका कर सका?

जाको राखे साईयां मार सके ना कोय।

अखबार में एक खबर थी कि एक 4–5 साल का बच्चा 16 इंच की बोरिंग में चला गया। हाहाकार मच गया। सरकार को मालूम हुआ तो दूर से सुरंग बनाकर बच्चे के नज़दीक पहुंचे। 5 दिन बाद बच्चा ज़िन्दा निकला। उसको किसने भोजन दिया? किसने पानी पिलाया? कैसे सांस आया? जो सैंकड़ों फीट नीचे पहुंच गया था।

अतः मेरी बात पर विश्वास कर हरिनाम की शरण हो जाओ। जैसा तरीका मैंने बताया उसी तरीके से नाम–जप करो। सब आनन्द का मार्ग खुल जायेगा। अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में केवल मात्र मन का खेल तमाशा है। अतः मन को मित्र बना लो,

इसी में सबसे बड़ी भलाई है वरना पछताना पड़ेगा। कोई काम नहीं आयेगा।

नोटः–जब 5 करोड़ हरिनाम मन सहित, कान से सुनकर उच्चारणपूर्वक पूरा हो जायेगा तो इसके बाद स्मरण में जो उच्चारणपूर्वक नहीं होता है स्वतः ही अभ्यास होने की वजह से मन का टिकाव होने लग जाता है। इसका कारण है मन में आनन्दानुभूति होने लग जाती है। जब मन को किसी ठौर पर आनन्द आने लग जाता है तब वहां मन स्वतः ही टिक जाता है, ऐसा मन का स्वभाव ही है।

मन ही तो जन्म–मरण करवाता रहता है। दुःख सागर में डुबोता रहता है। जिसने मन को समझा लिया तथा वश में कर लिया उसने संसार को वश में कर लिया। पहले स्वयं को वश में करो, तब ही संसार वश में होगा। ब्रह्मचर्य–पालन से मन शीघ्र वश में हो जाता है। नैष्ठिक न सही, संयम तो करो। जिस प्रकार घी का घड़ा सुई के समान छेद होने से खाली हो जाता है। इसी प्रकार संयम न रहने से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। मन कमज़ोर पड़ जाता है। मन कमज़ोर होने से सारा खेल ही बिगड़ जाता है।

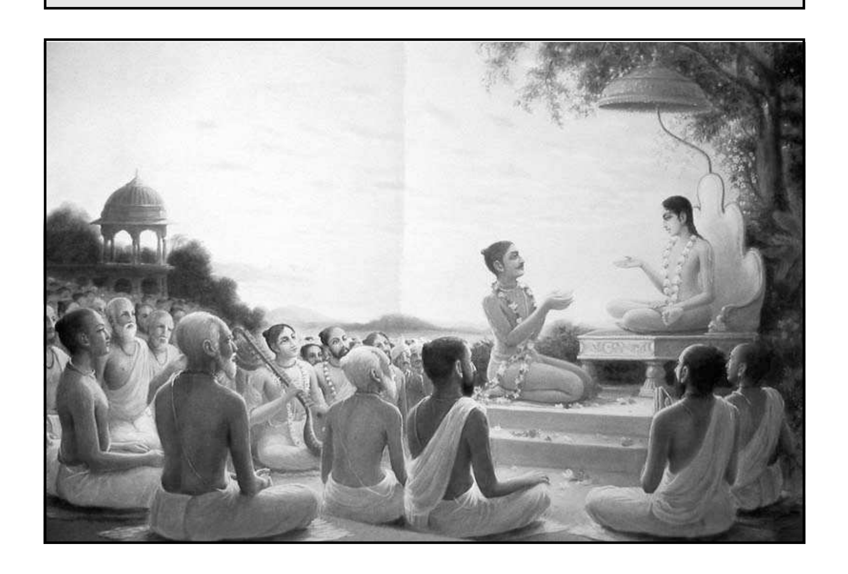
धार्मिक कवियों ने मन को वश में करने के अनंत पद्य रचे हैं क्योंकि मन ही शरीर का राजा है। जब राजा राज़ी, तो सब राज़ी। राजा महाराजा वृद्धावस्था आने पर शीघ्र राजपाट छोड़कर, भजन हेतु जंगल में चले जाते थे। मन बस में नहीं होता तो कैसे जा सकते थे ?

यह कलियुग का समय चल रहा है। इसमें इन्सान में दया नाम की कोई छाया भी नहीं रही, न कोई सौहार्द का निशान रहा। मामूली स्वार्थ पर इन्सान को समाप्त कर दिया जाता है। निर्दोषों की हत्या करना तो एक मामूली बात हो गई। इन्सान ने किसी जीव को नहीं छोड़ा। सबको भोजन बनाकर खा रहा है। न्याय कहीं भी नहीं है, रक्षक कोई नहीं है। पैसे के पीछे सारा अन्याय हो रहा

है। सच्चे का कोई साथी नहीं है अर्थात् सभी मर्यादाएं समाप्त हो चुकी हैं। सब ठौर अन्धेरा ही अन्धेरा हो रहा है। सब जीवों का अन्त हो गया।

इन्सान का यह सब कौतुक भगवान देख रहे हैं। समय आ रहा है। सब ठीक हो जायेगा। 500–550 साल में समय बदलता रहता है। सतयुग की छाया बरतती रहती है। कुछ महापुरुषों का प्राकट्य होता है, जो होने वाला है। सन् 2013 से बदलाव होने वाला है। अतः भजन में लगना उत्तम होगा। सब चीज़ों की बहुतायत होगी। पिछला समय फिर आने वाला है। इन्तज़ार करना होगा। किसी चीज़ की कमी नहीं रहेगी। हर इन्सान पैसे के पीछे दौड़ रहा है। यह दौड़ समाप्त हो जायेगी। चिंता मत करो, सब ठीक हो जायेगा। ऐसा मैंने सुन रखा है। मैं नहीं बता रहा हूँ।

जो व्यक्ति तर्क को जलाञ्जलि देकर केवल साधु और शास्त्रों का आश्रय ग्रहण करता है, वही अतिशीघ्र श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा को प्राप्त कर सकता है।



13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मन को अन्तःकरण में रोकने के विविध, सरलतम, सुगम उपाय–

1. कोई भी वाक्य कान से सुने बिना हृदयगम्य नहीं हो सकता अर्थात् हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है तब ही हृदयगम्य होगा।

2. जिस वाक्य व वस्तु को कान से सुना है वह किस शक्ल का है, उसे हृदय–दर्पण में दर्शन करो। हरिनाम रूपी कृष्ण को स्वयं के हृदय–दर्पण में दर्शन करो। मन रुक जायेगा।

3. उस स्थान का चुनाव करो। वह शक्ल कहां पर है अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण या श्रीगौरहरि का धाम जहां पर है। उस ठौर पर हरिनाम जपते हुए मानसिक रूप से जावो। मन रुक जायेगा।

4. वृन्दावन तथा नवद्वीप में अनेक रमणीय स्थान हैं–जैसे गोवर्धन, यमुना, वंशीवट, गह्वरवन, कालीदह, वृन्दावन की पंचकोसी परिक्रमा, राधाकुण्ड, श्यामकुंड़, कुसुम सरोवर, नारदकुंडादि, गौर जन्म–स्थान, गंगा–किनारा, नृसिंह पल्ली, माधाई घाटादि, वहां जाकर हरिनाम करते रहो, मन रुकेगा।

5. किसी भी मंदिर में दर्शनार्थ जावें, राधा गोविंद, राधा दामोदर, बांके बिहारी, वहां दर्शन करें। परिक्रमा लगावें, तुलसी चरणामृत पान करें। सन्तों के दर्शन करें लेकिन हरिनाम का क्रम न टूटने पाये, मन रुकेगा।

6. अनंत गुरुवर्ग हैं, किसी के भी चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाते रहो। श्रीगुरुदेव से आरम्भ करो। नारदजी सनकादिक तक स्मरण करते हुए हरिनाम करते रहो।

7. भगवत–पार्षदों के चरण में जाकर, जैसे यशोदा मैया, शची मैया, देवहूति मैया, अद्वैताचार्य, आदि रो–रो कर प्रार्थना करो कि मुझे माया–मुक्त करो तथा विरहाग्नि जला दो, प्रेमाभक्ति प्रदान करो।

8. भगवत–चरणों में बैठ कर हरिनाम करो जैसे–राम, कृष्ण, कपिल, नृसिंहदेव आदि।

9. भगवत लीलाएं अनंत हैं। उनका हरिनाम करते हुए ध्यान करना चाहिए, जैसे–कृष्ण की बाल लीलाएं, राम की बाल लीलाएं, समुद्र–मंथन, ब्रह्माजी का मोह, ग्वाल–बछड़े चुरा लेना–यह लम्बी लीला है इसमें कई मालाएं जपी जा सकती हैं। श्रीराम के वनवास की अनेक लीलाएं हैं, उनका ध्यान करके जप करते रहो।

10. मन भटकने पर स्वयं पर क्रोध करना चाहिए। पश्चाताप में जलना चाहिए कि सारी उम्र व्यर्थ चली गई, रही–सही भी जा रही है। यह भाव तब उदय होगा जब भगवान को पाने की सच्ची भूख होगी। रुटीन तो अब तक चल ही रहा है। मन को बोलो–''यदि अब भी नहीं समझा तो तेरा भोजन, पानी, सोना आदि बन्द कर दिया जायेगा। 3 बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठकर भजन करना, वरना दंड मिलेगा।"

यदि इस प्रकार से सच्चे हृदय से मन को समझावोगे तो अवश्य भजन–स्तर बढ़ जायेगा। मन कमज़ोर इस वजह से रहता है कि संसार का काम मुख्य समझा जाता है एवं भगवत–भजन को गौण रखा जाता है। अतः भजन में उन्नति नहीं हो पाती। शिकायत यह होती रहती है कि मेरा भजन पहले से गिरता जा रहा है, थोड़ी कृपा तो करो।

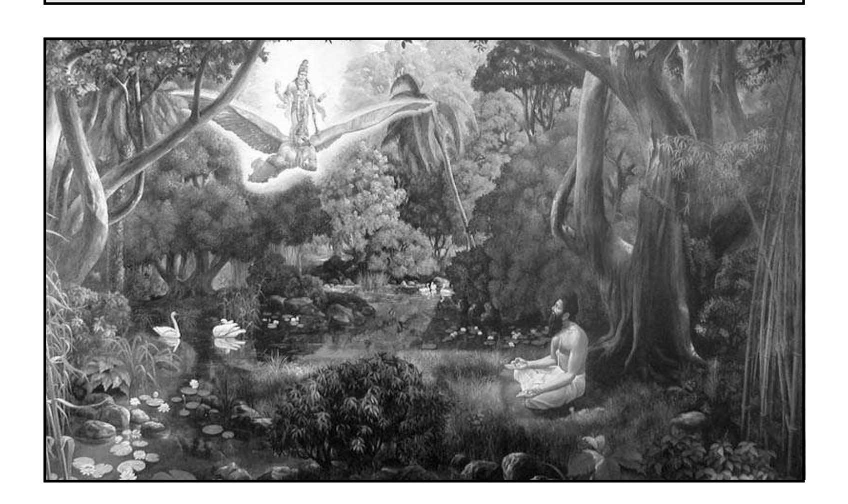
कृपा तो प्रथम में स्वयं की होनी चाहिए। बाहर से कृपा मांगना अवहेलनापूर्वक ही है। सरल, सुगम मन को रोकने के तरीके बता दिये फिर भी भजन नहीं हो रहा है। संसार तो झंझटों का घर है। इन आफतों में जो भजन निरन्तर करता रहता है,

उसकी आफतें भगवान टालते रहते हैं। यह शत्–प्रतिशत सही है जैसा कि भक्तों के जीवन में दृष्टिगोचर होता रहता है।

साधक स्वयं में तो कमी ढूंढता नहीं है। बहुत बड़ी शर्म की बात है। स्वयं तो कुछ करे नहीं, अन्य से सहायता मांगे। बिल्कुल बेसिर–पैर की बात है। गहरा विचार कर देखो, किसकी कमी है ? कृपा करने वाले की या स्वयं की। कम सोवो, कम खावो, सुख–सुविधाओं का त्याग करो, आना–जाना कम करो, कम मिलना–भेंटना करो। यही तप है, भजन अवश्य रसमय बनेगा। यदि इतना कन्ट्रोल नहीं किया तो स्वप्न में भी भजन नहीं होगा।

रात होगी तो दिन नहीं होगा। दोनों एक ठौर नहीं मिल सकते। इसी प्रकार या तो भजन (तप) कर लो या आराम कर लो, एक ही की उपलब्धि हो सकेगा। समय जा रहा है, चेत करो। सोवोगे तो खोवोगे। बहुत गया थोड़ा रहा, अब भी समय है। कलियुग में हरिनाम को अपनाना ही सच्ची शरणागति है।

जिस जीव का भगवान् के साथ जैसा नित्य सिद्ध संबंध है, भजन के प्रभाव से वही भाव उसके हृदय में स्फुरित होता है



14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20-07-08

परम-स्नेही प्रेमास्पद-भक्तगणों तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा सभी को श्रद्धा-उपलब्धि की प्रार्थना-

श्रीगुरुदेव आदेश से जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित-

श्रीगुरुदेव आदेश से अनिरुद्ध दास शिष्य श्रीश्री108 श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज जी, इस नराधम को जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित कर रहे हैं ताकि सम्पर्क में आने वालों का उद्धार हो सके।

जो इस जीवन-चरित्र में सन्देह करेगा उसकी भक्ति नष्ट होकर नास्तिकवाद में बदल सकती है। जिसकी सुकृति अधिक नहीं होगी उसका भक्ति रस सूख जायेगा या कम हो जायेगा।

मेरे श्रीगुरुदेव ने स्वप्न-आदेश जून 2000 में दिया था कि तुम स्वयं सन् 2004 से प्रतिदिन 3 लाख हरिनाम करते हो, अतः अन्य से भी एक लाख हरिनाम करावो। इसमें पीछे से मेरी सहायता रहेगी। देखना जब तुम किसी को एक लाख हरिनाम के लिए बोलोगे वह करने लग जायेगा क्योंकि तुम्हारे 3 लाख हरिनाम का प्रभाव अन्य पर पड़ेगा। अपने जीवन में जो भी घटनाएं हुईं तथा जो हो रही हैं, बिल्कुल खोलकर सभी को बता देना, छुपाने में नुकसान होगा। तुम ऐसा मत समझना कि बताने से भजन-स्तर तुम्हारा गिर जायेगा, उल्टा अधिक बढ़ता रहेगा। गौरहरि ने भी कुछ छुपा कर नहीं रखा, सबको बता दिया था।

अतः सबसे मेरी हाथ जोड़ व चरण छूकर प्रार्थना है। कोई भी उक्त लेख में सन्देह नहीं करे वरना भजन कम होने पर मुझे गहरा दुःख महसूस हो जायेगा। आपका नुकसान मेरा नुकसान ही है।

मैं समझता हूँ कि शक होना एक साधारण सी बात ही है क्योंकि किसी ने भी अपने गुण वाला चरित्र अभी तक नहीं लिखा। किसी महापुरुष ने ही उसका आचरण देख दूसरों को बता दिया है कि अमुक भक्त सिद्ध, अलौकिक व महान पुरुष है लेकिन मुझे तो लिखना पड़ रहा है ताकि श्रद्धा होने से भक्त शीघ्र उच्च–स्थिति उपलब्ध कर सकें।

प्रत्यक्ष में हो भी रहा है, किसकी शक्ति पीछे आ रही है? नित्य से रात में 2 बजे उठकर उच्चारणपूर्वक तीन लाख हरिनाम कर रहा हूँ एवं जिसको एक लाख नाम करने को कह देता हूँ, वही करने भी लग जाता है। श्रीगुरुदेव–प्रेरणा से हरिनाम पर ही लगभग 200 पत्र लिखे जा चुके हैं। ये पत्र एक साधारण व्यक्ति नहीं लिख सकता, वो भी एक विषय पर। हरिनाम जपने का क्या तरीका है? मन को कैसे हरिनाम में लगाया जाये? हरिनाम क्यों प्रभाव नहीं करता, हरिनाम स्मरण से क्या रिज़ल्ट निकलेगा? आदि रसमयी चर्चाएं लिखी गई हैं। किसने लिखवाईं हैं? क्या मैंने लिखी हैं? बिल्कुल बे–सिर–पैर की चर्चा होगी, मूर्खता की बातें होंगी।

भागवत में लिखा है कि जिसके हाथ–पैर में भगवत–आयुधों का एक भी चिह्न होगा, वह भगवान का जन होता है (देखें पृथु महाराज का चरित्र), उसे भगवान ने जीवों का उद्धार करने को भेजा है। भगवान उसमें शक्ति–संचार कर दूसरों में श्रद्धा करवा देते हैं। श्रद्धा होने से उसका आदेश सुकृतिशाली अवलम्बन करता है तथा शीघ्र भक्ति लाभ प्राप्त करता है।

इस नराधम के हाथ में शंख, चक्र, वैजयन्तीमाला तथा मच्छ आकृति का चिह्न है।

वैजन्ती माला तथा मच्छ आकृति तो दोनों हाथों में है, जिसको देखने की इच्छा हो, देख सकते हो। इसके देखने पर अटूट श्रद्धा अन्तःकरण में जम जायेगी तो भक्ति–स्तर शीघ्र तेज़ी से बढ़ जायगा। जिनको भगवान भूतल पर भेजते हैं उनको पहचानना बहुत ही टेढ़ी खीर है। कोई महापुरुष ही इनको पहचान सकता है। प्रमुख चर्चा के अतिरिक्त भी बहुत बार अलौकिक भगवत–कृपा का अनुभव हुआ, जो पत्र में लिखना असम्भव है। जैसे–अमरेश को श्रीगुरुदेव ने खिलाया तथा साक्षात् हनुमान दर्शन ढाई साल की उम्र में अमरेश को हुआ, मारण–अभिचार से हनुमान जी ने बचाया, आदि कृपाएं उपलब्ध हुईं।

यशोदा को मालूम नहीं था कि मैं भगवान की मां हूँ। मेरा लाला भगवान है। सदैव लाला की चिंता करती रहती थीं, यहां तक कि लाला की पिटाई भी करती रहती थीं। अर्जुन नहीं जान पाया कि मैं नर–नारायण का जोड़ा हूँ। कृष्ण ने बताया, तब जान पाया परन्तु फिर माया का पर्दा पड़ता रहता है। मैं भी स्वयं नहीं जान पाया कि मैं भगवत् का भेजा जन हूँ। इन लक्षणों से कुछ जान पाया हूँ। बजरंग बली ने मेरी पोल खोली है। उसने बोला था जब उम्र 70 साल हो जावे तब सब चरित्र सबको बता देना तब बहुतों का उद्धार आप द्वारा होगा। अब तो मैं 78 साल का हो गया, इतना जल्दी बताने का मन नहीं किया। श्रीगुरुदेव ने बताने को प्रेरित किया, तब बताना आरम्भ किया।

महत् पुरुष को उसके जीवन–चरित्र, आचरण से भी जाना व पहचाना जा सकता है। वह सबका हित करता रहता है। अहैतुकी दया का खज़ाना होता है। मान–प्रतिष्ठा उसे ज़हर समान लगती है। सदा एकान्त पसन्द करता है। सदैव प्रसन्नवदन रहता है। अपने से निम्न श्रेणी वालों को सम्मान देते हुए मन ही मन नमन करता रहता है। उसे नमन करता है तो शर्माता है। सदैव निर्लोभी होता है। सेवा लेना पसन्द नहीं करता। नमन करने वालों से दूर रहना पसन्द करता है। शरीर की सजावट की ओर ध्यान नहीं देता।

भजन में कमी होने पर दुःखी हो जाता है, मन ही मन रोता रहता है। अन्य का भजन कम होता सुनता है तो भी दुःखी होकर भगवान से उसके लिए प्रार्थना करता है। प्रार्थना ठाकुर जी उसकी सुनकर पूरी करते रहते हैं लेकिन साधक को महसूस नहीं होता। इसका कारण है श्रद्धा की कमी।

गौरहरि के सभी पार्षद श्रीकृष्ण के सखा व सखी थे लेकिन उन्हें स्वयं को मालूम नहीं था कि हम पीछे कृष्ण के क्या थे। तब गौरहरि ही उनको बताते थे कि पिछले जन्म में तुम कृष्ण के अमुक सखा या सखी थे। यह माया का आवरण रहना आवश्यक रहता है वरना लीला में रसानुभूति नहीं होती।

कृष्ण रात–दिन बृजवासियों के साथ रहते थे लेकिन बहुत बृजवासी उनको एक साधारण गोप–बालक जानते थे जबकि कृष्ण ने बहुत सी ऐश्वर्यमयी लीलाएं करके दिखाईं थीं जैसे–नागनाथन, गोवर्धन–धारण, पूतनावध आदि, परन्तु खास वृजवासी, नन्द–यशोदा भी, उसको अपना बालक ही समझते रहे। जिसको स्वयं भगवान अपने को जनावें, वही उनको जान सकता है। योग माया को संग लेकर भगवान लीला रचना करते रहते हैं। यदि ऐसा न करें तो लीलाओं में आनन्द नहीं आवे। पांडव उन्हें भगवान जाने। कौरव एक साधारण ग्वाला जान पाए तभी तो दुर्योधन ने कृष्ण को न मांगा और उनकी सेना मांगी। जब सन्धि कराने कृष्ण गए तो कौरवों ने उनको फटकार सुना दी। कितना अज्ञान का पर्दा पड़ा था।

भगवान जिस जीव पर कृपा करते हैं उसी जीव को ज्ञान का मंत्र प्रदान करते हैं। अपनी शक्ति से कोई भी अलौकिक शक्ति को जान नहीं सकता। श्रीगंगा जी के किनारे रहने वाले गंगा जी को एक साधारण नदी ही समझते हैं जिन पर भगवत् कृपा है वही साक्षात् गंगाजी समझ कर नित्य गोता लगाते रहते हैं। सुकृति बिना कोई भी किसी को जान व मान नहीं सकता।

प्रमुख चर्चा–जो पूरे जीवन में घटित हुई–

1. सर्वोत्तम तिथि 23 नवम्बर 1930 की रात को 10:15 बजे रास पूर्णिमा को मेरा जन्म हुआ है। सन् 1952 में जयपुर में हरिनाम–दीक्षा हुई व सन् 1954 में कोटा में 6 माह में वाक्–सिद्धि प्राप्त हुई, 10 साल तक लुटाता रहा। चीफ इन्जीनियर चेला बन गया।

2. 9 साल की उम्र में, मैं जयपुर में श्री राधा गोविन्द देव जी के दर्शन करने पर विरहांकुर हूँ।

3. 21 साल की उम्र में गुरु की तलाश में जयपुर से वृन्दावन रवाना हुआ।

4. 22 साल की उम्र में पूर्ण दीक्षा श्रीगुरु देव ने मठ से सभी सामग्री देकर दी क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। सभी मेरे विरोधी थे। इनको साधु होने का डर था। क्योंकि मेरी शादी आठवी कक्षा में हो चुकी थी। पत्नी बी. ए. तक पीहर में रही।

5. 23 साल की उम्र में प्रेत–उद्धार श्रीगुरुदेव ने किया। बड़े–बड़े हार गये थे, मौलवी तक। 36 साल की उम्र में एक लाख हरिनाम करने का आदेश प्राप्त हुआ।

6. छदम् रूप में 40 साल की उम्र में हनुमान दर्शन–बीकानेर में–हाथ देखकर भविष्य भी बताया।

7. 42 साल की उम्र में हनुमान का चित्रपट स्वयं प्रकट हुआ बीकानेर में।

8. 58 साल की उम्र में 2 लाख हरिनाम आरम्भ किया।

9. 73 साल की उम्र में 3 लाख हरिनाम उच्चारणपूर्वक शुरु हुआ।

10. 73 साल की उम्र में एक लाख हरिनाम अन्य से कराने का आदेश तथा सब कुछ छुपावो नहीं सभी कुछ सबको बताओ, मैं तुम्हारे पीछे सब कुछ कर दूंगा।

11. सन् 1988 से पत्र लिखना आरम्भ हुआ व श्री भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी की कृपा प्राप्त हुई।

12. 74 साल की उम्र में तीर्थ महाराज की कृपा से वैराग्य धारण हुआ।

13. आसाम से सदेह (शरीर सहित) छींड में ताऊ जी को गुरुदर्शन लाभ हुआ।

परमावश्यक चर्चा– 'श्री हरिनाम चिन्तामणि' को नाम निष्ठ को ध्यानपूर्वक अवश्य पढ़ना है। इसमें हरिदास जी श्रीगौरहरि को नाम के विषय में सुना रहे हैं। हरिनाम का सार–तत्व पूरा है।

भगवान जो करते हैं, मंगल के लिए ही करते हैं। रघुबीर के हाथ का फिर आपरेशन होगा। ऐसे डाक्टर ने कहा है, जब हाथ का एक्सरे किया गया। उसमें दो हड्डियों के बीच में गैप रह गया जो मांस से जुड़ने वाला था पर जुड़ा नहीं। अतः उसको किसी जगह शरीर से हड्डी निकाल कर जोड़ना पड़ेगा।

मुझे अत्यन्त दुःख है कि मैं आप भक्तों का दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप करने में कामयाब न हो सका।

मुझसे ही कोई आपके चरणों में अपराध हो गया है अतः ठाकुर जी ने वहां न आने की सज़ा दी है। सजा देने से मैं स्वच्छ बन जाऊँगा। फिर आने का अवसर मिल जायेगा। आप सब दुःखी न हों, जो होता है मंगल के हेतु ही होता है।

जैसा मेरे आखिरी पत्रों में श्रीगुरुदेव ने लिखवाया है, उसी अनुसार अपना हरिनाम–स्मरण चलाते रहो। मैं अब वृद्धावस्था में चल रहा हूँ। यह मेरी असमर्थता है, अतः आपके चरणों से वंचित रहना पड़ेगा।

फोन द्वारा ही मिलना हो सकेगा। श्री रमेश जी भी न आने से दुःखी हो जायेंगे। मैं क्षमा चाहता हूँ। इस समय मेरा वहां आना

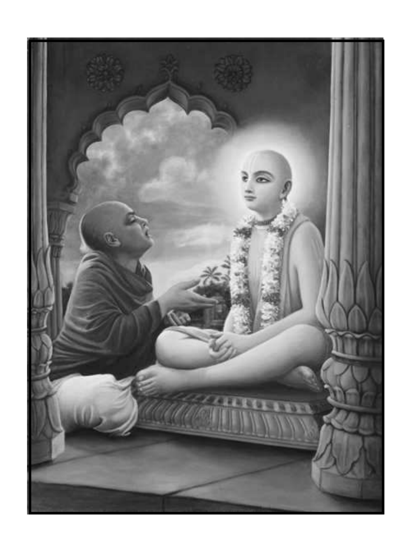
समाज की ओर से भी अनुचित बात होगी। सभी बोलेंगे कि पुत्र का आपरेशन था, बूढ़ा चला गया। यहां पर फिर कोई नहीं हैं। घर वाले भी बिल्कुल भेजना ठीक नहीं समझते।

मेरा अपराध न लेवें तथा खुशी खुशी यहीं रहने की अनुमति देवें।

पत्र सभी को पढ़ा सकते हैं, जब एकादशी का नियम का दिन हो, ताकि सभी मेरी मज़बूरी समझें व मेरा अपराध न बनें।

हर मुसीबत में भगवत–कृपा ही समझनी चाहिए। मैला कपड़ा है तो साबुन से धोकर पहना जाता है इसी प्रकार आत्मा का यह तन कपड़ा है, इसे आपरेशन बिमारी से धोना पड़ता है। फिर नया–तन का कपड़ा भगवान पहनने को दिया करते हैं। दुःख में दुःखी सुख में सुखी होना ही पूर्ण–शरणागति का लक्षण है। बल्कि खुशी होनी चाहिये कि भगवान मुझे अपनी गोद में शीघ्र लेना चाहते हैं। भक्त के लिए जग दुःख सागर नहीं है। सुख–सागर ही है।

इतना विश्वास होना टेढ़ी खीर है लेकिन सिद्ध महात्मा यह भी करा देता है जब गहरा संग मिल जाता है। मन का रंग सफेद होता है। अतः चाहे जैसा रंग शीघ्र चढ़ जाता है।



Clear करके समझाना

भगवान, भक्त को रोगादि व अन्य कष्ट देकर उसके पिछले कुंसंस्कारों की सफाई करते हैं ताकि इसी जन्म में भक्त मेरी गोद में आ सके। इस बात को साधारण भक्त समझ नहीं सकता। भक्त के अन्तःकरण में तब ही यह बात बैठेगी जब कोई सिद्ध महान पुरुष उसको इस बात में ओत–प्रोत करेगा। वरना वह इस चर्चा को एक मामूली बात समझकर हृदय से बाहर निकाल देगा एवं दुःखी होता रहेगा।

श्री जौहर जी इस बात के साक्षी हैं। जब ठाकुर जी से प्रार्थना की गई तब ठाकुर जी ने ही इसे सफाकर श्री जौहर जी को समझवाई, तब श्री जौहर जी इस बात से सहमत हो सके।

अब संसार का उदाहरण देकर उक्त–चर्चा को समझाना पड़ेगा।

जैसे कपड़ा पहनने से गन्दा हो गया, कुर्ता या धोती वगैरह, तो साबुन रूपी रोग से इस कपड़े को रंगा या सादा जाता है, फिर इसे मुक्कों से पीटा जाता है अर्थात् दुःख दिया जाता है, फिर डाक्टर रूपी दवा के पानी से इसे धोया जाता है, फिर धूप रूपी परहेज़ से इसे सुखाया जाता है, तब इसे तन में पहना जाता है।

इसी प्रकार से भगवान, भक्त को दुःख रूपी अग्नि से निखार कर स्वच्छ तन में बदलते रहते हैं। जब स्वच्छता रूपी सुसंस्कारों में ओत–प्रोत हो जाता है तब भगवान गोदी में लेते हैं जिस प्रकार शिशु गन्दा हो जाता है तब मां इसे साफ कर गोद में लेती है। जब तक साफ नहीं करती, गोद में लेती ही नहीं, चाहे शिशु कितना ही चिल्लाता रहे।

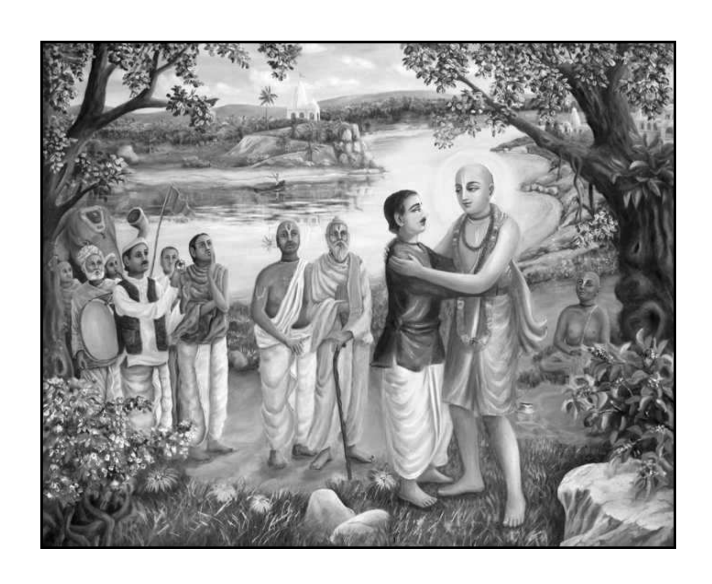
इसी प्रकार भक्त कितना ही दुःख में रोता रहे जब तक कुसंस्कार पूर्ण कष्ट द्वारा नहीं जल जाते तब तक भगवान उसकी सुनते ही नहीं। लेकिन यह विश्वास साधारण भक्त को होता ही नहीं है

क्योंकि उसको कोई सिद्ध पुरुष मिला ही नहीं है। सिद्ध पुरुष भी भगवत्–कृपा बिना मिलना टेढ़ी खीर है।

हरिनाम ही भक्त को भगवान से मिला सकता है। अपनी शक्ति से कोई भी कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रख सकता।

नारद को भगवान जब शीघ्र लेना चाहे तब मां को सर्प से डसवा कर नारद का बोझ हल्का कर दिया। साधुओं की जूठन से नारद जी के कुसंस्कार जल कर नष्ट हो गये थे। साधु की जूठन में अकथनीय कुसंस्कार जलाने की शक्ति रहती है क्योंकि भगवान साधु के मुख से खाते हैं तो वह भगवान की साक्षात् जूठन नारद को मिल गई थी। अतः जो अड़चन मां की थी, भगवान ने हटा दी। वैसे भगवान की लीला शिव, ब्रह्मा भी नहीं समझ सकते तो साधारण मानव की तो बात ही क्या है। पत्र सबको एकादशी पर पढ़ावें।

श्री गौरहरि और श्रीकृष्ण में भेद देखने वाले दुष्ट जीवों को कभी भी श्रीकृष्ण सम्बन्ध की प्राप्ति नहीं होती है



15

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

एकादशी

29-07-2008

प्रेमास्पद भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा नाम में श्रद्धा होने की प्रार्थना।

सतर्कता से भजन कब होगा?

1. जो साधक हरिनाम का तथा मानव जीवन का महत्व समझ पायेगा, वही निम्न चर्चा पर आरूढ़ हो सकेगा। तब ही सतर्कता से भजन में लगेगा।

2. रात का भोजन आधा करें। इससे कमज़ोरी नहीं होगी तथा शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

3. संसार के काम को महत्व न देकर हरिनाम को अधिक कीमती समझें।

4. प्रातःकाल के समय को स्नान, शौचादि में देकर बाद का समय हरिनाम स्मरण में नियोजित करें। निरन्तर हरिनाम-स्मरण करते रहें।

5. ग्राम्यचर्चा से दूर रहकर हर क्षण हरिनाम का उच्चारण कान से श्रवण सहित करें।

6. मौत को सिर पर मंडराती अनुभव करते रहें। समय को कीमती समझें।

7. मनुष्य की योनि भविष्य में अनंतकोटि युगों के बाद ही मिल सकेगी पर यदि इस योनि का महत्व नहीं समझा तो दण्ड के भागी होंगे। जब भी समय आने पर मानव जन्म मिलेगा तो ऐसा सुअवसर मिलेगा या नहीं। सत्संग का शुभ अवसर जो अभी मिल रहा है, भविष्य में वह सन्देहास्पद है।

8. सुकृति की कमी के कारण मानव जन्म बहुत समय के बाद मिला है, अतः सुकृति का अर्जन करना बहुत मूल्यवान उपलब्धि होगी।

9. वृद्धावस्था आने पर कुछ भी हरिभजन नहीं होगा, अतः चिन्तातुर होकर अभी से समय का सदुपयोग करना श्रेयस्कर होगा।

10. ब्रह्मचर्य पालन का, मन तथा तन पर गहरा प्रभाव रहता है। दोनों बलिष्ठ होने पर भजन में रुचि व उत्साह बना रहता है। पुरुष–स्त्री तथा घी–अग्नि का पास में सम्पर्क होने से महान पुरुष भी पिघल जाते हैं। स्त्रियों से दूर रहो। अतः दृष्टिपात भी न करें।

11. साधुसंग निरन्तर करने से तथा साधु का चिन्तन करने से ही हरिनाम में रुचि तथा प्रोत्साहन मिलता रहता है।

12. किसी भी हरिनामनिष्ठ का संग करके कृपा–प्राप्ति की तीव्र भूख ही हरिनाम में रुचि पैदा कर सकती है वरना जप नीरसता से ही होगा जो सभी साधकों का हो भी रहा है। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए। जिनको श्रीगुरुदेव की शरण हुए बहुत काल व्यतीत हो गया लेकिन हरिनाम में ज़रा सी भी रुचि नहीं हो सकी, उनका हरिनाम भारस्वरूप हो रहा है। स्मरण का तो नामोनिशान ही नहीं है।

13. एकान्त में वास करके ही हरिनाम–स्मरण सुचारु रूप से चल सकता है। एकान्त में संकोच नहीं रहता। मन जैसा चाहे वैसा हो सकता है।

14. सभी साधनों से हरिनाम को मूल्यवान समझ कर ही हरिनाम में रुचि बन सकती है क्योंकि नाम व भगवान एक ही चिन्मय तत्व हैं।

15. हरिनाम परमधन है। अनंत कोटि ब्रह्माण्डों में तथा चारों युगों में हरिनाम ही परम तप स्वरूप है। भवसागर को पार करने

हेतु द्रुत चलने वाली नौका है। मानव जन्म पाकर जो इसमें नहीं बैठता, वह निरा अभागा है।

16. समय पर सोने तथा समय पर जगने वाला ही उक्त साधन का पालन कर सकेगा वरना स्वप्न में भी भगवत-उपलब्धि नहीं हो सकेगी। 5-6 घंटे सोना बहुत आवश्यक होगा वरना आलस्य शत्रु नाश का हेतु होगा।

17. भूतकाल के साधकों की ओर दृष्टिपात करने से उक्त लेखन सामग्री शत्-प्रतिशत् सही उतरकर भजन में उत्तरोत्तर प्रोत्साहन दे सकेगी।

18. दस नामापराध सबसे अधिक खतरानाक हैं। इनसे बचकर ही कुछ बन सकेगा वरना सब व्यर्थ हो जायेगा।

19. अहम् तथा मान-प्रतिष्ठा हृदय में रहने से कुछ भी सद्‌गुण नहीं रह सकेंगे। अतः यह दोनों महान् शत्रु का काम करते है।

20. सद्‌गुणों को अपनाने से हरिनाम में स्वतः ही रुचि होकर प्रेमावस्था उपलब्ध हो जाती है। गरिष्ठ भोजन कामवासना जगाता है। पेट को उतना ही भक्षण दो जितने से जीवन चलता रहे।

जो भी साधक-भक्त उक्त विचारों को हृदयंगम कर सकेगा वह इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष प्राप्त कर समूल दुःखों के नाश का भागीदार बनकर, अनंत आनंदसिंधु में तैरता हुआ सदैव के लिए सुखसागर पा सकेगा।

श्रीहरिनाम करते-करते श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से जब जीव का भाग्य उदय होता है, तभी नाम-सेवा से उसकी भाव-सेवा उदित होती है। भक्ति के अन्य सभी साधनों का फल है-अन्त में नाम में प्रेम प्रदान करना-इसलिये नाम-साधक श्रीहरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता है। श्रीहरिनामनिष्ठ किसी दूसरी साधना को नहीं करता। (श्री हरिनाम चिंतामणि)

16

छींड की ढाणी

22–07–2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम के भजनस्तर में उत्तरोत्तर रुचि होने की बारम्बार प्रार्थना।

आत्मा के शरीर रूपी कपड़े की तथा मानव के शरीर रूपी (तन ढकने के) कपड़े की तुलनात्मक चर्चा–

भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्मा को ढकने हेतु शरीर की रचना की। यह शरीर मच्छर से लेकर हाथी तक भोग भोगने हेतु दिया जाता है। मानव शरीर में मानव जैसा शुभ–अशुभ कर्म करता है, वैसा ही उसे शरीर मिलता है। शुभ–कर्म करने पर उच्च योनियों में शरीर उपलब्ध होता है। तथा अशुभ–कर्म करने पर अधोगति योनियों में शरीर उपलब्ध होता है। इन कर्मों का वाचक ही कुसंस्कार तथा सुसंस्कार है।

भगवान् ने धर्मशास्त्रों में मानव को सुख प्राप्त करने हेतु कर्मों की रचना की है। इन कर्मों के विपरीत चलने पर दुःख भोग करना पड़ता है। कारण–शरीर ही अगले जन्म का हेतु होता है। कारण–शरीर (स्वभाव का शरीर) ही मानव को प्रेरित कर शुभ–अशुभ कर्म में संलग्न करता रहता है। अतः कुसंग से दूर रहकर सत्संग को अपनाना चाहिए।

आत्मा का आवरण अनंतकोटि योनियां हैं। मानव के तन का आवरण अनन्तकोटि कपड़ों से है जो तन को ढकने हेतु आवश्यक है। दोनों जीर्ण–शीर्ण होने पर नया धारण कराना पड़ता है।

मानव का कपड़ा गंदा होने पर इसे साबुन लगाकर पानी से धोया जाता है। इसी प्रकार आत्मा का योनि रूपी कपड़ा गन्दा होने पर इसे दुःख रूपी साबुन से नरक रूपी पानी में धोया जाता है। मानव के कपड़े को साबुन–पानी लगाकर मथा तथा पीटा जाता है, इसी प्रकार आत्मा के योनि रूपी कपड़े को नरक रूपी गन्दगी में डालकर हिंसक कीटाणुओं से नोचवाया व कटवाया जाता है। जिस प्रकार कपड़ा जो मानव तन में पहना जाता है की गन्दगी रूपी मैल को साबुन से पानी में डालकर स्वच्छ किया जाता है, इसके बाद ही तन पर पहना जाता है, उसी प्रकार भगवत् की भक्ति का साबुन लगाकर भक्त अपने सूक्ष्म शरीर को स्वच्छ कर स्वयं को भगवान की गोद में डाल देता है।

भगवान् अपने जन–भक्त को दुःख देकर, रोग देकर, परेशानियां देकर कुसंस्कारों को तप रूपी अग्नि में जलाकर अपनी गोद में लेना चाहते हैं। मैले शिशु को मां तब तक गोद में नहीं लेती जब तक उसको स्वच्छ नहीं बना लेती। बच्चा कितना ही रोवे, चिल्लावे, इसका मां ध्यान ही नहीं देती। फोड़ा होने पर डाक्टर से रोने–चिल्लाने की ओर ध्यान न देकर जबरन पकड़कर फोड़े को चिरवा देती है।

इसी प्रकार भक्त कितना ही रोवे, चिल्लावे, प्रार्थना करे, भगवान ध्यान नहीं देते क्योंकि भक्त को भगवान् शीघ्र अपनी गोद में लेना चाहते हैं। जितना अधिक भक्त पर कष्ट आते हैं उतना अधिक भगवान् का ध्यान अपने भक्त की तरफ रहता है। ताकि वह शीघ्र स्वच्छ हो जावे और मैं इसे गोद में चढ़ा लूँ।

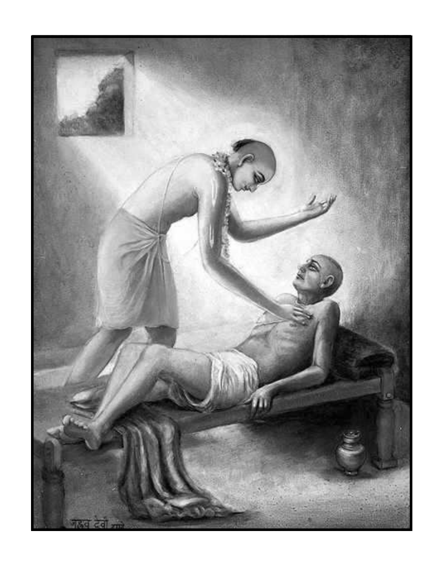
प्रत्यक्ष में देखा भी जाता है कि जो जितना अधिक प्रेमी होगा, उसे भगवान उतना ही अधिक कष्ट में डालते हैं। यही है भगवान् में देखने की कृपा। ऐसा भी देखा जाता है कि ऐसे–ऐसे उच्च श्रेणी के भक्त भी हैं जिनको कुछ होता ही नहीं है। इसका कारण यही है कि वे पिछले जन्म के भ्रष्ट योगी थे। उस जन्म में उन्होंने कष्ट भोग लिए हैं जैसे जड़भरत, तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, आदि। इनको कष्ट भोगना ही नहीं पड़ा। ये पिछले जन्म के भ्रष्ट योगी थे। इस

जन्म में राम सुखदास जी, जिनको गले का कैंसर था लेकिन भक्ति के प्रभाव से असर नहीं किया जबकि डाक्टरों ने प्रवचन करने से रोका था। और भी कई महात्माओं को भी डाक्टरों ने प्रवचन करने से रोका है परन्तु इसकी परवाह महात्माओं को नहीं है। ऐसे–ऐसे अनेक उदाहरण सुनने व देखने को मिलते रहते हैं।

अतः दुःख में सुख माने तब तो सच्ची शरणागति है वरना कच्ची है। दुःख में राज़ी हो कि भगवान कितने दयालु हैं। सोना आंच में जलाने से ही चमकता है। फिर पहनने वाले को भी चमका देता है। तप से ही सुख की आवृति होती है।

नोटः–मैंने 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ बड़े ध्यानपूर्वक पढ़कर देखा तो पाया कि नाम के विषय में मैंने जो भी पत्र लिखे हैं वे सभी बातें इस पुस्तक में मिली हैं क्योंकि श्रीगुरुदेव ही तो मुझसे पत्र लिखवा–लिखवा कर भिजवाते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



17

श्री श्रीगुरु गौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

04-08-2008

परमाराध्यतम, भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उच्चारणपूर्वक हरिनाम होने की बारम्बार प्रार्थना।

चारों युगों में नाम ही केवलमात्र भगवत्-अवतार

नाम के अभाव में अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों का सृजन हो ही नहीं सकता। यदि उक्त ब्रह्माण्डों से हरिनाम हटा दिया जावे तो अज्ञान ही अज्ञान अर्थात् अन्धकार ही अन्धकार सभी ठौर व्याप्त हो जावे तथा नज़र आवे। उक्त ब्रह्माण्डों में सभी चर-अचर नाम-भगवान के सांस से ही प्रकट हुए हैं।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-चारों युगों में सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते रहते हैं। ये सब किनकी प्रेरणा से होते हैं ? केवल मात्र श्रीकृष्ण की प्रेरणा से होते हैं। श्रीकृष्ण ही उक्त तीनों का अवतार धारण कर अलग-अलग नाम से सृजन, पालन तथा संहार करते रहते हैं। हरिनाम के अभाव में सभी चर-अचर निस्तेज हो पड़ें। नाम की शक्ति से ही सभी सजीव बने रहते हैं।

चारों युगों में शिव अवतार धारण कर अपनी संहारणी शक्ति के संग अष्टयाम हरिनाम-स्मरण करते रहते हैं। नाम के अभाव में वह भी निस्सारता को प्राप्त हो जाये।

श्रीनारद जी अपनी वीणा पर हरिनाम की स्वर-लहरी की तानें छेड़कर अबाध गति से जहां चाहें वहीं घुमाई करते रहते हैं। कहीं कोई रुकावट नहीं है। भगवान स्वयं उनसे सृष्टि का हाल पूछते रहते हैं, सब कुछ जानते हुए भी, त्रिकालिक दृष्टि रखते हुए भी।

सनकादिक चारों भाई नाम के प्रताप से सदैव 5 साल के बने रहते हैं। सदा अमरता धारण करते हैं। श्रीगौरकृष्ण स्वयं अपना नाम संख्यापूर्वक रात–दिन माला में जपा करते हैं व सबको नित्य एक लाख नाम करने का आदेश देते रहते हैं। महापापी रत्नाकर (वाल्मीकि) भगवत्–नाम उल्टा जप कर त्रिकालदर्शी हो गया जिसने बाल्मीकि रामायण, श्रीरामावतार होने से हज़ारों साल पहले ही रच दी। श्रीशुकदेव मुनि नाम के प्रताप से अवधूत वेश में फिरते रहते हैं। जड़भरत नाम की मस्ती में कूड़े–कर्कट तथा अपने मल में लिपटे रह कर आनन्द मग्न रहते हैं। शिवजी कभी मरते ही नहीं हैं, नाम ने कालकूट विष को भी अमृत में बदल दिया।

कहां तक कहा जाये ? नाम में न जाने क्या रस है ? क्या आनन्द भरा है ? क्या मस्ती भरी है ? क्या बेफिक्री छिपी है, कोई बता नहीं सकता। जिसने इस नाम–रस का स्वाद चखा है, वही महसूस कर सकता है। बता नहीं सकता। महसूस मन से होता है, मन के पास जीभ नहीं।

श्रीगौरकृष्ण ने कलियुग के जीवों को उद्धार करने हेतु नामसिंधु में डुबो दिया। धर्म–शास्त्रों में अनेक उल्लेख हैं जिनका विस्तृत वर्णन करना असम्भव होगा। इन्हीं दृष्टान्तों को हृदयंगम करने पर मानव अपना जीवन नाम–रससिंधु में डुबोकर सफल बना सकता है।

आगे भविष्य अन्धकारमय है। घोर दुःखसागर में गिर कर असाध्य दुःख भोगना पड़ेगा। अब भी हृदय की आंख खोल कर आगे डग धरो वरना आगे गहरा खड्डा है, गिरना पड़ जायेगा।

जो कुछ ईश्वरीय–प्राप्ति भूतकाल में ऋषि–मुनियों ने की थी केवल नाम शरणागति से की थी। दूसरा कोई भी साधन कहीं भी नहीं है। कुछ काल बाद यहीं पर आकर दुःख भोगना है। त्रिताप पीछे आ रहे हैं। हरिनाम ही बचाएगा।

श्रीहरिनाम के महत्व की उत्कर्षता के शास्त्रीय उदाहरण

श्रीहरिनाम के प्रभाव की शक्ति कोई भी बता नहीं सकता। यदि कोई नाम का प्रभाव देखना चाहे तो–

जाना चहिए गूढ़ गति जेउ । जीह नाम जप जानेउ तेउ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद् गावा।।
नाम प्रभाव शम्भू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशि।।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।
जिन कर नाम लेत जग माहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
बिबसहु जाको नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।
सादर सुमरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद–इब तरहिं।।
सनमुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहू तबहीं।।
(नामजप में)
जानि आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उल्टा जापू।।
सगुण उपासक पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।।
ते नर प्राण समान मम् जिनके द्विज पद प्रेम।।
कोटि विप्र वध लागहिं जाहूं। आये शरण तजहूं नहिं ताहूँ।।

चारों युगों में नाम की शरण ही शरणागति है।

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई।।

स्वयं भगवान राम भी अपने नाम का उत्कर्ष नहीं बता सकते।

रामचरित सत् कोटि महँ लिए महेश जिय जान।

सौ करोड़ रामायण से शिवजी राम नाम को छांट कर, उमा संग बैठकर जपते रहते हैं। नाम में क्या आनन्द है!

कलियुग केवल नाम आधारा। सुमर–सुमर नर उतरहिं पारा।।

कलिकाल में नाम के अलावा कोई भक्ति–साधन है ही नहीं।।

सुमरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

अपने नाम के पीछे–पीछे भगवान खिंचे चले आते हैं।

वैसे विचार किया जाये तो नाम के पीछे सभी खिंचे चले आते हैं। यह है जगत की बात। स्वयं सीताजी राम नाम जपती रहती हैं–

जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।

स्वयं कृष्ण, शिव रूप धरकर अपना नाम अष्ट प्रहर जपते रहते हैं, फिर कह रहे हैं–

जासु नाम जप एकहिं बारा। उतरहिं नर भव-सिंधु अपारा।।

नाम में कुछ ऐसा ही अलौकिक आनन्दरस है कि जपने वाला ही जानता है, कह नहीं सकता। आनन्द आता है मन को। मन को जिह्वा नहीं। अतः मन इस आनन्द को कहने में सक्षम नहीं है।

नामसिंधु में एक ऐसा अलौकिक स्वादिष्ट रस (अमृत) भरा है कि पीने वाले को मतवाला कर पागल जैसा बना देता है। यह रस का स्वाद जपने वाले को तब ही आयेगा जब उच्चारणपूर्वक कान में उड़ेलता रहेगा वरना रस बाहर बिखर जायेगा तो मन को भिगो नहीं सकेगा। इस रस का एकान्त में ही अधिक मज़ा आता है। सब के बीच में यह रस बेस्वाद हो जाता है। श्रीगौरहरि ने संकीर्तन के लिए बोला है। वह इसलिए बोला है कि उस ठौर का वातावरण हरिमय बन जाता है। कच्चे साधकों के लिए अधिक अनुकूल पड़ता है। पक्कों के लिए एकान्त अधिक अनुकूल पड़ता है।

प्रश्न होता है कि यह नामरस विरले साधकों को ही क्यों आता है? सभी को आना चाहिए। इसलिए नहीं आ रहा है कि कोई ही इस रस को चाहता है। सभी साधक मायारस के पीछे दौड़ रहे हैं जो केवल महसूस ही होता है, असलीयत इसमें नहीं है। इसे कहना चाहिए–मृगतृष्णा। यह कभी भी शान्त नहीं होगी। जितना भोगोगे उतनी अधिक भड़केगी। आज तक किसी ने इसको शान्त नहीं किया, फिर क्या लाभ? केवल नासमझी! श्रीगुरुदेव कैसे-कैसे उदाहरण देकर समझाते रहते हैं फिर भी उसी ठौर।

18

श्री श्रीगुरु गौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
07–08–2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्–प्रेम प्राप्ति की बारम्बार प्रार्थना।

मन पर मार्मिक महत्वपूर्ण चर्चा

मन पर ही जीवन की नींव खड़ी है। मन के अभाव में जीवन निरर्थक है। हृदय के चार कोष्ठ होते हैं–मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार। अहंकार यदि काबू में आ जावे तो मन स्वतः ही स्थिर हो जावे। यह अहंकार मन की ही एक विशेष–वृत्ति है। अहंकार पर ही यह मन टिका हुआ है। इन दोनों को अलगाव महसूस हो नहीं सकता। यह दोनों एक से ही हैं।

अनन्त जन्मों के संस्कार ही प्रथम चित्त को स्फुरण कर जगाते हैं। चित्त जगकर मन को उकसा देता है। मन, बुद्धि से कर्म को करने की राय लेता है कि अमुक कर्म किया जाये या नहीं। बुद्धि मन को राय देती है–''इस कर्म को करने से नुकसान होगा, करना उचित नहीं है।'' पिछले संस्कारों वश मन उसकी राय न मानकर, बेबस होकर कर्म कर बैठता है, अहंकार उसके पीछे लगकर कर्म करा बैठता है। जब कर्म पूर्ण हो चुकता है तो फिर मन पछताने लगता है कि यह कर्म तेरे करने योग्य नहीं था, नहीं करना चाहिए था। अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

यह है जीवन में मन का अटपटा खेल, जो साधक को कांटों में फंसाता रहता है। बेचारा मन करे भी क्या ? उसके पिछले जन्मों के शुभ–अशुभ संस्कार उसे प्रेरित कर अहंकारवश कर्म करवाते रहते हैं। यदि पिछले जन्मों के संस्कार शुभ होंगे तो वे ही सुखदायक संग करवा देंगे और यदि अशुभ–संस्कार होंगे तो दुःखदायक संग

करने को प्रेरित करते रहेंगे। सूक्ष्म रूप में अहंकार की छाया इनके साथ–साथ चलती है।

इसी प्रकार से मानव का यह जन्म, जो अनमोल है, बारम्बार जब भी भगवत–कृपा से मिलता रहेगा, व्यर्थ में गंवाता रहेगा। कभी इसके दुःखों का अन्त नहीं होगा। मन स्थिर तो जीवन–स्थिर। मन की स्थिरता केवल मात्र सत् के संग से ही हो सकेगी। अन्य कोई युक्ति या साधन नहीं है। बुरे संग से मन चंचलता की ओर दौड़ लगाता रहता है। वहां स्थिरता स्वप्न में भी कहां हो सकती है ? सत् का संग, बिना सुकृति के, स्वप्न में भी नहीं मिला करता। यह सुकृति भी अच्छे संग से ही उपलब्ध होती है। यह संयोग भी जाने कितने जन्मों के बाद मिल सकता है, इसका कोई अनुमान नहीं है।

मन स्थिर रहता है शान्ति से। जहां अन्तःकरण में शान्ति रस भरा है, वहीं पर मन स्थिरता धारण कर सकता है। जिस अन्तःकरण में अशान्त ज़हरीला रस भरा है, वहां शान्ति कहां रह सकती है ? जहां शान्ति नहीं तो वहां मन स्थिर कैसे रह सकता है ?

अब प्रश्न उठता है कि यह शान्तरस उपलब्ध कैसे हो ? यह शान्तरस जहां भरा हो, वहीं से लिया जा सकता है तो कहां पर यह रस उपलब्ध हो सकता है ? यह शान्तरस केवल मात्र परमहंस महात्माओं के अन्तःकरण में समाहित रहता है। यदि भगवत्–कृपा से इनका संग उपलब्ध हो जावे तो फिर शान्तरस सिंधु की कमी नहीं। अन्य को भी बांट सकता है।

लेकिन इस मार्ग में भी बहुत बड़ा रोड़ा (अड़चन) है। यदि मन या चित्त से भी साधु के प्रति कोई अशुभ स्फुरण उठ जावे तो फिर उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ शान्त साधक इतने गहरे खड्डे में गिर सकता है कि उसका उठना भी बेकाबू हो जाये। साधु तो निरा दयानिधि होता है। वह कोई अपराध मानता ही नहीं है परन्तु उसका इष्टदेव कभी बर्दाश्त करेगा ही नहीं, उसको भक्ति–पथ से दूर फैंक देगा।

अतः साधु के संग में रहना, आग के पास रहने जैसा संग है, जो कभी भी जला सकता है।

यदि ऐसा हो भी जाए तो इसका भी उपाय है–साधु के चरणों में अपने अहंकार की बलि चढ़ा दो तो साधु माफ कर देगा और साधु का इष्टदेव कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रखेगा। साधु जीतेगा, इष्ट हारेगा। तुमको स्वतन्त्रता उपलब्ध हो जायेगी भगवान के मन की चाबी साधु के पास रहती है। जब चाहे मन का ताला खोले या बन्द करे। साधु के मन की बात है।

इस सारे लेख का सारांश यही है कि जो साधक अपने जीवन में अपने मन को रोक सकता है, वही मरते समय मन को भगवत–चरणों में रोककर लगा सकेगा जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह को अंत में मरने के समय बोला था कि पितामह चारों ओर से अपने मन को हटाकर अपने मन को भगवत–चरणों में लगा लो।

इस लेख में विशेषकर चर्चा केवल मात्र मन को रोकने की, की गई है।

अब प्रश्न उठता है कि मन को कैसे काबू में किया जाये ? जहां अहंकार की वृति होगी, वही मन रुकेगा। अहंकार होगा कि मैं भगवान का हूँ, भगवान ही मेरे हैं। यह संसार तो झूठा, माया का खेल है। यहां कोई अपना नहीं है, सभी पराए हैं। केवल दीखते अपने हैं, जादू का झूठा दिखावा है, सच्चा कुछ भी नहीं है।

मन को काबू करने का एक ही उपाय है–वह है सच्चे परमहंस साधु का संग, जिसने अपने मन को भगवत्–चरणों में लगा कर काबू कर रखा है। साधु, मन को रोकने की विधि बताने का विशेषज्ञ है। वही साधक को, मन को रोकने की ट्रेनिंग दे सकता है। आंख, कान, जीभ तथा नाक आदि के भिन्न–भिन्न विशेषज्ञ हुआ करते हैं। इसी प्रकार मन का, चित्त का, बुद्धि का व अहंकार का विशेषज्ञ–परमहंस साधु होता है। इसका संग करने से मन शत्–प्रतिशत् रुक जायेगा।

लेकिन साधक, ऐसे साधु के पास तब ही जायेगा जब वह अपना ध्येय भगवत प्राप्ति का समझेगा। करोड़ों साधकों में से कोई विरला ही ऐसा साधक हो सकता है। अधिकतर लोग भौतिकवाद की ओर दौड़ रहे हैं। इस कलियुग में आध्यात्मिकवाद का तो केवल नाम–निशान ही रह गया है।

साधु का संग भी दो प्रकार का होता है–एक स्थूलसंग, दूसरा सूक्ष्मसंग। परिस्थिति अनुसार ही यह संग मिल पायेगा। संग करने वाले को अनुकूल परिस्थिति उपलब्ध नहीं है या साधु की उसके संग रहने की परिस्थिति नहीं है। यह परिस्थिति तो भगवत–कृपावश ही मिलती है। अपनी शक्तिवश नहीं मिलती। यदि साधक साधु के पास जाने में मजबूर है तथा साधु साधक के पास जाने में मजबूर है तो प्रत्यक्ष या स्थूल रूप में संग नहीं होगा परोक्ष या सूक्ष्म रूप से हो सकता है। फोन या पत्र द्वारा संग उपलब्ध हो सकता है।

अनंतकोटि अखिल ब्रह्माण्डों का खेल ही मन पर आश्रित है। जिनका मन वश में है, उनका सभी कुछ वश में है। उसके लिए संसार में बेबस कुछ भी नहीं है। जब से यह जीवात्मा भगवान से बिछुड़ा है, तब से ही मन के कारण इधर–उधर भटक रहा है। अभी तक उसे अपना सच्चा घर उपलब्ध नहीं हो सका है। जब तक अपने सच्चे घर में नहीं पहुँच जायेगा तब तक इसकी भटकन स्वप्न में भी नहीं मिटेगी।

इस भटकन को केवल मात्र एक ही व्यक्ति हटा सकता है–वह है भगवान का प्यारा परमहंस साधु। केवल उससे सच्चा नाता जोड़ लो। सहज में ही अपना सच्चा घर पा जावोगे। माया इस मार्ग में बहुत से रोड़े अटकायेगी। इसके लिए श्रीगुरुदेव की शरणागति परमावश्यक है। श्रीगुरुदेव के सामने माया हतप्रभ हो जाती है। श्रीगुरुदेव जी जब केवट बन नौका चलायेंगे तो भवसिंधु पार करने में समय नहीं लगेगा।

श्रीगुरुदेव जी ने बारम्बार लेखों द्वारा समझाया, बारम्बार कृपावर्षण किया। इस कृपा को अंगीकार कर जीवन सफल करना श्रेयस्कर होगा। इति

19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
08-08-08

साधक को हरिनाम में रुचि क्यों नहीं होती?

हरिनाम स्मरणकारी को हरिनाम में रुचि इस कारण से नहीं होती कि इसका तन, मन वाक् विषयों की तरफ दौड़ता रहता है। जापक यह नहीं जानता कि इन विषयों में हलाहल विष भरा है। जितना भी विषय रस पीवोगे, उतना ही विष का प्रभाव तन, मन, वाक् पर प्रभावित होता जायेगा तथा विषयों की तृष्णा अधिक से अधिक उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायेगी।

जहां तन-मन में विष व्याप्त हो जायेगा, वहां अमृतरूपी भगवत् न भक्त-प्रेम का आभास भी नज़र नहीं आ सकता। एक शराब को ही लीजिए। शराबी जब शराब पीने बैठता है तो उसकी कभी शराब से तृप्ति नहीं होती। बोतल की बोतल चढ़ाता जायेगा। अन्त में जब शराब का नशा चढ़ जायेगा तो फिर बेहोश होकर गन्दी नाली में गिर जायेगा। फिर उसको यह नहीं महसूस होगा कि उस पर कुत्ता पेशाब कर रहा है या कोई बुरा-भला कहकर जा रहा है। यही दशा अन्य विषयों की है। जितना भोगा जायेगा, उतनी तृष्णा तीव्र होती जायेगी। काम, क्रोध, लोभ और मोह को ही महसूस कर देखते रहते हो। थोड़ा सा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अन्तःकरण में व्याप्त हो जावे तो इनकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है। कम होने का सवाल ही नहीं है। इससे तन व मन का नाश होना ही है। यह कितनी अज्ञानता है। कुत्ता किसी सूखी हड्डी को मुख में रख कर चूसता रहता है। उस हड्डी में खून कहां ? वह तो अपने मसूड़ों से निकले खून ही का स्वाद लेता रहता है। क्या यह उसकी शुभ समझ है ? इसी प्रकार मानव की दशा है। विषयों को ही अमृत समझ कर उनकी ओर दौड़ता रहता है।

इसी कारण से हरिनाम, भक्त व भगवान से उसका मन जुड़ नहीं पाता। मन उस तरफ जायेगा ही नहीं तो नाम में रुचि होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। फिर बारम्बार शिकायत करते रहते हैं कि हमारा मन हरिनाम से उठ गया ? कैसे नाम में मन लगावें ? कृपा कर आप ही लगावो। बताओ, यह कितनी मूर्खता की बात है।

अरे भैया! तुम्हारे सामने भोजन की, तरह–तरह की मिठाईयों व चटपटी वस्तुओं की, थाली परोसी रखी है, अब खाना तो आपको ही है। हाथ से मुख में तो आपको ही डालना है। खिलावे भी मार्गदर्शक ही, यह क्या हुआ ? यह है साधक की बेपरवाही। ऐसी बेपरवाही से मार्ग तय नहीं हो सकता। केवल बातें ही बना–बना कर अपना अमूल्य समय नष्ट करते रहो। कुछ उपलब्धि होने की नहीं।

प्रेमियों! विषयों में भी रमते रहो! लेकिन जैसा मैं बताऊं, वैसा तो करो! तो यह विषय स्वयं ही आपका पीछा छोड़ देंगे। अब आप बोलोगे क्या करें, दयानिधि ?

कम से कम हरिनाम को कान से तो सुना करो ताकि हरिनाम बीज, जो श्रीगुरुदेव ने कान में बोया है, वह हृदय (अन्तःकरण) रूपी ज़मीन में जाकर जमा होता रहे तो कुछ साल बाद यह बीज अवश्य अंकुरित होगा तथा अंकुरित होकर बड़ा होने लगेगा। बड़ा होकर फल–फूल रूपी गुणों में प्रफुल्लित हो जायेगा तो आपको उस फल–फूल से आनन्द आना आरम्भ हो जायेगा। जब इधर आनंद, आने लगेगा तो माया का, दिखावटी विषयों का, आनंद नष्ट होकर एक दिन विलीन हो पड़ेगा क्योंकि यह आनंद अलौकिक आनंद है। बस आपको आनंद सिंधु की उपलब्धि हो गई। इससे ऊंचा व बड़ा आनंद अनन्त कोटि अखिल ब्रह्मांडों में कहीं पर भी नहीं है।

अब हरिनाम को कान से सुनने पर किस प्रकार इस आनंद की उपलब्धि होती है, प्रेमियों! यह अच्छी तरह से हृदय में धारण करें। जैसे मैंने किसी को कोई भी काम बोला कि भैया! यह मेरा

काम बहुत ज़रूरी है। अमुक ठौर पर कहकर व करके आना। उसने किसी उधेड़–बुन में मन को लगा रखा था। अतः उसने ऊपर से ही कह दिया कि ठीक है, अवश्य करके आ जाऊंगा लेकिन मन किसी और तरफ था अतः ध्यान से सुना ही नहीं। जब वापस लौटने लगा तो चिंता हुई कि उन महाशय ने कोई काम बताया था। मैंने ठीक से सुना ही नहीं, अब क्या करूं ? वे महाशय तो मेरे खास प्रेमी हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। यदि उनका काम नहीं किया तो मेरा तो जीवन ही गर्त में चला जायेगा। उनके बिना तो मैं जी भी नहीं सकता।

अब बोलो ? बात न सुनने से उसे कितना बड़ा नुकसान हुआ या भविष्य में होने वाला है। इसी प्रकार से हरिनाम को कान से न सुनने से, मानव जन्म, जो भगवत्–कृपा से अबकी बार मिला है, बेकार हो जाने पर कितना नुकसान होगा, इसका कोई अन्दाज़ा ही नहीं है। कुछ तो जीवन चला गया व रहा–सहा भी जा रहा है।

कान द्वारा हरिनाम सुनने से कुछ काल बाद बीज अंकुरित होकर पौधे के रूप में बाहर आवेगा। वह पौधा होगा–श्रीकृष्ण का वपु। हृदय में श्रीकृष्ण का दर्शन प्रकट हो जायेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आज़माकर देख सकता है। उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हो। संसार का उदाहरण देना ज़रूरी होता है।

एक किसान बीज बोता है तो हल चलाता हुआ बीज एक पाइप (ओटा) में मुट्ठी भर डालता रहता है एवं हल बैलों द्वारा आगे की ओर खिंचता हुआ चलता रहता है। बीज उस पाइप में गिरकर उमरा (खाई) में गिरकर उस पर हिलने से मिट्टी में दबता रहता है। 5–6 दिन में वह सीलन से फूल जाता है तथा उसमें से अंकुरित होकर उमरे (खाई) से बाहर दिखाई देने लग जाता है। 120 दिन के बाद वह 6–7 फुट बढ़कर उस पर शिरा आ जाता है। यह देख कर किसान का मन फूला नहीं समाता। वह नाचने लगता है।

लेकिन जो बीज उस खाई में न गिर कर किनारों पर गिर जाता है, वह अंकुरित नहीं हो पाता क्योंकि उस पर न तो मिट्टी पड़ी, न सीलन उसको मिली। अतः बाहर पड़ा रहने से उसको चींटियां या पक्षी खा जाते हैं। यही हाल हरिनाम का है जो कान में नहीं सुनाई पड़ा, वह भौतिक जगत में फैलकर नष्ट तो नहीं होता लेकिन प्रेम फल न देकर, जो अलौकिक है, लौकिक फल–अर्थ, धर्म और काम दे देगा। भगवत् प्राप्ति न होकर भौतिक कामना की उपलब्धि करा देगा लेकिन जीवन–मरण का अंत नहीं होगा अर्थात् भवसागर पार नहीं होगा।

अतः जब तक कान में कोई शब्द गूंजेगा नहीं तब तक उस शब्द का फल मिलेगा नहीं–चाहे वह शब्द भौतिकता का हो चाहे आध्यात्मिकता का हो। अतः हरिनाम को उच्चारणपूर्वक कान में उड़ेलना पड़ेगा तब ही कुछ शुभ–उपलब्धि हो सकेगी।

उदाहरणस्वरूप, जैसे अमुक, अमुक को गाली देता है तो क्या वह मन–मन में देता है, ज़ोर से उच्चारणपूर्वक ही देता है, तब वह कान द्वारा हृदय में जाकर उथल–पुथल मचा देती है जिससे उसमें क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है और वह आग बबूला होकर सामने वाले को मौत के घाट भी उतार देता है। यह है भौतिक शब्द का प्रभाव तो हरिनाम का प्रभाव तो सोच भी नहीं सकते। अब ज़रा गहरे दिमाग से सोचिए कि एक भौतिक शब्द ने ही इतना बड़ा कर्म कर दिया तो क्या आध्यात्मिक शब्द, जो अलौकिक शक्ति वाला है–वह हरिनाम क्या नहीं कर सकता अर्थात् वहां, क्रोध की उपलब्धि हुई तो यहां किसकी उपलब्धि होगी ? सुपीरियर (श्रेष्ठतम) प्रेम की।

अब स्पष्ट समझ में आ गया होगा कि भगवत्नाम उच्चारणपूर्वक ही कान में जाना चाहिए। थोड़े काल बाद लाभ नज़र आने लगेगा। श्रीगुरुदेव का आदेश 1966 में

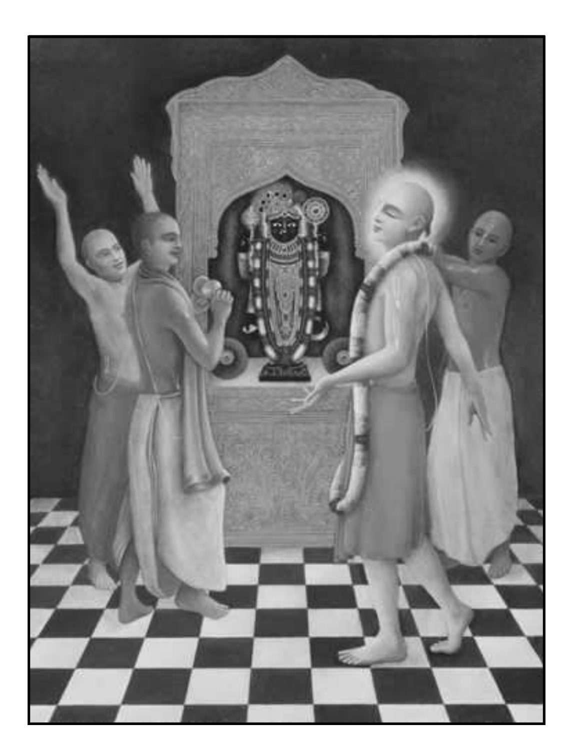
Chanting Harinam Sweetly & Listen by Ear.

सादर सुमरन जे नर करहिं। भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।।

इसी कारण श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का प्रचार करवाया। इति।

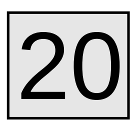
श्रीगुरुदेव श्री निष्किंचन महाराज को यह पत्र अवश्य सुनाया जाये।

नोटः–हरि प्रेमियों। ध्यान दो। भगवान् को कोई सच्चे दिल से चाहता ही नहीं है अतः रुचि कैसे हो सकती है ? अभी सच्चा ज्ञान नहीं।



श्रीराधा और श्रीकृष्ण का मिलित स्वरूप श्रीगौराङ्ग महाप्रभु हैं।
युगल विलास में श्रीराधा और श्रीकृष्ण का ऐक्य
स्वाभाविक रूप से अच्छा नहीं लगता अर्थात् युगलविलास
हेतु ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभु दो रूप धारण करते हैं।

(श्री नवद्वीप धाम – माहात्म्य)



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

चण्डीगढ़
25–10–08
द्वादशी

परमाराध्यतम, प्रातःस्मरणीय, भक्तप्रवर श्रीनिष्किंचन महाराज को इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा एक लाख हरिनाम प्रत्येक भक्तिसाधक को करने की प्रार्थना।

एक लाख हरिनाम–स्मरण करने से ही पूर्ण भगवत्–शरणागति

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सभी अपने जनों को एक लाख हरिनाम करने का आदेश दिया तथा कहा कि जो भी जन एक लाख हरिनाम नित्य ही करेगा उसी के घर पर मैं भोजन कर सकता हूँ। जो नहीं करेगा उसके घर पर मैं जाऊंगा ही नहीं।

सभी भक्तजनों को चिंता हो गई कि एक लाख भगवत् नाम हमसे कैसे हो सकेगा क्योंकि हम गृहस्थी हैं। घर में बहुत काम रहते हैं। इतना समय हम कैसे निकाल सकते हैं ? परन्तु कुछ भी हो, यदि प्रभु का आदेश पालन नहीं करेंगे तो प्रभु जी हमारे घर पर न भोजन करेंगे एवं न घर पर आवेंगे। अतः एक लाख नाम पूर्ण करना परमावश्यक है।

वैसे महाप्रभु जी का कहना वास्तव में ऐसा था कि जो भी एक लाख नाम नित्य करेगा उसे मैं एक क्षण भी कैसे छोड़ सकता हूँ क्योंकि वह मेरे पूर्ण शरणागत है। उसकी ज़िन्दगी की पूरी जिम्मेवारी मेरी है। जो भी किसी वस्तु का अभाव होगा, मैं उसे पूरा करूंगा तथा हर प्रकार से उसका पालन करूंगा तथा रक्षा करता रहूंगा। अन्त में आयु पूर्ण होने पर मैं स्वयं आकर पार्षदों को न भेजकर, उस मेरे प्रिय को अपने गोलोक धाम में ले जाऊंगा। कलिकाल में

अन्य कोई साधन नहीं है। केवल नाम–रूप से मेरा अवतार है। जो इसे अपनाएगा, वही मुझे पाएगा। वह सदैव के लिए दुःखों से मुक्त हो जायेगा। इस कलिकाल में जिसने भी मेरे नाम का सहारा लिया है, वही भवसागर, जो दुःखों का घर है, पार हो जाता है। यह महाप्रभु का वचन है।

जो सभीत आया शरणाई।
ताको राखूं प्राण की नाईं।।

मुझे पता है कि आरम्भ में मेरे नाम में रुचि व मन नहीं लग सकता लेकिन एक लाख बार जब स्मरण करेगा तो कुछ तो शुद्ध नाम मुख से निकलेगा। वही शुद्धनाम, नामाभास (बेमन से किया हुआ हरिनाम) नाम को कुछ समय बाद शुद्ध कर देगा। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार शुद्धनाम थोड़ा होने पर भी नामाभास को शुद्धनाम बना देगा। अतः घबराने की बात नहीं है। नाम–जापक को सात्विक अष्टविकार की उपलब्धि सहज में ही हो जावेगी।

अतः कृपया प्रत्येक साधक हरिनाम की 64 माला नित्य स्मरण करने का अभ्यास बढ़ावे। कुछ समय बाद श्रीगुरुदेव जी की कृपा से अन्तिम पुरुषार्थ–'प्रेम' की उपलब्धि हो जावेगी लेकिन इसमें एक रुकावट आती है, वह है नामापराध तथा प्रतिष्ठा। इससे बचते रहने पर शीघ्र ही चिन्मय स्थिति उपलब्ध हो जावेगी।

हरिनाम को कान से सुनना होगा। कान तब ही सुनेगा, जब मन साथ में होगा। मन साथ में न होने पर कान सुनेगा ही नहीं, श्रीगुरुदेव का आदेश है।

Chanting Harinam Sweetly & Listen by Ear-

सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।।

अतः श्रीगुरुदेव का वचन है कि जो भी एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला मन सहित नित्य करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत-प्रेम उपलब्ध हो जायेगा। इसमें रत्ती भर भी शंका का अवसर नहीं होगा।

अतः मेरी बारम्बार प्रार्थना है कि मेरे प्रेमास्पद भक्तो! एक लाख हरिनाम नित्य करो ताकि यह मनुष्य जन्म सफल हो सके। यदि मेरी उक्त प्रार्थना नहीं सुनी तो अनंत युगों के बाद ही मनुष्य जन्म मिल पावेगा। फिर ऐसा शुभ अवसर नहीं मिल पावेगा। अतः अभी से पत्र को पढ़कर हरिनाम की 64 माला नित्य करने को तैयार हो जावो।

रात का भोजन कम करके, प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में 3 बजे उठकर, बिना स्नान करे, श्रीगुरुजी के चरणों में बैठकर श्रीगुरुदेव को नाम सुनाते रहो तो गुरुदेव जी की नख-ज्योति आपके अज्ञान अन्धकार को पी जावेगी। दिव्य दृष्टि उपलब्ध हो जावेगी-

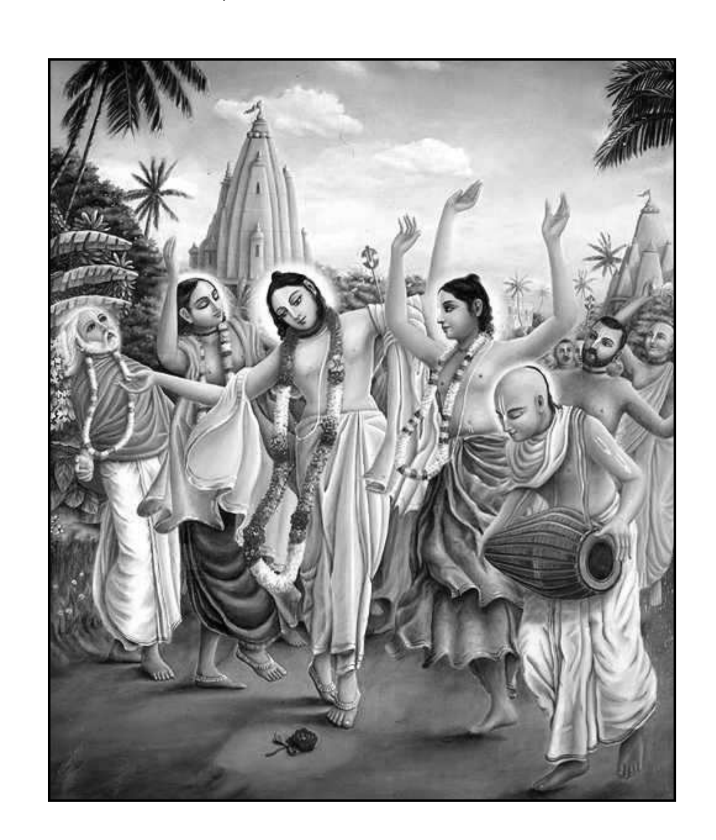
श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहिं बिमल बिलोचन हियके।
मिटहिं दोष-दुःख भव-रजनी के।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

बीच-बीच में ऐसे बोलते रहोः-

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहिमाम्

श्रीमन् महाप्रभु की प्रतिज्ञा

जिस धन को प्राप्त करना ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं इस संसार में सभी को प्रदान करूँगा और इस अवतार में उस (प्रेम) धन को वितरण करने में पात्र–अपात्र का भी विचार नहीं करूँगा। मैं यह भी देखूंगा कि कलि किस प्रकार जीवों का सर्वनाश करता है ? मैं अपने नवद्वीप धाम को प्रकाशित करूँगा और उसी धाम में ही कलि के विषमय दाँतों को तोड़ूँगा तथा कीर्तन करके जीवों को आत्मसात् करूँगा। जितनी दूर तक मेरे नामों का कीर्तन होगा, उतनी दूर तक कलियुग का भी दमन होगा अर्थात् कलियुग उन–उन स्थानों से दूर भागेगा।



तोमार अनन्त नाम, तवानन्त गुणग्राम,
तव रूप सुखेर सागर।
अनंत तोमार लीला, कृपा करि प्रकाशिला
ताई आस्वादये ए पामर।।

हे गौरहरि ! आपके अनंत नाम हैं। आपके गुण भी अनंत हैं और आपका रूप तो सुखों का सागर है। यही नहीं, आपकी लीलाएं भी अनंत हैं। आप मुझ पर कृपा करें। आप अपने चरणों में मुझे स्थान दें तभी मेरे जैसा पामर जीव आपकी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

तुमि कृष्ण स्वयं प्रभो, जीव-उद्धारिते विभो,
नवद्वीप-धामे ते अवतार।
कृपा करि रांगा पाय, राख मोरे गौरराय
तबे चित्त प्रफुल्ल आमार।।

हे प्रभो ! आप तो स्वयं विभु अर्थात् सर्वव्यापक श्रीकृष्ण ही हो एवं जीवों का उद्धार करने के लिये आपने नवद्वीप धाम में अवतार लिया है। हे गौरचन्द्र ! आप अपने इन लालिमा युक्त दिव्य चरणों में कृपा करके मुझे स्थान दीजिये, तभी तो मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 2



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

30.03.2009
चंडीगढ़

परमाराध्यतम, भक्तप्रवर-शिरोमणि तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति-स्तर प्रेमसहित उत्तरोत्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक लाख नाम करनें का महा-महात्म्य

आज श्री श्रीराधामाधव जी से प्रार्थना की कि यदि आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दे देवें तो आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी। मैंने पूछा कि हे मेरे बाप (श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का भगवान से शिशु/पिता का संबंध है। जैसे एक शिशु अपने पिता को बुलाता है उसी प्रकार वे भगवान को बाप कह कर पुकारते हैं) अमुक भक्तों का अगला जन्म कहाँ होगा ?

श्रीभगवान् ने कहा- ''इन भक्तों का जन्म गोलोक में नहीं होगा क्योंकि वह मेरा लोक है। इन भक्तों का अगला जन्म वैकुण्ठ में होगा जहाँ वे एक कल्प तक आनंद भोग कर फिर मृत्युलोक में आयेंगे। अनंतकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में किसी भी ठौर (जगह) मृत्युलोक में उनका आविर्भाव होगा। मेरे प्यारे किसी भी भक्त के यहाँ उनका जन्म होगा।''

मैंने फिर पूछा- ''जिनका नित्यप्रति एक लाख हरिनाम पूरा नहीं होता, उनकी गति क्या होगी ? क्या वे भी वैकुण्ठ जायेंगे ?''

श्री भगवान् ने कहा- ''जो नित्यप्रति एक लाख हरिनाम नहीं करते। उनका जन्म वैकुण्ठ में न होकर सीधा मृत्युलोक में होगा। भले ही उनका जन्म मेरे प्यारे किसी भक्त के घर होगा परन्तु उनको कई कल्पों तक वैकुण्ठादि की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि

उनको मृत्युलोक में ऐसा कलियुग उपलब्ध नहीं होगा जिसमें थोड़े ही समय में भगवद् कृपा प्राप्त हो जाती है। सत्य, त्रेता तथा द्वापर आदि युगों में बहुत समय के बाद मेरी कृपा की प्राप्ति होती है परन्तु यदि कोई एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करता है (मुझे पूरे दिन में एक लाख बार याद करता है) तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। एक लाख नाम मुझे आकर्षित कर लेता है।''

''फिर आपका गोलोकधाम उनको कब मिल सकेगा ?'' मैंने पूछा! श्रीभगवान् बोले–''ऐसा भक्त जब संबंध ज्ञान में ओत–प्रोत होगा तब जिस प्रकार की रसानुभूति में उसका मन रंगेगा, उसी रस के मेरे गोलोक में वह आर्विभूत हो सकेगा। मुझे प्राप्त करने का सबसे सरल व सुगम काल केवलमात्र कलियुग ही है जिसके लिए देवता भी तरसते हैं। आप मेरे नाम का विस्तृत रूप से प्रचार करो। ऐसा करने से तुम्हें अमृतमय आनन्द की प्राप्ति होती रहेगी। आप सबको एक लाख हरिनाम करने को बोलो क्योंकि इस कलिकाल में एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। इसी से **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** होगी। एक लाख से कम करने वाला वैकुण्ठलोक से वंचित रह जाएगा। आप सभी को एक लाख हरिनाम करने को बोलो। जिसे भी कहोगे वह करेगा या नहीं करेगा, इसकी चिन्ता न करो। उसकी चिन्ता मुझे है। कई बार भक्त के प्रति अपराध होने से एक लाख हरिनाम नित्य करने का नियम छूट सकता है। नामापराधी की गारंटी मैं नहीं लेता। उसका जन्म कहीं भी हो सकता है। यहाँ तक कि यदि कोई मेरे भक्त के प्रति कोई जघन्य अपराध करता है तो रौरव नाम के नरक में जाना पड़ता है। इसलिये नामापराध से बचकर एक लाख हरिनाम करने के लिये सबको सतर्क करना तुम्हारा कर्तव्य है। इसलिये इस कलियुग में जीवों के उद्धार के लिये ही तुम्हें भेजा है। तुम्हारे तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति उनका मन बदल देगी और इस भवबंधन से उनकी आसक्ति हटा कर, मेरी भक्ति की ओर मोड़ देगी। इसलिये सबको एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करने को बोलो।''

श्रीभगवान् की इस आकाशवाणी को जो कोई भी झूठा या काल्पनिक समझेगा, वह दुःख सागर में गोते खाता रहेगा। अतः अपने मन को काबू में करके इस अमृतमयी वाणी का अवलोकन करें।

प्रार्थी : एक अविज्ञात पथिक

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

बहु जन्म कृष्ण भजि' प्रेम नाहि हय।।
अपराध-पुञ्ज ता'र आछये निश्चय।।

यदि बहुत जन्मों तक श्रीकृष्ण का भजन करने पर भी प्रेम नहीं होता है, तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यक्ति ने अनेकों अपराध किये हैं।

अपराध शून्य हय लय कृष्ण नाम।।
तबे जीव कृष्णप्रेम लभे अविराम।।

यदि जीव अपराध शून्य होकर कृष्णनाम लेता है, तभी वह बिना किसी बाधा के कृष्णप्रेम प्राप्त करता है।

श्रीनवद्वीप धाम माहात्म्य (1.45.46)

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
06.02.2009
एकादशी

श्रीयुत प्रेमास्पद, भक्त-प्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्तिसर्वस्व निष्किंचन, महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमपूर्वक भजन-स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक लाख हरिनाम जप करने का अकथनीय महत्व

शास्त्रीय दृष्टि से मृत्युलोक का क्षेत्रफल भू र्भुवः स्वः तक फैला हुआ है। इसमें अनगिनत मानव जातियाँ अपना कर्मभोग भोगने हेतु जन्म लेती हैं। इनमें बहुत सी भौतिकवादी हैं और बहुत सी आध्यात्मिकवादी हैं, जो दुःखों के घर रूपी अपने मायामय जीवन को काट रही हैं। इनमें से बहुत तो ऐसी हैं जो ईश्वर का अस्तित्व न मानती हैं और न ही जानती हैं। इनमें से भी अधिकतर भूतों एवं देवताओं की आस्था में फंसी पड़ी हैं। देवता तो स्वयं ही भगवान् के पराधीन हैं। इनमें अपनी कोई शक्ति नहीं कि किसी को कुछ दे सकें। ये उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा से मांग कर आस्तिकों की मांग पूरी करते रहते हैं।

ब्रह्मा तक के सभी लोक मायामय हैं, महाप्रलय में समाप्त हो जाते हैं। महाप्रलय में कोई नहीं बचता केवल भगवत् धाम, वैकुण्ठ धाम एवं गोलोक धाम ही बचते हैं। भगवत् भक्त, क्योंकि वे भगवत्-आश्रित रहते हैं, इसलिए उनका बाल भी बांका नहीं होता। अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में कुछ नहीं बचता। भगवान् की रची हुई मायाशक्ति का यही तो खेल-तमाशा है।

इन अखिलकोटि ब्रह्मांडों में कितने हैं जो भगवान् को चाहते

हैं ? इनकी संख्या नगण्य हैं। इस बात को यूं समझना पड़ेगा कि जैसे इस पृथ्वी पर अनगिनत मिट्टी के कण हैं, उसी प्रकार अनगिनत जीवों में से करोड़ों जीवों में कोई एक ही भगवत् की ओर मुड़ पाता है। भगवान् की तरफ मुड़े हुए ऐसे करोड़ों अनगिनत जीवों में कोई एक ही अन्तःकरण से भगवान् को चाहता है। भगवान् को चाहने वाले ऐसे अनेकों जीवों में से कोई एक भगवान् के लिये तड़पता है। भगवान् के लिये तड़पने वालों में से कोई–एक सन्त की शरण लेता है। सन्त की शरण लेने वालों में से कोई विरला भगवत्–नाम की ओर मुड़ पाता है। भगवत् नाम की ओर मुड़ने वालों में कोई–कोई ही अन्तःकरण से नाम में मन को स्थिर कर पाता है। जिसने भी मन को स्थिर करके नाम को अपनाया है, वही अनंतकोटि युगों के दुःखों का अन्त कर पाया है। वही अमर होकर भगवत्–धाम में भगवत्–सेवा उपलब्ध कर पाया है।

ऊपर जितनी भी बातें लिखी गई हैं, उन सभी परेशानियों को भगवान् श्रीगौरहरि के एक आदेश ने समाप्त कर दिया। भगवान् श्रीगौरहरि बोलते हैं कि जो भी साधक नित्य एक लाख हरिनाम कान से सुन–सुन कर उच्चारणपूर्वक करेगा, वह मेरे अमरलोक, गोलोकधाम में सदा के लिये पदार्पण कर पायेगा क्योंकि मेरा नाम और मैं एक ही हैं। नाम लेना अर्थात् मेरे को लेना, एक ही बात है। जब नाम और नामी एक हो जायेंगे तो ध्रुवपद, तुरीयपद, परमहंस–स्थिति स्वयं उपलब्ध कर पायेंगे।

पर यह स्थिति एक लाख से कम हरिनाम करने वालों को प्राप्त नहीं होगी। एक लाख हरिनाम करने में कोई रियायत (छूट) नहीं है। नामाभास ही साधक को गोलोक धाम ले जायेगा। यदि साधक का शुद्ध हरिनाम होता है तो सात्विक अष्टविकार से मेरे में (भगवान् में) पारलौकिक प्रेम की बाढ़ कर देगा। मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी–मेरे नाम को मन से जपने की। अन्य सभी सेवाएं इसमें ही समाई रहती हैं। दुर्गुणों के नाश एवं सद्गुणों की बाढ़ आने से दसों दिशाओं की सेवा बन गई। सबके हित में सब ही सेवा

मौजूद है। अन्ततः निष्कर्ष यह निकला कि केवल हरिनाम से ही अखिललोक ब्रह्मांडों की सारी सम्पति बड़ी सरलता से हाथ लग जाती है, उपलब्ध कर ली जाती है।

अब ज़रा विचार कीजिए कि इन ब्रह्मांडों में एक लाख हरिनाम करने वाले कितने होंगे ? कितने हैं जो हर रोज तीन लाख हरिनाम कर रहे हैं ? अकथनीय है। यदि तीन लाख हरिनाम करने वाले अधिक होंगे तो एक लाख हरिनाम करने वाले भी अधिक ही होंगे। जो स्वयं तीन लाख हरिनाम करता है वही दूसरों को एक लाख हरिनाम करने को कह सकता है। श्री गौरहरि का कहना है कि पहले स्वयं हरिनाम जपने का आचरण करें, फिर दूसरों को नाम जपने के लिये उत्साहित करें। जो स्वयं नाम जपने का आचरण नहीं करता वह दूसरों से भी हरिनाम नहीं करा सकता।

आजकल कितने ही अपधर्म–ध्वजी मानवता को गर्त में ले जा रहे हैं। भोले–भाले लाखों लोगों को प्रवचन कर शिष्य बनाकर पैसा लूट रहे हैं। पैसे के पीछे नरसंहार किये जा रहे हैं। बुरे से बुरे कर्म छुप–छुप कर हो रहे हैं। ऐसे लोग स्वयं तो नरकगामी होंगे ही, भोले–भाले शिष्यों को भी नरकभोग करा रहे हैं। ऐसे लोगों से बचकर रहना चाहिये। यह कलियुग का ज़माना है। सच्चाई कहाँ है ? यहाँ Quantity (संख्या) खूब मिल जायेगी पर Quality (गुणवत्ता) नहीं मिलेगी। धर्म के नाम पर लोग व्यापार कर रहे हैं। साधु के भेष में क्या–क्या बुरा नहीं हो रहा है ? यह कलियुग का तमाशा है। जैसा गुरु, वैसा चेला। अतः बहुत देखभाल कर, गुरु बनाना चाहिए। आजकल तो गुरु कहता है कि मैं ही भगवान् हूँ। दूसरा कोई भगवान् नहीं है। मुझे ही भगवान् मानो। तुम्हें सभी ऋद्धि–सिद्धि मिल जायेगी, मालामाल हो जाओगे। बस ! हर महीने कुछ–कुछ भेंट गुरु जी को चढ़ाते रहो। भेंट से स्वतः (अपने आप) तुम्हें सब कुछ मिलता रहेगा। ऐसे लोग साधु भेष में साक्षात् राक्षस हैं। भक्ति की सच्चाई कहीं दिखाई नहीं देती। ऐसे दुष्टों से वही बच पाएगा जो हरिनाम की शरण में रहेगा। जो भी एक लाख हरिनाम

नित्य जपता है, उसकी रक्षा भगवान् (हरिनाम) स्वयं करते हैं। इतना ही नहीं, टी. वी. ने सभी धर्म मर्यादायें मूल सहित नष्ट कर दी हैं। बच्चों में बुरे संस्कार जमा हो रहे हैं। बड़े होकर वे लड़ाई–झगड़े, लूटपाट करते हैं व अराजकता फैलाते हैं। अतः बच्चों को टी. वी. से दूर रखना ही गृहस्थी के लिये बहुत बड़ा धर्म है।

धर्मशास्त्रों के अनुसार कलियुग का प्रमुख धर्म है–भगवत् प्राप्ति–केवल हरिनाम जपना–जो लोप होता जा रहा है। ऐसी शिक्षा कहीं भी उपलब्ध नहीं हो रही है। पैसा कैसे कमाया जाये ? ऐसी शिक्षा का विस्तार होता जा रहा है इन्द्रियतर्पण ही इस युग का प्रमुख धर्म–कर्म रह गया है। इसलिये रोगों की भरमार, कमजोरी, दयाहीनता, लूटपाट, चोरी–डकैती का विस्तार दसों दिशाओं में देखने व सुनने को मिल रहा है। इनसे रक्षा चाहते हो तो हरिनाम की 64 माला (एक लाख हरिनाम) नित्य जपा करो ताकि शरणागति हो जाये और भगवान् शरणागत की रक्षा व पालन करें। अभ्यास करते–करते तीन घंटे में 64 माला (एक लाख हरिनाम) हो जाती हैं। दिन–रात के 24 घंटों में से कोई भी गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी या संन्यासी बड़ी आसानी से तीन घंटे का समय दे सकता है। इतनी बड़ी महान उपलब्धि के लिये, तीन घंटे का समय दे सकता है अन्यथा तो कलिकाल महाराज की चक्की में पिसाई हो जायेगी। कलिकाल से बचने का एक अमोघ हथियार आपके पास है। कोई भी आपका बाल बांका नहीं कर सकेगा। आनंद से जीवनयापन होता रहेगा।

सारांश यह है कि जिस साधक ने मन को जीत लिया उसने भगवान् को पा लिया। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीगीता जी में अर्जुन को बोलते हैं कि इन इन्द्रियों में मन मुझे ही जान। मन को जीतने वाला तो अखिललोक ब्रह्मांडों का मालिक बन गया। सर्वशक्तिशाली हो गया। उसके लिये फिर कुछ जीतना बाकी नहीं रहा। आपको मन जीतने का तरीका बता दिया है। इसे अपनाओ और परम आनंद की प्राप्ति करो।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड

02.12.2009

भगवान् को प्राप्त करना सहज है

श्रीगुरुदेव जी सभी भक्तों को आश्वासन दे रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं। सतयुग में हजारों वर्ष तपस्या करने पर भगवान् दर्शन देते थे। त्रेता में कई प्रकार के यज्ञ करने पर भगवान् यज्ञाग्नि में प्रकट हो जाते थे। द्वापर युग में स्वच्छ–हृदय से भगवान् के विग्रह की अर्चना–पूजन करने पर भगवान् श्री विग्रह से प्रकट हो जाते थे पर कलियुग में तो भगवान् अपने नाम से ही प्रकट हैं। केवल 64 माला प्रतिदिन कान द्वारा सुनकर जिह्वा से उच्चारण कर लें। कहीं पर जाने की आवश्यकता नहीं है। घर के ही किसी कोने में बैठकर भगवत् नाम को कान द्वारा सुन–सुनकर भगवान् का छद्म दर्शन किया जा सकता है। इसमें कोई पैसा नहीं लगता। सर्दी हो तो कंबल ओढ़ सकते हो, गर्मी हो तो पंखा चला सकते हो।

चंडीगढ़ के श्री दुग्गल जी के गुरुदेव रेल को चलाने में गार्ड पोस्ट पर नियुक्त थे। भगवान् का हरिनाम करते–करते उन्हें समय का कुछ भी ध्यान ही नहीं रहा और वे परम–आनंद में डूब गये थे। भगवान् ने स्वयं गाड़ी में उनकी ड्यूटी दी। यह बात लगभग 50 वर्ष पहले की है। इसी प्रकार आज से लगभग 500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग, श्रीरूप–सनातन, श्रीमाधवेन्द्रपुरी, मीरा, नरसीमेहता, कबीर, हरिदास जी आदि ने हरिनाम जपकर ही भगवान् का दर्शन किया है। त्रेतायुग में महाराज खटवांग् ने दो घड़ी में भगवान् का दर्शन किया था।

पर यह भगवत्–दर्शन होगा कैसे ? श्रीकृष्ण अर्जुन को बोल रहे हैं–

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 3.37)

''रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही बाद में क्रोध का रूप धारण करता है। यह कभी भी भोगों से न अघाने वाला और बड़ा पापी है। इसको ही तू इस विषय में वैरी (शत्रु) जान।''

इस काम वैरी को मार। इसका अर्थ है–इच्छाओं का दमन। संसार की आसक्ति का न होना। जब संसार की आसक्ति ही मन में नहीं रहेगी तो भगवान् को उपलब्ध करना बहुत सुगम हो जायेगा। ये फंसावट (आसक्ति) ही भगवान् और जीव के बीच में दीवार का काम कर रही है। जब इन इच्छाओं से हृदय रूपी मंदिर खाली हो जायेगा तो भगवान् बड़ी शीघ्र आकर हृदय के सिंहासन पर विराजमान हो जायेंगे।

संसार की यह चल और अचल आसक्ति ही माया की सशक्त बेड़ी है, जो जीव के पैरों में बंधी पड़ी है। इस बेड़ी को खोलने में कोई भी सक्षम नहीं है। माया की इस सशक्त बेड़ी को खोलने में श्रीनृसिंह भगवान् ही सक्षम हैं क्योंकि उनका अवतार भक्तों की हर प्रकार से रक्षा करने हेतु हुआ है। माया इनकी दासी है और इस दासी को दूर करना उनके लिये बहुत आसान है।

हर साधक को चाहिये कि वह भगवान् श्रीनृसिंह के चरणों में बैठकर हरिनाम की कुछ मालाएं उच्चारणपूर्वक, कान से सुनकर करे। यह परमावश्यक है। श्रीनृसिंह भगवान् न केवल हमारे विघ्नों का विनाश करते हैं बल्कि भक्ति मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करके शुद्ध–भक्ति भी प्रदान करते हैं। उनका आविर्भाव ही भक्तों की रक्षा के लिये हुआ है। रात को सोते समय, प्रातः काल उठते ही तथा दिन में दो बार (अपनी सुविधानुसार) श्रीनृसिंहदेव जी की स्तुति अवश्य करें। इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा।

श्रीनृसिंह देव जी की स्तुति

इतो नृसिंहः! परतो नृसिंहो! यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो! हृदये नृसिंहो! नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।।1।।
नमस्ते नृसिंहाय प्रह्लादाह्लाददायिने।
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटंकनखालये।।2।।
वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे।।3।।
श्रीनृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह।
प्रह्लाद्देश! जय पद्मा मुखपद्यम् भृंग।।4।।

इसी प्रकार से श्रीहरिदास जी, श्रीगणेश जी, श्रीमहादेव जी तथा श्रील गुरुदेव के चरणों में बैठकर कुछ मालाएं करना परमावश्यक है। ये सभी नामनिष्ठ हैं। श्रीहनुमानजी भी नामप्रेमी हैं। इनके चरणों में बैठकर श्रीहरिनाम करो। हरिनाम को कान से सुनने से स्वतः ही भगवत्–रूप हृदय में प्रकट हो जायेगा। शास्त्र का उदाहरण है–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।

किसी भी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर, हरिनाम करते हुये यही मूक प्रार्थना करनी चाहिये कि मेरा मन संपूर्ण रूप से हरिनाम में लग जावे। श्रीहनुमान जी सभी संसारिक संकट हरने वाले हैं और हरिनाम करने में जो संकट आते हैं, विघ्न आते हैं, उन्हें श्रीनृसिंहदेव ही हटा सकते हैं क्योंकि माया इनके चरणों की दासी है।

कलियुग में इस धरातल पर भगवान् नाम रूप में पधारे हैं। जो साधक कान से सुनकर नाम बोलता है, वह इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्ण–प्रेम प्राप्त कर लेता है। नाम–भगवान् से साधक जो कुछ भी मांगता है, नाम–भगवान् उसे वही पदार्थ देते हैं क्योंकि भगवान् का नाम वांछाकल्पतरु है। चारु चिंतामणि है लेकिन नाम, निरंतर हो तथा भक्त–अपराध न हो।

सभी ग्यारह इन्द्रियों को भगवान की सेवा में लगाने से इसी जन्म में भगवान् दर्शन दे देते हैं। प्रश्न उठ सकता है कि इन ग्यारह इन्द्रियों में उपस्थ इन्द्री भी आती है। यह इन्द्री भगवान् की सेवा में कैसे लग सकती है। इसका उत्तर है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से तथा कीर्तन में नृत्य करने से उपस्थ इन्द्री भी भगवान् की सेवा में लग जाती है।

इसकी सेवा तो अन्य दसों इन्द्रियों की सेवा से अधिक हो जाती है। जिह्वा द्वारा पेट को रूखा–सूखा आहार, कम मात्रा में देने से यह इन्द्री भी सेवा में लग जाती है। कम आहार खाने से मन की चंचलता कम हो जाती है तथा शरीर भी स्वस्थ रहता है। यह शरीर मोक्ष का द्वार है। शरीर बिगड़ जाने से साधक मन लगा कर भक्ति–पथ पर नहीं चल सकता। पेट से रसेन्द्रिय का सीधा संपर्क रहता है इसलिये हमारे पूर्व गुरुवर्ग रात में भोजन नहीं करते थे तथा 2–3 बजे रात में जगकर हरिनाम स्मरण किया करते थे। प्रातःकाल 7–8 बजे स्नान करने के बाद ही संध्या–वंदन किया करते थे। साधक को उनके अनुगत में ही अपना जीवन बिताना चाहिये।

जब उपरोक्त प्रकार से भजन–साधन होता है तो शर्तिया अष्ट–विकार होना शुरू हो जाता है। जब अष्ट–विकार होने लग जाता है तो साधक बिलख–बिलख कर रोने लग जाता है तब गुरुदेव तथा भगवान् उसे अपना संबंध ज्ञान करा देते हैं। संबंध ज्ञान दास का, दोस्त (सखा) का, भाई का, माँ–बाप का, शिष्य मंजरी का, आदि–आदि का उस साधक के हृदय में बिठा दिया करते हैं। कोई भी साधक उक्त प्रकार से साधन करके देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती।

अब ध्यान देकर सुनिये। जब आप भगवान् का दर्शन करने के लिये मंदिर जाते हो तो इन चर्म नेत्रों से दर्शन नहीं हुआ करते। इनसे तो जड़ दर्शन ही होते हैं। असली दिव्य दर्शन तो हृदय के भाव–नेत्रों से होते हैं। मूक प्रार्थना ही दिव्य होती है जिससे भगवान्

के नैन चलते हुये तथा मूक प्रार्थना का जवाब देते हुये भक्त को महसूस होता है। जब ठाकुर जी के सामने सभी का नृत्य होता है, वह नृत्य हृदय से नहीं होता, वह शरीर से होता है। अतः किसी को भी पुलक व अश्रुपात नहीं होता। ठाकुर जी की जो सेवा मन से नहीं होती, वह सेवा भी बनावटी होती है। सेवा प्रेम सहित हो तो पल–पल में पुलक होने लगे।

जब किसी साधक की नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला होने लग जाती है तो उसकी सेवा भी रसमयी होती जाती है। साधक को छुप–छुपकर रोने, पुलक का भाव प्रकट होने लग जाता है। जब अधिक भाव से हरिनाम में मन रमने लग जाता है तो हृदय से रोने का विस्फोट हो जाता है। फिर उसे रोका नहीं जा सकता। साधक भाव में तल्लीन हो जाता है। फिर उसे कोई भक्त कहे या अभक्त, उसके बस की बात नहीं रहती क्योंकि उसके मन का तार ठाकुर जी के तार से जुड़ जाता है। फिर तो रोने का तांता लग जाता है। फिर उसे यह संसार सूना–सूना दिखाई देने लग जाता है या संसार में खुशियाँ ही खुशियाँ नज़र आने लगती हैं। वह ऐसी मस्ती में घूमता है जैसे कोई मादक रस पीकर अलमस्त हो जाता है। यह मस्ती अलौकिक हुआ करती है जिसे कोई बता नहीं सकता, अकथनीय है।

जब भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। भक्त भगवान् से पूछता है कि आप क्यों रोते हो? भगवान् जवाब देते हैं कि मैं इसलिये रोता हूँ कि तू मुझे रुलाता रहता है। तेरा मेरा (Connection) संबंध जुड़ा हुआ है। तू नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ। तू मौन धारण करता है तो मैं भी मौन धारण कर लेता हूँ। तू मुझे जो भी आदेश करता है मुझे उस आदेश का पालन करना पड़ जाता है क्योंकि मैं मजबूर हूँ।

मेरे गुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं कि यदि साधक–भक्त 10 दिन उक्त प्रकार से ठाकुर जी का दर्शन लाभ करता है तो वह रोये बिना नहीं रह सकेगा। शर्त यह है कि उससे भक्त अपराध न हुआ हो। भक्त–साधक भगवान् से कहता है कि मेरे प्राणनाथ! मेरी

अहंकार, घमंड, गर्व से रक्षा करना वरना मैं आपके चरणों से दूर हो जाऊँगा। मेरी प्रतिष्ठा होगी तो मेरा पतन हो जायेगा। भगवान् भक्त–साधक को इसका भी जवाब देते हैं।

भगवत्–कृपा से जिसको प्रतिष्ठा ज़हर लगेगी तो वह सबके सामने खुलकर रोवेगा जैसे श्रीगौरहरि सबके सामने ज़ोर–ज़ोर से बिलख–बिलख कर रोते थे। उनके रोने से पशु, पक्षी तथा हिंसक जानवर तक बेहाल हो जाते थे। रोना एक छूत का रोग है। पास वाले को भी लगकर रुला देता है। जो भक्त के रोने को झूठा या बनावटी समझने लगे वह ठाकुर जी का घोर वैरी हो जाता है। उसका लक्षण सबके सामने आ जाता है। उसे कोई बीमारी पकड़ लेती है, हरिनाम में अरुचि हो जाती है। ज्ञानमार्ग या कर्ममार्ग में चला जाता है। घर कलह का स्थान बन जाता है। माँ–बाप, भाई–बहन तथा सगे–संबंधी भी शत्रुता करने लग जाते हैं। इस प्रकार वह सारा जीवन तड़पने में ही व्यतीत करता है। उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती जैसा कि प्रत्यक्ष में हो भी रहा है।

इन्द्र कुलिश मम सूल बिसाला।
कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहिं मरहिं।
साधु द्रोह पावक सो जरहिं।।
जो अपराध भक्त कर करहिं।
राम रोस पावक सों जरहिं।।

यह भगवान् शिव का वचन है। पावक ऐसी आग है जो लोहे को भी पिघलाकर पानी बना देती है। ऐसा अपराधी उसी समय नहीं मरता। जिन्दगी भर अशांति में रहता है। इसलिये कहा गया है कि करोड़ों में से कोई विरला ही भगवान् को प्राप्त करता है। इस मार्ग में कांटे ही कांटे हैं। इनसे पार होना बड़ा मुश्किल है। अतः भक्त–अपराध से बचकर रहना चाहिये। इससे बड़ा कोई अपराध नहीं है। भक्त का थोड़ा सा अपराध भी भगवान् को सहन नहीं होता। भक्त चाहे कितना ही बड़ा हो अपराध होने पर वह भी नहीं

बचेगा। दुर्वासाजी भगवान् शंकर के परम् भक्त थे। वे कोई छोटे–मोटे ऋषि नहीं थे फिर भी अम्बरीष महाराज के प्रति अपराध करने पर उन्हें कितना दुःख उठाना पड़ा। अपनी रक्षा के लिये भगवान् के पास गये तो भगवान् ने यह कह दिया कि मेरा हृदय तो अम्बरीष ने ले रखा है। मेरे पास नहीं है। क्षमा तो हृदय से होती है। अतः तुम अम्बरीष के पास, उसके चरणों में पड़कर क्षमा मांगो तब ही मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारा पीछा छोड़ेगा। इसके बिना तुम्हारे बचाव का और कोई उपाय नहीं है। यह उपाय भी मैंने बेमन से बता दिया है। मैं बताना तो नहीं चाहता था क्योंकि तुम शिवजी के भाई हो, इसलिये बता दिया। जब दुर्वासाजी ने अम्बरीष जी से क्षमा मांगी तब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासाजी का पीछा छोड़ा। इसलिये भक्त–अपराध से हमेशा बचो। श्रीभगवान् स्वयं बोल रहे हैं कि यदि मेरा हाथ भी भक्त अपराध कर देवे तो मैं इस हाथ को भी काट दूँगा। इससे ज्यादा कौन क्या कह सकता है ?

मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को चेता (सावधान कर) रहे हैं कि जो शुभ अवसर आपको मिला है, वह फिर भविष्य में नहीं मिलेगा। एक तो कलियुग में जन्म दिया जिसमें भगवत्–प्राप्ति बहुत सरल एवं सुगम है। दूसरा, भारतवर्ष में जन्म दिया जहाँ भगवान् अवतार लेते हैं, जहाँ गंगा, यमुना, राधाकुण्ड व श्यामकुण्ड आदि में स्नान करने से पापों से निवृत्ति होती है। तीसरा, भक्त के घर में जन्म हुआ चौथा श्रीसद्गुरु की प्राप्ति और श्रीगौरहरि की गुरु–परम्परा से जुड़ना और पांचवा शुद्ध–सत्संग का उपलब्ध होना। यह कोई कम शुभ–उपलब्धि नहीं है फिर भी समय को बर्बाद करके, दिल दहला देने वाले नरकों की यातनाओं की ओर जाना। कितने दुर्भाग्य की बात है!

बहुत सारे भक्त पूछा करते हैं कि हमें तो श्रीगुरुदेव जी ने एक लाख (64 माला) हरिनाम करने को नहीं बोला है। इस बात का उत्तर यह है कि श्रीसद्गुरु जानते हैं कि मेरा शिष्य एक लाख (64 माला) नहीं कर सकेगा और मेरे आदेश का पालन न होने से उसे

गुरु की अवज्ञा का अपराध लगेगा और वह घोर अपराधी बन जायेगा। इसलिये सोलह (16) माला जपने के लिये कहा करते हैं और शुरु-शुरु में सोलह (16) माला जपने के लिये ही आदेश दिया करते हैं।

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु, जो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, आज से लगभग 528 वर्ष पहले जब वे इस धरातल पर अवतरित हुये तो उन्होंने सबसे बड़ा आदेश यही दिया कि सभी साधकों को हर रोज़ एक लाख (64 माला) हरिनाम अवश्य करना है। उन्होंने 63 माला जपने की भी इज़ाज़त नहीं दी। 64 माला (एक लाख) हरिनाम नित्य करने से नौवां (9 वां) अपराध नहीं लगेगा जो अनमने मन से जाप होता है और मन कहीं पर जाता रहता है।

श्रवण का अर्थ-कान से सुनना, जिस दिन 64 माला न हो सके तो अगले 5-7 दिन में इस संख्या को पूरा किया जा सकता है परन्तु संख्या में कमी नहीं होनी चाहिये। सभी गुरुवर्ग ने केवलमात्र हरिनाम का ही सहारा लिया और वर्तमान में भी जो मौजूद हैं, वे भी केवल मात्र हरिनाम पर ही निर्भर रहते हैं। मेरे श्रील गुरुदेव, परमाराध्यतम् श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, इस्कान के संस्थापकाचार्य श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी महाराज, श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी, श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज तथा नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी-सभी ने श्रीहरिनाम का ही सहारा लिया। सिक्खों के सभी गुरुओं ने भी नाम का सहारा लिया। मुसलमान भी अल्लाह के नाम की माला जपते रहते हैं। भगवान् के नाम के बिना तो धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से श्रील सच्चिदानंद भक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित जो 'श्री हरिनाम चिंतामणि' ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसके पृष्ठ संख्या 176 पर अंकित है कि साधक को चाहिये कि वह संख्या को बढ़ाने के चक्कर में न पड़े और दिव्य अक्षरों का

स्पष्ट रूप से उच्चारण करता रहे। यह बात बिल्कुल ठीक है परन्तु यह आदेश किसके लिये है ? जो अभी–अभी इस परंपरा से जुड़े हैं या अभी नए शिष्य बने हैं वे नाम को बोझ समझ/भार समझ कर न करें इसलिए उन्हें शुरु–शुरु में नित्य 16 माला जपने का आदेश दिया जाता है। धीरे–धीरे अभ्यास बनने पर स्वतः ही शुद्ध नाम होने लगेगा और समय भी कम लगेगा।

क्योंकि मैं पिछले लगभग 59 वर्ष (सन् 1952) से हरिनाम कर रहा हूँ, इसलिये मेरा स्वयं का अनुभव है। अब मेरा एक लाख नाम (64 माला) केवल तीन घंटे में पूरा हो जाता है और वह भी शुद्धतापूर्वक। श्री जौहर जी, मथुरा के श्री रमेश जी, श्री सपरा जी तथा हरिहरदास जी को सामने बिठाकर मैंने एक लाख (64 माला) हरिनाम तीन घंटे में पूरा किया है। किसी–किसी को तीन या चार घंटे भी लग सकते हैं। चौबीस घंटों में तीन घंटे जाप के लिये कोई भी दे सकता है।

जब अभ्यास हो जायेगा तो इसमें शुद्धनाम भी उच्चारण होगा। धर्म ग्रंथों में लिखा है कि हरिनाम कैसे भी किया जाये। शुद्ध हो या अशुद्ध या खंडित हो या अधूरा हो इसमें कोई नुकसान नहीं होगा। भगवान् तो साधक का भाव देखते हैं। श्रीमद्भागवत् (6–2–14) में वर्णन है।

साकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनाम ग्रहणम शेषाघ हरं विदुः।।

''संकेत, परिहास, स्तोभ या अनादरपूर्वक भी किया हुआ भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश कर देता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जला देती है, उसी प्रकार जाने–अनजाने में भी लिया गया भगवान् पुण्यश्लोक का नाम पुरुष की पापराशि को भस्म कर देता है। अग्नि पुराण में लिखा है कि जो लोग 'हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

का अवहेलनापूर्वक भी उच्चारण करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। इसमें संदेह की कोई गुंजाईश नहीं है।

शुरु-शुरु में साधकों को 64 माला (एक लाख हरिनाम) करने में 8-10 घंटे लग जाते हैं इसलिये साधक कुछ दिन में परेशान हो जाता है और हरिनाम करना छोड़ देता है परन्तु इसमें भ्रमित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् शिव का वचन है–

भाव कुभाव अनख आलसहुं।
नाम जपत मंगल दिशि दसहुं।।

श्रीहरिनाम चिंतामणि में नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी नाम अपराधों को त्यागने का उपाय बता रहे हैं–

अविश्रान्त नामे नाम–अपराध याय।
ताहे अपराध कभु स्थान नाहिं पाय।।

'' नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहने से सारे अपराध चले जाते हैं और निरंतर हरिनाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं रहता।''

जब भक्त–साधक हरिनाम स्मरण कम करेगा तो वह आगे सात्विक अष्ट विकारों की उपलब्धि नहीं कर सकेगा और जब तक उसका अश्रु पुलक नहीं होगा तब तक वह भगवान् से संबंध–ज्ञान उपलब्ध कर ही नहीं सकता। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि राम या कृष्ण का पूरा उच्चारण न भी हो तो केवल 'रा' या 'कृ' बोलने से ही उसका जाप पूरा माना जायेगा। नाम भगवान् केवल भाव देखते हैं, शुद्धि–अशुद्धि नहीं देखते। शिवजी कह रहे हैं–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।

नाम जपते–जपते स्वतः ही युगल जोड़ी भगवान् प्रकट हो जायेंगे। लेकिन याद रखो–नाम को कान से सुनना परमावश्यक

है। इससे मन की चंचलता सरलता से रुक जायेगी। नाम को कोई सहारा चाहिये। नाम कान द्वारा श्रवण करने के साथ–साथ यदि भगवान् की किसी लीला का चिंतन भी हो सके तो लाभ तुरंत दिखाई देगा।

ध्यान दीजिये। रामचरितमानस भगवान् शिवजी के मन से प्रकट हुई है। बाद में वाल्मीकि और तुलसीदास जी ने सरल भाषा में इसका अनुवाद लिख दिया है। यह केवल भगवान् शिव की देन है। भगवान् शिव नित्य–निरंतर, दिन–रात पार्वती के संग बैठकर रामनाम जपते रहते हैं। जिसकी नाम में रुचि बन गई, उसने तो सारे शास्त्र पढ़ लिये। फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहा। भक्त ध्रुव एवं भक्तप्रवर प्रह्लाद जी ने नाम से ही भगवान् को प्राप्त किया है। भगवान् की प्राप्ति जिसे भी हुई वह केवल मात्र नाम की कृपा के फल से ही हुई भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि तू नाम कर। यही कारण था कि अर्जुन के रोम–रोम से कृष्ण–कृष्ण–कृष्ण की आवाज होती थी।

मेरे गुरुदेव, कितने उदाहरण दे–देकर समझा रहे हैं जिनकी कोई सीमा नहीं है। पर अभागा मानव, फिर भी इस मार्ग पर नहीं चलता। श्रीधन्वन्तरि जी बोल रहे हैंः–

अच्युतानन्त गोविंद नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

''अच्युत, अनन्त गोविंद–इन नामों के उच्चारण रूपी औषधि से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य–सत्य कहता हूँ।''

हरिनाम एक अमर–औषधि है जो अदंर–बाहर के सभी रोगों का नाश करती है। इसलिये हे मानव! तू हरिनाम जप।

इस्कान के संस्थापकाचार्य, श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी महाराज ने, श्री श्रीराधादामोदर मंदिर में सौ करोड़ हरिनाम का पुरश्चरण किया था और उन्होंने सब शिष्यों को बोला है कि हो सके तो नित्यप्रति चौंसठ (64) माला हरिनाम की किया करो। आज भी

कई अंग्रेज–भक्त–साधक एक लाख हरिनाम करते रहते हैं जिसे उनके पास वाले भी सुनते रहते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती प्रभुपाद ने सौ करोड़ हरिनाम के पुरश्चरण का नियम लिया था। उन्होंने बोला है कि यदि कोई सौ करोड़ अस्पताल खोल दे या एक जीव को भगवान् में लगा दे तो एक जीव को भगवान् में लगा देना अधिक महत्वशाली होगा। अस्पताल में तो मनुष्य बीमार होने पर बार–बार जाता रहेगा पर जो जीव भगवान् के धाम चला गया, उसका रोग तो सदा–सर्वदा के लिये ही हट गया। वह तो अमर हो गया।

भक्त को भगवान् से मिलने में एक ही बड़ी रुकावट है और वह है भक्त–अपराध। निरंतर नाम लेने से यह अपराध भी नष्ट हो जाता है। जिस भक्त के प्रति अपराध बना हो उसकी चरणरज, चरणजल सीथ (जूठन) प्रसादी छुपकर लेने से भगवान् भक्त–अपराध को क्षमा कर देते हैं। यह भक्त–अपराध इतना सूक्ष्म होता है कि मालूम ही नहीं पड़ता। किसी से साधु या भक्त की निंदा सुनी तो अपराध बन गया। दूर स्थान पर बैठे किसी संत का अपराध बन गया तो मानसिक रूप से वहाँ जाकर अपराध क्षमा करवाया जा सकता है। इसलिये तो बोला गया है कि कोई विरला ही इस दुःखदाई संसार–सागर से पार होगा। सभी बीच में ही अटक जाते हैं–

कोई तन दुःखी कोई मन दुःखी।
कोई धन बिन भयो उदास।
थोड़े–थोड़े सब दुःखी।
नानक सुखी राम का दास।

श्रीगुरुनानकदेव जी कहते हैं कि जिसे नाम का नशा चढ़ जाता है वह फिर उतरता नहीं–

नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन–रात।

जरा विचार करो कि कितने साधक–भक्त ऐसे हैं जिनका उद्देश्य भगवत्–प्राप्ति का है। ज्यादातर साधक–भक्त अपने घर की परेशानियाँ दूर करने के लिये नाम जपते हैं। ऐसे साधक–भक्तों को नाम में रुचि कम ही होगी क्योंकि उनके मन में संसार का महत्व भगवान् से अधिक है।

इस पुस्तक का नाम **'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'** इसीलिये रखा गया है कि हम अपने आप को टटोलें। अपना आत्म–निरीक्षण करें कि क्या हम सचमुच भगवान् को चाहते हैं? भगवान् को जिसने भी सच्चे मन से चाहा, भगवान् स्वयं उसके पास मिलने आये। भगवान् को ढूँढ़ने उसे नहीं जाना पड़ा। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। आज भी भगवान् भक्तों को मिलते हैं, मिल रहे हैं। चंडीगढ़ में एक भक्त हैं–श्रीदीनानाथ दुग्गल जिनकी आयु 76 वर्ष है। वे एक स्कूल में हैडमास्टर थे। उन्होंने पांचवीं कक्षा तक 'कुंवर–कन्हैया' को पढ़ाया है। मैंने स्वयं वह कापियाँ देखी हैं जिसमें भगवान् ने आपने छोटे–छोटे हाथों से, बच्चों की तरह क, ख, ग तथा 1, 2, 3 लिख रखा है। कापी में लकीरें खीचीं हैं तथा अपना नाम 'कन्हैया' हरे रंग में लिखा है। श्री दुग्गल जी (मास्टरजी) का कमरा भगवान् के चित्रों से भरा पड़ा है और इस आयु में भी वे अपने कन्हैया की सेवा में लगे रहते हैं। उनसे मिलकर तथा उनसे 'कुंवर कन्हैया' की बातें सुनकर कोई भी आश्चर्यचकित हो सकता है।

भगवान् आज भी हमसे दूर नहीं हैं पर उन्हें देखने की हमारे में योग्यता नहीं है। कमी हमारी ओर से है, उनकी ओर से नहीं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
27.04.2009

श्री श्रीभक्तप्रवरगण तथा भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल-चरण में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा प्रेमाभक्ति की अहैतुकी प्रेमावस्था का स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् किसको दर्शन देते हैं?

इस कलियुग में विशेषकर भगवान् उसे दर्शन देते हैंः-

1. जो नित्यप्रति एक लाख (64 माला) हरिनाम प्रेम सहित करता है।

2. जो ब्रह्ममुहूर्त में 2-3 बजे जगकर आदरपूर्वक प्रेमसहित हरिनाम नित्य स्मरण, कान से सुनकर करता है।

3. रात में 2-3 बजे वही उठ सकेगा और हरिनाम कर सकेगा जो रात को सूक्ष्म आहार करता है।

4. जो ग्राम्य-वार्ता (फालतू की चर्चा), संसारी-चर्चा, टेलिविजन, समाचार-पत्र इत्यादि तथा व्यर्थ के स्त्री-पुरुषों के वार्तालाप से दूर रहकर, अपने हरिनाम-साधन में रत रहकर जीवनयापन करेगा।

5.जो पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये दसों इन्द्रियों को भी साधन में रत रखता है।

6. जो पन्द्रहवीं सदी के भक्त-साधकों के अनुगत होकर अपना जीवन-यापन करता है। इसी साधना से जिन्होंने भगवत्-दर्शन लाभ किया है।

7. जो भक्त व भगवान् से प्रेम का संबंध जोड़कर अपना जीवनयापन करता है।

8. जो नाम और नामी में अंतर नहीं रखता वही हरिनाम को अन्तःकरण में रमा सकता है।

9. जिसका मन भगवत् नाम में रम जाता है, वही अपने साधन में सफल होता है।

10. जो प्रत्येक कर्म को भगवान् का ही समझकर करता रहता है वही हरिनाम में मन को समाहित कर सकता है।

11. जो भक्त–अपराध से बचकर सभी जीवों के हित में लगा रहता है वही अंतिम पुरुषार्थ–श्रीकृष्ण–प्रेम का लाभ उपलब्ध करता है।

12. जो हरिनाम–स्मरण को ही प्राथमिकता देता है, वह अपने साधन में भगवत्–दर्शन लाभ उपलब्ध करता है।

13. जो आहार–विहार तथा निद्रा पर अपना प्रभुत्व रखता है वही प्रेमभक्ति लाभ करता है तथा भगवान् का प्रेमी बन जाता है।

14. जो मान–प्रतिष्ठा से घृणा अर्थात् 'तृणादपि सुनीचेन' (विन्नम बने रहना) श्लोक में स्थित रहता है, वही हरिनाम का प्रेमी बन जाता है।

15. जो दूसरों की कटुवाणी (कड़वे शब्द) सहन करने की शक्ति रखता है, वही त्रिलोक विजयी हो जाता है।

16. जो छोटे भक्तों को मन ही मन तथा अपने से बड़े भक्तों को प्रत्यक्ष में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता है तथा सभी को आदर की दृष्टि से देखता है, वही भक्ति पथ पर आगे बढ़ सकता है।

17. जो भक्त व भगवान् की सेवा में तन, मन और वचन से लगा रहता है, वही भक्ति पथ पर चलने की शक्ति रखता है।

18. जो भगवान् के श्रीविग्रह को साक्षात् भगवान् समझकर तल्लीन होकर भावमय दर्शन तथा वार्तालाप करता रहता है वही भगवान् की प्रेरणात्मक आकाशवाणी सुनता रहता है।

19. जो दूसरों में कोई भी दोष नहीं देखेगा, दोष दर्शन से घृणा करेगा वही हरिनाम में रुचि कर सकेगा।

20. जो निमाई–निताई को स्मरण करते हुये हरिनाम करेगा वही मन को बस में कर सकेगा।

21. जो श्रीनृसिंह भगवान् के चरणों में हरिनाम स्मरण करेगा वही भक्तिपथ की बाधाएँ दूर कर सकेगा।

22. जो श्रीगुरुदेव की अमृतमयी वाणी पर अपना जीवन चलायेगा वही भगवत् चरणों में जा पायेगा तथा जन्म मरण रूपी आवागमन के दारुण दुःखों से स्वतंत्रता लाभ कर पायेगा।

उपरोक्त बातों पर अमल करके देख लो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। सच पूछो तो संसार की आसक्ति ही मूल है जो हमें भगवान से मिलने नहीं देती। यही आसक्ति सच्चे साधु (सतगुरु) से हो जाये तो सारा दुःख ही समाप्त हो जाये।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



श्रीगौरहरि घोषणा कर रहे हैं कि जो भी साधक
एक लाख (64 माला) हरिनाम नित्य करेगा,
उसके पास कलियुग आ नहीं सकेगा। यदि आवेगा
तो मैं उसके दांत तोड़कर रख दूंगा।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
01.12.2009

पूज्यपाद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा गुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा उत्तरोत्तर भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक साथ मिलकर प्रत्येक सप्ताह हरिनाम जप करने के महत्व का उत्कर्ष

एक साथ मिलकर जप करने का विधान यह होता है कि कोई भी एक भक्त हरिनाम का उच्चारण करे तथा दूसरे सभी कान द्वारा श्रवण करे। नाम का श्रवण होना परमावश्यक है। नाम हृदय में जाकर जमा होता रहता है अर्थात नाम साध्य को हृदय कमल पर विराजमान करना होता है क्योंकि हृदय ही भगवान् का आसन होता है। नाम साधन भी है और नाम साध्य (भगवान) भी है। नाम का उच्चारण कर श्रवण करना ही साधन है। ऐसा करने से कुछ समय बाद अन्तःकरण में भगवान् का दर्शन होने लगता है। अब मन को स्थिर होने का कारण मिल गया अर्थात भगवान् मिल गये तो मन बाहर कहाँ जायेगा ?

एक साथ हरिनाम का श्रवण करने से भक्तों का **तेज पुंज** आपस में टकरायेगा तो वातावरण शुद्ध बनता जायेगा। जिससे बाहरी वातावरण अंदर नहीं आ सकेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जी श्री निवास जी के घर पर किवाड़ बंद करके हरिनाम श्रवण करते थे। प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है। ऐसा करने से एक दूसरे की तरंगें (Vibrations) आपस में टकराती हैं। एक साधारण सी बात है कि जब एक आदमी को उबासी आती है तो उसके पास बैठे हुये दूसरे

आदमी को भी उबासी आने लगती है। ठीक इसी प्रकार जब एक भक्त को सात्विक–विकार से सुबकियाँ (रोना) आने लगती हैं तो उसके पास में बैठने वालों की भी अश्रुधारा बहने लगती है। यह एक छूत की बीमारी है। यदि अश्रुधारा नहीं भी बहेगी तो भी उस समय मन की स्थिरता अवश्यमेव होगी ही। एक की खुजली, पास बैठे को भी खुजली कर देगी। यह बात शुभ तथा अशुभ दोनों जगह लागू होती हैं।

प्रत्येक सप्ताह मिलकर हरिनाम करने का यह आयोजन यदि एक साल तक चलता रहा और जो भी इस आयोजन में सम्मिलित होगा तो उसका निश्चित रूप से उद्दीपन भाव जागृत हो जायेगा और वह अश्रुधारा में गोता खायेगा। यह मेरे श्रील गुरुदेव की गांरटी है। इसलिये श्री चैतन्य महाप्रभु भक्तों को इकट्ठे करके हरिनाम उच्चारण करवाते रहते थे। भगवान् जगन्नाथ जी के मंदिर तथा गंभीरा (जहाँ महाप्रभु दिन–रात रहते थे) में वे उच्चारण सहित हरिनाम करवाते थे। एक साथ मिलकर हरिनाम करना, द्रुतगति से हरिचरणों में पहुँचना होता है। जहाँ पर ऐसा हरिनाम होता है वहाँ पर कलि महाराज की दाल नहीं गलती। वहाँ कलि का वश नहीं चलता क्योंकि ऐसा हरिनाम शरणागति का प्रतीक है। शरणागति जहाँ हो जाती है, वहाँ माया भी भक्तों की सहायक बनकर स्वयं आयोजन करने में आनंद मानती है। अनुकूल परिस्थितियाँ बनाती रहती हैं। दुःख तो वहाँ से जड़ से खत्म हो जाता है और वहाँ पर शुभ वातावरण का प्राकट्य हो जाता है। दूसरे साधनों से भगवत्–प्राप्ति इतनी जल्दी नहीं होती। इसके ज्वलंत उदाहरण हमारे गुरुवर्ग हैं। नाम के प्रेम के वशीभूत होकर भगवान् को भी भक्तों की खरी–खोटी बातें सुननी पड़ती हैं। वे भी **न्योहारा** खाते रहते थे। भगवान् ने माधवेन्द्रपुरी जी से कहाः– ''मुझे गर्मी लगती हैं चंदन लाकर मेरे तन पर लगाओ।'' और सनातन गोस्वामी से कहाः– ''मुझे अलूणी (बिना नमक की) रोटी नहीं भाती। थोड़ा नमक तो डाल दिया करो। मैं भूखा हूँ। मैं भूख से मर रहा हूँ।''

सनातन गोस्वामी जी कहते हैं "प्रभो! आज नमक माँग रहे हो कल सब्जी और परसों मिष्ठान माँगोगे। प्रभो, मेरी आपसे निभने वाली नहीं है। आपको जहाँ ये सब मिले, जहाँ सुविधा हो, वहाँ चले जाओ पर मुझे भजन करने दो। मेरे भजन में रोड़ा मत बनो।"

यह है हरिनाम का उत्कर्ष प्रभाव नाम के बल पर भगवान् खिंचे आते हैं। वह रह ही नहीं सकते।

हरिनाम का श्रवण होना बहुत जरूरी है। अच्छी तरह श्रवण न करने से जब संसार (लौकिक) के काम बिगड़ जाते हैं तो पारलौकिक काम कैसे सफल हो सकते हैं। श्रवण से ही इस संसार और त्रिलोक का काम होता है। श्रवण के बिना तो सब गर्त में चला जायेगा। शास्त्र का वचन है कि सत्संग श्रवण करो। नाम श्रवण करो। इन्द्रियों में से सबसे महत्वपूर्ण इन्द्री कान ही तो है। इसी ने हमें मायाजाल में फँसा रखा है और यही मायाजाल से निकालकर आगे आनंद सिंधु में डुबो सकता है। उदाहरण से समझना होगा। शौनकादि ऋषियों ने सूत गोस्वामी जी से कथा श्रवण की। देवर्षि नारद जी ने सनकादिक जी से भागवत्–कथा श्रवण की। महाराज परीक्षित ने श्रील शुकदेव गोस्वामी जी से भागवत् कथा श्रवण की। श्री विदुर जी ने मैत्रेय जी से कथा श्रवण की। गरुड़ जी ने काकभुषुण्डि जी से राम कथा श्रवण की। कहाँ तक गिनायें। ऐसे अनंत उदाहरण हैं जहाँ श्रवण से ही उद्धार हुआ है। सारांश यह है कि श्रवण करना ही सर्वोच्च है। देखने से नहीं कान द्वारा किया गया श्रवण ही हृदयगम्य होता है।

श्री हरिनाम का यह साप्ताहिक आयोजन एक प्रकार से तप तथा त्याग का प्रतीक है। इसका मुख्य उद्देश्य केवलमात्र ही नाम जपना है। सामूहिक रूप से मिलकर ही हरिनाम जपना। जो भी भक्त इस आयोजन में शामिल होंगे उन्हें शत–प्रतिशत (100%) लाभ मिलेगा।

कोई भी आयोजन भले ही वह लौकिक हो या पारलौकिक, एक सीमा में ही होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह एक न

एक दिन बंद हो जायेगा। कोई भी काम जब सीमा से बाहर जाकर किया जाता है तो वह अधिक दिन तक नहीं चलता। अतः इस आयोजन को चलाने वाले भक्तों से मेरी प्रार्थना है कि आप जहाँ तक हो सके, प्रसाद को कम से कम रखें। जो आपने पेट भर कर प्रसाद पाने का नियम लिया है यह नियम अधिक दिन नहीं चलेगा। इसके बहुत सारे कारण हैं जिससे कोई भी इस आयोजन को करवाने में कतरायेगा। किसी के घर में छोटा बच्चा है। किसी के घर में कोई बीमार है। किसी की आस्था में कमी है। किसी के घर में पैसे की कमी है। कोई विद्यार्थी है, वह भरपेट कैसे खिला सकेगा। कोई असमर्थ है। पाँच सौ रूपये से कम में तो प्रसाद पवाना हो ही नहीं सकता। घर की स्त्रियाँ तो प्रसाद बनाने में ही लगी रहेंगी। हरिनाम नहीं कर सकेंगी। उन्हें हरिनाम से वंचित रखना और दुःखी करना भी अपराध है। यदि यह सिस्टम यूँही चलता रहा तो प्रसाद पाना ही मुख्य हो जायेगा तथा नाम जपना गौण हो जायेगा। इसलिये यह आयोजन ऐसा होना चाहिये कि किसी को भी कोई परेशानी न हो, दुःख न हो। यदि यह आयोजन एकादशी के दिन होता है तो उस दिन तो 12 बजे के बाद ही फलाहार होगा। उस दिन पेट भर कर प्रसाद पाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर हर एकादशी को तो छुट्टी नहीं होगी। इसलिये इस आयोजन के लिये रविवार का दिन ही सर्वोत्तम है। उस दिन सबको छुट्टी होती है। शांतिपूर्वक इस आयोजन को किया जा सकता है। एक महीने में चार बार यह आयोजन होता है। इस आयोजन में प्रसाद तो सबको जरूर देना है पर सूक्ष्म हथेली पर देना है जैसे मिश्री भोग, बत्तासे, केला इत्यादि। **प्रसाद तो कणिकामात्र भी वही है, भगवान को भोग लगाना तो जरूरी है।** प्रसाद पाने से मन सुधरता है। हरिनाम का कान से श्रवण ही मन को पकड़ता है। श्रवण के अभाव में मन भटक जाता है। मन की भटकन ही संसार में फँसाती है। कान द्वारा श्रवण ही भगवत्–प्राप्ति कराता है। श्रवण से ही सुख और श्रवण से ही दुःख की प्राप्ति होती है। कान द्वारा गाली श्रवण करने पर

झगड़ा, दंगा–फसाद और कान द्वारा हरिनाम श्रवण से प्रेम का उद्गम होता है। भगवान शंकर से श्रीराम कथा का श्रवण करके माँ पार्वती ने अपना जीवन प्रेमानंद में बिताया।

सारा बखेड़ा (झगड़ा) ही श्रवण का है। जिसने इसका महत्व जान लिया, वह माया के पंजे से छूट गया। जब जीभ से हरिनाम का उच्चारण करते हैं और कान से हरिनाम का श्रवण करते हैं, तो घर्षण होता है। उससे विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। कोई भी इसे आजमा कर देख सकता है। यह चमत्कार एक दो दिन में तो नहीं होगा पर निरंतर अभ्यास करने पर एक दो महीने बाद प्रत्यक्ष में होने लगेगा। कितना सरल एवं सुगम उपाय आपको बता दिया पर अभागा मनुष्य, फिर भी इस दुःख सागर से निकलना नहीं चाहता। परवाह नहीं करता। यही विडम्बना है।

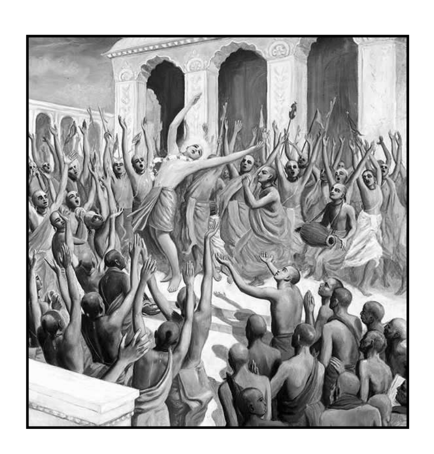
हरिनाम साधन भी है और साध्य भी। अब इस बात को गहराई से मन लगाकर समझना होगा कि यह कैसे हो सकता है।

हरिनाम साधन कैसे हुआ ? जीभ से उच्चारण से यह साधन हुआ जीभ किसे बोलती है ? जिससे अपना कोई मतलब निकालना होता है। वह कौन है ? वह हैं हमारे आराध्यदेव–हरिनाम। अब हरिनाम साध्य कैसे हुआ ? कान से श्रवण से साध्य हुआ। श्रवण किसको किया जाता है ? जिससे अपना मतलब निकालना होता है। इससे स्पष्ट हो गया कि जब तक जीभ हरिनाम का उच्चारण करेगी, तब तक आराध्यदेव हरिनाम का संपर्क होता रहेगा, तो लौकिक अर्थात् संसारी संपर्क समाप्त होता रहेगा। हमारे अन्तःकरण में एक समय में ही संपर्क रह सकता है–या लौकिक या पारलौकिक।

अतः सिद्ध हो गया है कि नाम के श्रवण से आराध्यदेव हरिनाम का संपर्क एक क्षण के लिये भी दूर नहीं होगा। फिर लौकिक संपर्क वहाँ कैसे टिक सकता है, कैसे रह सकता है। यही है आसन सिद्ध होने की स्थिति। इसके बाद आती है हरिनाम की करुणा। उसके बाद इष्टदेव हरिनाम का ध्यान, उसके बाद समाधि–हरिनाम की

तुरीय अवस्था। जब समाधि की स्थिति उपलब्ध हो जाती है तो मन अपने आप ही स्थिरता प्राप्त कर लेता है। इसके पीछे सभी इन्द्रियाँ निष्क्रिया हो जाती हैं। अतः सिद्ध हो गया कि नाम साधन भी है और साध्य भी। यही है अभ्यास तथा वैराग्य का सच्चा प्रतीक।

आपका शुभचिंतक : **अनिरुद्धदास**



श्रीचैतन्य-अवतारे बड़ विलक्षण।
अपराध सत्त्वे जीव लभे प्रेमधन।।47।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार में एक बहुत ही विलक्षण बात है कि अपराध रहने पर भी जीव प्रेम-धन को प्राप्त कर लेता है।

निताई चैतन्य बलि 'जेइ जीव डाके।
सुविमल कृष्णप्रेम अन्वेषये ता' के।।48।।

जो जीव "हा निताई! हा चैतन्य!" कहकर पुकारता है,
सुविमल कृष्णप्रेम उसे ढूँढता-फिरता है।

(श्रीनवद्वीप धाम माहात्म्य)

सार-चर्चा

भगवान् का स्मरण या उन्हें याद करना ही शास्त्रों का मार्गदर्शक है। राक्षस भगवान् को शत्रु समझ कर याद करते थे। पूतना ने कान्हा को मारने के लिये सबसे पहले याद किया कि उस कान्हा को, मैं अपने स्तनों में हलाहल विष लगाकर दूध पिलाऊँगी तो कन्हैया मर जायेगा। शूपर्नखा ने भगवान् श्रीराम को देखा तो सोचा कि राम कितने मनमोहक हैं। यदि इनसे मेरा पाणिग्रहण (विवाह) हो जाये तो कितना अच्छा हो। उसने भी भगवान् राम का स्मरण किया। फलस्वरूप पूरे रावण वंश का उद्धार हो गया। भीलनी हमेशा भगवान् को यह सोचकर याद करती रहती थी कि वे कभी तो मेरी कुटिया पर आयेंगे। और घटना घटी। भगवान् श्रीराम भीलनी की कुटिया पर आये, जब बिछुड़ने लगे तो भीलनी ने भगवत् चरणों में अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। द्रोपदी ने भगवान् गोविंद को याद किया, स्मरण किया, पुकारा तो भगवान् ने भरी सभा में उसकी लाज बचाई। भीष्म पितामह ने अर्जुन को अगले दिन मार देने का प्रण किया तो पाण्डवों ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। भीष्मपितामह अर्जुन का बाल भी बांका न कर सके।

शास्त्रों में ऐसे अनंत उदाहरण हैं जिससे पता चलता है कि माया से बचने का सर्वोत्तम उपाय है–भगवान् को याद करना, उनका स्मरण करना भगवान् तो केवलमात्र भाव ही देखते हैं। वैसे भी, किसी भी भाव से जीव उनको याद तो करे, भगवान् इतने दयालु हैं कि उसे अपना लेंगे। अपना बना लेंगे। शिशुपाल ने तो भगवान् श्रीकृष्ण को सौ गालियाँ दी थीं फिर भी भगवान् ने उसे सद्गति दे दी क्योंकि उसने सौ बार भगवान् को बड़ी तल्लीनता से याद किया। पूतना को तो भगवान् ने अपनी माँ वाली गति प्रदान की। अतः निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् के पास जाने का सर्वोत्तम मार्ग उन्हें स्मरण या याद करना ही है। स्मरण करने से संसारीवृत्ति विलीन हो जाती है और केवल भगवत् याद ही मुख्य रह जाती है। भगवान् का सबसे अधिक स्मरण व याद उनके नाम

लेने से ही हो सकता है। नाम को निरंतर श्रवण करना पड़ता है। श्रवण से निरंतर उनकी याद बनी रहती है। बीच में कोई रुकावट नहीं आती। भगवत्–प्राप्ति का इससे बढ़कर सरल उपाय और कोई नहीं है। भगवान् की याद या स्मरण ही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये बार–बार इसी बात पर जोर दिया जाता है कि हरिनाम को कान से सुनते रहो। ऐसा करने पर माया के पिंजरे से बाहर निकल जाओगे, जन्म–मरण के दारूण दुःख से बच पाओगे–इस बात की शत–प्रतिशत गारंटी है।

सभी शास्त्रों तथा सत्संगों का यही सार है, निचोड़ है। कलियुग में इसके बिना भगवत्–प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है। इसलिये इसे अन्तःकरण में रमाकर इस दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करना चाहिये। यदि इस अवसर से चूक गए या इसे यूंही गंवा दिया तो बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा। इसलिये दृढ़तापूर्वक, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने में जुट जाओ और कान से सुनते रहो। भाव कोई भी हो, मंगल ही मंगल होगा।

भाव–कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

मेरे श्रील गुरुदेव, शिक्षा गुरुओं तथा वैष्णवजनों की कृपा से मेरा एक महीने में लगभग एक करोड़ हरिनाम स्मरण होता रहता है। पूरे परिवार में हर दिन मेरे बिना तीन लाख हरिनाम हो जाता है। कुल मिलाकर छः लाख हरिनाम प्रतिदिन हमारे यहाँ होता रहता है। इस प्रकार एक महीने में एक करोड़ अस्सी लाख हरिनाम स्मरण होता रहता है। सभी परिवार हरिनाम के नियम को अपनायें। यही सर्वोत्तम है। यही मेरी आप सबसे प्रार्थना है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

= श्री हरिनाम की महिमा =

1. एक करोड़ जप से	–	सुस्ती जावे।
2. दो करोड़ जप से	–	रोग न आवे।
3. तीन करोड़ जप से	–	मन लग जावे।
4. चार करोड़ जप से	–	विरह हो जावे।
5. पाँच करोड़ जप से	–	मन अकुलावे।
6. छः करोड़ जप से	–	नींद भाग जावे।
7. सात करोड़ जप से	–	परमानंद पावे।
8. आठ करोड़ जप से	–	दुर्गुण भाग जावे।
9. नौ करोड़ जप से	–	सद्गुण आवे।
10. दस करोड़ जप से	–	भाव उपजावे।
11. ग्यारह करोड़ जप से	–	संबंध बन जावे।
12. बारह करोड़ जप से	–	प्रेम उपजावे।
13. तेरह करोड़ जप से	–	दर्शन पावे।
14. चौदह करोड़ जप से	–	आवागमन मिट जावे।
15. पन्द्रह करोड़ जप से	–	गोलोक पठावे।
16. सोलह करोड़ जप से	–	सेवा पावे।
17. सत्रह करोड़ जप से	–	अमर हो जावे।

नोट–

★पर ये हरिनाम नामापराध रहित लेना होगा।

★★मान-प्रतिष्ठा को छोड़कर लेना होगा।

★★★स्मरण सहित लेना होगा।

7

श्रीश्री गुरुगौरांगौ जयतः

10.01.2009
छींड की ढाणी

श्री श्रीभक्तप्रवर, स्नेहास्पद तथा भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरण में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

मन स्थिर क्यों नहीं होता ?

श्री गुरुदेव सभी भक्तजनों पर कृपा करके, मन स्थिर न होने के कई कारण मुझ नराधम से लिखवा रहे हैं।

साधक ध्यान से इन्हें पढ़े। श्रील गुरुदेव द्वारा बताये हुए आदेश का पालन करें। मन अवश्य स्थिर होगा।

1. भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि मन को संसारी आसक्ति से हटा कर आध्यात्मिकता की ओर लगा। बार-बार अभ्यास करने पर कुछ समय बाद मन स्थिर हो जायेगा। आज तक जो मन स्थिर नहीं हुआ, उसका एकमात्र कारण है-सांसारिक आसक्ति। अस्सी वर्ष की आयु हो चुकी, बुढ़ापे ने आकर घेर लिया। एक आसन पर बैठकर हरिनाम स्मरण करना अब बस की बात नहीं रही। शरीर अस्वस्थ हो गया। रोगों ने आक्रान्त कर दिया। मौत सामने मुँह फाड़े खड़ी है। कभी भी निगल सकती है। फिर भी सांसारिक आसक्ति नहीं छूटी। भगवान् के चरणों में मन को नहीं लगाया। इस जन्म का दुरुपयोग किया है। इसका खामियाज़ा (नुकसान) तो भुगतना ही पड़ेगा। मन को खींचते-खींचते सारा जीवन बीत गया पर मन स्थिर नहीं हुआ। अब मन को क्या खींच पाओगे। अब तो मौत ही तुम्हें खींचकर ले जाने वाली है।

2. मन स्थिर हो सकता है। हरिनाम में मन लगता है पर

साधक हरिनाम में मन को लगाना ही नहीं चाहता क्योंकि उसने अभी तक नाम का मूल्य नहीं समझा है। उसकी नाम में पूर्ण श्रद्धा नहीं है। शास्त्र का वचन है–

जाना चाहिये गूढ़ गति जेऊ।
जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।

जब संसार के कामों में मन स्थिर हो सकता है तो हरिनाम में क्यों नहीं हो सकता। अभ्यास करने पर स्वाभाविक ही मन स्थिर हो जायेगा। परीक्षार्थी परीक्षा में तीन घंटे तक मन को स्थिर करके बैठता है। वाहन (ड्राईवर) यदि मन को स्थिर करके गाड़ी न चलाये तो किसी दूसरे वाहन से टकरा जाये। बैंक के कैशियर (खज़ानची) का मन यदि स्थिर न हो तो उसे अपनी जेब से भुगतान करना पड़ जाये। वास्तव में हम हरिनाम में मन लगाना ही नहीं चाहते।

3. सच्चा ज्ञान नहीं है। कपट ज्ञान से बोलता है अतः मन कैसे स्थिर हो सकता है।

4. हरिनाम स्मरण हेतु कम से कम तीन घंटे आसन पर नहीं बैठता। इसलिये मन स्थिर नहीं होता। मन तभी स्थिर हो सकता है जब आसन जीत लिया जाये। ध्यान, धारणा, समाधि, क्रम से हरिनाम स्मरण सुचारु रूप से हो सकता है।

5. अज्ञानता के कारण मनुष्य सोचता है कि भगवान् को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। वह दुःख को भी सुख मानकर जीवन–यापन करता रहता है। अतः मन स्थिर नहीं होता। यही माया का खेल है।

6. कुसंग की उपलब्धि तो हर क्षण होती रहती है। पर सत्संग लवमात्र (थोड़े से समय के लिये) भी नहीं मिलता। ऐसे दूषित वातावरण में हरिनाम में मन लगाने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

7. भौतिक चिंताएँ (संसार, घर–परिवार की चिंताएँ) जीव के पीछे लगी रहती हैं। ऐसे में उसे भगवान् कहाँ याद आ सकते हैं ? मन कैसे स्थिर हो सकता है।

8. शरीर को रोगों ने जकड़ लिया है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता वहाँ मन कैसे स्थिर हो सकता है।

9. धन के अभाव के कारण हर समय परिवार को पालने की चिंता लगी रहती है। धन की कमी के कारण परिवार में आपस में लड़ाई–झगड़ा, कलह होता रहता है। वहाँ पर मन कैसे स्थिर हो सकता है।

10. आहार–विहार दूषित होने से मन स्थिर नहीं रह सकता। जैसा खाओ अन्न। वैसा होवे मन। सच्चाई की कमाई ही मन को स्थिर कर सकती है।

11. मन में त्याग की भावना नहीं। कोई तप नहीं। रात को भोजन कम नहीं करता। तीन–चार बजे उठकर हरिनाम स्मरण नहीं करता। इसलिये मन स्थिर नहीं होता।

12. आलस्य व विश्राम भक्ति माँ के शत्रु हैं। मन कैसे स्थिर होगा ?

13. भगवान् के प्रसाद में पूर्ण श्रद्धा नहीं। स्वाद रूप से भोजन होता है इसलिये इंन्द्रियाँ चंचल रहती हैं। अतः मन स्थिर नहीं रहता।

14. भक्त अपराध तथा ठाकुर सेवा अपराध भी मन को स्थिर नहीं होने देता।

15. श्रील गुरुदेव को हृदय से साक्षात् भगवान् का प्रेमीजन नहीं मानना तथा उनके आदेश की अवहेलना करना। यह भी मन स्थिर नहीं होने देता।

16. तन, मन, धन से साधु सेवा न करना भी मन को स्थिर नहीं होने देता।

17. दूषित वातावरण से दूरी बनाकर रखें तथा इन्द्रियों को कुमार्गगामी न बनायें तो मन स्थिर हो सकता है।

18. सच्चे मन से सदैव मौत को याद रखें–मन स्थिर हो जायेगा।

19. सच्चे मन से यह मान लें कि यह संसार दुःखों का घर है। मन स्थिर न होने से यह जीवन दुःखी हो जायेगा और आवागमन भी नहीं छूटेगा। मन स्वतः ही स्थिर हो जायेगा।

20. भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बोला है कि मन मैं ही हूँ। इसलिये यह मन मुझे दे दो। जो कोई मान–प्रतिष्ठा चाहता है, वह अहंकारी होगा और अहंकार भगवान् का शत्रु है। अहंकारी का मन कैसे स्थिर हो सकता है ?

21. अभ्यास करने से मन स्वतः ही लग जाता है मन को लगाना नहीं पड़ता। सांसारिक आसक्ति को मन से निकालना होगा, तभी मन स्थिर होगा।

22. आत्मा रूप में भगवान् हर जीव में विराजित हैं इसलिये सबके प्रति दया भाव रखो। मन स्वतः ही स्थिरता प्राप्त कर लेगा।

23. जिस साधक का नित्य प्रति एक लाख हरिनाम जप होता है फिर भी मन स्थिर नहीं होता, उसे कोई चिंता नहीं करनी चाहिये। जन्म–मरण से उसका छुटकारा निश्चित है। उसका नामाभास ही हो रहा है इसलिये भगवत्–प्रेम नहीं होगा। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णन है कि अजामिल नामाभास से ही तर गया। इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने एक लाख (64 माला) से कम हरिनाम करने की छूट किसी को नहीं दी क्योंकि एक लाख (64 माला) से कम करने पर आवागमन नहीं छूटेगा।

मन स्थिर करने से सिद्धि उपलब्ध हो सकेगी। यदि इस जीवन में मन स्थिर नहीं हुआ तो यह दुर्लभ मानव–जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा। जिसने भी मन को स्थिर किया, उसने ही सब कुछ पाया है। ध्रुव जी ने मन स्थिर करके मंत्र जाप किया और ध्रुवलोक को प्राप्त किया। प्रह्लाद जी महाराज ने मन स्थिर किया तो उनका

बाल भी बांका नहीं हुआ। ब्रह्मा जी ने मन स्थिर करके तप किया, भगवान् का ध्यान किया तो सृष्टि की रचना कर सके।

भगवान् शिव उमा सहित सदा राम नाम जप करते रहते हैं। हनुमान जी महाराज नाच–नाच कर श्री राम जी के कीर्तन में मग्न रहते हैं। और देखियेः–

1. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाये चले श्री राम।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।
2. मनस्थिर करि तब शंभु सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना।।
3. जब ते सती जाय तन त्यागा।
तब ते शिव मन भयऊ विरागा।।
जपहि सदा रघुनायक नामा।
जहं तहं जाय सुने गुण ग्रामा।।
4. पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जहि नाम जप लोचन नीरू।।(भर)
5. सादर सुमिरन जो नर करहि।
भव वारिध गौपद इवतरहिं।।
6. बैठ देखि कुशासन जटा मुकुट कृशगात
राम राम रघुपति जपत स्त्रवन नैन जल जात।।
7. जपहिं नाम जब आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होय सुखारी।।
8. नाम सप्रेम जपत अनयासा।
भक्त होय मुद मंगलवासा।।
9. मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नैन भए नीरा।
ताकि करूं सदा रखवारी।
जिमि राखहिं बालक महतारी।।
10. मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये जोग जप ज्ञान विरागा।।

सारा खेल ही मन का है। मन न लगे तो कुछ भी उपलब्धि नहीं होगी। न संसारिक (लौकिक) न पारलौकिक। संसारिक आसक्ति न रहने पर पारलौकिक आसक्ति (भक्ति) निश्चित मिलेगी। यह शत्–प्रतिशत् सच्ची बात है। इसलिये संसार में रहो। संसार के कर्म करो परन्तु उनमें फँसो मत। जिस प्रकार कोई कर्मचारी आसक्ति रहित होकर अपना कार्य करता है, उसमें फँसता नहीं। उसी प्रकार गृहस्थी को चाहिये कि वह गृहस्थ के काम करे पर उनमें फँसे नहीं मन स्थिर हो जायेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि इन इन्द्रियों में मन मैं हूँ। जब मन भगवान् हैं तो भगवान् की कृपा बिना, गुरु कृपा बिना, किसी नामनिष्ठ की कृपा बिना, स्थिर कैसे रह सकता है ? मन का स्थिर होना (रुकना) कृपा साध्य है। इस मन ने अनादिकाल से चंचलता धारण कर रखी है। यदि इस जीवन में भी इसे रोका न गया तो मरने के समय यह कैसे रुकेगा ? आवागमन कैसे छूटेगा ?

इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी ने सभी जीवों पर दया करके हमें एक अति सुगम साधन बता दिया है जिससे हमारा आवागमन छूट जायेगा और वह साधन क्या है ? नित्यप्रति एक लाख (64 माला) हरिनाम करना। भले ही कोई गृहस्थी हो, ब्रह्मचारी हो, वानप्रस्थी हो या संन्यासी हो। कोई भी हो। उसे एक लाख हरिनाम नित्य करना ही है ताकि इस कलिकाल में साधक इस घोर दुःखालय से मुक्त हो सके। नामनिष्ठ को लेने भगवान् अपने पार्षदों को नहीं भेजते, स्वयं लेने आते हैं। भगवान् ने कहा कि नामनिष्ठ को अपने गोलोकधाम में मैं स्वयं ले जाऊँगा। यह महाप्रभु की गारंटी है। महाप्रभु जी ने जो अमूल्य पुस्तक लिखी थी और जिसे गंगा जी में सिर्फ इसलिये फैंक दिया था क्योंकि उसे देखकर विश्वविजयी पंडित को दुःख हुआ था। यदि वह पुस्तक उपलब्ध होती तो एक लाख हरिनाम जप की महिमा, हरिनाम जप का मूल्य दृष्टिगोचर होता।

महाप्रभु के समय में कुछ गृहस्थियों ने उनसे प्रार्थना की कि गृहस्थ के कामों में हमें इतना समय नहीं मिलता कि हम एक लाख हरिनाम कर सकें, थोड़ा कम कर दो तो महाप्रभु ने कहा कि एक लाख से कम हरिनाम करने वाले का उद्धार नहीं होगा।

हमारे गुरुवर्ग ब्रह्ममुहूर्त में तीन बजे उठकर हरिनाम करते थे। इसलिये ब्रह्ममुहूर्त में उठकर हरिनाम करो। समय मिलेगा पर यह तभी होगा। जब रात का आहार कम होगा।

जो जीव "हा निताई! हा चैतन्य" कहकर पुकारता है, सुविमल कृष्णप्रेम उसे ढूँढ़ता-फिरता है। अपराध उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। निर्मल कृष्णप्रेम में उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगती है। थोड़े ही समय में अपराध अपने आप दूर भाग जाते हैं। हृदय शुद्ध हो जाता है और उसमें प्रेम की वृद्धि होती है।

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

नवयुवकों के लिए मूल्यवान शुभ संदेश

ब्रह्मचर्य पालन ही अमृत है, ब्रह्मचर्य नष्ट ही मृत्यु है.

इस भगवत् सृष्टि में जिन्होंने अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उन्होंने ही जगत में अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष का अर्जन किया है। जिन्होंने इसकी (वीर्य की) रक्षा नहीं की, वह दुःख सागर में जीवन भर भटके हैं। यह अमूल्य धन है। इस धन का उपार्जन करना श्रेयकर है। हनुमानजी, भीष्म पितामह, महावीर आदि ने इसका पालन किया है इसलिये वे आज तक अमर हैं तथा भविष्य में भी अमर रहेंगे।

आजकल के समय का वातावरण इतना दूषित हो गया है कि नवयुवक बेचारे परेशान रहते हैं। खान-पान, पहरावा दूषित है। दूषित विज्ञापन, दूषित चित्र, दूषित गान, दूषित विद्या, गंदे अखबार, अश्लील उपन्यास, गंदी पुस्तकें, ब्लूय फिल्में, कहाँ तक गिनाया जाए कोई सीमा नहीं है। को-एजुकेशन, टी. वी. व मोबाईल ने तो अश्लील की पाठशालाएँ ही खोल रखी हैं। इन सबसे बचने का उपाय भगवत् कृपा से लिखा जा रहा है, इसे नवयुवक अपनाएँ तो कुछ बचाव हो सकता है।

असत्-संग का त्याग करते रहें। गरिष्ठ भोजन कम करें। धार्मिक पुस्तकें पढ़ते रहें। मन को समझाते रहें। वीर्यपात से, शक्ति नष्ट हो जाने से रोगों के शिकार बन जाओगे। ये रोग संतान को भी आक्रान्त करते रहेंगे। हर ठौर पर लज्जित होना पड़ेगा। ऊँचा मुख करके बोल नहीं सकोगे। मुख की आभा नष्ट हो जायेगी। गालों में खड्डे पड़ जायेंगे। हस्तमैथुन की आदत जीवन भर नहीं छूटेगी। स्वप्नदोष होने से कमजोर पड़ जाओगे। पेट की अग्नि मंद

होने से भोजन पचेगा नहीं, कब्ज के शिकार रहोगे। स्मरण शक्ति का नाश हो जायेगा, पढ़ने में मन नहीं लगेगा। दिमाग शीघ्र थक जायेगा। कोई काम करने का मन नहीं करेगा। जो चाहोगे, हस्तगत नहीं हो सकेगा। टी. बी. कैंसर, प्रमेह (शक्ति का पेशाब द्वारा निकलते रहना प्रमेह कहलाता है), बार–बार सिरदर्द रहना, चक्कर आना हर समय दुःखी रहना आदि व्याधियों से आक्रान्त रहना पड़ेगा। बार–बार जुकाम, ज्वर रहेगा। अपनी शक्ति (वीर्य) को रोकने से असीम बलशाली बन जाओगे। भक्ति में मन लगेगा। भगवत् प्राप्ति कर सकोगे। जीवन भर कोई रोग नहीं रहेगा। पढ़ने में सबसे आगे रहोगे। दिमाग तेज़ रहेगा, जो एक बार याद हो गया उसे दुबारा देखना नहीं पड़ेगा। सीनियर ऑफिसर से खुल कर निडरता से बात कर सकोगे। ये गुण ब्रह्मचर्य पालन से अनायास ही उपलब्ध कर सकोगे।

12 साल की उम्र से काम–वासना जाग्रत हो जाती है। इसे शुरु में ही दबा के रखा जाए तो फिर भविष्य में कम सतायेगी। यदि इसे दबाकर नहीं रखा तो काबू के बाहर हो जायेगी। इसे जितना भोगोगे, उतनी तेज़ होगी व जितना दबा के रखोगे, मरती रहेगी। भोगने से कभी स्वप्न में भी कम नहीं होगी।

यह (काम–वासना) संकल्प–विकल्प से जगती है। यह प्रथम चित्त में स्फुरित होती है। इस स्फुरणा को उसी समय नष्ट कर दिया जाये तो फिर यह मन तक नहीं आ सकेगी। यदि नहीं दबाया तो मन में आकर आपको परेशान कर देगी। कभी भी, उपस्थ इन्द्रिय की तरफ नज़र भी नहीं करो, लंगोट भी रखना ठीक है। रात में सोते समय कम से कम दो माला हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र)–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।।

ध्यानपूर्वक जप करके तथा गुरुजी को स्मरण करके सोने से रात में सुखपूर्वक नींद ले सकते हो। स्वप्नदोष से बच सकते हो। इधर–उधर नज़र करना बंद रखो। नीची नज़र से घूमते रहो। संत

सदैव नीची नज़र करके रास्ता चलते रहते हैं। ऊपर नज़र रख कर चलने से पशु–पक्षी, अश्लीलता आदि नज़र आ जाती है। काम को तो इशारा चाहिए, बस इतने से ही वह हावी हो जायेगा और आपको नीचे गिरा देगा। जब तक शादी न हो, सतर्कता से जीवन–यापन करते रहो। ऐसी शिक्षा न तो कोई संत देता है, न दे सकता है। अतः गुरु–प्रेरित होकर ठाकुरजी की कृपा से मैंने देना शुरू किया है। भोले–भाले नवयुवक इसके बारे में क्या जानें, अतः देना पड़ा है।

!! हरे कृष्ण !!

कलियुग के जीवों के
अपराध
असंख्य और भीषण हैं,
गौर नाम
के बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता
इसलिये शास्त्र बार–बार उच्च स्वर
से कह रहे हैं कि गौर नाम के
अतिरिक्त कलियुग के जीवों के
उद्धार
का अन्य कोई भी उपाय
दिखाई नहीं देता,
इसलिये सदैव इस महामंत्र
का जप करते रहो –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

9

मन चाही संतान प्राप्त करने का सरल सुगम साधन

प्रेमास्पद प्रिय युवक गण, सबको मेरा प्रेम सहित
श्रीराधा-गोविंद।

आज तो श्रीगुरुदेवजी ने सब पर अतुल कृपा करने तथा फिर से राम-राज्य फैलाने हेतु साधु-संतान उपलब्ध कराने हेतु नवयुवकों को सरल, सुगम साधन प्रस्तुत किया, जिसकी मेरे माध्यम से उक्त विषय पर नीचे लिखे लेख के रूप में मार्मिक चर्चा की जा रही है। नवयुवक गण इस पर गहरा विचार कर ध्यान दें ताकि स्वयं का भी भला तथा अन्य सबका भी भला हो सके।

मैंने श्रीगुरुदेवजी से हृदय स्पर्शी प्रार्थना की कि आपने पिछले संतान प्राप्ति के लेख में नवयुवकों के लिए बड़ी समस्या खड़ी कर दी। आपने सौ दिन तक दंपति को ब्रह्मचर्य व संयम से रहने तथा दोनों को आधा-आधा लाख हरिनाम नित्य जपने का आदेश दिया था। ऐसा कठिन आदेश तो नवयुवकों के लिए निभाना असंभव ही जान पड़ता है। इतने दिन तक नर-नारी पास में रहते हुए कैसे ब्रह्मचर्य निभा सकते हैं ? हे गुरुदेवजी कृपा करके इसको सरल-सुगम करने की कृपा करें। यह आपकी असीम कृपा होगी।

श्रीगुरुदेवजी ने कहा कि बात तो ठीक ही है। एक तो कलियुग का समय, जिसमें चारों ओर कामदेव का राज्य फैला हुआ है। अतः दम्पति का संयम से रहना असंभव ही है। अब मैं इसे सरल-सुगम बना देता हूँ।

दम्पति 21 दिन तक तो संयम ब्रह्मचर्य से रह ही सकते हैं। दोनों समय (21 दिन तक) दोनों स्त्री-पुरुष दूध तथा इस्बगोल का सेवन करें तथा अधिकतर गुड़ का सेवन करें तो बच्चा पैदा

करने की शक्ति व वीर्य के शुक्राणु बलशाली बनेंगे। इससे बच्चा हृष्ट–पुष्ट, निरोग व बुद्धिमान होगा। इन 21 दिनों में दोनों आधा–आधा लाख हरिनाम जप/ स्मरण करते रहें ताकि स्वभाव में सात्त्विक वृत्ति ओत–प्रोत हो जावे। इससे बच्चा सद्गुणों से ओत–प्रोत होकर प्रकट होगा। इस कलिकाल में सभी तामस वृत्ति से इन्द्रिय तर्पण करते हैं। कोई भी समय का ध्यान नहीं रखता। अतः राक्षस वृत्ति की संतानें उपलब्ध होती हैं, जो माँ–बाप को व दूसरों को दुःख देती हैं। एकादशी, द्वादशी, मंगलवार, किसी भी पर्व व त्यौहार पर, रुग्ण अवस्था में, क्रोध वृत्ति में, बिना इच्छा के, दिन में, दोनों संध्याओं में, ब्रह्ममुहूर्त में, जन्म–मरण में, निर्लज्जता से, मासिक धर्म के समय में संग करना वर्जित है। यदि ऐसा करोगे तो घोर पापी व राक्षस संतान उपलब्ध होगी। जो आपको व स्वयं को घोर दुःख देगी। पिछले युग में बच्चे गुरु आश्रम में धार्मिक ज्ञान उपलब्ध करते थे इसलिए उनकी वृत्ति सात्विक रहती थी अतः उनकी संतान भी देवताओं के समान सुखकारी होती थी। 21 दिन तक संयम व ब्रह्मचर्य का पालन करने व आधा–आधा लाख हरिनाम जप करने के बाद जब भी मासिक धर्म हो तो शुभ दिन देखकर अर्थात् पंचमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चर्तुदशी व पूर्णिमा की रात में शयनगृह को स्वच्छ बना कर धूप, दीप, अगरबत्ती, इत्र आदि छिड़क कर शुद्ध बना ले व उस कमरे में महात्माओं के चित्र लगा लें।

रात में 10 बजे, 12 बजे व 2 बजे प्रसन्न मन से श्रीगुरुदेव व भगवान् या किसी महापुरुष का चिंतन करते हुए संग करें। पुरुष, प्रत्येक संग के बाद थोड़ा गुड़ खा ले, इससे उनमें पुनः संग करने की शक्ति आ जावेगी। संग करने के बाद स्त्री को पूरी रात्रि दाहिनी करवट से ही सोना है। तीन बार संग करने से गर्भाशय में शुक्राणु स्थिरता धारण कर लेंगे व गर्भ अवश्य ही इसी रात में ठहर जाएगा। यदि पुरुष या स्त्री या फिर दोनों को संग करते समय नारीगण (किसी सती–साध्वी स्त्री जैसे अनुसूया, सावित्री आदि)

का चिंतन हो गया तो पुत्री संतान हो जायेगी और यदि किसी महापुरुष का चिंतन हो गया तो पुत्र संतान होगी। स्त्री को संग करने के पहले ही पेशाब कर लेना चाहिए, बीच में या बाद में पेशाब नहीं करना है। संग के तुरंत बाद यदि स्त्री पेशाब कर ले तो गर्भ नहीं रहेगा। यदि ऐसा करेगी तो गर्भवती नहीं हो सकेगी। पुत्री की कामना हो तो स्त्री, संग करने के बाद रात भर दाहिनी करवट से सोये। जैसा चिंतन होगा वैसी संतान गर्भ में आ जायेगी।

मासिक धर्म आरम्भ होने के 4 दिन बाद स्त्री का गर्भाशय बच्चा पैदा करने के लिए शुद्ध हो जाता है। मासिक धर्म आरंभ होने के बाद छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें दिन संग करने से पुत्र होता है। पांचवें, सातवें, नौवें, ग्याहरवें, तेहरवें दिन संग करने से पुत्री होती है। मासिक धर्म आरंभ होने के 16 दिन बाद कभी भी गर्भ ठहरने की कोई संभावना नहीं है।

प्रातः उठते ही स्त्री यदि नित्य–प्रति अपने पति का, किसी महापुरुष का या भगवान् का मुख दर्शन करे तो इस गुण का प्रभाव उसकी संतान पर भी पड़ेगा। उपरोक्त बताए 21 दिनों में ग्राम्य चर्चा, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि से बचकर रहे वरना संतान खराब स्वभाव की होगी। हरिनाम मन लगाकर ही करें।

श्रीगुरुदेवजी ने केवल खास भजन करने हेतु नवयुवकों को यह प्रेरणा दी है कि शादी करते ही संतान प्राप्त करने की शीघ्रता करें ताकि बच्चे पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो जायें व उनकी शादी करने से आपको निवृत्ति मिल जाये तथा थोड़ी उम्र में (लगभग 50 वर्ष) स्वतंत्रता उपलब्ध करके भजन में लग सको। देर में संतान होने से भजन करने का समय नहीं मिलता तथा व्यक्ति स्वयं भी रोगग्रस्त हो जाता है जिससे ये अमूल्य मानव जन्म बेकार चला जाता है। फिर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ जाता है। अतः यह उपरोक्त आदेश गुरुदेव की असीम कृपा के फल से ही हस्तगत हुआ है।

कहा करते हैं कि पुत्र या पुत्री उपलब्ध होना तो विधाता के हाथ में है, ये बिल्कुल गलत बात है। विधाता अपनी इच्छा से किसी को कुछ नहीं दे सकता। विधाता भी उसके कर्मानुसार ही किसी को कुछ दे सकता है।

श्रीगुरुदेव जी ने कर्म करने का ही आदेश दिया है। जो भी लेख लिखा गया है, ये भी केवल कर्म मात्र ही तो है। मानव अपना भाग्य स्वयं निर्माण करता है। विधाता इसमें क्या कर सकता है ? उदाहरणस्वरूप यदि विद्यार्थी इन्जीनियरिंग पढ़ने के लिए कॉलेज में भर्ती ही न हो तो क्या विधाता उसे इंजीनियर की पदवी दे देगा ? निष्कर्ष ये निकलता है कि कर्मानुसार ही मानव का भाग्य बनता है। कर्म करने में मानव स्वतंत्र है। इसमें कोई भी, यहाँ तक कि भगवान भी हस्तक्षेप नहीं करते। बोए बीज बबूल के तो आम कहाँ से होए ? भक्ति के बिना भगवान कैसे मिल जायेंगे ? यदि ऐसा हो तो कर्म करने का कोई मूल्य ही नहीं रह जाएगा।

भगवान् ने अर्जुन को कर्म करने की आज्ञा दी है। देखा जाए तो कर्म ही भगवान् है–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा
क्यों कर तर्क बढ़ावहिं साखा।

मूल्यवान चर्चा– जगत गुणों से प्रेरित है। कलिकाल तो तामसिक गुणों का भंडार है, अतः तामसिक स्वभाव की राक्षसी संतानों से जगत् भरता जा रहा है, जो सभी ही हिंसा प्रेमी हैं। राजसिक गुणों की संतानें लोभी होती हैं जो लोभ के लिए बुरे से बुरा कर्म करती रहती हैं। तीसरी सात्विक गुण संपन्न स्वभाव की संतानें देवतुल्य स्वभाव की होती हैं जो कुछ–कुछ भगवान् व संतों के संग की ओर मुड़ती रहती हैं। निर्गुण स्वभाव, गुणों से रहित होने से परमहंस, वैरागी स्वभाव की संतानें जन्म से ही भगवान् की ओर मुड़ती रहती हैं लेकिन निर्गुण स्वभाव की संतान करोड़ों में कोई एक ही होती है। जिस स्वभाव में दंपति संग करते हैं, उसी स्वभाव की संतान गर्भ में आकर्षित हो पड़ती है। सतयुग में प्राणियों का

स्वभाव सात्विक था अतः संत–महात्मा व देवता स्वभाव की संतानें प्रकट होती थीं।

पिछले युगों में बच्चा गुरुकुल आश्रम में जाकर 25 साल तक धार्मिक शिक्षा उपलब्ध करता था अतः उसका स्वभाव सात्विक बन जाता था। बाद में गुरु–दक्षिणा देकर कुलीन बालिका से शादी करता था। उनको जवानी में संत–महात्मा संतानों की उपलब्धि होती थी। तामस–राजस वृत्ति के गुण उनमें कैसे रह सकते थे ? वे लोग शीघ्र ही गृहस्थी से निवृत्त होकर भजन–साधन में लग जाते थे व अपने जीवन में ही भक्ति प्राप्त करके भगवान् का साक्षात्कार कर लिया करते थे। श्री गुरु चरणों में रहने से उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता था। आजकल कलियुग का ऐसा दूषित ज़माना आ गया कि कॉलेजों में को–ऐजुकेशन होने के कारण लड़के–लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं। ऐसे में यदि उनकी वृत्ति खराब न होगी तो और क्या होगा ? टी. वी. व मोबाईल उनको खराब करने के खास माध्यम हैं।

अंतिम निष्कर्षः– संग करते समय यदि दोनों को नर का चिंतन हो गया तो पुत्र गर्भ में आयेगा एवं यदि दोनों को नारी का चिंतन हो गया तो पुत्री गर्भ में आयेगी, वरना उक्त आविष्कार गलत हो जायेगा। ये शास्त्रीय सिद्धान्त है। मानसिक चिंतन का कर्म ही प्रधान है।

ये श्रीगुरुदेव की कृपा का अमूल्य धन मैंने नवयुवकों को बांटा है। इस धन को बड़ी सावधानी से संभाल कर रखें तथा बार–बार इस धन का अवलोकन करते रहें तो सदैव सुखी रहोगे तथा नवयुवकगण श्रीगुरुदेव के इस शुभ संदेश को बार–बार अवलोकन करके अमरता को स्वयं भी उपलब्ध करें तथा अपने मित्रों को भी वितरण करके भगवान् की कृपा तथा श्रीगुरुदेव की सेवा का सुयोग प्राप्त करें। प्रार्थना है कि इसका बार–बार अवलोकन करे व जीवन भर इसे संभाल कर रखें क्योंकि बाद में यह उपलब्ध नहीं हो पायेगा।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

एकादशी
22.01.2009

परम पूज्यनीय भक्तप्रवर तथा शिक्षागुरुदेव भक्ति सर्वस्य निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा उत्तरोत्तर भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

नामाभास (अवहेलनापूर्वक) से भी शत-प्रतिशत मुक्ति

जिस प्रकार जाने-अनजाने में कैसे भी कोई अग्नि का स्पर्श करे तो उसका स्वभाव (गुण) है कि वह वस्तु को जला देती है, ठीक उसी प्रकार नाम-नामी हरिनाम का भी स्वभाव है। जाने-अनजाने में कैसे भी मुख से निकल जाये बस, साधक को सुकृति लाभ कर देगा अर्थात् साधु का संग करा देगा। साधुसंग से मानव हरिनाम करने लगेगा। हरिनाम मन से करो या बेमन से करो, मुक्ति का द्वार बना देगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जो असीम दया के अवतार हैं, उन्होंने पापी, अपराधी, पशु-पक्षी, जड़, चेतन, सभी को अपना नाम 'हरि' सुना-सुनाकर भवसागर से पार कर दिया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सभी जनों को नित्यप्रति एक लाख हरिनाम

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जपने का आदेश दिया। उन्होंने कहा जो मेरे आदेश का पालन करेगा वह मेरे शरणागत हो जायेगा और जो मेरे शरणागत हो जाता है, मेरे प्रण अनुसार वह मेरा हो जाता है। उसकी सारी ज़िम्मेवारी मैं लेता हूँ। मेरी माया उसके हर कार्य में सहायता

करती है। यदि साधक का मन हरिनाम में नहीं लगता अर्थात् वह बेमन से ही हरिनाम करता है तो भी वह मुक्ति के पथ पर चला जाता है क्योंकि उसने हर रोज़ एक लाख बार भगवान को याद किया है, पुकारा है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं कि ऐसे नामनिष्ठ का जब अंतिम समय आता है तो मैं स्वयं उसे अपने धाम में ले जाता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मैं अकृतज्ञ कहाऊँगा। मेरा अवतार ही पतितों के उद्धार के लिये होता है। जब कोई एक लाख बार मुझे पुकारता है तो मेरा मन पिघल जाता है मेरा हृदय पसीज़ जाता है। मैं कठोर हृदय तो हूँ नहीं। मैं तुरंत ऐसे जीव को अपना बना लेता हूँ।

नाम तो कैसे भी लिया जाये–मंगल ही मंगल करेगा। एक शास्त्रीय प्रमाण देखिये–

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

गिरते–पड़ते, उठते–बैठते, जगते–सोते या उबासी लेते, कैसे भी हरिनाम मुख से निकल जाये तो नाम के स्वभावानुसार मुक्ति निश्चित् है।

जाको नाम लेत जग माहि।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।।

वास्तव में देखा जाये तो नामाभास की स्थिति में भी बहुत मंगल होता है। एक तो जीव की सुकृति प्रबल होती जाती है। दूसरे सभी प्रकार के पाप नष्ट होते जाते हैं और मनुष्य के अंदर भरी हुई भोगों की वासनायें, छल–कपट व लड़ाई–झगड़े की भावनायें ही खत्म हो जाती हैं। नामाभास पूरे कुल को पवित्र कर देता है और जीव के सभी रोगों का निवारण हो जाता है। नामाभासी व्यक्ति सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से मुक्त होकर पूर्ण शांति को प्राप्त कर लेता है। नामाभास की महिमा का क्या बखान करें। यज्ञ, रक्ष, भूत, प्रेत, ग्रह और अनर्थ सब दूर हो जाते हैं। सभी प्रकार के प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं। सभी वेदों को

पढ़ने, सभी तीर्थों की यात्रा करने तथा अनेक प्रकार के शुभकर्मों को करने से भी अधिक नामाभास का महत्व है। नामाभास इन सभी से श्रेष्ठ है। नामाभास धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को देने वाला है। कहां तक कहें जिसका किसी तरह से भी कल्याण नहीं हो सकता, उसका नामाभास से कल्याण संभव है। विशेषकर इस कलियुग में तो नामाभास से ही वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। नामाभास भी धीरे–धीरे शुद्ध हरिनाम में परिवर्तित हो जाता है। जब शुद्ध नाम होने लगता है तो निश्चित् रूप से श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है।

एक दिन श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् श्री जगन्नाथ के मन्दिर में बैठे थे। उनके भक्त जो भगवान् श्री जगन्नाथ जी का दर्शन करने आते थे, आकर उनके पास बैठ गये। महाप्रभु ने कहा–''आप में से किस–किस का एक लाख हरिनाम हर रोज़ हो जाता है ?'' किसी ने कहा कि हमारा तो हो जाता है तो किसी ने कहा कि बड़ी कठिनाई से होता है क्योंकि घर के कामकाज से फुर्सत नहीं मिलती। कुछ ने कहा कि प्रभो! आप तो दयालु हो। यदि आप हरिनाम की संख्या एक लाख से कुछ कम कर दो तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

महाप्रभु बोले कि यदि आपकी इच्छा बार–बार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने की है तो एक लाख से कम कर सकते हो। जिसको दुःख सागर में गिरना है वह एक लाख से कम करे, उसकी जिम्मेवारी मैं नहीं लेता। पर जिसको इस जन्म में आवागमन के चक्कर से मुक्त होना है उसे एक लाख हरिनाम करना ही होगा और जो एक लाख हरिनाम की संख्या पूरी करेगा, उसकी सारी जिम्मेवारी मेरी है। देखो, ध्यान देकर सुनो। नाम और नामी में कोई अंतर नहीं है। नाम साधन भी है और साध्य भी है, जब साध्य (भगवान्) को एक लाख बार नाम सुनाओगे तो क्या भगवान् के चरणों में शरणागति में कोई कसर रह जायेगी। हरिनाम में मन लगे या न लगे, एक लाख बार नाम लेने से शरणागत का उद्धार तो हो ही जायेगा। एक लाख से कम हरिनाम करने पर साधक का

मन शरणागति का भाव, अनंत जन्मों में भी उदय नहीं कर सकता। इसलिये आप सबको सरल व सुगम रास्ता बता दिया है। याद रखो, एक लाख हरिनाम नित्य होना परमावश्यक है।

दूध पीता बच्चा या गाय का बछड़ा जब माँ–माँ करता है तो माँ उसी वक्त उसके पास आ जाती है जो कि माया मिश्रित है, भौतिकता से लिप्त है। जब इस भौतिक संसार की माँ कई बार पुकारने से आ जाती है तो क्या एक दिन में, एक लाख बार बुलाने पर, पुकारने पर, भगवान् का नित्यप्रति एक लाख बार जप करके क्या भक्त भगवान् को नहीं बुला सकेगा ? जब हम हर रोज़ एक लाख बार उस परमदयालु, दया के सागर, कृपासिंधु को बुलायेंगे तो उसे आना ही पड़ेगा। वह रुक नहीं सकता। इस बात को आजमा कर देख लो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। भगवान् को ढूँढने भक्त को नहीं जाना पड़ता। भगवान् अपने भक्त के पास स्वयं आते हैं। भक्त के पीछे–पीछे गिड़गिड़ाते रहते हैं। वह ठाकुर तो प्रेम का भूखा है। वह प्रेम खाता है और प्रेम भगवान् नाम से ही प्रकट होता है। हमारे पिछले गुरुवर्ग ने नित्य एक लाख नाम जप कर ही ठाकुर जी को रिझाया है। यदि श्रील गुरुदेवजी के आदेशानुसार, श्री हरिनाम का अभ्यास किया जाये तो शत्–प्रतिशत् सफलता की गारंटी है।

कपिल भगवान् अपनी माता देवहूति को कहते हैं कि भक्ति करने का सर्वोत्तम फल यही है कि साधक का मन आराध्यदेव में स्थिरता प्राप्त कर ले। जिसने भी मन को बस में कर दिया उसने भगवान् को पा लिया। मन ही जीव का शत्रु है और मन ही मित्र है। माया में फँसाता है तो शत्रु और भगवान् से मिलाता है तो मित्र है।

नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर महाप्रभु जी को कह रहे हैं कि एक लाख हरिनाम नित्य करने पर उस साधक का उद्धार निश्चित है। एक लाख से कम करने की रियायत (छूट) महाप्रभु जी ने नहीं दी। रात को भोजन करके, ब्रह्ममुहूर्त में उठकर हरिनाम करने से

तीन घंटे में एक लाख हरिनाम हो जाता है। शुरू-शुरू में समय ज्यादा लग सकता है पर लगातार अभ्यास होने पर 3 महीने से छः महीने के बीच तक तीन घंटे में एक लाख हरिनाम पूरा होने लगता है। चौबीस घंटे में तीन घंटे निकाल कर कोई भी आवागमन रूपी दारूण दुःख से छूट सकता है।

यदि किसी नामनिष्ठ का संग मिलता रहे तो यह संख्या पूरी करने में समय कम लगता है। नामनिष्ठ का संग करने पर मन स्थिर हो जाता है और मन स्थिर हो जाने पर कृपा दूर नहीं। प्रेमावस्था भी दूर नहीं। भगवत्-दर्शन भी दूर नहीं। सद्गुण आना भी दूर नहीं। आसक्ति दूर होना भी दूर नहीं। अंदर और बाहर के शत्रुओं का संहार होना भी दूर नहीं। वास्तव में सभी मुसीबतों का बखेड़ा ही खत्म हो जाता है। नाम और नामी में फर्क समझने पर समय अधिक लगता है। इसमें श्रद्धा की कमी है।

श्रील गुरुदेव जैसा लिखवा रहे हैं, वैसा ही मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा भी उद्धार और आप सबका भी उद्धार निश्चित् है।

जिस प्रकार सूर्य उदय होने से पहले ही अरुणोदय (पूर्व दिशा में प्रकाश) होने लगता है और हम समझ जाते हैं कि अब सूर्य भगवान् उदय होने वाले हैं उनके दर्शन अवश्यमेव होंगे, ठीक उसी प्रकार जब नाम का आभास (नामाभास) होने लगता है तो समझना पड़ेगा कि नामी (भगवान्) के दर्शन भी अवश्य ही होंगे। नाम ही तो भगवान् है। नाम का आभास ही भगवत्-स्वरूप है। जब सूर्य दृष्टिगोचर हो जाता है तो सब अंधकार दूर भाग जाता है इसी प्रकार जब नामाभास क्रम से करते-करते अन्तःकरण में शुद्धनाम (स्मरण) उदय हो जाता है तब प्रेम रूपी सूर्य (भगवान्) का दर्शन स्पष्टता से होने लग जाता है। जिस प्रकार सूर्य उगने पर सभी चर अचर आनंद में मग्न हो जाते हैं। इसी प्रकार जब प्रेमावस्था रूपी ठाकुर जी का दर्शन होने लग जाता है तो साधक का अन्तःकरण आनंद में प्रफुल्लित हो जाता है।

निष्कर्ष यह निकला कि नामाभास से भगवत् रूपी प्रेमावस्था उपलब्ध हो जाती है। जिस मानव का नामाभास नहीं होता अर्थात जो मायाजाल में फँसा हुआ है, वह चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। ऐसे मनुष्य को सत्संग न मिलने से यह ज्ञान ही नहीं होता कि भगवान् कौन हैं। जीव क्या है ? ऐसे जीव की मुक्ति कैसे होगी ? मुक्ति क्या है ? मुक्ति वह अवस्था है जो सतो, रजो व तमोगुण से ऊपर है। ये तीनों गुण इसे नहीं व्यापते। मुक्त जीवात्माओं का गोलोक धाम अलग है। भगवत् प्रेमरसिकों का गोलोकधाम अलग है।

इस प्रकार अनंत गोलोक धाम हैं। जिस रस का भक्त होता है, उसी रस वाले गोलोक में उसका पदार्पण होता है। रस भी कई प्रकार के होते हैं। सखा, पुत्र, पिता, मंजरी, सखी, भाई, जमाई इत्यादि भावों के भिन्न–भिन्न गोलोक धाम हैं। वहां पर भक्त को अपने इष्टदेव की सेवा का सुअवसर सुचारू रूप से मिलता रहता है और वहां वह अकथनीय आनंदभोग करते रहते हैं।

सभी चर–अचर प्राणियों के माँ–बाप भगवान् हैं क्योंकि भगवान् ने ही सभी को पैदा किया है। क्योंकि मेरा भगवान् से पुत्र–पिता का संबंध है, मैंने पूछा–''पिता जी! आप **पीताम्बर** क्यों धारण करते हो ?''

भगवान् बोले ''बेटा! मेरी प्राणप्रिया श्री राधा की अंग कान्ति पीली आभायुक्त है, स्वर्णमयी है।

तप्तकांचन गौरांगि ! राधे वृन्दावनेश्वरी।

इसलिये मैं पीताम्बर धारण करता हूँ क्योंकि मुझे पीताम्बर ही प्रेम स्वरूप अनुभव होता है। पीताम्बर धारण करके मैं श्री राधा को सदा अपने अंग संग अनुभव करता रहता हूँ। जिस प्रकार मैं पीताम्बर धारण करता हूँ उसी प्रकार श्रीराधा भी नीलाम्बर धारण करना पसंद करती है। क्योंकि मेरी अंग कांति नीले वर्ण की है इसलिये मैं नीलमाधव के नाम से जाना जाता हूँ। नीलाम्बर धारण करके श्री राधा भी मुझे सदैव अपने अंग संग अनुभव करती रहती

हैं। कभी–कभी मेरे पास होकर भी वे वियोग का अनुभव कर लेती हैं और पुकार उठती हैं–''हे श्यामसुन्दर! आप कहां चले गये ?"

जब श्रीराधा की विरहमयी पुकार मेरे कानों में पड़ती है तो मेरा अन्तःकरण रूपी कलेजा चूर–चूर हो जाता है। तब मैं श्री राधा को अपनी गोद में उठाकर सचेत करता हूँ और कहता हूँ हे राधे! मैं तो तुम्हारे पास हूँ। मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं गया। तुम्हें छोड़कर मैं कहां जा सकता हूँ ?

तब श्रीराधा होश में आती हैं और विरह में पागल सी हुई पूछती हैं– ''आप मुझे छोड़कर कहां चले गये थे ? आपने अभी–अभी आकर मुझे संभाला है।''

''राधे! मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? तुम बिन तो मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता।''

''नहीं! आप निर्मोही हो। आप मुझे एक दिन छोड़कर चले जाओगे और मैं मर जाऊँगी।''

'' नहीं राधे! ऐसा कभी नहीं होगा। तुम्हारे बिना मेरा मरण भी निश्चित् है।''

श्री श्री जीव गोस्वामी जी अपने श्रीयुगलाष्टक में श्री श्रीराधामाधव से प्रार्थना करते हैं–

कृष्ण प्रेममयी राधा, राधा प्रेममयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णस्य द्रविणं राधा, राधायाः द्रविणं हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णप्राणमयी राधा, राधा प्राणमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णद्रवमयी राधा, राधाद्रवमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णगेहेस्थिता राधा, राधागेहेस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।

कृष्णचित्तस्थिता राधा, राधाचित्तस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
नीलांबर धरा राधा, पीतांबर धरो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
वृन्दावनेश्वरी राधा, कृष्णौ वृन्दावनेश्वरः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।

श्रीश्रीगोपालसहस्रनाम में श्री महादेव जी पार्वती को बताते हैं–

संसार सारसर्वस्वं श्यामलं महदुज्ज्वलम्।
एतज्जेतिरहं वन्द्यं चिन्तयामि सनातनम्।।

संसार के सर्वस्व (मूलरूप) अति उज्ज्वलवर्ण (राधा) श्यामलवर्ण (माधव) रूप वन्दनीय सनातन है। इस ज्योति (श्री श्री राधामाधव रूप) को मैं चिन्तवन करता हूँ।

तस्माज्जोतिरभूदद्वेधा राधामाधव रूपकम्

इस प्रकार (भक्त वात्सल्यहेतु से) श्री श्रीराधाकृष्ण रूप एक ही ज्योति (स्वयं प्रकाश) दो रूप से प्रसिद्ध हैं।

राधाकृष्ण स्नेही। एक प्राण दो देही।

एक प्राण होते हुये भी दोनों दो देह धारण करते हैं। उनके अलग होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गौरतेज (श्रीराधा) की पूजा किये बिना मनुष्य श्यामतेज़ (श्रीकृष्णचन्द) की पूजा के लिये अनधिकारी माना जाता है।

कृष्णार्चाया नाधिकारो यतो राधार्चनं बिना।

श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्राणाधिका देवी हैं, इसलिये श्रीराधा का भाव लेकर ही भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीगौरहरि का अवतार लिया है। श्रीराधा मेरे लिये कितनी तड़पती हैं, मेरे विरह में कितनी व्याकुल होती हैं इस भाव को जानने के लिये, उसी आनंद का अनुभव करने के लिये श्रीकृष्ण श्रीगौरहरि बन कर आये।

एक दिन मैंने भगवान् से पूछा– ''पिता जी ! यह बताओ कि इस धरती माता का रंग (प्रकृति, सृष्टि) का रंग हरा क्यों है ? यह

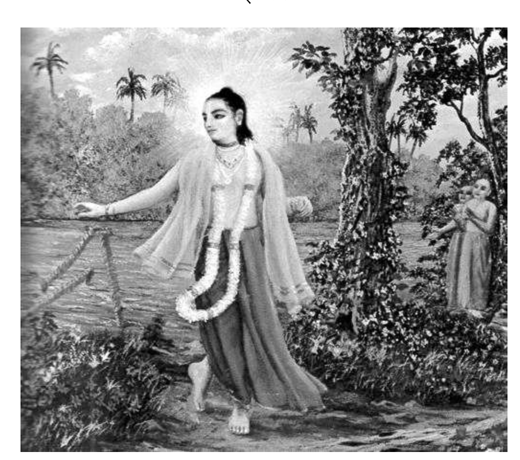
पृथ्वी माता हरे–भरे पेड़ों से ढकी रहती है। हरी–हरी दूब से आच्छादित रहती है ?''

भगवान् बोले– ''बेटा! मेरी सृष्टि का रंग हरा क्यों है इसका कारण यह है कि मेरी अंगकांति नीलवर्ण की है और श्रीराधा की अंगकांति पीतवर्ण की है। जब नीला और पीला दोनों रंग मिल जाते हैं तो हरा रंग बन जाता है। इसलिये सृष्टि का रंग हरा है। इस सृष्टि की चर–अचर हर वस्तु में हम दोनों समाये हुये हैं इसलिये सभी ओर हरा ही हरा रंग दीप्तिमान हो रहा है।''

मैंने पूछा– '' समुद्र का रंग नीला क्यों है ? नीलाचल समुद्र बोला जाता है। जिसका आंचल नीला है, उसे समुद्र कहते हैं। इसी प्रकार आकाश का रंग भी नीला क्यों है ?''

''बेटा! इस पृथ्वी पर तीन भाग समुद्र है तथा एक भाग भूमंडल है। क्योंकि मैं क्षीरसागर में रहता हूँ और मेरी अंगकांति नीली है। मेरी इस नीली अंगकांति के कारण ही समुद्र का पानी नीला दिखाई देता है। तीन भाग समुद्र होने से, समुद्र की परछाई आकाश में जाती है जो नीलवर्ण में समाया हुआ है। समुद्र की इस परछाई के कारण ही आकाश नीला दिखाई देता है। अनन्तकोटि अखिल ब्राह्माण्डों की यही रचना है–ऐसा समझना होगा।''


इति!



11

श्रीश्रीगौरांगौ जयतः

जोधपुर
12.05.2009

पूजनीय भक्तप्रवर तथा शिक्षागुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा भजनस्तर बढ़ने की प्रार्थना।

लौकिक तथा पारलौकिक परीक्षा

राजकीय शासन के शिक्षा विभाग ने एक नियम बना रखा है कि प्रत्येक विषय में अधिकतम अंक 100 (एक सौ) में से 33 (तैंतीस) अंक हर परीक्षार्थी को प्राप्त करने अनिवार्य हैं। तभी उसे उस विषय में पास समझा जायेगा और तभी उसे अगली कक्षा में बैठने का अधिकार प्राप्त होगा। यदि कोई विद्यार्थी किसी विषय में 33 (तैंतीस) अंकों से कम अंक प्राप्त करता है तो उसे फेल कहा जाता है और उसे एक साल तक फिर उसी कक्षा में रख दिया जाता है। परीक्षा में फेल होकर उस विद्यार्थी का न केवल समय बर्बाद हुआ बल्कि अर्थ (पैंसों) का भी नुक्सान हो गया। परीक्षा में फेल होने पर उसे अपने दोस्तों के सामने शर्मिंदा होना पड़ा। मन दुःखी हुआ और परिवार वालों की मेहनत भी बेकार गई।

यदि विद्यार्थी 33 प्रतिशत नंबर लेकर पास हो जाता है तो उसे थर्ड डिवीज़न (तीसरा दर्जा) प्राप्त होता है और यदि वह कम से कम 45 (पैंतालीस) प्रतिशत अंक प्राप्त करता है तो उसे सैंकिड डिवीज़न (दूसरे दर्जे) का सर्टीफिकेट मिलता है। यदि विद्यार्थी कुल अंकों का 60 (साठ) प्रतिशत प्राप्त करता है तो उसे फर्स्ट डिवीज़न (प्रथम दर्जे) का सर्टीफिकेट मिलता है और यदि वह 80 (अस्सी) प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करता है तो उसे Distinction (श्रेष्ठता) का सर्टीफिकेट मिलता है।

जो विद्यार्थी श्रेष्ठता (Distinction) का दर्जा हासिल करता है उसे राजकीय शासन की ओर से शिक्षा विभाग पुरस्कार देता है। यह पुरस्कार उसे किसी भी रूप में दिया जा सकता है। उसकी अगली कक्षा की फीस माफ कर दी जाती है या पुस्तकें पुरस्कार रूप में दे दी जाती हैं। यहाँ तक कि उसकी पढ़ाई का पूरा खर्च भी राजकीय शासन देता है। जब विद्यार्थी अपनी पढ़ाई पूरी कर लेता है तो उसे उच्च पद भी प्राप्त हो जाता है।

उस विद्यार्थी ने मन लगाकर कान से अच्छी तरह सुनकर, समझ कर पढ़ाई की तो ख़ुशियों का खज़ाना उसको मिल गया। सभी लोग उसका सम्मान करते हैं। पैसे की कमी उसे नहीं रहती। कहीं उसका विरोध नहीं होता और उसकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। बड़ा होकर वह अपने परिवार को सुचारु रूप से चलाने में सक्षम हो जाता है।

यह लौकिक परीक्षा पास करने का फल है पर यह फल भी नाशवान् है। एक न एक दिन समाप्त होने वाला है। कुछ समय बाद, इस शरीर के नाश होने के साथ–साथ सब कुछ नाश हो जायेगा। कुछ भी नहीं बचेगा।

यह तो था लौकिक परीक्षा का फल और अब पारलौकिक परीक्षा का फल देखिये। यह फल नित्य रहने वाला (शाश्वत्), सुख–शान्ति प्रदान करने वाला है। यह अमर फल है इसलिये एकाग्रचित होकर इसे मनन करो और अपने अन्तःकरण से इसे उतार लो ताकि सम्पूर्ण दुःखों का जड़ से ही नाश हो जाये।

धर्मशास्त्रों में भगवत्–प्राप्ति के अनेकों साधन वर्णित हैं जैसे योग, ध्यान, निष्काम कर्म, तीर्थाटन, यज्ञ आदि। इन सब साधनों को करने से शरणागति भाव उदय नहीं होता क्योंकि भगवान् प्रेम से मिलते हैं और प्रेम भगवत्–नाम उच्चारण करने से ही प्रकट होता है। भगवान् शंकर ने सौ करोड़ रामायणों में एक भगवत् नाम–'राम' निकाला और इसी 'राम' नाम को भोले नाथ उमा के

साथ हर क्षण जपा करते हैं 'राम' का नाम उच्चारण करने से भगवान् के प्रति शरणागति जगकर प्रेम प्रकट हो जाता है। संबंध ज्ञान हस्तगत हो जाता है।

अन्य भक्ति साधनों में भी केवलमात्र भगवत् नाम का ही प्रभाव है। नाम के बिना कोई भी भक्ति साधन हो ही नहीं सकता। चारों युगों में भगवत् नाम का ही प्रताप है और विशेषकर कलियुग में तो भगवत्–नाम के सिवाय कोई साधन है ही नहीं–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम् जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

श्री हरि का नाम ही, नाम ही केवल नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुग में इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

नाम सबको प्यारा होता है। एक छोटा सा शिशु 'माँ–माँ' बोलकर अपनी माँ को पुकारता है। गाय का बछड़ा 'बां–बां' करके अपनी माँ को अपने पास बुला लेता है। शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। यह समुद्र में आग लगा सकती है। गान विद्या से बादल घिर जाते हैं। वाद्ययंत्र से हिरण खिंचा चला आता है। शिव के तांडव नृत्य के शब्द से प्रलय हो जाती है। नाम (शब्द) के बिना अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों का काम हो ही नहीं सकता। नाम के बिना सब कुछ नाश हो जाये।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु दया के अवतार हैं। महावदान्याय हैं, प्रेमभक्ति के दाता हैं। उनका अवतरण किसी काल में द्वापर युग के बाद हुआ करता है। जो भी सुकृतिशाली जीव इनकी परंपरा से जुड़ गया, इस कड़ी में जुड़ गया, उसका उद्धार निश्चित है। वह भले इस जन्म में हो या फिर अगले 10–12 जन्मों के बाद। परंतु उसका उद्धार अवश्य होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु भाग्यवान् (सुकृतिशाली) जीवों पर दया करने के लिये उस मृत्युलोक में अवतरित होते हैं और सभी को उनका आदेश है कि जो भी साधक 64 माला अर्थात एक लाख हरिनाम नित्य करेगा, उसे '**इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति**' हो जायेगी। यदि वह अनमने मन से भी हरिनाम करता है तो भी नामाभास होने से उसका उद्धार निश्चित है। जब साधक एक लाख बार भगवान् को पुकारेगा, तो भगवान् उसकी ओर खिंचे चले आयेंगे। भगवान् उस भाग्यशाली जीव पर कृपादृष्टि डालते हैं और अपनी कृपा बरसाते हैं। भगवान् बहुत दयालु हैं। वे जीव के अपराध नहीं देखते। वे तो केवल उसके भाव को देखते हैं। वे अवगुण नहीं देखते, केवल जीव के गुण देखते हैं। एक लाख हरिनाम करने पर दस अपराधों में एक नौवां अपराध नहीं होगा।

शुरू–शुरू में साधक का हरिनाम नामाभास पूर्वक ही होगा। उच्चारण सहित एक लाख हरिनाम करने में 6–7 घंटे लग जाते हैं पर 5–6 महीनों के बाद अभ्यास होने पर एक लाख हरिनाम 3–4 घंटों में पूरा हो जाता है। नये साधक को चाहिये कि वह कुछ माला पूर्णशुद्धि से उच्चारणपूर्वक करे और बाद में अभ्यास होने पर अधूरा नाम भी शुद्ध ही माना जायेगा। फिर अशुद्ध उच्चारण होगा ही नहीं।

अर्न्तराष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक आचार्य श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने सौ सौ करोड़ हरिनाम करके पूरी दुनिया में श्रीचैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन का प्रचार किया। हमारे सभी गुरुवर्गों ने महाप्रभु के इस आदेश का नित्य पालन किया है और अपने शिष्यों को भी नित्य एक लाख हरिनाम करने का आदेश दिया है।

अतः सज्जनों! आप सभी सुकृतिशाली भक्तों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि प्रत्येक साधक नित्यप्रति एक लाख हरिनाम (64 माला) जपने का नियम बनाओ ताकि इस जन्म में धर्म,

अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के साथ–साथ पंचम पुरुषार्थ–श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो सके जो इस मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

मन लगे या न लगे, नाम का उच्चारण होना परमावश्यक है। श्रीमद्भगवत् में वर्णन है कि गिरते–पड़ते, उबासी लेते, सोते–जागते, खाते–पीते भी यदि भगवत् नाम सहज में ही निकल जाये तो इस जीव का उद्धार हो जाता है। इसका आशय यह है कि इस तरह उसकी सुकृति उसे साधु से मिला देगी। साधु को मिलने पर वह भजन करने लगेगा और फिर एक दिन उसका उद्धार हो जायेगा।

पिछले गुरुवर्गों का जीवन देखने से पता चलता है कि वे रात दिन हरिनाम करते रहते थे। अंत काल रुग्ण अवस्था में भी खटिया में लेटे–लेटे हरिनाम की माला जपते रहते थे। नास्तिक लोग उन्हें रुग्ण अवस्था में देखकर बोलते थे कि सारी उम्र भजन करने से क्या मिला ? भगवान् की शरण लेने के बाद भी अंत समय में रोगग्रस्त जीवन भोग रहे हो।

इसका उत्तर स्पष्ट है कि जिस प्रकार एक दूध पीता बच्चा खेलता हुआ घर के बाहर निकल जाता है और मिट्टी में लेट जाता है तो उसकी माँ उसे उठाकर, मैल झाड़कर, उसे स्नान कराकर साफ करती है तब जाकर उसे गोद में उठाकर दुग्धपान कराती है। मैले–कुचेले बच्चे को गोद में नहीं उठाती।

इसी प्रकार हरिनाम करने से संतजनों के प्रारब्ध कर्म तो समाप्त हो जाते हैं पर क्रियमाण कर्म बचे रहते हैं। नास्तिक मनुष्य के तो प्रारब्ध कर्म समाप्त होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है परन्तु संत की मृत्यु नहीं होती क्योंकि उसने भगवान् की शरण ले रखी है। उनकी इस शरणागति के कारण ही भगवान् उनके क्रियमाण कर्मों का भुगतान करवा कर, उन्हें बिल्कुल स्वच्छ,निर्मल एवं शुद्ध बनाकर स्वयं अपने संग गोलोकधाम में ले जाते हैं। भगवान् का नाम जपने वाले की यही गति होती है। यही है नामनिष्ठ भक्त की उत्कर्षता। इसलिये भक्तों के लिये यही श्रेयस्कर होगा कि वे

नित्यप्रति 64 माला (एक लाख) हरिनाम अवश्य करें। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्हें आनंद का खज़ाना रूपी सर्टीफिकेट मिल जायेगा।

विश्वविद्यालय के नियमानुसार जब तक युनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त नहीं होती तब तक शिक्षा पूरी नहीं मानी जाती। कोई प्राइवेट तौर पर कितनी भी पढ़ाई करे उसे मान्यता नहीं मिलेगी यदि विश्वविद्यालय द्वारा प्रमाणित डिग्री या सर्टीफिकेट उपलब्ध नहीं होता। लौकिक दृष्टि से यह एक नियम है, कानून है। जिस प्रकार लौकिक जगत् के नियम हैं, उसी प्रकार पारलौकिक जगत् के भी नियम हैं। इसके भी कानून हैं। धर्मशास्त्रों में उनका वर्णन हुआ है कि भगवान् की प्राप्ति कैसे हो सकती है। भगवान् से मिलने के लिये पंचम पुरुषार्थ–प्रेम चाहिये। यह प्रेम भक्ति के अन्य साधनों से नहीं मिलेगा। यदि यह मिलेगा तो केवलमात्र हरिनाम करने से, नाम जपने से, हरिनाम का उच्चारण करके कान द्वारा उसे सुनने से। नाम को कान द्वारा सुनाना बहुत आवश्यक है। जीभ से उच्चारण और कान से श्रवण होने पर दोनों का आपस में घर्षण होगा। यह घर्षण ही विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित कर देगा और अष्ट सात्विक विकार उदय हो जायेंगे।

जब भक्त नाम जपता है, भगवान् को पुकारता है तो भगवान् अपना नाम सुनने के लिये उसके पास आकर खड़े हो जाते हैं। भगवान् भक्त से पूछते हैं– ''आपने मुझे क्यों बुलाया ?''

भक्त कहता है– '' हे प्रभो ! आपसे बिछुड़े हुये अनंत युग बीत गये। हे नाथ ! अब तो मुझे अपना लो। अपनी गोद में उठा लो।''

बस ऐसा भाव आते ही, इस करुण पुकार को सुनते ही अपने आप विरहाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। यह चमत्कार कैसे होगा ? यह होगा कान द्वारा हरिनाम सुनने से, बिना सुने काम बिगड़ जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जो भक्तरूप में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उन्होंने सभी को आदेश दिया है कि तैल धारावत् नित्य–निरंतर भगवान् चरणों में करुण पुकार करते रहो। निरंतर हरिनाम करने से ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। पर शर्त यह है कि नित्यप्रति 64 माला (एक लाख) हरिनाम की जरूर पूरी होनी चाहिये। तिरेसठ माला से भी काम नहीं चलेगा क्योंकि 63 माला करने पर भी हरिनाम पूर्ण नहीं होगा और दस नामापराधों का भय भी बना रहता है। पर एक लाख हरिनाम निरंतर करने से नामापराध स्वयं ही विलीन हो जाते हैं। नाम भगवान् अन्तःकरण में विवेक उदय कर देते हैं।

जो साधक हर रोज़ तीन लाख हरिनाम करता है, उसे भक्त अपराध नहीं व्यापता। यही अपराध सबसे बड़ा और खतरनाक है क्योंकि ऐसे साधक गुण ही गुण दृष्टिगोचर होते हैं और वह भगवान् मिलन का छद्म रूप तथा भगवत् प्रेम बड़ी शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं।

जो समीत आया शरणाई।
ताको राखूं प्राण की नाई।।

डर कर भगवान् की शरण में कौन जाता है? भगवान् की शरण में वही जाता है जो भवसिंधु में गिरा होता है। वही अपनी रक्षा के लिये भगवान् को पुकारता है और कहता है–''हे नाथ ! मुझे बचाओ ! मेरी रक्षा करो।'' जब साधक भगवान् को पुकारता है और कहता है–''हे श्री श्रीराधामाधव ! मुझे अपनी शरण में ले लो'' तो भगवान् उसकी करुण पुकार सुनते हैं। जब भक्त दिन में एक लाख बार उन्हें पुकारेगा तो क्या वे नहीं आयेंगे?

यह जीव अनंत युगों से भवसागर में गोते खा रहा है इसमें डूबता हुआ भगवान् से दया की भीख मांगता है, उन्हें पुकारता है तो ऐसे जीव को, भले ही वह कितना पतित हो, पतितपावन भगवान् शत्–प्रतिशत् अपनी शरण में ले लेते हैं। एक लाख बार नाम उच्चारण से पूर्ण शरणागति मिल जाती है जबकि दूसरे किसी भी

साधन से शरणागति नहीं होती। इस भवसागर से पार होने के लिये केवलमात्र हरिनाम एक ऐसी नौका है जिसमें बैठकर मनुष्य पार हो सकता है।

प्यारे सज्जनों! यह अवसर बाद में नहीं मिलेगा। अभी मौका है। सच्ची नौका आपके पास है। जो भगवान् ने अपने भक्तों के लिये भेजी है। इसलिये। उठो और हरिनाम की इस नौका पर सवार हो जाओ। चूको मत अन्यथा पछताओगे।

कृष्ण कृष्ण परिष्वंग सतृष्णं गौर सुन्दरम्।
धन्य कीर्ति सुतानन्यमन्यं चैतन्यमाश्रये।।

श्री गौर सुन्दर कृष्ण धन्य हैं जो अपने आपको श्री राधा मानकर श्रीकृष्ण का आलिंगन करने के लिये सदा लालायित रहते हैं। मैं उन्हीं श्रीकृष्ण चैतन्य की शरण ग्रहण करता हूँ।

●

नमोऽस्तु नाम रूपाय नमोऽस्तु नामजल्पिने।
नमोऽस्तु नामशुद्धाय नमो नाममयाय च।।

हे नामरूप श्रीकृष्ण चैतन्य, आपको नमस्कार है। हे नाम संकीर्तन कर्ता! आपको नमस्कार है। निज नाम से पावन करने वाले! आपको नमस्कार है तथा हे नाम विग्रह श्रीकृष्ण चैतन्य! आपको नमस्कार है।

हमारे किसी भी मठ में महिलाओं को रात्रि वास करने की व्यवस्था नहीं है। परंतु योग पीठ में, पहले से ही श्रीविष्णुप्रिया-पल्ली व गृहस्थों की कॉलोनी रहने से मैंने इस विषय में बाधा नहीं दी। मिसेस ** कृपा कर वहाँ Hony. Secy. का पद ग्रहण करेंगी यह अच्छी बात है, परंतु मठ में उनका नहीं रहना ही अच्छा है। श्रीयुत ** ये सारी बातें अच्छी तरह से समझते हैं। संन्यासी में थोड़ी सी गल्ती होने या गल्ती नहीं होने पर भी, सीता देवी के कलंक जैसी विभिन्न बातें चल सकती हैं। विद्ध शाक्तगण हमेशा के लिए ही वैष्णव विद्वेषी होते हैं। परंतु

Transcendental Religion
is not meant
for mundane society.

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती
गोस्वामी प्रभुपाद

(श्रील प्रभुपाद की पत्रावली,
तृतीय खण्ड, सप्तम पृष्ठ से उद्धृत)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में
भगवद्-प्राप्ति

भाग - 3



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
5-10-2010

मेरे प्रेमास्पद, भक्तगण,

मुझ अधम का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

भगवान् की अभयवाणी

"मेरे प्रेमास्पद! तू मेरा है। मैं तेरा हूँ। सारा जगत् झूठा है। मैं नामरूप से अवतरित होकर तुझे लेने आया हूँ। तू मेरा नाम ले। तू मेरा नाम ले। तेरा सारा दुःख समाप्त हो जायेगा। तू सदा सदा के लिये आनंद की लहरों में तैरने लग जायेगा। मैं ही तीर्थ हूँ। मैं ही पुण्य हूँ। मेरा नाम ही तपस्या है। मेरा नाम ही परम धर्म है। मेरा नाम ही परमभक्ति है। मेरा नाम ही परमगति है। इसलिये बार-बार तुम्हें एक ही बात कहता हूँ -

मेरा नाम करो। कान से सुनो।"

प्रेमास्पद भक्तगणों! भगवान् की उपरोक्त वाणी पर गंभीरता से विचार करो। भगवान् हमें क्या कह रहे हैं ? सार तत्व क्या है ? इसका मतलब क्या है ?

मेरे गुरुदेव इस बात को समझा रहे हैं! ध्यान से सुनो-"भगवान् कह रहे हैं कि जिसने मेरे नाम का सहारा ले लिया, उसके लिये फिर कुछ करना बाकी नहीं रह गया क्योंकि नाम रूप में भगवान् ही तो साक्षात् विराजमान हैं। नाम और नामी में कोई अन्तर है ही नहीं। जिसने हरिनाम की शरण ले ली, उसे भगवान् की शरण मिल गई और जिसे भगवान् ने अपने चरणकमलों में रख लिया, उसको फिर कुछ भी करना बाकी नहीं रह गया। नाम करने से ही उसे सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।

मेरा नाम करो। कान से सुनो।

इसका मतलब है कि आप –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करो। इसका कीर्तन करो। जब आप जप करो तो मुख से उच्चारण करो। अनुराग से नाम जपो। बड़े प्रेम से जप करो और कानों से सुनो।

Chant Harinam sweetly & listen by ears.

और जब इस महामंत्र का कीर्तन करो तो इसकी ध्वनि से, अपने चारों ओर के वातावरण को कृष्णमय बना दो। सुनने वालों के कान, देखने वालों की आंखें और बोलने वालों का मुख पवित्र हो जाये। सारा वातावरण पावन कृष्ण नाम से गूंज उठे, ऐसा मधुर, मधुरतम्, मधुरातिमधुर कीर्तन करो! इतना मधुर कीर्तन करना, इतना मधुर कीर्तन करना कि सारा संसार उस मधुर रस से सराबोर हो जाये। सारी सृष्टि मधुरतम लगने लगे और उसी माधुर्य रस में हमें अपने प्राणनाथ! अपने प्रियतम्! जीवनधन! प्राणधन! परमधन! श्री श्री राधा गोविंद देव जी की रूपमाधुरी के दर्शन होने लगें।"

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों की रचना से पहले कुछ भी नहीं था। सबसे पहले भगवान् ने अपनी नाभि से एक कमल पुष्प प्रकट किया। उस समय भगवान् क्षीर सागर में शयन कर रहे थे। उस कमल के ऊपर ही ब्रह्मा जी का आविर्भाव (जन्म) हुआ। सृष्टिकर्ता, लोकपाल ब्रह्मा ने देखा कि मेरे चारों ओर जल ही जल है जिसमें बड़ी–बड़ी लहरें उठ रही हैं। तब ब्रह्मा जी ने विचार किया कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? इस बात का पता लगाने के लिये वे कमल की नाल में घुस गये। जहां तक कमल की नाल (डंडी) जा सकती थी, वहाँ तक खोज की पर कुछ भी पता न पा सके। अंत में, वापस आकर कमल के ऊपर बैठ गये और सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? जब वे यह विचार कर रहे थे तभी एक आवाज आई "तप ! तप!"–ब्रह्मा जी ने जब इस आकाशवाणी को

सुना तो समझ गये कि भगवान् मुझे तपस्या करने को कह रहे हैं अर्थात् वह कह रहे हैं कि तू मुझे याद कर।"

तब ब्रह्मा जी ने भगवान् को याद किया और बड़े आर्तभाव से भगवान् के परम, पवित्र, पावन नाम का जप किया। आर्तभाव से, प्रेम से जप करने पर भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने आदेश दिया–"सृष्टि का विस्तार करो।" भगवान् के आदेश का पालन करके, जब ब्रह्मा जी ने सृष्टि का विस्तार करना शुरू किया तो सृष्टि के प्राणी उन्हीं (ब्रह्मा जी) को खाने के लिये दौड़े। तब तो परेशान होकर ब्रह्मा जी पुकारने लगे कि जिसने मुझे पैदा किया है। वह मेरी रक्षा करे। मुझे बचा ले।

तब भगवान् ने ब्रह्मा जी को उस सृष्टि की रचना बन्द करने को कहा और पुनः सृष्टि की रचना करने की आज्ञा दी।

जब ब्रह्मा जी ने बड़ी सोचविचार के बाद पुनः सृष्टि की रचना करनी शुरू की तब उनके मन से नारद जी प्रकट हुये। फिर सप्तऋषियों का प्राकट्य हुआ। इन सप्तऋषियों से सारा संसार भर गया। यहीं से कुल परम्परा का प्रारंभ हुआ। समय के साथ–साथ इन्हीं कुल परम्पराओं का विस्तार होता गया। इन कुल परम्पराओं के अन्तर्गत, यदि कोई अपने कुल में ही शादी–विवाह करता है तो उसे शुद्ध, सात्विक तथा यशस्वी संतान प्राप्त होती है। इसके विपरीत जो दूसरे कुल में विवाह करता है, वह व्यभिचार दोष से आक्रान्त हो जाता है।

सृष्टि के आरंभ में, सृष्टि की रचना मन से हुआ करती थी। कालांतर में स्त्री–पुरुष के संग से संतान की उत्पत्ति होने लगी। इस प्रकार ब्रह्मा जी से कुल परम्परा शुरू हुई। सबसे पहले जो ज्ञान भगवान् ने ब्रह्मा जी को दिया, वही ज्ञान हमें गुरु परम्परा द्वारा आज भी प्राप्त है। ब्रह्मा जी सबसे पहले गुरु हैं। ब्रह्मा जी की इस परम्परा से, जो भी जुड़ जाता है, वह व्यभिचार दोष से बच जाता है। जो इस कड़ी से न जुड़कर दूसरी कड़ी (परम्परा) से जुड़ जाता है, उसे व्यभिचार का दोष लग जाता है। यह शास्त्र का वचन

है। जो इसके अनुसार नहीं चलता, वह दुःख सागर में गोते खाता है।

मानव शांतिमय, सुखी एवं भक्तिमय जीवन जी सके इसलिए श्री भगवान् ने सभी शास्त्रों की रचना अपने मुखारविंद से की है। जो इन शास्त्रों के अनुसार नहीं चलता उसे वर्णशंकरता का दोष लगता है। उसका पतन होने लगता है। ऐसे मनुष्य को कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि विजातीय होने पर सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुख की प्राप्ति तो सजातीय से जुड़ने पर ही हुआ करती है। यदि कोई शास्त्रों की वाणी को न मानकर अपनी मनमानी करता है तो उसे स्वप्न में भी कभी सुख नहीं मिल सकता। विजातीय होना ही दुःख का कारण है।

मेरे श्रील गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट, परमपूज्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज 'विष्णुपाद' ब्रह्मा जी की इसी गुरु परम्परा में आते हैं और मेरे गुरुभ्राता, अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ संस्थान के वर्तमान आचार्य, परम पूज्य ॐ विष्णुपाद 108 त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज, इसी गुरु परम्परा में इस धराधाम पर विराजमान हैं। जो भी साधक इस प्रामाणिक गुरु परम्परा की कड़ी में जुड़ गया, उसका उद्धार अवश्यमेव होगा। वह सदा–सदा के लिये जन्म–मरण के दारुण दुःखों से छूट जायेगा तथा उसे निश्चित् रूप से भगवद्धाम (गोलोकधाम) की प्राप्ति हो जायेगी। यदि कोई प्रामाणिक गुरु–परम्परा में दीक्षित होता है तो पूरी गुरु–परम्परा उसकी रक्षा करती है। उसे शक्ति प्रदान करती है जिसे प्राप्त कर वह अपने जीवन का परमलक्ष्य 'श्रीकृष्ण प्रेम' प्राप्त कर लेता है और अंततः भगवद्धाम को जाता है। पर जो प्रामाणिक गुरु–परम्परा से हट जाता है, जो मुख्य कड़ी से टूट जाता है, उसकी गुरु–परम्परा खंडित हो जाती है। ऐसे मनसुख को सुख की प्राप्ति नहीं होती।

मंदिर बनाने से भगवान् नहीं मिलते। मंदिर तो भगवान् की अर्चना–पूजा का एक दिव्य स्थान है। यदि इन मंदिरों में विराजमान

ठाकुर जी की अर्चना, पूजा प्रेम से नहीं होगी तो अपराध लगता है। भगवान् की पूजा–अर्चना प्रेम से कहाँ होती है? जब तक एक लाख हरिनाम नहीं होगा, कोई भी सेवा या पूजा प्रेममयी व रसमयी नहीं होगी। जब भगवान् ही प्रसन्न नहीं होंगे तो ऐसी पूजा का क्या फायदा! भगवान् हरिनाम से ही प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता का एकमात्र कारण है–हरिनाम। इस कलियुग का एकमात्र धर्म ही प्रेम से हरिनाम करना है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

"कलियुग में हरिनाम, एक मात्र हरिनाम और केवल हरिनाम ही सार है। इसके बिना दूसरी कोई गति नहीं है। नहीं है। नहीं है।"

जब गुरु ही हरिनाम नहीं करेगा तो शिष्यवर्ग की रुचि हरिनाम में कैसे होगी? जब तक स्वयं का आचरण हरिनाम करने का नहीं होगा तब तक शिष्यवर्ग भी हरिनाम का आचरण कैसे करेगा? यदि इस बात को गंभीरता से देखा जाये, इसका सही मूल्यांकन किया जाये, तो सारी तस्वीर सामने प्रकट हो जाये। वास्तव में देखा जाये तो भगवान् को कोई चाहता ही नहीं है। हमारे मनों के भीतर, कंचन (धन–सम्पति), कामिनी (स्त्री–संग) तथा प्रतिष्ठा (नाम कमाने की लालसा) की कामना भरी हुई है। भगवान् के नाम की आड़ में हम अपनी इस छुपी हुई, अत्यन्त सूक्ष्म भावना की ही पूर्ति करते हैं। जो इन तीनों में (कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा) में लिप्त है, वह भगवत् प्रेम से बहुत दूर है। तभी तो भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि करोड़ों में से, कोई एक विरला ही मुझे चाहता है, मुझे प्राप्त करता है। भगवान् की रसमयी सेवा हो, प्रेममयी सेवा हो, इसके लिये सबसे जरूरी बात है कि साधकगण प्रेम से हरिनाम करें, मुख से उच्चारण करें और कानों से सुनें। एक लाख हरिनाम (64 माला) करने के बाद जो भी सेवा होगी, वह रसमयी हो जायेगी और भगवान् ऐसी सेवा पूजा से प्रसन्न हो जाएँगे। मंदिरों का निर्माण इसी उद्‌देश्य से किया गया

है ताकि अधिक से अधिक लोग हरिनाम में लगें, जो इस मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

श्री हरिनाम की शरण लेने से "इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति" हो सकती है जो कि इस पुस्तक का शीर्षक है। हरिनाम की शरण लिये बिना भगवद् प्राप्ति का दूसरा कोई साधन, इस कलियुग में है ही नहीं। दूध को मथने से ही घी निकलेगा। पानी को जितना चाहो, मथो, घी कभी नहीं निकल सकता। यह ध्रुव सत्य है।

यह जीवन अति दुर्लभ है। संसार के प्रलोभनों में फँसकर, हमें न सुख की प्राप्ति होती है और न ही हम अपने समय का सदुपयोग कर पा रहे हैं। जीवन का एक-एक अमूल्य क्षण बड़ी तेजी से बीतता जा रहा है। हर दिन हम मृत्यु की ओर बढ़ते जा रहे हैं, फिर भी हमें होश नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं –

विषय हलाहले, दिवानिशि हिया ज्वले,
मन कभु सुख नाहिं पाय।

मनुष्य सब कुछ जानता है पर जानकर भी अनजान बना हुआ है। यही उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है। अज्ञानता है। उसका दुर्भाग्य है। भगवान् तो दया के सागर हैं और उन्होंने अपनी सारी शक्ति अपने नाम में रख दी है। इस हरिनाम को करने के लिये कोई शर्त नहीं रखी। कोई नियम नहीं। कोई समय की पाबंदी नहीं।

खाइते-शुइते यथा तथा नाम लय।
देश-काल-नियम नाहिं सर्वसिद्धि हय।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

सकल शक्ति देइ नामे तोहारा
ग्रहणे राखलि नाहि काल विचारा
श्री नाम चिन्तामणि तोहारि समाना।
विश्वे बिलाओलि करुणा निधाना।।
तुया दया ऐछन परम उदारा।
अतिशय मंद, नाथ! भाग हमारा।

(श्रीश्रील भक्ति विनोद ठाकुर)

हमारी गुरु–परम्परा में हमारे गुरुवर्ग ने हमें बार–बार चेताया है, जगाया है–'जीव जागो। जीव जागो।' पर हम फिर भी सोये हुये हैं। हे साधकगणो! बहुत समय बरबाद हो गया। अब तो संभल जाओ। जो समय बीत गया वह तो वापस हाथ नहीं आ सकता पर जो थोड़ा–बहुत बचा है, उसका तो सदुपयोग कर लो। अभी भी यदि हरिनाम की शरण ले लोगे तो बेड़ा पार हो जायेगा।

कई कल्प बीत जाने के बाद, कई ब्रह्माओं की जीवन अवधियाँ समाप्त हो जाने के बाद, भगवान् की अहैतुकी कृपा से यह मनुष्य का शरीर मिलता है। आगे जाकर मनुष्य का यह दुर्लभ शरीर कलियुग में ही मिलेगा इसकी भी कोई गारंटी नहीं है। यदि कलियुग में मिल भी गया तो भारतवर्ष में हो, अच्छे कुल–परिवार में हो, अच्छे सत्संग में हो, इसकी भी कोई गारंटी नहीं। यदि मानव शरीर प्राप्त करके कुसंग में फंस गये, फिर भी जीवन व्यर्थ। मनुष्य जन्म भी मिल गया, भारतवर्ष में पैदा भी हो गये, अच्छा परिवार भी मिल गया, सत्संग भी मिला, और सद्गुरु (वैष्णव गुरु) की प्राप्ति भी हो गई, फिर तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा। अन्यथा जो कुछ होगा, जो हो रहा है और जो आगे होगा वह सामने आ जाएगा। प्रामाणिक गुरु की शरण लेकर, उनकी आज्ञानुसार ही भक्ति मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है। मनमानी करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। प्रत्यक्ष में देखने व सुनने में आया है कि जो भी धर्म शास्त्र के विरुद्ध अपना जीवनयापन कर रहे हैं, उनकी दुर्गति आज नहीं तो कल होने वाली है। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं। मंदिर बनाने वाले कई संत जब भी मिलते हैं तो कहते हैं कि हमने मंदिर तो बना लिये हैं वह हमारा हरिनाम तो होता ही नहीं। हरिनाम करने में मन ही नहीं लगता। हरिनाम में रुचि ही नहीं है। इसका एकमात्र कारण यही है कि मंदिर में रसमयी सेवा नहीं हो रही है, इसलिये वहाँ अपराध पर अपराध हो रहे हैं। ऐसे लोगों से भगवान् कोसों दूर हैं।

यदि हरिनाम में मन लग रहा है, बार–बार हरिनाम करने को मन करता है, भजन करने में आनन्द आता है, अष्टविकार पैदा हो रहे हैं, तो घर ही मंदिर है। मंदिरों का निर्माण सुख पूर्वक हरिनाम करने के लिये हुआ है। मंदिर खाने–पीने, सोने या मस्ती करने के लिये या पैसा बटोरकर आराम फरमाने के लिये नहीं है। यह परम पवित्र स्थान, भगवद्धाम की ही प्रतिमूर्ति हैं। यहां आकर यदि भजन नहीं किया तो फिर घर–परिवार छोड़ने का क्या फायदा? इससे तो अच्छा होता गृहस्थ में रहकर भजन करते, साधु–सेवा करते तो भगवान् घर में ही मिल जाते। भगवान् को ढूँढने के लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं है। और यदि ढूँढने जाओगे भी, तो कहाँ ढूँढोंगे उसे? उसे ढूँढ भी सकोगे, इसकी भी क्या गारंटी है? घर में रहकर, अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुये, माता–पिता की सेवा करते हुये, बच्चों का पालन–पोषण करते हुये, अपनी ईमानदारी की कमाई से यथाशक्ति साधु–वैष्णव की सेवा करने से, घर ही स्वर्ग बन जायेगा। सारा परिवार भक्ति में लग जायेगा। जब सारा परिवार भक्ति में लीन होगा तो भगवान् स्वयं अपने भक्तों को ढूँढते–ढूँढते आ जाएंगे। आपको उन्हें ढूँढना नहीं पड़ेगा।

Do not try to see God but work in such a way that God wants to see you.

"भगवान् को देखने की कोशिश न करो बल्कि ऐसे कार्य करो कि भगवान स्वयं तुम्हें देखने आयें।"

भगवान् को प्रसन्न करने की एकमात्र युक्ति है– साधु सेवा। इससे भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक बहुत से गृहस्थी भक्तों को भगवान् मिले हैं। भगवान् ने उनकी रक्षा की है। उनको दुःखों से उबारा है। उनकी लाज बचाई है। भगवान् हम से दूर नहीं है। बेईमानी से धन कमा लिया और इन्द्रियों की संतुष्टि कर ली, विषय–विकारों में जीवन बरबाद कर दिया। ऐसे दुर्भागे को भगवान् कहाँ मिलेंगे?

जयपुर (राजस्थान) के राजा ने मेरे सद्‌गुरु महाराज को मन्दिर बनाने के लिये बहुत अच्छी जमीन देने की पेशकश की थी पर मेरे गुरुदेव ने जमीन लेने से मना कर दिया था। मना क्यों किया ? उन्होंने राजा से कहा, "भगवान् की प्रेममयी सेवा–पूजा करने के लिये मेरे पास भगवत्–प्रेमी संन्यासी नहीं हैं। इसीलिये मन्दिर बना लेने पर भी सुचारु रूप से रसमयी सेवा–पूजा तो होगी नहीं और मुझे जघन्य अपराध लगेगा। इसलिये मैं जमीन लेकर क्या करूँगा। मुझे आपकी जमीन नहीं चाहिये।"

श्रील गुरुदेव की बात सुनकर राजा ने कहा कि संन्यासी तो जमीन लेने के लिये लालायित रहते हैं और आप मना कर रहे हो। मेरे लिये यह आश्चर्य की बात है। मुझे अचम्भा हो रहा है। तब श्री गुरुदेव ने कहा–"मुझे यहां मन्दिर नहीं बनाना है। आप यह जमीन किसी और महात्मा को दे देना।"

इस समय कलियुग का पूरा प्रभाव है। दया, धर्म तो मूलसहित नष्ट हो गया। पैसा ही मुख्य रह गया। थोड़े से पैसों के लिये मानव का गला घोंट दिया जाता है। किसी का डर नहीं, भय नहीं। रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। सब ओर डर ही डर है। पैसे के लिये पुत्र, पिता को और भाई–भाई को मार देता है। शादी–विवाह भी मनमाने ढंग से हो रहे हैं। सजातीय की कमी नहीं है, फिर भी स्वार्थवश, केवल शारीरिक सुंदरता या पैसे के आधार पर स्त्री–पुरुष अपना संबंध बना रहे हैं और पूरी जिंदगी नरक बना रहे हैं। सारा जीवन लड़ाई–झगड़े, मारपीट में बीतता है। तलाक की नौबत आ जाती है। पति–पत्नी का पावन बंधन टूट जाता है। यह सब इसलिये हो रहा है कि हम सजातीय से संबंध नहीं बनाते। कबूतरी का विवाह कौवे से कर दिया जाये तो विजातीय होने से, उन दोनों में प्रेम–संबंध नहीं हो सकता।

राजस्थान में अभी तक कुल परम्परा कायम है। यहां विवाह से पहले लड़के–लड़की की कुण्डली का मिलान किया जाता है तब शादी तय होती है और फिर ऐसा विवाह–बधंन (प्रणय–सूत्र) सदैव

मंगलमयी होता है। ऐसे दम्पति का जीवन आनंदमय बीतता है। सती स्त्रियों का प्राकट्य होता है। मेरे पोते तथा पोती के संबंध को बनाने में तीन साल लग गये। जब कुण्डलियों का मिलान हुआ तो जाकर संबंध पक्का हुआ।

पतिव्रता स्त्री ही पति की सेवा कर सकती है। विजातीय पति–पत्नी के बीच में प्रेम नाममात्र होता है या फिर स्वार्थवश। बड़े–बड़े शहरों तथा गांवों में आज क्या हो रहा है ? स्त्री पति का गला घोंटकर मार देती है। पति उसे पशुओं की तरह मारता है, पीटता है। वर्णशंकर बढ़ता जा रहा है। व्यभिचारियों की कोई कमी नहीं है। सहशिक्षा ने सभी मर्यादाओं को तहस–नहस कर दिया है। टेलीविजन पर मनोरंजन के नाम पर जो दिखाया जाता है, उसे देखकर ही शर्म आने लगती है। पैसे कमाने के चक्कर में धार्मिक कार्यक्रम भी दिखाये जाते हैं जिनमें कार्यक्रम कम, विज्ञापन ज्यादा होते हैं। भगवान् के नाम पर जो परोसा जाता है, जो दिखाया जाता है, वह वास्तविकता से मेल ही नहीं खाता फिर भी, हम अपना पैसा, अपना समय बरबाद कर रहे हैं और नरक में जाने की तैयारी कर रहे हैं।

सजातीय और विजातीय के अंतर को श्रील गुरुदेव एक उदाहरण देकर समझा रहे हैं। जब किसी मरीज में खून की कमी हो जाती है या उसका आपरेशन करना होता है तो डाक्टर मरीज के खून से मेल खाने वाला खून ही चढ़ाता है। उसी ब्लॅड ग्रुप का खून मरीज को चढ़ाया जाता है। दूसरे का नहीं। यदि दूसरे ग्रुप का खून चढ़ गया तो मरीज की मृत्यु हो सकती है। इसलिये उसी ग्रुप का खून होना जरूरी होता है। इसी प्रकार सजातीय (एक ही तरह के) में विवाह होने से ही जीवन सुखमय होगा, विजातीय से नहीं।

यह तो रही विवाह–शादी की बात। यही नियम गुरु–शिष्य पर भी लागू होता है। यदि गुरु–परम्परा से संबंध टूट गया हो, भगवान् श्रीकृष्ण से चली आ रही गुरु–परम्परा में, प्रामाणिक–गुरु से दीक्षा–मंत्र नहीं मिला हो तो ऐसे साधक का गुरु–परम्परा से संबंध

न होने से उसका उद्धार होने में संदेह रहता है ऐसा अप्रमाणिक गुरु शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन करता है। वह गुरु–परम्परा की कड़ी से अलग हो गया। ऐसे अप्रामाणिक गुरु के शिष्य को भगवान् अंगीकार नहीं करते क्योंकि उसने भागवत धर्म को माना ही नहीं। यदि ऐसा शिष्य किसी दूसरी परम्परा से जुड़ गया तो उसे व्यभिचारी दोष अर्थात् वर्णशंकरता का दोष लगेगा। जो भी साधक या वैष्णव, अपनी मनमानी कर मन्दिर बना रहे हैं, शिष्य बना रहे हैं, वे भगवान् के पंचम–पुरुषार्थ 'श्री कृष्ण–प्रेम' अर्थात् अष्ट–विकार से वंचित रह जाते हैं। उनका अगला जन्म मनुष्य का होगा, इसमें भी संदेह रहता है। भागवत शास्त्र का उल्लंघन करने से, वे जघन्य अपराधों में फंस जाते हैं। एक दूसरे की निंदा–स्तुति में लग जाते हैं। इन्हीं दुर्गुणों से उनका पतन होने लगता है। ऐसे साधक का उद्धार होना असंभव ही होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है–"सात्विक अष्ट विकारों का न होना" कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा ही उनकी कमाई है। भक्ति तो उनसे बहुत दूर रहती है। ऐसे लोग इसी जन्म में सद्मार्ग से नीचे गिर जाते हैं और उनका पतन हो जाता है।

कलियुग से बचने का एकमात्र सरल साधन केवल हरिनाम ही है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु जी की वाणी है कि जिसकी हरिनाम में रुचि नहीं, जो हरिनाम नहीं करता उसका उद्धार हो ही नहीं सकता। चारों युगों में नाम की महिमा का ही महत्व है। विशेषकर कलियुग में तो यही एक आधार है–

कलियुग केवल नाम अधारा

नाम के बिना संसार का काम ही नहीं चल सकता। भरत जी ने, माता सीता ने, हमारे गुरुवर्ग ने केवल हरिनाम का ही सहारा लिया। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बताया कि मानव का मुख्य धर्म, खाना–पीना, सोना या इन्द्रिय तृप्ति करना नहीं है। जिसने हमें जन्म दिया है, उसे याद करना, उसका भजन करना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है। यही जीवन का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मंदिर बनाये गये हैं ताकि वहां वास करने वाले सभी

साधकगण हरिनाम करें, संकीर्तन करें। भगवान् श्री श्री राधा कृष्ण जी, श्री श्री सीता राम जी को जान पायें। महाप्रभु ने कृपा करके, हमें मंदिर के रूप में साधन-भजन करने का एक दिव्य स्थान उपलब्ध करवाया है। इन मंदिरों में रहकर, जो हरिनाम की शरण में रहेगा, उसकी सदा ही जय होगी।

परम विजयते श्री कृष्ण संकीर्तनम्।

(श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक)

श्री चैतन्य चरितामृत के इन शब्दों का कीर्तन करते हुए मैं इस व्यक्तव्य को विश्राम देता हूँ। आओ। आप भी मेरे साथ गाओ।

नाम संकीर्तने हय सर्वानर्थ नाश।
सर्व शुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास
संकीर्तन हैते-पाप-संसार-नाशन।
चित्त शुद्धि, सर्व भक्ति साधन-उद्गम।
कृष्ण प्रेमोद्गम, प्रेमामृत आस्वादन
कृष्ण प्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !
निताई गौर हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !

आपका शुभचिंतक अनिरुद्ध दास

निरंतर या'र मुखे शुनि कृष्णनाम
सेइ से वैष्णवतर सर्वगुणधाम

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से निरंतर कृष्ण-नाम सुनाई पड़ता है अर्थात् जो निरंतर श्रीकृष्ण-नाम करता रहता है – वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा वैष्णव सभी गुणों की खान होता है

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

भ्रूण हत्या घोर अपराध है

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो
कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.10)

'हे प्रभु! आप सर्वशक्तिमान् हैं। अग्नि के समान लोहे का एक बाण मेरी ओर तेजी से आ रहा है। हे मेरे प्रभु! यदि आपकी इच्छा हो तो अग्नि के समान लोहे का यह बाण, मुझे जलाकर भले ही राख कर दे पर यह मेरे गर्भ को जलाकर गर्भपात न करे। हे भक्तवत्सल! आप कृपया मेरे लिये इतना अवश्य करें।"

यह घटना महाभारत की है। अभिमन्यु युद्ध में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो चुका है। उसकी विधवा पत्नि उत्तरा चाहती तो अपने पति का अनुसरण करती हुई सती हो जातीं लेकिन उसने ऐसा नहीं किया क्योंकि वह एक महान् राजा की पुत्री, एक वीर की पत्नी और एक महान भक्त की शिष्या थीं। बाद में वह एक महान राजा (परीक्षित) की मां भी बनी। वह सभी प्रकार से भाग्यशाली तो थी ही साथ ही अपने परम धर्म का पालन करना जानती थी। क्योंकि कुरुक्षेत्र के युद्ध में धृतराष्ट्र के सारे पुत्र तथा पौत्र मारे जा चुके थे और द्रोणाचार्य के पुत्र, अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों के सिरों को काट दिया था, अतएव, कुरुवंश का अंतिम पुत्र, उत्तरा के गर्भ में था, इसलिये उत्तरा ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र की हर प्रकार से रक्षा करें। उसे बचा लें। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं तथा परमपूर्ण हैं। उन्होंने अपनी निजी शक्ति से उत्तरा के गर्भ को ढक दिया। अश्वत्थामा द्वारा छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र नष्ट कर दिया और कुरुवंश की अंतिम संतान की रक्षा की। उत्तरा का यह गर्भस्थ शिशु बाद में अत्यन्त बुद्धिमान एवं परमभक्त महाराज परीक्षित के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

महाभारत की यह घटना बहुत महत्वपूर्ण है और सभी माताओं को एक शिक्षा देती है कि अपने मातृ–धर्म को समझें। गर्भ की हर प्रकार से रक्षा करना उनका परम धर्म है। माता के ऊपर यह एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी होती है। अपने शिशु की रक्षा के लिये, अभिमन्यु की पत्नी, उत्तरा ने, भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी बात कहने में जरा भी लज्जा नहीं की, संकोच नहीं किया और वह अपने पुत्र की रक्षा कर पाई और महान राजा, परमभक्त की माँ कहलाई। गर्भ में पल रहा शिशु हमारे लिये, हमारे परिवार के लिये, हमारे कुल, देश एवं विश्व के लिये कितना महत्त्वपूर्ण है, इसका हमें कुछ नहीं पता। कौन जानता है कि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये, अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिये, हम जिस गर्भस्थ शिशु को जीवित ही मार देते हैं, भविष्य में वह कितना महान् हो सकता है।

आजकल भ्रूणहत्या एक फैशन बन गया है। क्या अनपढ़, क्या पढ़े–लिखे, सभी माता–पिता भ्रूण हत्या कर रहे हैं। यह एक जघन्य अपराध है। भ्रूणहत्या से बड़ा जघन्य अपराध कोई नहीं है। यह अपराध इतना बड़ा है कि जो भी इसे करता है या करवाता है, उसे अनंत युगों तक मनुष्य देह की प्राप्ति नहीं होती। भगवान् की अहैतुकी कृपा से चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद मनुष्य का जन्म मिलता है जो अति दुर्लभ है और जिसे प्राप्त करने में कई कल्प बीत जाते हैं। इतना दुर्लभ अवसर पाकर, जब जीव माता के गर्भ में आता है तो निर्दयी माता–पिता उसे पैदा होने से पहले ही नष्ट कर देते हैं, जन्म से पहले ही मार देते हैं। ऐसे निर्दयी माता–पिता (दम्पति) के लिये भगवान् ने एक विशेष दण्ड निश्चित कर रखा है। उन्हें अनेकों युगों तक रौरव नामक नरक में भेजा जाता है जहां उन्हें अकथनीय, दारुण दुःखों को भोगना पड़ता है। युगों–युगों तक रौरव नामक नरक के दुःख भोगने के बाद जब ऐसी निर्दयी दम्पति, माता–पिता को भगवद्कृपा से पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है तब स्त्री बांझ रहती है, उसके संतान नहीं

होती और पुरुष नपुंसक होता है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी उन्हें शांति नहीं मिलती। कोई न कोई रोग उन्हें लग जाता है। उनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे स्त्री–पुरुष को स्वप्न में भी शांति नसीब नहीं होती।

भगवान् बहुत दयालु हैं। जब कृपा करके वे किसी भी जीव की उत्पत्ति करते हैं तो उसके खाने–पीने एवं रहने की सारी व्यवस्था उसके कर्मानुसार करते हैं। वे जिसको जन्म देते हैं, उसका पालन भी करते हैं। जन्म लेने से पहले ही बच्चे की माता के स्तनों में दूध की व्यवस्था उन्हीं द्वारा की जाती है। यह सब जानते हुये भी हम इतने निर्दयी क्यों बन जाते हैं ? गर्भस्थ शिशु लड़का हो या लड़की, इसकी चिंता न करते हुये, उसकी रक्षा करने की जिम्मेवारी को समझते हुये, हमें अपने कर्तव्य का पालन करना होता है, लेकिन हम अज्ञानतावश उसके भविष्य की चिंता करके, उसे लड़की समझ कर, जन्म लेने से पहले ही मार देते हैं। यह बहुत बड़ी नासमझी है, मूर्खता है, घोर अपराध है। इस घोर अपराध की सजा, इस जघन्य अपराध का भोग, जब भोगना पड़ेगा तो आत्मा काँप उठेगी। उस वक्त कोई भी नहीं बचा पायेगा। इसलिए, अभी भी समय है। संभल जाओ। होश करो। मेरे गुरुदेव सबको समझा रहे हैं। सबको सावधान कर रहे हैं।

कई बार देखने में आता है कि किसी गरीब माँ–बाप के घर दस लड़कियाँ हो जाती हैं, तब भी उनका विवाह अच्छे, सुसंस्कृत एवं सम्पन्न परिवारों में हो जाता है और उनके माँ–बाप सुखी रहते हैं। इसके विपरीत जिनके एक भी कन्या नहीं है, लड़के ही लड़के हैं, ऐसे माता–पिता को रोटी भी नसीब नहीं होती। वे भूखे–प्यासे मरते देखे जाते हैं। कैसी विडम्बना है!

सूअरी के बारह बच्चे होते हैं और कुतिया आठ बच्चों को जन्म देती है फिर भी उनके बच्चों का पालन पोषण तथा रक्षा करती है। समय के साथ वे भी बड़े होते हैं। बैया एक छोटा–सा पक्षी है जो ऐसा सुंदर घोंसला बनाता है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। उस

घोंसले की बनावट इतनी सुंदर होती है कि लोग उसे सजावट के लिये अपने घरों में लगाते हैं। बैया नाम का यह पक्षी, उस घोंसले को कुएं के बीच बनाता है या पेड़ के ऊपर ताकि कोई भी उसके बच्चों को खा न ले। उसके बच्चे कुएं में गिरते भी नहीं हैं, कैसी हैरान करने वाली बात है। उसे ये बुद्धि भगवान् ही तो देते हैं। भगवान् ने सभी प्राणियों को बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है जिससे सारी सृष्टि का कार्य चल रहा है पर दुर्भाग्यवश, अज्ञानतावश कुछ माता–पिता इस बुद्धि का दुरुपयोग कर भ्रूण हत्या कर रहे हैं। जीवों की हत्या कर रहे हैं। यह बहुत बड़ी मूर्खता है।

जरा विचार करो कि कितने युगों बाद, चौरासी लाख योनियों में केवल एक बार मनुष्य जन्म मिलता है जिस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। अपने असली घर वापस जा सकता है। अपने प्रियतम भगवान् की गोद में बैठ सकता है पर वह क्या कर रहा है ? वह ऐसे–ऐसे घृणित काम करता है, बुरे काम करता है जो कोई दूसरा जीव नहीं करता। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है। उसे मनुष्य का जन्म तो दूसरे जीवों के हित के लिये, उनकी रक्षा के लिये मिला है लेकिन वह दूसरों का अहित करके, उनको सताकर, उनकी हत्या करके सुखी रहने की कल्पना करता है। कितना अज्ञानी है! कितना मूर्ख है! ऐसे इंसान को स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो दूसरों को दुःख देता है, उसे परिणामस्वरूप दुःख ही तो मिलेगा। जैसा करोगे, वैसा भरोगे ? जैसा बोओगे वैसा काटोगे।

मनुष्य जो भी साधन करता है या भक्ति करता है, भ्रूण हत्या करने से वह सब जड़ से ही नष्ट हो जाती है। इसलिये यदि किसी को सुख नहीं दे सकते तो कम से कम दुःख भी न दो। एक बीज बोने से जो पौधा उगता है, उससे उसी प्रकार के हजारों बीज प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार दुःख का बीज बोओगे तो हजारों गुणा दुःख की प्राप्ति होगी और यदि सुख का बीज बोओगे तो हजारों गुणा सुख प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि दूसरों के हृदय में हरिनाम का

बीज बोओगे तो उसका अनन्तगुणा फल प्राप्त होगा अर्थात् भगवान् के चरणों में मन अधिक लगेगा। इसलिये सभी का हित करो। अपना भी भला, दूसरों का भी भला। मनुष्य जन्म प्राप्त करके जो कोई भी भ्रूण हत्या करता है या करवाता है, उसे तो स्वप्न में भी हरिनाम में रुचि नहीं हो सकती। हरिनाम क्या है ? साक्षात् श्री कृष्ण ही तो हैं। डॉक्टर जब भ्रूण हत्या करने के लिये तेजधार वाले औजार गर्भ में डालता है तो गर्भस्थ शिशु तड़पता है। उसे कष्ट होता है, अपनी रक्षा वह स्वयं नहीं कर सकता पर उसे पता होता है, उसे ज्ञान होता है कि कोई उसे मार रहा है। वह गर्भ में सिकुड़ जाता है। उसके बचने का कोई उपाय नहीं है। वह बेबस है, असहाय है, लाचार है। कुछ रुपयों के लिये, निर्दयी डॉक्टर गर्भ में पल रहे उस शिशु के शरीर को छोटे–छोटे सैंकड़ों टुकड़ों में काटता है, बड़ी बेरहमी से उसे तड़पाता है और इस प्रकार छटपटाता हुआ, तड़पता हुआ वह असहाय शिशु, खून और मांस के टुकड़ों में काट दिया जाता है। बड़ी मुश्किल से उसके प्राण निकलते हैं। ऐसा कष्ट तो मनुष्य को मृत्यु के समय भी नहीं होता। ऐसे जल्लाद की, ऐसे निर्दयी की, भगवान् के नाम में रुचि कैसे हो सकती है ?

इसलिये साधकगणो! सावधान हो जाओ! भूलकर भी भ्रूण हत्या नहीं करना अन्यथा सारी साधना, सारी भक्ति मिट्टी में मिल जायेगी और भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। इस जनम में तो कष्ट भोगोगे ही, अगले हजारों युगों तक, जो कष्ट मिलेगा, उसका अंत नहीं। इसलिये अपने कर्मानुसार जो जीव गर्भ में आता है। वह अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता। उसकी रक्षा करो। उसे जन्म लेने दो। वह कौन सी महान आत्मा है यह कोई नहीं जानता। जो जन्म लेता है उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। गर्मी के मौसम में, जब गर्मी का प्रकोप बढ़ जाता है, नदी–नाले, सरोवरों का पानी भी सूख जाता है और बीहड़ जंगलों में दूर–दूर तक पानी नहीं मिलता। गर्म भट्टी की तरह गर्म लू चलती है। मनुष्य धूप से झुलसने लगता है तब भी जंगल में रहने वाले पशु–पक्षियों की रक्षा भगवान्

करते हैं। पानी के अभाव में भी, रेंगने वाले जानवर, सांप, बिच्छू तथा शेर, बघेरे, भेड़िये, खरगोश इत्यादि पशु भी जीवन धारण करते हैं। भगवान् ही अपनी शक्ति से उन्हें जीवनदान देते हैं।

कहने का आशय यही है कि भगवान् हर जीव की रक्षा करते हैं। जिसको जन्म देते हैं, उसे जीवन धारण करने की शक्ति भी वही प्रदान करते हैं। यदि ऐसा न हो तो सृष्टि का तो अंत ही हो जावे। इसलिये साधको! गर्भस्थ शिशु की चिंता न करो। उसे जन्म लेने दो। उसे हरिनाम सुनाओ। स्वयं भी हरिनाम करो। हरिनाम की शरण लेकर तो देखो! हरिनाम में तथा स्वयं श्री हरि में कोई अंतर नहीं है। नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। हरिनाम की शरण लेने वाले का पालन व रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं, यह उनकी घोषणा है। भगवान् की शरण लेने वाले का कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। हिंसक पशु तथा जहरीले जानवर भी उसका कुछ नुकसान नहीं करते क्योंकि उनमें भी वही भगवान् आत्मा रूप में से विराजमान है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जब वे उत्तर भारत की यात्रा करने निकले तो उन्होंने वृन्दावन तथा उसके निकटवर्ती स्थानों को देखने का निश्चय किया। जब वे झारखंड (मध्यप्रदेश) के जंगल से होकर आगे बढ़ रहे थे तो सारे जंगली पशु उनके हरिनाम–संकीर्तन आंदोलन में शामिल हो गये। जंगली शेर, हाथी, भालू तथा हिरण भी महाप्रभु के साथ चलने लगते और उनके साथ संकीर्तन करते, नाचते। इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि संकीर्तन आंदोलन में जब जंगली पशु तक शांति और मैत्रीपूर्वक रह सकते हैं तो मनुष्य क्यों नहीं रह सकता ? वह तो सभ्य है।

जो दूसरों को कष्ट देता है, उसे भी कष्ट मिलता है। जंगली पशु किसी को नुकसान नहीं पहुंचाते। सांप भी पहले किसी को डंक नहीं मारता। ये सभी जानवर मनुष्य से डरते हैं परंतु जब मनुष्य उन्हें मारता है, दुःख पहुंचाता है तो डर के मारे, अपने जीवन की रक्षा हेतु, वे उस पर धावा बोलते हैं, हमला करते हैं।

भगवान् बड़े दयालु हैं। कृपा करके वह मनुष्य जन्म देते हैं ताकि दुःख के सागर में पड़ा हुआ यह जीव, भजन करके उनकी गोद में चला जाये, उसके दुःखों का नाश हो जाये परंतु अभागा जीव, अज्ञानतावश, इस मनुष्य जीवन को व्यर्थ ही गंवा देता है और माया की गोद में चला जाता है। फिर चौरासी लाख योनियों में भटकता है, दुःख पाता है। इस माया से बचने का एक ही उपाय है जो हमें भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने बताया है। कोई भी यह नहीं कह सकता है कि उसने कोई पाप नहीं किया और वह पापों से मुक्त है। ऐसा कह पाना ही असंभव है। हम सभी पतित हैं और महाप्रभु पतितपावन हैं। वे सभी पापियों को, पतितों को एक शर्त पर स्वीकार करते हैं कि वे सभी प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेने के बाद, अपने पापकर्मों तथा व्यसनों का सदा–सदा के लिये परित्याग कर देंगे। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को, जो शिक्षाएं दी हैं, उनमें इन निषेधात्मक नियमों का वर्णन है।

संत सेवा से भगवान् की गोद प्राप्त हो सकती है। इसके सिवा श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्त करने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। भगवान् न दान से, न ध्यान से, न तीर्थ–सेवन से और न योग से प्रसन्न होते हैं। वह तो केवल मात्र संतसेवा में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने भी इसी बात की पुष्टि की है–

पुन्य एक जग में नहीं दूजा।
मन, क्रम वचन साधु–पद पूजा।
सानुकूल तिन पर मुनि देवा,
जो तजि कपट, करे साधु सेवा।

श्रीपाद नरोत्तम ठाकुर लिखते हैंः–

"तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर भ्रम,
सर्वसिद्धि गोविंद–चरण।"

अर्थात् तीर्थ यात्रा से पुण्य होता है यह केवल मन का भ्रम है। वास्तव में श्री गोविंद के चरणों की भक्ति ही सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली हैं।

याद रखो, संत की कृपा से ही भगवान् मिलते हैं। इसलिये, हरिनाम की शरण लो। इस कलियुग में केवल मात्र हरिनाम स्मरण ही भगवत् प्राप्ति का सबसे सरल उपाय है, सुगम साधन है। जो साधक इस हरिनाम रूपी नौका में बैठ जाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। शर्त यह है कि वह भगवान् के प्रिय किसी भक्त का अपराध न करे। एक लाख हरिनाम

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यानि 64 माला से अधिक हरिनाम जब होगा तो हरिनाम ही भक्त अपराध को खंडित करता रहता है और भक्त का मार्ग आसानी से तय हो जाता है। उसके जन्म–मरण का आवागमन सदा के लिये मिट जाता है और वह अमरपद प्राप्त कर लेता है।

हरि बोल ! हरि बोल !
निताई गौर ! हरि बोल !

तोमार अनन्त नाम, तवानन्त गुणग्राम,
तव रूप सुखेर सागर।
अनंत तोमार लीला, कृपा करि प्रकाशिला
ताई आस्वादये ए पामर।।

हे गौरहरि! आपके अनंत नाम हैं। आपके गुण भी अनंत है और आपका रूप तो सुखों का सागर है। यही नहीं, आपकी लीलाएं भी अनंत हैं। आप मुझ पर कृपा करें। आप अपने चरणों में मुझे स्थान दें तभी मेरे जैसा पामर जीव आपकी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर– नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण

श्री अनिरुद्धदास प्रभु जी द्वारा लिखित ग्रंथ इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति कोई कपोल कल्पित या मनगढ़ंत रचना नहीं है और न ही उन भक्तों के लिये इसे लिखा गया है जिनकी नाम में निष्ठा नहीं है। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" में छपे हुए सभी पत्र सर्व साधारण के लिये लिखे ही नहीं गए हैं। ये पत्र तो उन्होंने अपने शिक्षागुरुदेव तथा श्री हरिनामनिष्ठ, त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज को लिखे हैं और इसे गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की है जिस साधक की हरिनाम में निष्ठा नहीं है, श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है, उनके लिए इन पत्रों का कोई औचित्य नहीं। वे इन पत्रों का मर्म नहीं जानने के कारण वैष्णव अपराध तथा नामापराध करेंगे, इसलिये श्री अनिरुद्धदास प्रभुजी ने इन्हें गोपनीय रखने की प्रार्थना की और कई पत्रों में यह भी लिखा है कि जो इस वाणी को काल्पनिक या मनघढ़ंत समझेगा वह घोर अपराध का भागीदार होगा। परमदयालु, परम उदार, सभी का हित चाहने वाले परमपूज्य श्रीमद्निष्किंचन महाराज जी ने सभी के कल्याण के लिये इन पत्रों को प्रकाशित करने का निर्णय लिया ताकि साधकगण श्री हरिनाम के महत्व को समझें और निष्ठापूर्वक श्री हरिनाम करके अपना जीवन सफल करें।

परमादरणीय, प्रातः स्मरणीय, अर्चनीय व वंदनीय, 108 श्री श्रीमद् भक्ति प्रमोदपुरी गोस्वामी जी की वाणी है–

"केवल एक हरिनाम के ही श्रवण में कान लगाओ। उसी को वाणी से बोलो तथा उसी का निरंतर गान करो। हरिनाम मधुर से

भी मधुर, मंगल से भी मंगलमय और पवित्र से भी पवित्र है। भगवन्नाम–महामंत्र का कीर्तन करने पर ही मानव जीवन सार्थक होता है।"

ग्रंथों में निरंतर हरिनाम का कीर्तन और स्मरण ही इस कलिकाल में भजन की एकमात्र पद्धति बताई गई है। 'माधुर्य कादम्बिनी' तथा 'हरिभक्ति विलास' इत्यादि जितने भी वैष्णव ग्रंथ हैं, सभी में निरंतर हरिनाम करने को कहा गया है। यदि एक लाख या तीन लाख हरिनाम करने से भगवद्प्राप्ति, वैकुण्ठ प्राप्ति या गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होती तो हमारे पूर्ववर्ती आचार्य इसे क्यों करते या अन्यों को करने को कहते। नित्यप्रति तीन लाख हरिनाम करने से हरिदास ठाकुर जी 'नामाचार्य' कहलाये। जहाँ तक वैकुण्ठादि की प्राप्ति की बात है, इस कलियुग में तो वह नामाभास से ही हो जाती है –

वैकुण्ठादि – लोकप्राप्ति नामाभासे हय।
विशेषतः कलियुगे सर्वशास्त्र कय।।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि तृतीय परिच्छेद–37)

अब एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करने का शास्त्रीय प्रमाण देखिये। श्रीमद्व्यासावतार, आदिमहाकवि, पूज्यपाद श्रीश्रीमद् वृन्दावनदास ठाकुर विरचित श्रीश्रीचैतन्य भागवत (अन्त्यखण्ड) नवम अध्याय (115–126) में लिखा है।

अद्य–खाद्य नाहि यार दरिद्रेर अन्त।
विष्णुभक्ति थाकिले, सेइ से धनवंत।। 115 ।।
भिक्षा–निमन्त्रण छले प्रभु सवा स्थाने।
व्यक्त करि' इहा कहिया छेन आपने।। 116 ।।
भिक्षा–निमन्त्रणे प्रभु बलेन हासिया।।
"चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया।।117 ।।
तथा भिक्षा आमार, ये हय "लक्षेश्वर"।
शुनिया ब्राह्मण सब चिन्तित–अन्तर।।118 ।।

विप्रगण स्तुति करि' बलेन गोसाञि।
लक्षेर कि दाय, सहस्रेको का'रो नाइ।।119।।
तुमि ना करिले भिक्षा, गार्हस्थ्य आमार।
एखनेइ पुड़िया हऊक छाखार।।120।।
प्रभु बले, "जान, 'लक्षेश्वर' बलि का' रे?।
प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे।।121।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'।
तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर।।122।।
लक्ष नाम लइब प्रभु, तुमि कर भिक्षा।
महाभाग्य, ए मत कराओ तुमि शिक्षा।।124।।
प्रतिदिन लक्षनाम सर्व द्विजगणे।
लयेन चैतन्यचन्द्र भिक्षार कारणे।।125।।
हेनमते भक्तियोग लओयाय ईश्वरे।
वैकुण्ठनायक भक्ति-सागरे विहरे।।126।।

"जिनके पास आज का खाना भी नहीं है, जो दरिद्रता के अन्तिम सोपान पर स्थित हैं, उसके पास यदि विष्णु भक्ति है तो सच्चा धनवान वही है। भिक्षा के लिये, निमंत्रण के छल से, प्रभु ने स्वयं सबके सामने इस बात को कहा है। भिक्षा निमंत्रण के समय प्रभु हंसकर कहते थे-"जाओ! पहले तुम लक्षेश्वर (लखपति) बनो। मैं लखपति के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।" यह सुनकर सभी ब्राह्मण सोचने लगे। सभी स्तुतिपूर्वक प्रभु से कहने लगे, 'हे स्वामी'! लाख तो बहुत दूर की बात है, हमारे पास तो हजार भी नहीं है। हम सब दरिद्र गृहस्थ ब्राह्मण हैं। यदि आप हमारा निमंत्रण स्वीकार नहीं करते हैं तो हमारी गृहस्थी को धिक्कार है! हमारा घर– "गृहस्थ अभी जलकर राख हो जायेगा। इतना कहकर ब्राह्मण मन में दुःखी होकर रोने लगे। तब दयामय प्रभु ने कौतुक छोड़कर अपने मन की बात खोलकर कह दी। उन्होंने कहा-"जानते हो, मैं 'लक्षेश्वर' किसे कहता हूँ? जो नित्यप्रति लक्ष (एक लाख)-नाम ग्रहण करते हैं, उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ

और मैं उन्हीं के घर भिक्षा स्वीकार करता हूँ। किसी और घर नहीं जाता।"

श्री गौरसुंदर ने कहा–"जो नित्यप्रति लक्षनाम ग्रहण करते हैं, उनके घर ही भगवान् सेवित होते हैं। भगवान् उन्हीं के निकट से भोज्य द्रव्यादि ग्रहण करते हैं। जो लक्षनाम ग्रहण नहीं करते, उनके निकट से भगवान् नैवेद्य स्वीकार पूर्वक उन्हें सेवा–सौभाग्य प्रदान नहीं करते हैं। भगवद्भक्तों को नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करना चाहिये, नहीं तो बहुविध विषयों में आसक्त होकर वे भगवत् सेवा करने में असमर्थ हो जायेंगे।"

इसी कारण से श्रीचैतन्यदेव के आश्रित, सभी जन कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति किया करते हैं।

प्रभु की कृपावाणी सुनकर सभी ब्राह्मण चिन्ता छोड़कर मन ही मन महा आनन्दित हो उठे और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभु से निवेदन किया–"हे प्रभु! आप भिक्षा स्वीकार करो, हम एक लाख हरिनाम का जप करेंगे।"

करुणामय प्रभु, करुणा करके कलियुग के जीवों को किस उद्देश्य से जिस प्रकार भक्ति में लगाते थे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस लीला में पाया जाता है। विप्रगण के प्रति इस उपदेश वाणी का यह शुभफल हुआ कि सभी नीलाचल वासियों ने एक लाख हरिनाम जपना शुरू कर दिया। एक तो यह प्रभु का आदेश था, दूसरे ऐसा न करने पर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उनके घर भिक्षा नहीं करते। प्रभु को जो कोई एक दिन अपने घर भिक्षा करा लेता था, वह अपने को परम सौभाग्यशाली समझता था। इसी प्रकार परमकृपालु, श्री गौरहरि भगवान्, युगधर्म, हरिनाम महामंत्र का प्रचार करके जीवों का उद्धार करते थे। भक्ति चर्चा के सिवा, उनके मुख से कोई बात नहीं निकलती थी। जिनके मुख से वे कृष्ण कथा या भक्तिचर्चा नहीं सुनते थे, उनका मुख भी नहीं देखते थे।

आमतौर पर देखा जाता है कि जब हम बीमार होते हैं तो डॉक्टर के पास जाते हैं और जो दवाई डॉक्टर लिख देता है, उसे

ग्रहण करके हम ठीक भी हो जाते हैं। हम डॉक्टर से यह कभी नहीं पूछते कि जो दवाई आपने लिखी है, यह किस पुस्तक में, किस पृष्ठ पर लिखी है। हम श्रद्धा और विश्वास करके दवाई लेते हैं और ठीक हो जाते हैं। श्री अनिरुद्धदास प्रभु जी की वाणी, गुरुवाणी है! भगवद्वाणी है! श्री चैतन्यमहाप्रभु की वाणी है। जो भी साधक इसमें अटूट श्रद्धा, पक्की निष्ठा रखेगा, उनके कहे अनुसार श्री हरिनाम करेगा, उसे "इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति" होगी, यह उनकी गारन्टी है। उनके गुरुदेव की गारन्टी है महाप्रभु की गारन्टी है। परमवैष्णवों की वाणी पर अश्रद्धा करना, उसमें अविश्वास करना, उसमें संशय करना वैष्णव अपराध तथा नामापराध है।

–हरि बोल–

●

हिंसक जन्तु–निवारक मन्त्र

श्रील व्यासदेव जी ने जब श्रीमद्भागवत की रचना की तो उनकी इच्छा हुई कि उनके बेटे शुकदेव जी इसको पढ़ें परंतु श्री शुकदेव जी तो बाल्यकाल से ही विरक्त थे। वे अपने पिता श्रील व्यासदेव के पास न रहकर, घोर जंगलों में अवधूतवेश में विचरण किया करते थे।

श्रील व्यास जी के शिष्य उस घोर जंगल में समिधा, कुश तथा फूल–फल लेने जाया करते थे। एक दिन उन्हें रास्ते में एक बाघ मिला। बाघ को देखकर वे सभी डर गये और किसी तरह बाघ से बचकर व्यासदेव के पास आकर कहने लगे–'गुरुदेव! आज के बाद हम उस घोर जंगल में नहीं जायेंगे। आज हमें एक बाघ मिला था और उसको देखकर तो हम सबकी जान ही निकल गई थी।'

घबराये हुये शिष्यों के मुख से यह बात सुनकर भगवान् व्यासदेव जी मुस्कराये और कुछ देर सोचने के बाद बोले–"तुम लोगों को बाघ से डरने की कोई जरूरत नहीं। हम तुम्हें एक ऐसा

मंत्र बता देंगे कि उसके प्रभाव से कोई भी हिंसक–जन्तु तुम्हारे पास नहीं फटक सकेगा।" शिष्यों का श्री गुरुदेव के वाक्य पर पूरा विश्वास था। अगले दिन सभी स्नान–संध्या से निवृत होकर हाथ जोड़कर, गुरुदेव के पास आये और हिंसक–जन्तु निवारक मंत्र के लिये प्रार्थना की। भगवान् व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का पाँचवा श्लोक (10–21–5) बता दिया।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयो कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधर सुधया पूरयन्गोपवृन्दै–
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः।।

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में जो माधुर्य है, जो रस है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जिस श्लोक का इतना बड़ा महत्त्व है, उसका अर्थ भी समझ लीजिये। मेरे नन्हें से गोपाल, गौएं चराने के लिये वृंदावन की ओर जा रहे हैं। साथ में वे ही पुराने ग्वाल–बाल हैं। आज उन्हें जाने क्या सूझी कि आज वे अपने कनुआ की कमनीय कीर्ति का निरन्तर बखान करते हुये जा रहे हैं। अपने कोमल कण्ठों से सभी श्रीकृष्ण का यशोगान कर रहे हैं और कन्हैया, अपनी मुरली बजाने में इतने मस्त हैं कि उन्हें दीन–दुनिया किसी की भी खबर नहीं। अहा! मेरे श्यामसुंदर की उस निराली छवि को श्रील व्यासदेव जी ने यूँ वर्णन किया है–

"भगवान् श्रीकृष्ण ग्वाल बालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिर पर मयूरपिच्छ (मोरमुकुट) है और कानों में कनेर के पीले–पीले पुष्प लगा रखे हैं। सुंदर शरीर पर सोने की आभा जैसा पीतांबर फहरा रहा है। गले में एक सुंदर नट के समान बड़ा ही मनोहर और चिताकर्षक वेश है। आँखों की भृकुटियों को चढ़ाये हुये, टेढ़े होकर, बाँसुरी के छिद्रों को, वे अपने अधरामृत से भर रहे हैं। विश्व को मोह लेने वाली ध्वनि, उन छिद्रों में से निकल रही है। श्रीकृष्ण की, वह वंशीध्वनि, भगवान् के प्रति प्रेमभाव को,

उनके मिलन की आकांक्षा को, जगाने वाली थी। ब्रज की गोपियों ने जब वंशी की इस मधुर ध्वनि को सुना तो उनका मन हाथ से निकल गया और वे मन–ही–मन वहाँ पहुँच गईं, जहां श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण के पीछे–पीछे ग्वालबाल (यशोदा नंदन की) लोकपावन कीर्ति का गान कर रहे हैं। इस प्रकार मुरली मनोहर अपनी पदरज से वृन्दावन की भूमि को पावन बनाते हुये ब्रज में प्रवेश कर रहे हैं। उनके चरणचिन्हों से वृन्दावन धाम और भी रमणीय बन गया है।"

श्रील व्यासदेव जी के शिष्यों ने, श्रद्धा भक्ति सहित, श्रीमद् भागवत् के इस श्लोक को कण्ठस्थ कर लिया और सभी साथ–मिलकर, जब–जब जंगल को जाते तब–तब इस सुंदर श्लोक को मिलकर, मधुर स्वर में गाते। उनके सुमधुर गान से सुनसान और निर्जन जंगल गूंजने लगता और इस श्लोक की प्रतिध्वनि चिरकाल तक सुनाई पड़ती। एक दिन अवधूतशिरोमणि श्री शुकदेव जी घूमते–घूमते उधर आ निकले। उन्होंने जब इस श्लोक को सुना तो वे मुग्ध हो गये। उन्होंने शिष्यों से पूछा–"तुम लोगों ने यह श्लोक कहाँ से सीखा" शिष्यों ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया–''हमारे कुलपति, भगवान् व्यासदेव ने, हमें इस मंत्र का उपदेश दिया है। इसके प्रभाव से हिंसक–जन्तु पास नहीं आ सकते।"

इस श्लोक के भीतर छिपा हुआ जो अनंत और अमर बनाने वाला रस भरा हुआ था, उसका पान करके श्रील शुकदेव जी पागल से हो गये। अपने अवधूतपने के सभी आचरणों को भुलाकर, वे दौड़े–दौड़े भगवान् व्यासदेव के पास गये और उस श्लोक को पढ़ाने की प्रार्थना की।

भगवान् व्यासदेव ने उन्हें वह श्लोक पढ़ा दिया। अब तो ये घूमते हुये इसी श्लोक को सदा गाने लगे।

"श्रीकृष्ण प्रेम तो ऐसा ही अनोखा आसव है। इसका चसका जिसे तनिक भी लग गया फिर वह कभी त्याग नहीं सकता। यदि उसे छोड़ना भी चाहे तो वह स्वयं उसे पकड़ लेता है।"

पंडित नन्दनाचार्य के घर पर भक्तों को नित्यांनद जी की महिमा दिखाने के लिए महाप्रभु ने श्रीवास पंडित को कोई स्तुति–श्लोक पढ़ने के लिये धीरे से संकेत किया। प्रभु के मनोगत भाव को समझकर, श्रीवास, श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के इसी श्लोक–'बर्हापीडं नटवरवपुः' को सुस्वर गाने लगे। जिस श्लोक को सुनकर अवधूतशिरोमणि शुकदेव जी प्रेम में पागल हो गये, उसे सुनकर सहृदय अवधूत नित्यानंद अपनी प्रकृति में कैसे रह पाते ? श्रीवास पंडित के मुख से इस श्लोक को सुनते ही, वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इनके मूर्छित होते ही प्रभु ने श्रीवास को फिर से श्लोक पढ़ने को कहा। अब तो नित्यानंद प्रभु जोरों से हुँकार देने लगे। उनके दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। प्रेम में उन्मादी की भाँति, वे नृत्य करने लगे। प्रभु ने नित्यानंद को गले से लगा लिया।

सचमुच, प्रेम में कितना आकर्षण है! अहा! जिन्होंने प्रेम–पीयूष का पान कर लिया है, जो प्रेमासव का पान करके पागल बन गये हैं, उसे तो वे प्रेमी भक्त ही अनुभव कर सकते हैं। हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ ?

(श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा लिखित श्रीश्री चैतन्यचरितावलि पर आधारित)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

एक नाम या'र मुखे वैष्णव से हय।
तारे गृही यत्न करि, मानिबे निश्चय।।

(श्रीहरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण–नाम का उच्चारण होता है, उसे वैष्णव समझना चाहिये। गृहस्थ भक्तों को चाहिये कि वे अति यत्न के साथ इस सिद्धांत को मानें।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
30.7.2010

मन की भावना ही मुख्य है

प्रेमास्पद भक्तप्रवर,

नराधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

इस सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने वाली तीन दैवीय शक्तियाँ हैं। श्री ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते हैं और उसे बढ़ाते हैं, भगवान् विष्णु जी सृष्टि का पालन तथा रक्षा करने वाले हैं तथा भगवान् शिवशंकर जी सृष्टि को कम करने तथा संहार करने वाले हैं।

ये तीनों शक्तियाँ मनुष्य के कर्मों अनुसार ही उसको फल प्रदान करती हैं, अपनी ओर से किसी को कुछ भी फल प्रदान नहीं करतीं। यदि ऐसा करने लगें तो कर्म करने का महत्व ही समाप्त हो जाये। इस सृष्टि की रचना ही कर्म से होती है। कर्म किये बिना सृष्टि का सृजन हो ही नहीं सकता। सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। शास्त्र उद्घोषणा कर रहा है-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।

बात स्पष्ट है कि जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। सतयुग में सभी तपस्या करते थे और उनकी आयु हजारों साल होती थी क्योंकि वे सभी भक्ति में लगे रहते थे। अब कलियुग में मानव की भक्ति कम हो गई। फलस्वरूप उसकी आयु भी कम होती जा रही है। पचास-साठ या इससे भी कम वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो जाती है भगवान् की भक्ति करने से आयु बढ़ जाती है। जितनी आयु लिखी होती है, भक्ति करने पर वह उससे अधिक बढ़ जाती

है। मान लो किसी की आयु 60 वर्ष लिखी है। यदि वह भक्ति में रत रहता है, भक्ति में लग जाता है तो उसकी आयु सौ वर्ष या इससे भी अधिक बढ़ सकती है। जो व्यक्ति माँस–मदिरा का सेवन करता है और अंट–संट (तामसी भोजन) खाता है, वह कम उम्र में ही मर जाता है। जो भी शास्त्रमर्यादा का उल्लंघन करेगा, उसे अपने कर्मों के अनुसार उसका भोग भोगना ही पड़ेगा। कोई भी इससे बच नहीं सकता।

काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार ये सब आयु को क्षीण करते हैं और जो इन पर काबू पा लेता है, वह अधिक दिनों तक जीवित रहता है। सार यही है कि जो जैसा कर्म करेगा, उसको उसके कर्मों के अनुसार ही फल भोगना पड़ेगा।

बहुत लोग प्रश्न किया करते हैं कि जीव क्या है ? आत्मा क्या है ? इसका उत्तर यह है कि जो स्वयं (अपने आप) को न जाने, जो भगवान को न जाने तथा भगवान् की माया को भी न जाने, उसे जीव बोला जाता है। मनुष्य के बिना सभी जीव हैं क्योंकि वे न तो स्वयं को जानते हैं, न माया को और न ही भगवान् को, इसलिये ये सब जीव संज्ञा में आते हैं और जो मानव इन तीनों (स्वयं को, माया को तथा भगवान्) को जानता है, वह जीव आत्मा की संज्ञा में आता है और जीवात्मा कहलाता है। पशु–पक्षी इत्यादि जीव, खाना–पीना, सोना या मैथुन करना ही जानते हैं और अपने आपको, भगवान् एवं उनकी माया को नहीं जानते। जो जीव भगवान् को जान गया, उसका उससे (भगवान् से) सम्बन्ध जुड़ गया। वह आत्मा, परमात्मा से मिल गया क्योंकि आत्मा परमात्मा का ही तो अंश है। वास्तव में, मन की भावना ही मुख्य है।

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

मन में जैसी भावना होगी, वैसा ही मनुष्य कर्म करेगा और उसे फल भी वैसा ही मिलेगा। यदि कोई बुरे कर्म करे तो उसे अच्छे फल की आशा नहीं करनी चाहिए।

बोये पेड़ बबूल के, आम कहाँ से होय।

बबूल (कीकर) का पेड़ बोने पर उससे आम के फल की आशा करना मूर्खता ही तो है। अच्छे कर्म का फल ही अच्छा होगा, बुरे कर्म का फल बुरा ही होगा। इसलिये सद्विचारों (अच्छे विचारों) की भावना करते रहना चाहिये। सद्विचार आयेंगे कहाँ से? सद्ग्रन्थों का अध्ययन करो। सत्पुरुषों का संग करो। उनके आचरण को देखो। उसका चिन्तन करो, उसे अपने जीवन में धारण करो, सद्विचार अपने आप आ जायेंगे। जीवन की बगिया, रंग-बिरंगे, सुगन्धित फूलों से महक जायेगी। जहाँ भी जाओगे, खुशबू बिखेरोगे। सारी दुनिया सुन्दर लगेगी। सब अपने लगेंगे। स्वयं को जान लेने की इच्छा जागृत होगी। स्वयं को जानने, भगवान् व उसकी माया को जानने की खोज में लग जाओगे प्रत्येक जीव में भगवान् के दर्शन होने लगेंगे। पर यह सब होगा, मन की भावना से ही। मन की भावना जितनी प्रबल होगी, जितनी मजबूत होगी, उतनी ही ज्यादा शक्ति आप अपने अन्दर अर्जित कर सकोगे। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णन आता है कि कर्दम ऋषि ने देवहूति (अपनी पत्नी) की भावना की। उसकी संतान प्राप्ति की इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने जैसे नौ रूप धारण किये और उन नौ शरीरों से नारी की भावना करके नौ कन्याओं को जन्म दिया। इन नौ कन्याओं का विवाह कर्दम ऋषि ने नौ ऋषियों से किया जिनकी संतानों से यह सारा संसार भर गया। सार यही है कि मन में जैसी भावना लेकर हम कोई काम करते हैं, उस कर्म का फल हमें वैसा ही मिलता है।

मेरे श्रील गुरुदेव ने मनचाही सन्तान प्राप्त करने के बारे में जो लेख लिखाया है। वह शत-प्रतिशत सही है। यह लेख "इसी जन्म में भगवत्-प्राप्ति (भाग-2)" में 'मनचाही सन्तान कैसे प्राप्त करें? नामक शीर्षक से छपा है। मेरे पास लोगों के फोन आते हैं। जो लोग इस लेख के अनुसार चल रहे हैं, उन्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति हुई है और हो रही है। भविष्य में पैदा होने वाले बच्चे अच्छे संस्कार वाले हों, विचारवान् हों, विवेकशील हों, प्रभु भक्त

हों, आज्ञाकारी हो तथा माता–पिता का नाम रोशन करने वाले हों, इसीलिए मेरे श्रील गुरुदेव ने हम सब को मनचाही सन्तान प्राप्त करने का बहुत ही सरल साधन बताया है और अब बारी माता–पिता की है कि वह कैसी संतान चाहते हैं। इसका निर्णय उन्हें स्वयं करना है।

देवहूति ने जब बेटे की इच्छा प्रकट की तो कर्दम ऋषि ने उन्हें भगवान् कपिल के रूप में पुत्र की प्राप्ति करायी। ऐसा पुत्र, जिसने न केवल अपनी माता देवहूति, बल्कि पूरे विश्व को वह ज्ञान दिया जिसे प्राप्त करके मनुष्य जन्म–मरण के चक्कर से छूट जाता है। उसका आवागमन (आना–जाना) सदा के लिये समाप्त हो जाता है। पर यह सब हुआ केवल मात्र मन की भावना से ही ऐसे माता–पिता (कर्दम–ऋषि और माता–देवहूति) तथा ऐसी संतान (भगवान् कपिल) को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम।

हरिनाम बढ़ाने की युक्ति

प्रतिदिन रात को सोते समय तथा सवेरे बिस्तर से उठते समय भगवान् को याद करना और कातर भाव से प्रार्थना करना–

"हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! जब मेरी मृत्यु आये तब अन्तिम साँस में अपना गोविन्द नाम उच्चारण करवा लेना"

हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द, प्रार्थना सुन लीजिये।
दीन, हीन, अनाथ पर, हे नाथ! करुणा कीजिये।।
मौत जब आवे मेरी, तब नाथ अन्तिम साँस में,
तेरा नाम उच्चारण करूँ, मुझे ऐसी शक्ति दीजिये।

आपको बस! इतना ही करना है, बाकी सब श्री श्री राधा गोविन्द जी जाने
जय जय श्री राधे।

5

नामनिष्ठ की मरणावस्था का वर्णन

विनिश्चितं वदामि ते न चान्यथा वचांसि मे।
हरि नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।

"मैं खूब सोच–विचार कर, निश्चितरूप से कहता हूँ, मेरे वचनों को मिथ्या मत समझना। मैं कहता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि जो लोग श्री हरि का भजन करते हैं, वे कठिनता से पार होने वाले इस असार संसाररूपी समुद्र को, बात की बात में तर जाते हैं।"

जब किसी नामनिष्ठ महात्मा की अंतिम (मरण) घड़ी आ रही होती है तो उसे एक मीठी रसानुभूति होने लगती है उस अवस्था में उसे एक दिव्य, अलौकिक नींद आने लगती है। साधारण मानव, उसे उसकी बेहोशी समझ लेता है पर उसकी वह अवस्था, बेहोशी की नहीं होती, वह तो उसकी सुषुप्ति की, समाधि की अवस्था होती है जिसमें नामनिष्ठ को रसानुभूत आनंद का अनुभव होता रहता है। उस अवस्था में, उसके हृदय से, शरीर में खून का प्रवाह धीरे–धीरे रुकने लगता है और उसके रोम–रोम में आनंद की लहरें उठती रहती हैं। नामनिष्ठ का मरण परम आनंददायक होता है जबकि पापी को मरते समय बहुत अधिक कष्ट होता है। पापी के रोम–रोम में ऐसा असहनीय दर्द होता है जैसे बिच्छु के डंक मारने से होता है। इस दर्द को सहन न कर सकने के कारण वह बेहोश हो जाता है। संसार की आसक्ति भी उसे पीड़ा देती है और मोह–ममता की फांसी उसका गला घोंटती रहती है। पर जब नामनिष्ठ के मरने का समय आता है तो भगवन् उसके अन्तःकरण में प्रकट होकर, उसे अपना मनमोहक एवं लुभावना दर्शन देकर, उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उसको परमानंद में सराबोर करते रहते हैं। अंतिम सांस के साथ तन से बाहर निकालकर, अपने उस

प्यारे भक्त को एक दिव्य एवं अलौकिक शरीर प्रदान करके, अपने विमान में बिठाकर, उसके साथ अठ्खेलियां करते हुये, अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं, जहाँ उस नामनिष्ठ का बहुत भव्य एवं आकर्षक स्वागत होता है। ऐसे नामनिष्ठ को गोलोकधाम में वांछाकल्पतरु, चिन्मय शरीर की उपलब्धि होती है। उस उपलब्धि का वर्णन इस जड़ जिह्वा द्वारा नहीं किया जा सकता।

इस लेख को पढ़कर पाठ्कों के मन में कई प्रश्न उठ सकते हैं। एक तो यह कि नामनिष्ठ की मरणावस्था का जो वर्णन, मैंने किया है वह उन्होंने न तो किसी शास्त्र में पढ़ा है और न किसी से सुना है। दूसरा, भगवान् श्रीकृष्ण अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। अपने नामनिष्ठ भक्त को लेने, उन्हें स्वयं आने की क्या जरूरत है? अपने किसी भी पार्षद को भेजकर, भगवान् यह काम करवा सकते हैं।

इन प्रश्नों का उत्तर मैं देने जा रहा हूँ, ध्यान देकर पढ़ो।

अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं जिनमें भगवान् की अनंत लीलाएँ होती रहती हैं। इन लीलाओं का पार नहीं पाया जा सकता। क्या कोई अपने जीवनकाल में इन सारी लीलाओं को पढ़ सकता है? उनका अवलोकन कर सकता है? नहीं न! पर हां, जिस पर श्री गुरुदेव की असीम कृपा हो जाती है, उसके हृदय में दिव्य ज्ञान प्रकाशित हो जाता है। सभी शास्त्र उसके हृदय में स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर महाशय कहते हैं कि श्री गुरुदेव के चरणकमल शुद्ध भक्ति की खान है। उनकी वंदना करने से, उनकी कृपा से ही हृदय में दिव्य ज्ञान प्रकाशित होता है–'दिव्यज्ञान हृदये प्रकाशित'। श्री गुरुदेव, भगवान् के सबसे अधिक प्रियजन हैं। उनकी प्रसन्नता ही भगवान् की प्रसन्नता होती है। श्रीगुरुदेव का स्वरूप, श्री हरि का स्वरूप होता है। यह सभी शास्त्र कहते हैं क्योंकि वे भगवान् को अतिशय प्यारे हैं –

साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।

और देखिये –

श्री गुरु पदनख मणिगण ज्योति
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहिं विमल विलोचन हिय के
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित मन मानिक
जो जेहि गुप्त प्रगट जेहि खानिक।

शास्त्र की ये पंक्तियाँ स्पष्ट उद्‌घोष कर रही हैं कि जो कुछ भी शास्त्रों में वर्णित है, वह सब कुछ और जो शास्त्रों में वर्णित नहीं है, वह सब कुछ भी, श्री गुरुदेव की कृपा से अन्तःकरण में प्रकट हो जाता है। जब कोई भक्त श्री गुरुदेव के चरणकमलों का ध्यान करता है, उनकी वंदना करता है तो भगवान् उसे बुद्धियोग दे देते हैं।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयन्ति ते।।

(भगवद्‌गीता 10.10)

भगवान् कहते हैं मैं ऐसे भक्त को बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वह मुझ तक आ सकता है।

प्रामाणिक गुरु की संगति आवश्यक है। ऐसे गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण उसे अंदर से उपदेश देते हैं ताकि वह सरलता से भगवद् प्राप्ति कर सके। उसे श्यामा–श्याम के दर्शन हो सकें। एक भाव देखिये –

श्री गुरु पदनख चन्द्र ज्योत्सना हरत हिय अघखान।
बिहरत श्यामा–श्याम तहां, नित अपनो गृह जान।।
नित अपनो गृहजान लाडिली सुख बरसावें।
आंख–मिचौली होये कबहूँ, मोहन छिप जावें।।
लेहैं बाँसुरी छीन किशोरी, कहूँ अवसर लख।
रहे सदा आनन्द–कृपा, जहाँ श्री गुरु पदनख।।

पर यह सब होगा गुरु कृपा से, हरिनाम करने से। नाम के बारे में संतों का एक–एक वचन सत्य है। नाम का ही प्रताप है। नाम की ही महिमा है। केवल हरिनाम करके ही इस लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि नाम–बीज में समस्त ब्रह्मांडों की भगवद्वाणी और अनन्त लीलायें ओत–प्रोत रहती हैं। नाम रूपी जल, जब कान द्वारा अन्तःकरण रूपी जमीन को सींचता है तो भगवान् की वाणी, उनकी लीलाएं रूपी पौधा अंकुरित हो जाता है। जैसे वट वृक्ष का बीज देखने में तो राई के दाने से भी छोटा होता है पर उस बीज में एक विशाल वृक्ष छुपा होता है और जब उसे जमीन में बोया जाता है तो उसमें से एक विशाल वृक्ष प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार नाम की शक्ति असीम है! अथाह है! अनन्त है! श्री गुरुदेव ने जो हरिनाम कान में सुनाया है, वह अन्तःकरण में जाकर जापक को निहाल कर देता है। अरे, नाम का प्रभाव देखिये। शिकारी रत्नाकर उल्टा नाम जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गया। राम–राम की जगह मरा–मरा कहते ही उसके मुख से बार–बार राम–राम निकला और इसी नाम के प्रताप से उसने बाल्मीकि नाम से रामायण की रचना कर दी। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम ने इस धराधाम पर आकर जो लीलायें कीं, उन सबका वर्णन वाल्मीकि जी ने हजारों वर्ष पहले ही रामायण में कर दिया था। यह नाम का ही तो प्रभाव था! नामनिष्ठ की अंतिम अवस्था भी दिव्य हुआ करती है। नामनिष्ठ की मरणावस्था का प्रकट उदाहरण है, नामाचार्य श्री हरिदास जी एवं भीष्म पितामह।

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, ब्रह्माजी के अवतार थे पर उनका जन्म म्लेच्छ (यवन) कुल में हुआ था। जन्म के अनाथ, अनपढ़, बेसहारा, संसार द्वारा ठुकराया गया वह अधम, नाम के प्रभाव से नामाचार्य बन गया। बड़े–बड़े श्रोत्रिय ब्राह्मणों ने उनका सम्मान किया। त्रैलोक्यपावन, देवदुर्लभ श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र का वास उन्हें प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कहा है "हरिदास के भक्तिभाव का वर्णन हजार मुख वाले शेषनाग जी भी

अनंत वर्षों में नहीं कर सकते। उनकी सहनशीलता, तपस्या, भगवान् में अनन्यनिष्ठा सभी कुछ अनुकरणीय है।"

ऐसे नामनिष्ठ, नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर की मरणावस्था, कितनी दिव्य एवं अलौकिक थी, उसे जानने से पहले, आइये! उनके बारे में थोड़ा और जान लें। श्रीचैतन्य चरितामृत में वर्णन मिलता है कि एक मुनि का बेटा अपने पिता की आज्ञा से, भगवान् केशव की पूजा के लिये बगीचे से तुलसी पत्र लेने गया। तुलसी पत्र तोड़ने के बाद, उसने बिना धोये ही, उन्हें अपने पिता को दे दिया। इस बात से क्रोधित होकर पिता ने उसे यवनकुल में जन्म लेने का अभिशाप दे दिया वही मुनिपुत्र, परमभक्त, श्री हरिनामनिष्ठ, हरिदास जी के रूप में अवतरित हुये थे।

श्री नवद्वीप धाम महात्म्य में वर्णन आता है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने ब्रज लीला में गोपाल की गौएँ, बछड़े तथा गोपों को चुराकर भगवान् श्रीकृष्ण की परीक्षा लेने करने की गलती की थी। श्रीकृष्ण के चरणों में गिर कर, अपनी उस भूल के लिये, जब ब्रह्मा जी ने क्षमा–याचना की थी, तब भगवान ने उन्हें क्षमा भी कर दिया था और उन्हें अपने स्वरूप का दर्शन कराया था। वही गलती, वही भूल, कलियुग में, श्री गौरांग महाप्रभु (जो साक्षात् नंदनंदन श्रीकृष्ण हैं और श्रीमति राधारानी का भाव एवं कान्ति लेकर नवद्वीप धाम में अवतीर्ण हुये) के चरणों में दुबारा न हो, इसी डर से ब्रह्माजी ने नीचकुल में जन्म ग्रहण किया था।

वैष्णव किसी भी कुल में पैदा हो, सदा सर्वोत्तम होता है। यवनकुल में जन्म लेकर, संसार को शिक्षा देने के लिये, लोगों को नाम की महिमा बताने के लिये, वे इस धराधाम पर आये थे। उनके रोम–रोम में श्री हरि का मधुर नाम रम गया था। उनकी जिह्वा पर श्रीकृष्ण नाम सदा नृत्य करता रहता था। नित्यसिद्ध होते हुये भी, अपने अलौकिक आचरण से, उन्होंने जो शिक्षा इस जगत् को दी, उसका वर्णन श्री हरिनाम चिन्तामणि नामक ग्रंथ में है।

सुधि पाठकगणो! आओ! उस महान विभूति, श्री हरिनामनिष्ठ, नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर की अंतिम अवस्था का दर्शन करें।

दोपहर का समय है। हरिदास जी एक तख्त पर आंखें बंद किये हुये लेट रहे हैं। उनके श्रीमुख से

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

यही आवाज आ रही है। महाप्रभु का सेवक, गोविन्द रोज की तरह महाप्रसाद लेकर उनके पास पहुँचा। उसने देखा कि हरिदास जी आज आसन पर नहीं बैठे थे। गोविंद ने उनका हाल पूछा और महाप्रसाद पाने के लिये प्रार्थना की। उस दिन हरिदास जी की नाम संख्या अभी पूरी नहीं हुई थी। बिना संख्या पूरी किये वे महाप्रसाद नहीं लेते थे और यदि न लेते तो अपराध बन जाता। अतः उन्होंने प्रसाद को प्रणाम किया और उसमें से एक कण लेकर मुख में डाल लिया। गोविंद चला गया और उसने महाप्रभु से सारी बात कह दी।

अगले दिन समुद्र स्नान करने के पश्चात महाप्रभु हरिदास जी के आश्रम में पधारे। कुछ देर बात करने के बाद हरिदास जी ने कहा– "प्रभो! आपके श्रीचरणों में एक निवेदन है। मेरी मनोकामना है कि जब मैं इस नश्वर शरीर का त्याग करूँ, उस वक्त आपकी यह मनमोहिनी मूरत, सलोनी सूरत, मेरी आंखों के सामने हो। मेरी जिह्वा पर, तीनों लोकों को पवित्र करने वाला, आपका मधुरातिमधुर 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम हो। प्रभो! आप परम स्वतंत्र हैं। सब कुछ करने में समर्थ हैं। मुझे यह भिक्षा अवश्य दे दें।"

श्रील हरिदास की प्रार्थना सुनकर महाप्रभु की आँखें भर आईं और उन्होंने गद्गद् कण्ठ से कहा–''हरिदास। जिसमें तुम्हें सुख हो, वही करो।" इतना कहकर प्रभु अपने स्थान को चले गये।

महाप्रभु हरिदास जी को नित्य देखने जाया करते थे। एक दिन वे अपने सभी अन्तरंग भक्तों को साथ लेकर, हरिदास जी के आश्रम पहुंचे। हरिदास जी जमीन पर पड़े–पड़े महामंत्र का जप कर रहे थे। महाप्रभु ने उनका हाल पूछा। सभी भक्त हरिदास जी के चारों ओर बैठकर संकीर्तन करने लगे। कुछ उठकर नृत्य करने लगे। थोड़ी ही देर में वहाँ काफी लोग इकट्ठे हो गये। महाप्रभु ने संकीर्तन बंद करने को कहा और सबको हरिदास जी के गुणों का बखान सुनाया। सभी भक्तों ने हरिदास जी की पदधूलि मस्तक पर धारण की।

हरिदास जी ने बड़े कष्ट से, महाप्रभु को सामने आने का इशारा किया। महाप्रभु उनके सामने बैठ गये। हरिदास जी की, दोनों आँखों के कोरों से, प्रेमाश्रु निकल रहे थे। वे महाप्रभु को टिकटिकी बांधकर देख रहे थे और उनकी रूपमाधुरी का पान कर रहे थे। आज उनकी आँखों की पलकें बंद नहीं होना चाहती थीं और वे धीरे–धीरे 'श्री कृष्णचैतन्य' 'श्री कृष्णचैतन्य' इन नामों का उच्चारण कर रहे थे। देखते ही देखते उनके प्राण इस कलेवर को त्याग कर चले गये। सभी भक्तों ने 'हरि बोल' की ध्वनि की। महाप्रभु उस प्राणहीन शरीर को लेकर नृत्य करने लगे। महाप्रभु ने भगवान् जगन्नाथ का प्रसादी वस्त्र मंगाकर, हरिदास जी के शरीर को लपेटा। उसे एक बड़े भारी विमान पर रखा और सभी संकीर्तन करते हुये समुद्रतट पर पहुंचे। भक्तों ने हरिदास जी के शरीर को स्नान कराया और उन्हें समाधि दी। हरिदास जी के अंगस्पर्श से समुद्र महातीर्थ बन गया। महाप्रभु में स्वयं उनका विजयोत्सव मनाया और कहा–"जिसने भी हरिदास का संग किया, उनका दर्शन किया, उनका पादोदक पान किया, समाधि में बालू दी, विजयोत्सव में प्रसाद पाया है, उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।"

फिर महाप्रभु ने हरिदास जी की जय बुलवाई।

श्री जगन्नाथ पुरी में टोटा गोपीनाथ के रास्ते में, समुद्र के किनारे, अब भी श्री हरिदास जी की सुंदर समाधि है जहां हर वर्ष अनन्त चर्तुदशी के दिन विजयोत्सव मनाया जाता है।

नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम।

"नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, मुझ जैसे अकिंचन, अधमाधम, दीन–हीन पर कृपा करें। श्री हरिनाम रूपी अमृतरस की कुछ बूंदें पिलाकर, मेरे आनंद की वृद्धि करें"–यही प्रार्थना है।

नामनिष्ठों की सूची में एक मुख्य नाम आता है भीष्म पितामह का। हरिदास जी की तरह उन्होंने भी, भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन करते हुये अपना शरीर त्यागा। जब भीष्म पितामह शरशय्या (बाणों की शय्या) पर पड़े हुये थे तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़कर, सभी पांडवों के साथ उन्हें देखने गये। सभी ने भीष्म पितामह को प्रणाम् किया। अपने हृदय में जगदीश्वर रूप से विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण की बाहर और भीतर, दोनों जगह पूजा करने के बाद, भीष्म ने पाण्डवों से कहा, "ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। अब जबकि मैं अपने प्राणों का त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है। जो लोग भक्तिभाव से, इनके नाम का कीर्तन करते हुये शरीर का त्याग करते हैं, वे इन्हीं को प्राप्त होते हैं। वही कमल के समान नेत्रों वाले, देवदेव भगवान्, मुस्कराते हुये, लाल कमल के समान आँखों वाले, खिले हुए मुख वाले, चतुर्भुज रूप से, जिसका और लोगों को केवल ध्यान में दर्शन होता है तब तक, यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जब तक मैं अपने इस शरीर का त्याग न कर दूं" –

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस–
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.24)

जब भीष्म ऐसे कह रहे थे तब उन्होंने अपनी वाणी को संयम करके, मन को सब ओर से हटाकर अपने सामने खड़े आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के सुंदर चतुर्भुज विग्रह पर, उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्म जी की आंखें एकटक उसी पर लग गई। इस प्रकार मन, वाणी और दृष्टि से, भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण में अपने आपको लीन कर दिया। उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया। उस समय देवता और मनुष्य नगाड़े बजाने लगे। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्तों की मरणावस्था ऐसी ही दिव्य एवं अलौकिक हुआ करती है। ऐसे नामनिष्ठ भीष्म पितामह को हमारा कोटि–कोटि नमन।

अपने पत्रों में, मैं जो कुछ भी उल्लेख करता हूँ, वह सब शास्त्र सम्मत होता है। वह सब श्री गुरुदेव की वाणी होती है। इसमें किसी को भी संशय नहीं करना चाहिये। जो इसमें संशय करेगा, वह भक्ति पथ से नीचे गिर जायेगा।

अतः इस लेख को कोई भी काल्पनिक न समझे वरना वह जघन्य अपराध कर बैठेगा। अतः मेरी सभी भक्तजनों से, हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे कृपया मुझ पर पूरा विश्वास व श्रद्धा बनाये रखें ताकि मेरा भी अपराध न बन सके। आप सभी के चरणों में मेरी यही प्रार्थना है ताकि मैं भविष्य में भी, अपने गुरुदेव के आदेश का पालन कर सकूँ। इसमें कोई व्यवधान न हो। केवल श्री हरिनाम से ही सुख का विस्तार होगा, यह बात मैं डंके की चोट से कह सकता हूँ। कलियुग में इसके सिवा दूसरा भक्ति साधन है ही नहीं। शास्त्र घोषणा कर रहा है–

जाना चहिये गूढ़ गति जेऊ।
जीह नाम जप जानहि तेऊ।।
रामनाम का अमित प्रभावा।
संत, पुरान, उपनिषद गावा।।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म
सर्व मंत्रसार नाम एइ शास्त्र मर्म।।
अविश्रान्त नामे नाम अपराध याय
ताहे अपराध कभू स्थान नाहि पाय।।

नाम की महिमा, कहाँ तक कहूँ, जितना भी कहा जाये, थोड़ा है। नामनिष्ठों की मरणावस्था का वर्णन तो आपने जान लिया अब भगवान् अपने नामनिष्ठ भक्त को स्वयं लेने क्यों आते हैं ? अपने पार्षदों को क्यों नहीं भेजते ? एक उदाहरण के माध्यम से समझाने का प्रयास कर रहा हूँ।

एक बार की बात है। राजा अकबर ने बीरबल से कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्यारे भक्त को स्वयं लेने आते हैं, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। भगवान् के यहां तो अनंत पार्षद हैं, उन्हें भेजकर वे कोई भी काम करवा सकते हैं। उन्हें स्वयं जाने की क्या जरूरत है। जैसे मेरे यहां हजारों नौकर हैं। मैं उन्हें भेजकर कोई भी काम करवा लेता हूँ। मुझे जाने की क्या आवश्यकता है ?

बीरबल बहुत बुद्धिमान मंत्री था। उसने अकबर से कहा– "जहांपनाह! आपके इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये मुझे थोड़ा वक्त चाहिये। बादशाह हजूर! कुछ दिन बाद मैं आप की बात का उत्तर जरूर दूँगा।"

अकबर ने कहा, "ठीक है। आपको जितना समय चाहिये, ले लीजिये।"

काफी दिन बीत गये। अकबर अपने राज्य के कामों में व्यस्त हो गया। उसे कुछ भी याद न रहा। एक दिन बादशाह अकबर नाव द्वारा एक नदी पार कर रहे थे। उस नदी का पाट काफी चौड़ा था और उसमें पानी भी बहुत था। बादशाह के साथ उनके बहुत सारे नौकर–चाकर भी थे। उनका शहज़ादा (बेटा) भी उनके साथ था।

नदी के बीच जाकर बीरबल ने बादशाह के बेटे को धक्का देकर नदी में गिरा दिया। बादशाह ने जब देखा कि मेरा पुत्र नदी में गिर गया तो वह उसी क्षण नदी में कूद पड़े। उन्होंने अपने किसी भी नौकर या गोताखोर को नहीं बुलाया।

वास्तव में, बादशाह के जिस बेटे को बीरबल ने नदी में गिराया था, वह सचमुच में उनका बेटा न था। वह उसकी शक्ल, सूरत और कद काठ और वस्त्रों से ऐसा लगता था कि असली हो जबकि वह मोम का एक पुतला था।

जब बादशाह अकबर को पता चला तो उसने बीरबल से पूछा– "बीरबल! आपने ऐसा क्यों किया? यदि मैं नदी में डूब जाता तो?"

बीरबल ने कहा–"बादशाह सलामत! नदी पार करते समय आपके साथ कितने ही नौकर चाकर थे, फिर भी आपने उस मुसीबत की घड़ी में किसी को नहीं बुलाया। आवाज नहीं दी और स्वयं ही नदी में छलांग लगा दी।"

"बीरबल! उस वक्त सोचने का वक्त कहाँ था? मेरा बेटा नदी के पानी के तेज बहाव के साथ बह न जाये, यही सोचकर मैं पानी में कूदा था। मैं उसे पकड़ना चाहता था। पर तूने मेरे साथ ऐसा मजाक क्यों किया। देख रहे हो मेरी कीमती पोशाक पानी में भीग कर खराब हो गई। मेरा मुकुट बहते–बहते बच गया।"

बीरबल ने कहा–''महाराज! एक दिन आपने पूछा था कि भगवान् अपने प्रेमी भक्त को लेने स्वयं क्यों आते हैं? यह आपके उसी प्रश्न का जवाब था। इतने नौकर साथ होते हुये भी आपने किसी को नहीं पुकारा। किसी को नहीं कहा कि मेरे शहजादे को पानी से बाहर निकालो। आप स्वयं ही नदी में कूद पड़े। बादशाह हजूर जिस प्रकार इतने नौकर–चाकर साथ रहने पर भी अपने प्रिय बेटे को बचाने के लिये, आपने अपनी जान की भी परवाह नहीं की और नदी में कूद पड़े, उसी प्रकार जो भक्त श्री हरिनामनिष्ठ होता

है, वह भगवान् का अतिप्रिय होता है, उसे लेने भगवान् स्वयं आते हैं। महाराज! अब तो आप समझ गये होंगे कि जब भगवान् के प्रेमी भक्त का अंतिम समय आता है तो वे उसके पास तुरन्त आ जाते हैं।"

प्रेमीजनो! भगवान् बहुत दयालु हैं। उनकी दया का अंत नहीं। इतिहास गवाह है कि जिस जिसने भी भगवान् को सच्चे मन से पुकारा, बुलाया, उसी क्षण भगवान् आ गये। उन्होंने वस्त्र रूप धारण कर भरी सभा में द्रौपदी की लाज बचाई! अपने भक्त गजेन्द्र (हाथियों का राजा) को दुःखी देखकर तथा उसके द्वारा पढ़ी हुई स्तुति सुनकर, सुदर्शन–चक्रधारी, जगदाधार भगवान् गरुड़जी की पीठ पर सवार होकर, तत्काल वहां पहुंच गये थे, जहाँ वह गजेन्द्र उन्हें बुला रहा था। अपने भक्त की पीड़ा देख कर, भगवान् अपने को रोक न सके और गरुड़ को छोड़कर तुरंत उसके पास आये और उसे झील से बाहर निकालकर, सबके देखते–देखते ग्राह (मगरमच्छ) का मुंह अपने चक्र से चीर कर अपने भक्त गजेन्द्र की रक्षा की।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम्।।

(श्रीमद्भागवत 8.3.33)

प्रातः स्मरणीय, अर्चनीय एवं वंदनीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने इस श्लोक को अपने शब्दों में बड़ा सुंदर वर्णन किया है।

पीड़ा में उसको पड़ा देख, भगवान् अजन्मा पड़े उतर।
अविलम्ब गरुड़ से फिर कृपया झट खींच सरोवर से बाहर।।
कर गज को मकर–सहित, उसका मुख–चक्रधार से चीर दिया।
देखते–देखते सुरगण के हरि ने गजेन्द्र को छुड़ा लिया।
बोलिये ! भक्तवत्सल भगवान् की जय।।

नंदनंदन श्रीकृष्ण भगवान् हैं, इस बात की पुष्टि श्रीमद्भागवतम् में हुई है –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.3.28)

यह एक विशेष श्लोक है।

इस श्लोक में वर्णन है कि भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं, वे भगवान् के पूर्णांश (अंश) या अशांश (कलायें) हैं पर नंदनंदन श्रीकृष्ण तो आदि भगवान् हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानंद विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।1।।

"गोविंद के नाम वाले नंदनंदन श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं। उनका सच्चिदानंद शरीर है। वे ही सबके मूल उत्सव हैं। उनका कोई उत्सव नहीं है एवं वे ही समस्त कारणों के मूल कारण हैं।"

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.22)

"जो लोग अनन्यभाव से मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुये, निरंतर मेरी पूजा करते हैं, उनकी जो आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण का ऐसा भक्त जो हरपल, हरक्षण, हर सांस में उनका चिंतन करता है और श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, वंदन, अर्चन, दास्य, सख्यभाव तथा आत्मनिवेदन के द्वारा उनके चरणकमलों की सेवा में लीन रहता हो, ऐसे भक्त की पूरी जिम्मेवारी भगवान् ने इस श्लोक में ली है।

प्रेमीजनो! मेरे गुरुदेव इसीलिये बार-बार यही बात कह रहे हैं कि मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभ है। इसमें श्री हरिनाम का सहारा लो। जब आप हर रोज कम से कम एक लाख (64 माला)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरिनाम करोगे तो तुम्हें 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' हो जायेगी। अतः मेरी आप सभी से, हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि जो बीत गई सो बीत गई, अब तो संभल जाओ। अमूल्य मनुष्य जीवन का जो समय बचा है, उसको व्यर्थ न गंवाओ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति के प्रकाशन में जिन महानुभावों ने हमें अपना सहयोग दिया है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

श्री गुरु–वैष्णव पददास,

हरिपद दास

गुरु–वाणी के अमृत बिन्दु

वैष्णवों के आविर्भाव व तिरोभाव तिथि में सबसे बड़ा कर्तव्य होता है–उन्हें याद करना। वैष्णवों को स्मरण करने से सारे विघ्न दूर हो जाते हैं।

•

माँ–बाप के लाडले बच्चे की प्रशंसा करने से जैसे बच्चे के माता–पिता का ध्यान आपकी तरफ आ जाता है, वैसे ही भगवान् के प्यारे भक्तों का गुणगान करने से भगवान् की कृपा–निगाह आपकी ओर आ जायेगी।

•

जो तिथि भगवान् व उनके प्यारे भक्तों की याद करा देती है, वही तिथि ही सर्वोत्तम है।

श्रील भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
30.10.2010

प्रेमास्पद वैष्णवगण के चरणों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् को पाने हेतु करबद्ध प्रार्थना।

श्रीमद्भागवत पुराण के दूसरे (2) स्कन्ध के नौवें (9) अध्याय की श्लोक संख्या बत्तीस (32) से श्लोक संख्या पैंतीस (35) में श्री भगवान् ने ब्रह्मा जी को जो ज्ञान किया है, वह अत्यन्त गोपनीय है। प्रेमाभक्ति और साधनों से युक्त, अपने रूप, गुण और लीलाओं का तत्व समझाते हुये श्री भगवान् कहते हैं–

चतुः श्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।32।।
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयते चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।33।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।34।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्–स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।35।।

श्री भगवान् ने कहा–"ब्रह्मा जी, सृष्टि से पहले, केवल मैं था। मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं था। मेरे सिवाय न स्थूल था, न सूक्ष्म था और न ही इन दोनों का कारण ज्ञान था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ भी मैं ही हूँ और इस सृष्टि के रूप में जो कुछ भी नजर आ रहा है, वह भी मैं ही हूँ।।32।। इसके बिना जो कुछ बाकी बचा रहेगा, वह भी मैं ही हूँ, वास्तव में, न होने पर भी, जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मुझ परमात्मा में दो चन्द्रमाओं की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश

मण्डल में, राहू आदि नक्षत्रों की तरह, प्रतीत नहीं होती वह सब मेरी ही माया है।।33।। जिस प्रकार सभी प्राणियों के पांच भूतों से बने हुये छोटे-बड़े शरीरों में जल, वायु, अग्नि आकाश तथा पृथ्वी-शरीरों के कार्य रूप से बने होने के कारण उनमें प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारण रूप से विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियों की दृष्टि से, मैं उनमें आत्मा के रूप में प्रवेश किये हुआ और आत्मसृष्टि से, अपने सिवाय और कोई भी वस्तु न होने कारण, उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।।34।। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं– इस प्रकार अन्वय की पद्धति से यह बात सिद्ध होती है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं। वही वास्तविक तत्व हैं। जो आत्मा और परमात्मा का तत्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जान लेने की आवश्यकता है।"

श्री भगवान् आदिकाल में अकेले ही थे। जब उनकी इच्छा होती है तो वे अपनी माया का आश्रय लेकर इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने के लिये अपने आपको ही अनेक रूपों में बना देते हैं और क्रीडा करते हैं। उस अनंत की लीलाओं का ही एक रूप है यह सृष्टि।

श्री भगवान् की इच्छा जब सृष्टि रचना करने की हुई तो उन्होंने तीनों लोकों के परमगुरु, आदिदेव ब्रह्माजी को अपनी नाभि से प्रकट किया। उन्हें तप करने को कहा। उनकी तपस्या से श्री भगवान प्रसन्न हो गये। श्री भगवान् ने वर मांगने को कहा। तब ब्रह्मा जी ने कहा "नाथ! मैं आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को जानना चाहता हूँ।" तब श्री भगवान ने उन्हें 'चतुः श्लोकी भागवत' का उपदेश दिया। श्री भगवान् के अन्तर्धान होने पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की।

इस सृष्टि में अनंत कोटि जीवों के रहने के लिये शरीर रूपी मकानों का निर्माण किया गया था। उनके रहने की व्यवस्था की गई थी। चौरासी लाख योनियों में आत्मा रूप में भगवान् स्वयं

विराजमान हुये। इन चौरासी लाख योनियों को चार भागों में रखा गया। पहली सृष्टि थलचर (पृथ्वी पर चलने वाले जीवों) की है। दूसरी जल चर (जल में रहने वाले जीवों की) है, तीसरी नभचर (आकाश में उड़ने वाले जीवों की) है और चौथी अपने ही जैसे आकार वाले मानव की है। चार प्रकार की इस सृष्टि में चौरासी लाख योनियां हैं। इन सभी योनियों में रहने के लिये भगवान् न चौरासी लाख तरह के शरीर रूपी मकान भी बनाये और फिर उन सबमें आत्मा रूप से विराजमान हो गये। यह सब लीला भगवान् अपनी इच्छा से, स्वयं ही स्वयं से खेलने हेतु करते रहते हैं। वे परम स्वतंत्र हैं। कुछ भी कर सकते हैं। जब उनका अकेलेपन में मन नहीं लगा तो उन्होंने यह खेल रच डाला। इस खेल में चौरासी लाख तरह के मकान बना दिये। यह सभी मकान पांच तत्वों के बनाये गये। पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व तथा आकाश तत्व। जब इस शरीर में इन तत्वों की कमी हो जाती है तो शरीर कमजोर हो जाता है, समाप्त हो जाता है। जब इन मकानों में इन तत्वों की कमी हो जाती है तो मकान गिर जाता है और सारे तत्व अपने–अपने तत्वों में जाकर मिल जाते हैं। उसी प्रकार यह शरीर रूपी मकान भी जब मिट जाता है, शरीर में इन पांचों तत्वों की कमी हो जाती है तो वह शरीर भी अपने–अपने तत्वों में मिल जाता है। उसके अंदर रहने वाली आत्मा, जो अविनाशी, अजन्मा, शाश्वत् तथा अव्यय है, शरीर रूपी दूसरे मकान में चला जाता है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है। उसी प्रकार यह आत्मा पुराने तथा व्यर्थ शरीर रूपी मकान को छोड़कर नये मकान में चला जाता है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.22)

जिस प्रकार पत्थर, चूना, पानी, बजरी और सीमेंट इत्यादि तत्वों से बना हुआ मकान गिर जाता है, ढह जाता है तो ये सभी तत्व अपने अपने तत्वों में जा मिलते हैं पर इनमें रहने वाला मनुष्य दूसरे मकान में चला जाता है। उसका उस पुराने मकान से कोई लेना देना नहीं रहता। उसी प्रकार आत्मा, जो सदा अमर है, निर्लिप्त है, वह भी एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। अपने शुभ–अशुभ कर्मों के आधार पर ही उस जीव को अगला शरीर मिलता है। अपने शुभ–अशुभ कर्मों के अनुसार ही उसे सुख–दुःख की प्राप्ति होती है। अपनी अज्ञानता के कारण ही जीव का इन चौरासी लाख प्रकार के मकानों में आना–जाना लगा रहता है। यदि यह जीव अपने साथ रहने वाली आत्मा, जो परमात्मा का ही अंश है, को पहचान ले, उससे प्रेम बना ले, तो वह भी परमानंद की अनुभूति कर सकता है, आनंद की लहरों में गोते लगा सकता है पर दुर्भाग्यवश, अज्ञानतावश यह जीव अपने साथी या पिता आत्मा स्वरुप परमात्मा को भूल गया इसीलिये जन्म–जन्मांतरों से दुःख के सागर में गोते खा रहा है। यह संसार ही दुःख का सागर है। इससे बाहर निकलना बहुत मुश्किल है और बाहर निकले बिना उसे सुख सागर मिलेगा नहीं। आनंद की प्राप्ति होगी नहीं। फिर यह सब कैसे होगा ?

यदि किसी बहुत बड़े जंगल में आग लग जाये और वह आग विकराल, विराट रूप धारण करने लगे तो उस जंगल में रहने वाले सभी जीव–जन्तु जलकर राख हो जायेंगे। अपनी शक्ति से, अपनी बुद्धि से वे सभी अपना बचाव नहीं कर सकते। इतने बड़े जंगल की आग को बुझाना आदमी के वश की बात नहीं। पर यदि भगवान् कृपा करें, घनघोर बादल आकाश में छा जायें और जंगल में मूसलाधार वर्षा हो जाये तो सभी जीव बच सकते हैं। यह सब होगा भगवद्कृपा से ही।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं–

संसार दावानल लीढ़ लोक, त्राणाय कारुण्य घनाघनत्वम्
प्राप्तस्य कल्याण गुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्री चरणारविन्दम्।

"जिस प्रकार वन में लगी हुई दावाग्नि पर जल की वर्षा करके मेघ उसे शांत कर देता है, उसी प्रकार श्रील गुरुदेव सांसारिक जीवन की धधकती हुई अग्नि को शांत करके, भौतिक दुःखों से पीड़ित जगत् का उद्धार कर रहे हैं। शुभगुणों के सागर, ऐसे श्रील गुरुदेव के चरणकमलों की मैं सादर वन्दना करता हूँ।"

इसी प्रकार यदि कोई भगवान् का प्यारा, कोई श्रीहरिनाम निष्ठ कृपा कर दे, हमारी अज्ञानता दूर कर दे, हमारे अंधकारमय जीवन में ज्ञान का दीपक जला दे तो हमारा जीवन सदा–सदा के लिये जगमगा उठे। भगवान् का कोई प्यारा, निजजन ही इसकी अनुभूति करवा सकता है। आत्मा को परमात्मा से मिला सकता है। इसके बिना कोई दूसरा उपाय अनंतकोटि ब्रह्मांडों में नहीं है, नहीं है, नहीं है।

श्री भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है। हम सब उनके लिये खिलौने हैं। जैसे कोई बच्चा खिलौनों से खेलता है, उन्हें तोड़ता है तो बहुत खुश होता है। ऐसे ही वह सृजनहार, नित्य नये–नये खेल खेला करता है। यह सब उसकी लीला है, उसका खेल मात्र है। उस परम स्वतंत्र भगवान् ने चौरासी लाख योनियों की सृष्टि वाले प्राणियों को उनके कर्मानुसार शरीर दिये। उसकी उस असीम सृष्टि में अनंत कोटि जीव इन योनियों में विचरने लगे। अब भगवान् ने सोचा कि यदि ये जीव मरेंगे नहीं तो कम नहीं होंगे और उनकी संख्या बढ़ते रहने से सारे ब्रह्मांड इन प्राणियों से भर जायेंगे और रहने के लिये जगह ही नहीं बचेगी। इसलिये उनमें खाने की प्रवृति बना दी। जीवो जीवस्य भोजनम् अर्थात जीव ही जीव का भोजन है। ये जीव दूसरे जीवों को खाने लगे। मनुष्य को छोड़कर, जो कोई भी जीव किसी दूसरे जीवन को खाता है, उसे दोष या पाप नहीं लगता। यह इसलिये क्योंकि उन जीवों में अज्ञानता की प्रधानता

है। परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा आकार दिया, शरीर दिया, उसे बुद्धि दी, ज्ञान दिया जिसके द्वारा वह अपने पिता परमात्मा की गोद में जा सकता है। श्री भगवान् ने मानव को कर्म करने की प्रवृत्ति प्रदान की, स्वतंत्रता दी, जिसके द्वारा वह अच्छा या बुरा कर्म करता है। इन्हीं कर्मों के अनुसार उसे शरीर अर्थात् मकान की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हर एक आत्मा के ठहरने के लिये एक–एक मकान दे दिया। हाथी, ऊँट, बकरी, गाय, भैंस, सूअर, गधा, घोड़ा, खच्चर, कुत्ता, बाघ, खरगोश, बंदर तथा सिंह इत्यादि जानवर पृथ्वी पर चलकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पंखों से उड़ने वाले पक्षी, जैसे हंस, मोर, चिड़िया, कबूतर, बगुला, गिद्ध, बटेर, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ तथा उल्लू आदि पंखों या परों से उड़कर जीवन जीते हैं। जल में रहने वाले जलचर मेंढक, मछली, मगरमच्छ, कछुआ इत्यादि तथा पृथ्वी पर रेंगकर चलने वाले सांप, बिच्छू, खटमल, जूँ इत्यादि सभी अपने–अपने शरीर रूपी मकानों में निवास करते हैं।

मनुष्य योनि इन सभी योनियों में सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् ने उसे बुद्धि दी है, विवेक दिया है। अब यदि मानव इन जीवों के शरीर को नष्ट करता है, उनके रहने के मकानों को गिराता है तो उन मकानों में रहने वाले जीवों को दुःख होगा ही। मनुष्य के इस कर्म का उसे फल जरूर मिलेगा। समय आने पर उसे इसका फल भोगना ही पड़ेगा। वह इससे बच नहीं सकता क्योंकि जिस मकान को उसने तोड़ा है, नष्ट किया है, गिराया है, उसका साक्षी उसमें रहने वाली आत्मा है जो परमात्मा का अंश है, परमात्मा का पुत्र है। आत्मा जब उसके कर्म की साक्षी (गवाही) देगा तो वह दण्ड से बच नहीं सकेगा और दारूण दुःखों में फंसता रहेगा। संसार में भटकता रहेगा।

किसी भी जीव को मारना या सताना युक्ति संगत नहीं है। भगवान् की इस रचना में हर जीव को जीने का अधिकार है और

हर जीव जीना भी चाहता है परंतु अज्ञानतावश, दुष्ट प्रकृति परवश होकर, मनुष्य इन जीवों को सताता है, मारता है। अपनी जीभ के स्वाद के लिये उनका मांस भक्षण करता है। कभी–कभी अपनी रक्षा के लिये, बिच्छु, सांप, मच्छर इत्यादि को भी बेरहमी से मारता है। अपनी प्रकृतिवश हर प्राणी अपनी रक्षा करता है, जब मनुष्य इन जीवों को मारता है तो जीव मूकदर्शक बना अपने बचाव में इधर–उधर भागता है पर मनुष्य उस निर्दोष को मार कर ही दम लेता है। आज जिस प्राणी को हम मारते हैं, कल उसी का शरीर हमें धारण करना पड़ेगा। हमें भी सांप, बिच्छु बनना पड़ेगा। इस प्रकार मनुष्य अपने अगले शरीर की, मकान की, रचना स्वयं करता है। यदि वह ऐसा न करे, जीवों को न मारे तो वह इन अध ाम (निम्न) योनियों में जाने से बच सकता है। मानव की योनि में आकर, यह बात हमें याद रखनी चाहिये–

जीयो और जीने दो।

यह मनुष्य का स्वधर्म है। हर प्राणी में भगवान् का निवास है। यदि मनुष्य किसी को सताता है, मारता है तो सीधे तौर पर वह भगवान् को सताता है, दुःख देता है। ऐसे मनुष्य को क्या भगवान् की कृपा मिल सकती है ? कदापि नहीं। यह शरीर रूपी मकान तो एक जड़ चीज है, नश्वर है पर इस शरीर रूपी मकान में रहने वाली आत्मा तो शाश्वत्–अजर है, अमर है। उससे द्वेष करके, उससे शत्रुता करके सुख–शांति की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

श्रीमद्भागवतपुराण के एकादश स्कन्ध के 29वें अध्याय के 19वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय उद्धवजी से कहते हैं–

"मैं सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूं कि समस्त प्राणियों और पदार्थों में मन, वाणी और शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि समस्त जीवों में तू मुझे ही देख। इस सृष्टि में मेरे सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। यह हरी–भरी प्रकृति भी मेरा ही स्वरूप है। हरे–भरे पेड़ों को काटना भी पाप है। यदि

कोई ऐसा करता है तो उसे वृक्ष की योनि में जन्म लेना पड़ेगा। श्रीमद्‌भागवत पुराण के दसवें स्कन्ध के दशवें अध्याय में यमलार्जुन की कथा आती है। धनाध्यक्ष कुबेर के लाड़ले पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव के मद को चूर–चूर करने के लिये, देवर्षि नारद ने उन्हें वृक्षयोनि में जाने का शाप दिया था। साथ ही उन पर अनुग्रह करते हुये कहा कि मेरी कृपा से वृक्षयोनि में जाने पर भी उन्हें भगवान् की स्मृति बनी रहेगी। देवर्षि नारद के शाप से नलकूबर और मणिग्रीव दोनों एक साथ ही अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुये। उस योनि में सौ वर्ष बीत जाने पर उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त हुआ। जब भगवान् श्रीकृष्ण कार्तिक मास (दामोदर मास) में ऊखल–बंधन की लीला कर रहे थे और माता यशोदा ने उन्हें रस्सी से बांध दिया था तो भगवान् ने सोचा कि मुझे इन दो वृक्षों का भी उद्धार करना है। ऐसा मन में आते ही, अपने प्रेमी भक्त देवर्षि नारद के शाप व वरदान को सत्य करने के लिये, भगवान्, ऊखल को धीरे–धीरे घसीटते हुये उस ओर जाने लगे, जहां पर यमलार्जुन वृक्ष थे। भगवान् ने ऊखल को दोनों वृक्षों के बीच फंसा दिया और अपनी कमर में कसकर के बंधी हुई रस्सी को जोर से खींचकर पेड़ों को उखाड़ दिया और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उन दोनों वृक्षों के बीच में से दो सिद्ध पुरुष निकले। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में सिर रखकर प्रणाम् किया और हाथ जोड़कर स्तुति की–

नमः परम कल्याण नमः परम मंगल।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।।

(श्रीमद्‌भागवतम् 10.10.36)

"परमकल्याण स्वरूप। आपको नमस्कार है। परमशान्त, सबके हृदय में विहार करने वाले यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण को नमस्कार है।"

इस ऐतिहासिक घटना से यह प्रमाणित हो जाता है कि पेड़ों के रूप में देवता भी इस पृथ्वी पर रहते हैं। मैंने संतों से सुना है कि

श्रीराधाकुंड में श्रीश्यामकुंड के किनारे पांचों पांडवों ने वृक्षों के रूप में रहकर तपस्या की थी।

इस कथा का सार यही है कि जैसा भी हम कर्म करेंगे, वैसा ही हमें फल मिलेगा। जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।

As you saw, so shall you reap.

यदि हम शुभ कर्म करेंगे तो सुख मिलेगा और अशुभ कर्म करेंगे तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। शुभकर्म करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है और जब उसके पुण्य के फलों की समाप्ति हो जाती है तो उसे फिर इस पृथ्वी पर आना पड़ता है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

(श्री भगवद्गीता 9–21)

इसी प्रकार जो लोग बुरे कर्म करते हैं उन्हें भी उनका फल भोगने नरक में जाना पड़ता है और उसके बाद पुनः इस पृथ्वी पर आना पड़ता है। इस प्रकार मनुष्य बार–बार कभी ऊपर, कभी नीचे जाता–आता है। उसका यह चक्र, आवागमन कभी समाप्त नहीं होता। पर यदि मनुष्य चाहे तो वह सच्चिदानन्दमय जीवन जी सकता है और अपने असली घर, भगवद्धाम जा सकता है। पर यह सब होगा भगवान् के किसी प्रियजन, निजजन की कृपा से ही। वही ज्ञान का दीपक जलाकर अज्ञान के अंधकार को भगा सकता है। कोई प्रामाणिक गुरु, जो हमें परम्परा में मिला हो, जिसे गुरु–परम्परा ने अधिकार दिया हो, उसके शरणागत होकर, यदि साधक नाम का सहारा लेकर भगवान् को भजता है तो ऊपर लिखे कर्मों का फल जलकर भस्मीभूत हो जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता के चौथे अध्याय का दूसरा श्लोक–

"एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः"

इस बात की पुष्टि करता है कि हमें परम विज्ञान की प्राप्ति गुरु–परम्परा द्वारा ही हुई है। गुरु परम्परा जब टूट जाती है और कोई गुरु–परम्परा के अनुसार नहीं चलता, तो भगवान् श्रीकृष्ण

उसे स्वीकार नहीं करते। हमें जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है गुरु परम्परा से ही प्राप्त हुआ है। भगवत्–तत्व ज्ञान–प्रवाह की अनादि सनातन चार धाराएं हैं। इन्हीं के अन्तर्गत, रहकर, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" हो सकती है। ये धाराएं भगवान् श्रीकृष्ण से शुरू हुई हैं। ये धाराएँ हैं–

1. श्री ब्रह्मा जी (श्री ब्रह्म सम्प्रदाय)
2. श्री लक्ष्मी जी (श्री सम्प्रदाय)
3. श्री रुद्र जी (श्री रुद्र सम्प्रदाय)
4. श्री सनक जी (श्री सनक सम्प्रदाय)

क्योंकि हमारी गुरु–परम्परा अर्थात् श्री ब्रह्म–मध्व गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की गुरु परम्परा है। इसीलिये जिस क्रम में हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसकी गुरु परम्परा इस प्रकार है–

1. श्रीकृष्ण
2. श्री ब्रह्मा
3. श्री नारद
4. श्री व्यास
5. श्री मध्व
6. श्री पद्मनाभ
7. श्री नरहरि
8. श्री माधव
9. श्री अक्षोभ्य
10. श्री जयतीर्थ
11. श्री ज्ञानसिन्धु
12. श्री दयानिधि
13. श्री विद्यानिधि
14. श्री राजेन्द्र
15. श्री जय धर्म
16. श्री पुरुषोत्तम
17. श्री ब्रह्मण्यतीर्थ

18. श्री व्यासतीर्थ
19. श्री लक्ष्मीपति
20. श्री माधवेन्द्रपुरी
21. श्री ईश्वरपुरी (श्री अद्वैताचार्य, श्री नित्यानंद)
22. श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु (स्वयं भगवान्)
23. श्री रूप (श्री स्वरूप दामोदर)
24. श्री जीव गोस्वामी (श्री रघुनाथ दास गोस्वामी)
25. श्री कृष्णदास कविराज
26. श्री नरोत्तम ठाकुर
27. श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर
28. श्री बलदेव विद्याभूषण
29. श्री जगन्नाथ दास बाबा जी
30. श्रील भक्तिविनोद ठाकुर
31. श्रील गौरकिशोरदास बाबा जी
32. श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद
33. श्री श्री भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
34. श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज
    (अखिल भारतीय श्री चैतन्यमठ के वर्तमान आचार्य)

भगवान्, श्रीकृष्ण ने गीता के अठारवें अध्याय के छियासठवें श्लोक में कहा है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18.66)

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने, पूरी श्रीमद्भगवद्गीता का सार (निचोड़) बता दिया है। वे कहते हैं अर्जुन! अब तक मैंने जो भी विधियां बताई हैं, तू उन सबका परित्याग करके, केवल एक काम कर। मेरी शरण में आ जा। ऐसा करके तू समस्त पापों से बच जायेगा। मैं तेरा उद्धार कर दूंगा। तू चिंता न कर। डर मत।

बात स्पष्ट है कि पापों से मुक्त होने के लिये कठोर तपस्या करने की जरूरत नहीं। जो कुछ हो गया, सो हो गया पर भविष्य में हम पाप न करें और भगवान् श्रीकृष्ण की शरण गृहण कर लें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण की शरण लेने के बाद फिर कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, ध्यानयोग आदि अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कर्मयोगी, दार्शनिक, योगी तथा भक्त–ये सभी अध्यात्मवादी हैं–पर इन सबसे शुद्ध भक्त ही सर्वश्रेष्ठ है।

पूर्णशरणागत भक्त का एक ही लक्षण है। वह भगवान् के लिये रोयेगा, तड़पेगा। यदि ऐसा लक्षण नहीं है तो समझो, वह पूर्ण शरणागत नहीं है। केवल जुबान (बोलने में) से ही शरणागत हुआ है, दिल से नहीं।

भगवान् की हर लीला रहस्यमयी होती है। वे हर काम अपने प्रिय भक्तों के माध्यम से करते हैं। जैसे यमुलार्जुन की कथा में उन्होंने देवर्षि नारद जी से शाप व वरदान दिलवाकर, अपनी लीला की है। इस प्रकार वैष्णव भक्त ही अग्रगण्य है।

मेरी प्रेमास्पद भक्तगणो! मेरे श्रील गुरुदेव की बात बड़े ध्यान से सुनो।

शुक्लाम्बर–भाग्य बलिवारे शक्ति का'र
गौरचन्द्र अन्न–परिग्रह कैला यार।।

श्रीश्रीचैतन्य भागवत (मध्यखंड 26.57)

"उन शुक्लाम्बर के भाग्य का वर्णन करने की शक्ति भला किसमें है जिनका अन्न गौरचन्द्र ने स्वयं ग्रहण किया है।"

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी एक भिक्षुक थे। वे भगवान् व भक्तों की सेवा करने के लिये मधुकरी मांगकर लाते थे। अपने पेट पालने के लिये नहीं। जगत् के मंगलस्वरुप, श्री गौरचन्द्र एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के पास आये और अन्न मांगा।

"तोर अन्न खाइते आमार इच्छा बड़।
किछु भय न करिह, बलिलाङ्ग दृढ़।।"

"तेरा अन्न खाने की बड़ी इच्छा होती है। मैं दृढ़तापूर्वक यह बात कह रहा हूँ। डर मत।"

यह बात एक बार नहीं, बार–बार महाप्रभु ने कही। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, महाप्रभु के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाता हुआ बोला– "मैं अधम, भिखारी, पापिष्ठ और निंदनीय हूँ। कहाँ आप सनातन धर्म स्वरूप और कहाँ मैं पापी ? प्रभो। मुझे अपने चरणों की छाया प्रदान कीजिये। हे प्रभु! मैं तो कीड़े के समान भी नहीं हूँ।"

प्रभु ने कहा–"बड़ इच्छा बासे मोर तोमार रन्धने।।''

"तुम्हारे हाथ से पका हुआ अन्न भोजन करने की मेरी बड़ी इच्छा है। जाओ। घर में जाकर नैवेद्य तैयार करो। आज दोपहर को मैं अवश्य आऊँगा।"

वास्तव में देखा जाए तो जो सब में भगवान् के दर्शन किया करते हैं, सर्वतोभाव से प्रभु का भजन किया करते हैं, प्रभु उन्हीं का अन्न ढूंढ़ते हैं। इसी भक्ति के वश होकर उन्होंने शुद्र–पुत्र विदुर की पत्नि (विदुरानी) से मांगकर केले के छिलके खाये थे। धन्ने भक्त की सूखी रोटियां खाई थीं। भीलनी के बेर खाये थे। सुदामा के तंदुल खाये थे। द्रौपदी से अक्षयपात्र में लगा हुआ पत्ता मांगकर खाया था।

शुक्लांबर ने स्नान करने के बाद बड़ी सावधानी से स्वयं सुवासित जल गर्म किया। फिर बिना स्पर्श किये उस गर्म जल में तण्डुल (चावल) तथा केले के पेड़ का गूदा (गर्भ–थोड़) डालकर दोनों हाथ जोड़ दिये। डरे तथा सहमे हुये उस निर्धन ब्राह्मण ने प्रार्थना की–

'जय कृष्ण गोविंद गोपाल वनमाली।' और वे श्रीहरिनाम करने लगे। उसी क्षण महा–पतिव्रता, जगन्माता, लक्ष्मीदेवी ने भक्त के अन्न पर दृष्टिपात कर दिया। रमा देवी के दृष्टिपात के कारण सारा अन्न अमृतस्वरूप बन गया। उधर स्नान करने के

बाद प्रभु भी वहां आ गये। नित्यानंद आदि भी उनके साथ थे। श्री शचीनंदन ने स्वयं अपने हाथों से अन्नग्रहण करके विष्णु को निवेदित किया। फिर प्रभु आनंदपूर्वक भोजन करने के लिये बैठ गये। सभी भक्तगण नयन भरकर उन्हें देख रहे थे और उस स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा कर रहे थे। भक्तवत्सल प्रभु बोले–"जब से मेरा जन्म हुआ है, तब से लेकर आजतक मैंने ऐसा स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं खाया। केले के गूदे का स्वाद तो मैं वर्णन ही नहीं कर सकता।"

शुक्लाम्बर पर महाप्रभु की कृपा दृष्टि से भक्तवृन्द गद्गद् हो गया और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे।

भक्तजनो! इस कथा को ध्यान से समझो। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी अनेक स्थानों से भिक्षा मांगकर लाते थे। भिक्षा में लाये गये अन्न में स्पर्श आदि का दोष रहता है परंतु भगवान् भक्त के दोष, अपराध नहीं देखते। वे तो भक्त के हृदय की पवित्रता ही देखा करते हैं। भगवान् को धन, जन या पण्डित्य प्रतिभा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे तो भक्तिरस के वशीभूत हैं। भगवान् गीता में कहते हैं–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.26)

''यदि कोई प्रेम तथा भक्ति के साथ मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल प्रदान करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"



हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद की वाणी स्मृति

23-24 वर्ष पहले की बात है। एकदिन प्रसिद्ध कृष्णदास बाबाजी अपने एक शिष्य के साथ महाप्रभु के घर (श्रीयोगपीठ श्रीमंदिर) आये थे। कृष्णदास बाबाजी, भक्तिविनोद ठाकुर, कृष्णदास बाबाजी का वह शिष्य एवं और भी कुछ लोग महाप्रभु के घर में भण्डार के बरामदे में प्रसाद पाने को बैठे। कृष्णदास बाबाजी ने तो बहुत सम्मान के साथ प्रसाद पाया। उनके शिष्य ने सोचा था कि जब यहाँ पर निमंत्रण हुआ है तो अनेक प्रकार का चर्व्व, चोष्य आदि उत्तम वस्तुएँ खाने को मिलेंगी। वे कहने लगे- इस तरह का सादा प्रसाद! ठाकुरजी के लिए अच्छी-अच्छी रसोई करना चाहिये। कृष्णदास बाबाजी ने शिष्य से कहा, 'महाप्रभु के प्रसाद को ऐसा नहीं कहना चाहिए।' उन दिनों में मोटा चावल और धाम में उत्पन्न (जंगली) तोरई की सब्जी का भोग होता था, और दिनभर हरिनाम-हरिकथा होती थी। जिह्वा के वेग से ही उपस्थ वेग आ जाता है।

जिह्वार लालसे जे इति उति धाय।
शिश्नोदर परायण - कृष्ण नाहि पाय।।

(जीभ के लालच से जो इधर-उधर भागता है ऐसे उदर-उपस्थ परायण व्यक्ति को कृष्ण प्राप्त नहीं होते।)

खूब सादा-सीदा प्रसाद पाना है और दिन भर हरिनाम करना है- हरि सेवा करनी है। पापिष्ठ (पाप में आसक्त) लोग कृष्ण पूजा नहीं करते। स्वल्प विचार परक लोग कृष्ण पूजा करते रहते हैं और बुद्धिमान् लोग कृष्ण-भक्त की पूजा कर यथार्थ रूप से कृष्ण पूजा करते हैं। 'कनिष्ठ अधिकारी' कृष्ण पूजा करते हैं, 'मध्यम अधिकारी' व 'उत्तम भागवत' कृष्ण भक्त की पूजा करते हैं। प्राकृत-सहजिया लोग यह समझ नहीं पाते। वे सोचते हैं कि जो कृष्ण पूजा करता है, वही ज्यादा बड़ा है। यह सोचकर वे अपने को 'वैष्णव' मानकर अभिमान करते हैं। दूसरों से पूजा लेते हैं, स्वयं वैष्णव की पूजा करना छोड़ देते हैं। परंतु जिन्होंने श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीगोस्वामियों की कथा सुनी है, वे जानते हैं कि कृष्ण-भक्त की पूजा द्वारा ही यथार्थ कृष्ण पूजा होती है। कृष्ण भक्त की पूजा छोड़कर कृष्ण पूजा का नाटक करना अर्थहीन है। कृष्ण पूजा-कारी या नाम-भजन करने वाले को पग-पग पर अपराध हो सकता है। नाम भजन करने वाले को 'साधु-निन्दा' रूप अपराध हो सकता है। अपराध रहते हुए कृष्ण-नाम या कृष्ण सेवा नहीं होती। परंतु कृष्ण भक्त की पूजा करने वाले से ही यथार्थ कृष्ण पूजा व 'नाम' होता है। ठाकुर महाशय ने कितने प्रकार से ये सारी बातें कहीं- गोस्वामीगणों ने कितने प्रकार से इन सारी बातों को समझाया, '**छाड़िया वैष्णव सेवा, निस्तार पेयेछे केवा**'। (अर्थात् वैष्णव-सेवा छोड़कर किसी ने भी उद्धार नहीं पाया) ठाकुर महाशय ने अपने ऊपर इन सारी बातों को आरोपित कर कितनी कठोरता के साथ सहजिया सम्प्रदाय को शासन किया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग-4



- अनिरुद्ध दास अधिकारी

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

04.01.11

मन स्थिर कैसे हो ?

सभी साधकों की समस्या है कि मन स्थिर यानि एकाग्र कैसे हो। इस समस्या का हल मेरे श्री गुरुदेव सभी साधकों को बता रहे हैं, ध्यान देकर सुनने की जरूरत है।

श्री गुरुदेव बता रहे हैं कि मन स्थिर होने के अनन्त मार्ग हैं जिनसे मन एक पल भी कहीं नहीं जा सकता। हरिनाम स्मरण से मुख तथा तन की थकान होना एक आम बात है। इसके बारे में श्रीगुरुदेव जी बता रहे हैं कि 2-2 या 4-4 माला वाचक पहले जीभ के उच्चारण से शुरू करे। इसे पास में या दूर बैठा व्यक्ति भी सुनता रहता है। जब थोड़ी थकान महसूस हो तो 2 या 4 माला उपांसु अर्थात् कंठ से जाप करे। इस जाप से होंठ हिलते रहेंगे पर पास में बैठा साधक सुन नहीं सकेगा। स्वयं का कान ही सुन पायेगा। इसे जगत् में कानाफूसी के नाम से जाना जाता है। जब कंठ थक जाये तो फिर 2-2 या 4-4 माला मन से स्मरण करता हुआ करे। इस स्मरण से अपने मन का कान ही सुन पावेगा और ऐसा महसूस होगा कि जैसे कोई अन्तःकरण में बोल रहा है। इस स्मरण से कोई नहीं जान पावेगा कि साधक क्या कर रहा है। वह समझेगा कि गुमसुम (चुपचाप) बैठा है। नामनिष्ठ श्री हरिदास ठाकुर जी इसी तरह तीनों प्रकार के जाप करते रहते थे। तीन लाख जाप जीभ उच्चारण से नहीं हो सकता क्योंकि इस से गहरी थकान हो जाती है, मुख सूख जाता है और तन भी थक जाता है।

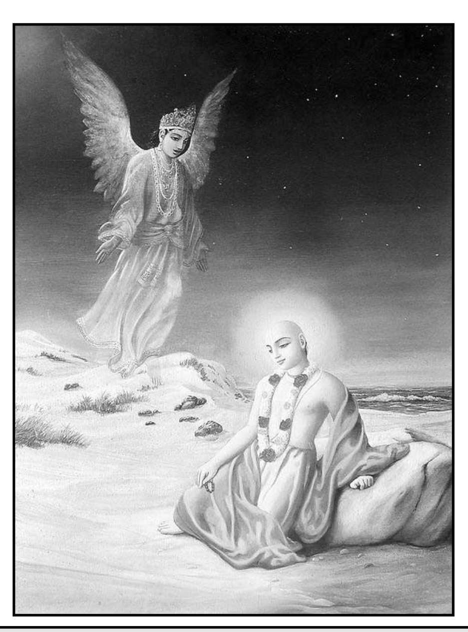
अब मन को कैसे रोका जाए, इसका उपाय श्रीगुरुदेव जी बता रहे हैं कि मानसिक रूप से किसी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर तीनों जाप करना बहुत जरूरी है। नामनिष्ठ कौन-कौन हैं., कुछ उदाहरण देकर बताया जा रहा है। पाठकों की सुविधा के लिये इस ग्रंथ में नामनिष्ठों के कुछ चित्र भी दिये गये हैं।

सबसे पहले अपने श्रीगुरुदेव के चरणों में बैठकर जितना नाम जप सके, जपे। यह 2 या 4 माला भी हो सकती हैं। इसके बाद नामनिष्ठ शिवजी के चरणों में बैठे। उसके बाद शेषनाग जी, जो 1000 मुखों से हरिनाम जपते रहते हैं। ये शेषनाग जी ही लक्ष्मण, बलदाऊ तथा निताई के अवतारों में प्रगट हुये हैं, इनके चरणों में बैठ कर नाम जपे। फिर श्रीगणेश जी, फिर हनुमान जी फिर हरिदास जी, प्रभुपाद जी, भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी तथा और भी जितने नामनिष्ठ इस संसार में प्रगट हुये हैं, उनके चरणों में बैठकर नाम जप कर सकते हैं। श्रीनिताई–गौर तथा श्री श्रीराधाकृष्ण जी, नृसिंह भगवान्, भीष्मपितामह, अर्जुन आदि के चरणों में बैठकर नाम जपा जा सकता है। इसी तरह कभी राधाकुण्ड, कभी गिरिराज जी की परिक्रमा का ध्यान करते हुये, भगवान् की लीलाओं का स्मरण करते हुये मन को हरिनाम में लगाते रहो, फिर मन कहीं जायेगा ही नहीं। जिसका ध्यान करोगे उसका आशीर्वाद तथा कृपा उपलब्ध होगी। तुलसीदास जी ने तो संत–असंत सब की कृपा लेने हेतु प्रार्थना की है।

मन को एकाग्र करने के अनेक मार्ग हैं। यदि कोई हरिनाम करना चाहे तो मन एक पल भी इधर–उधर नहीं जा सकता। पर जो भगवान् को चाहेगा ही नहीं उसे यह स्थिति प्राप्त नहीं होगी। श्रीगुरुदेव साधकों को भगवत् चरणों में लगा–लगा कर थक गये, कभी कभी रोषपूर्ण वाक्य भी बोल देते हैं। जहां अपनापन होगा वहीं पर सजा भी दी जा सकती है क्योंकि अपनी मां ही बच्चे को थप्पड़ लगा सकती है। जिस प्रकार असली चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार असली भक्त प्रेम–अश्रुओं से भगवान् को आकर्षित कर लेगा। जो असली रोवेगा उसका लक्षण है कि वह भगवान् की याद में बार–बार रोता रहेगा। जब भी भगवान् की लीला का कोई मार्मिक प्रसंग आवेगा तो उसका मन सांसारिक कामों में नहीं रह सकता जैसे नरसी भक्त, मीरा, हरिदास, नामदेव आदि भक्त 24 घण्टे ही भगवत चर्चा में मस्त रहते थे।

भगवान् के लिए असली रोना दूसरों को भी प्रभावित कर देता है जबकि नकली रोना किसी पर प्रभाव नहीं करता।

Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare



तुमि कृष्ण स्वयं प्रभो, जीव-उद्धारिते विभो,
नवद्वीप-धामे ते अवतार।
कृपा करि रांगा पाय, राख मोरे गौरराय
तबे चित्त प्रफुल्ल आमार।।

हे प्रभो! आप तो स्वयं विभु अर्थात् सर्वव्यापक श्रीकृष्ण ही हो एवं जीवों का उद्धार करने के लिये आपने नवद्वीप धाम में अवतार लिया है। हे गौरचन्द्र! आप अपने इन लालिमा युक्त दिव्य चरणों में कृपा करके मुझे स्थान दीजिये, तभी तो मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
29.11.2010

अगला जन्म मनुष्य का ही मिले इसकी कोई गारंटी नहीं

प्रेमास्पद भक्त प्रवरगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

हर समय वैष्णव अपराध होने पर हरिनाम में स्वप्न में भी मन नहीं लग सकता। इस अपराध के कारण चौरासी लाख योनियां भुगतनी ही पड़ेंगी। एक बार नहीं, न जाने कितनी बार चौरासी लाख योनियों में से गुजरना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य अपनी जिंदगी में न जाने कितने जीवों का संहार करता रहता है। जिन-जिन जीवों को ये मारता है, वे सभी इसे मारकर बदला लेंगे। जीवों की उम्र भी भिन्न-भिन्न हुआ करती है। एक दिन से लेकर पांच हजार, दस हजार वर्ष तक की होती है। इन जीवों में मानव भी जन्म लेता है जो अन्य जीवों को मारता है। वह यह कभी नहीं सोचता कि उसे इन सब हत्याओं का बदला चुकाना ही पड़ेगा।

मेरे श्रीलगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज सभी साधकों की आंखें खोल रहे हैं और कह रहे हैं कि अब भी समझ जावो। श्री हरिनाम की शरण में चले आवो। नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है और वह भी मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर करना होगा। बिना सुने नाम प्रभाव नहीं करेगा। श्रील प्रभुपाद ने कहा हैः-

All benefits accrue to one who chants the holy name but there is one thing, we must bear in mind, if you are going to chant

you must first listen. Through the worship of holy name, the soul can attain all perfections. - Srila Prabhupad.

जब इस भौतिक जगत् का कोई भी काम बिना सुने बिगड़ जाता है तो भगवत्–नाम बिना सुने कैसे प्रभाव कर सकता है।

रामनाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय
कोई रोग आवे नहीं, महारोग मिट जाय।

कलियुग में केवल हरिनाम से ही वैकुण्ठ मिल जाता है। दूसरा कोई भी साधन करने की जरूरत नहीं है। भगवान् को प्राप्त करने का कितना सरल और आसान मार्ग है पर अभागा मानव फिर भी हरिनाम नहीं करता। वह सोता रहता है और जब मौत आती है तो पछताता है। भगवान् प्रत्येक जीव में विराजमान है पर यह ज्ञान तो सच्चा साधु ही दे सकता है। वही सही रास्ता बता सकता है। इसलिये तो शास्त्र कहता है कि एक पल का साधुसंग ही मानव का जीवन बदल देता है परंतु यह संग किसी सुकृतिशाली मानव को ही मिलता है जिसने जाने–अनजाने में कभी किसी साधु की सेवा की होती है। साधु सेवा के अभाव में सच्चा सत्संग मिलना असंभव है।

कई बार मनुष्य साधु से द्वेष करता है, उसके दोष देखता है और अपराध कर बैठता है। फलस्वरूप उसका पतन होने लगता है और वह और भी नीचे दलदल में फंसता चला जाता है। ऐसे मनुष्य को चौरासी लाख योनियां कितनी बार भुगतनी पड़ेंगी, इसका अंदाजा लगाना ही मुश्किल है।

इन सब दुःखों एवं कष्टों से छूटने का यदि कोई उपाय है तो वह है श्री हरिनाम। श्री हरिनाम करो। श्री हरिनाम करो। श्री हरिनाम करो और कान से सुनते रहो। यह भी केवल कलियुग में ही हो सकता है। जब हम प्रतिदिन एक लाख हरिनाम करेंगे,

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

मुख से उच्चारण करेंगे और कान से सुनेंगे तो हमसे जो भी पाप हो चुके हैं या हो रहे हैं, वे सभी जलकर भस्म हो जायेंगे।

हरिनाम रूपी प्रचण्ड अग्नि उन सबको जलाकर राख कर देगी। जब हमारे पाप कर्म समाप्त हो जायेंगे तो हमारा मन धीरे–धीरे संसार की ओर से हटता चला जायेगा और अपने अनन्य भगवान् के चरण कमलों में लग जायेगा। जब हमारा मन हरिनाम में लग जायेगा तो फिर अष्ट–विकार उदय होने लगेंगे और एक मस्ती, मादकता सी अन्तःकरण में प्रकट होने लगेगी। मन निश्चिंत हो जायेगा। हृदय में आनंद की लहरें उठने लगेंगी।

पर यदि किसी वैष्णव के चरणों में अपराध हो गया या किसी सच्चे साधु के प्रति दोषदृष्टि हो गयी तो सारा किया कराया मिट्टी में मिल जायेगा। इसलिये सावधानी बहुत जरूरी है। इस अपराध से बचने का एक तरीका यह है कि किसी का गुणदोष न देखें, न सुनें, अपने हरिनाम में मस्त रहें तभी मानवजीवन सफल हो पायेगा। इस प्रकार आवागमन से छूट कर भगवत् चरण की प्राप्ति हो जायेगी।

प्रभु प्रेम का मार्ग खंडे की धार है। इस मार्ग में फूंक–फूंक कर पैर रखना पड़ता है। जरा सी असावधानी पैर को लहूलुहान कर सकती है। इस मार्ग में जरा सी लापरवाही होने पर पैर में कांटा लग सकता है।

जरा विचार करो कि हमारा अगला जन्म भारतवर्ष में होगा या नहीं। फिर ऐसा कलियुग जिसमें केवल, हरिनाम से ही भगवद् प्राप्ति हो सकती है, मिलेगा या नहीं। फिर ऐसा सत्संग, ऐसा सुअवसर मिलेगा या नहीं। अब शरीर स्वस्थ है। हरिनाम किया जा सकता है। आगे जाकर यह शरीर स्वस्थ रहेगा या नहीं। ऐसी बहुत सी बातें विचार करने वाली हैं। अब यह जो संयोग मिला है, बड़े सौभाग्य से मिला है। करोड़ों जन्मों के पुण्यों के फल से, इस मनुष्य जीवन की प्राप्ति हुई है, जो दुर्लभ ही नहीं, सुदुर्लभ है। बहुत मुश्किल से मिला है यह मानव जन्म। इसलिये इसे यूं ही बर्बाद न करो। जब तक जीवन है, हरिनाम करो। हरिनाम करो।

हरिनाम करो। जो समय बाकी बचा है, उसे हरिनाम में लगाना ही शुभकर होगा।

मेरे श्रीलगुरुदेव बार–बार इस बात को समझाते रहते हैं। अब भी समझा रहे हैं। इस बात को समझ लेना ही श्रेयस्कर होगा। अभी शरीर स्वस्थ है, बाद में कोई बीमारी लग सकती है। फिर हरिनाम हो या न हो, क्या पता ? इसलिये अभी से हरिनाम में लगना ही बहुत जरूरी है। हरिनाम से सभी विपत्तियां, सभी कष्ट दूर होते चले जाएंगे। वैष्णव अपराध से बचकर हरिनाम करते रहो, सब ठीक होता जायेगा।

यह युग कलि महाराज का युग है। इस युग में सब काम कल–पुर्जों से, मशीनों से चला करता है। इस समय लक्ष्मी का दौर चल रहा है। सभी पैसे के पीछे पागल हैं। पैसे के लिये सब कुछ हो रहा है। पर याद रखो, जहाँ लक्ष्मी अकेली आती है, वहाँ श्रीविष्णु नहीं आते। जहाँ विष्णु की पूजा होती है, वहाँ लक्ष्मी अपने आप खिंची चली आती है। जहाँ लक्ष्मी अकेली आती है वहाँ अनाचार होता रहता है। लक्ष्मी की सवारी उल्लू है। उल्लू की आदत दुःखदायिनी होती हैं। लक्ष्मी, लक्ष्मीवान् को उल्लू बनाकर रखती है। पर श्रीविष्णु की सवारी गरुड़ जी हैं जो शुभमति देते हैं। लक्ष्मी के पीछे पागल मनुष्य, हर वक्त और ज्यादा लक्ष्मी इकट्ठा करने में लगा रहता है। वह खाने की वस्तुओं में मिलावट करता है। उन वस्तुओं को खाने से कोई मरे या जीये, उसे इससे कोई मतलब नहीं। उसका काम तो बस पैसा कमाना है। वह यह भूल जाता है कि जो जहर वह दूसरे लोगों को खिला रहा है, वही जहर एक दिन उसका मलियामेट कर देगा। सर्वनाश कर देगा। पर आंखें होने पर भी, वह अंधा बना रहता है और थोड़े दिन के झूठे आनंद के लिये, झूठे दिखावे के लिये, झूठी खुशी के लिये, उसे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। उस वक्त वह सिर धुन–धुन कर पछतायेगा और फिर उसे कोई नहीं बचा सकेगा। उसकी जो दुर्दशा होगी, वह तो उसे बाद में पता चलेगी। इसलिये मेरे गुरुदेव, बार–बार हम सबको चेता रहे

हैं, जगा रहे हैं, समझा रहे हैं। अब भी समझ जाओ। आज से नहीं, अभी से हरिनाम करना शुरू कर दो। अभी भगवान् की शरण में आ जाओ। वे दयालु प्रभु तुम्हें जरूर क्षमा कर देंगे वरना जो दुःख, जो कष्ट तुम्हें भोगना पड़ेगा, वह तुमसे सहन नहीं हो सकेगा।

श्रील गुरुदेव उद्घोष कर रहे हैं कि साधकगण अपने हृदय की गहराई से विचार करें कि उन्हें इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति करनी है या फिर चौरासी लाख योनियों में जाकर बार–बार दुःख भोगना है। हर एक योनि में जन्म लेना और मरना बहुत दुःखदायक है। हर योनि में आयु भी अलग–अलग है। किसी योनि में एक दिन की भी है और किसी योनि में हजारों वर्षों की भी। यदि औसतन एक वर्ष हर योनि में बिताना पड़े तो समझो चौरासी लाख वर्ष तक हमें दुःखों को सहन करना पड़ेगा। यह तो हुई शुद्धिकरण (purification) की बात। इसके बिना जो जीवों की हत्या करता है, दूसरों को सताता है, उसका बदला चुकाने के लिये शरीर धारण करने पड़ेंगे। उनकी योनि में जाना पड़ेगा और भोग भोगना पड़ेगा। अब जरा विचार करो कि मनुष्य के दुःखों का कोई अंत नहीं है। उसके कष्टों की कोई सीमा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस संसार के दुःखों का घर (दुःखालय) कहा है।

यह नश्वर जगत् जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु के क्लेशों से भरा हुआ है। इस जगत् के सारे लोक, सबसे ऊपर के लोक से लेकर, सबसे नीचे के लोक तक, दुःखों के घर हैं, जहां जन्ममरण का चक्कर लगा रहता है। किन्तु हे कुन्तीपुत्र! जो मेरे धाम को प्राप्त कर लेता है, वह फिर कभी जन्म नहीं लेता।

आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

(गीता 8.16)

इस दुःखों से भरे जगत् से बचने का एक ही उपाय है कि मानव! हरिनाम की शरण में चला जाये। केवल हरिनाम ही इसे

परम आनंद प्रदान कर सकता है। इस कलियुग में इसके सिवाय कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस कलियुग में केवल हरिनाम, केवल हरिनाम और केवल हरिनाम से ही भगवद्प्राप्ति हो सकती है। इसके बिना कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। इसलिये बार–बार हरे कृष्ण महामंत्र, जो कि इस कलियुग का महामंत्र है, का जप व कीर्तन करने की प्रार्थना की जाती है। इस महामंत्र को जपने के लिये कोई नियम भी नहीं है। उठ्ते–बैठ्ते, चलते–फिरते, जब भी चाहो, जैसे भी चाहो, इसको जपते रहो। इस प्रकार अभ्यास करते–करते, मरते समय यही नाम जिह्वा पर आवेगा। अन्त समय में भगवान् का नाम मुख से निकलने से सभी दुःखों का सदा–सदा के लिये अंत हो जायेगा और मनुष्य ऐसे सुखसागर का आनंद लेगा, जहां दुःखों की छाया भी नहीं है। यदि मरते समय संसार की याद बनी रहे तो संसार में बार–बार आना पड़ेगा। यदि अंत समय में भगवान् का नाम याद रहा तो भगवद्–प्राप्ति होगी। यह सुनिश्चित है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैंः–

यं यं वापि समरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता 8.6)

हे कुन्तीपुत्र! शरीर का त्याग करते समय मनुष्य जिस–जिस भाव का स्मरण करता है, वह उस भाव को निश्चित रूप से प्राप्त होता है। हमारे जीवन में अन्त में, हमारे मुख से भगवान् का नाम निकले, इसके लिये–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करना सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् ने सभी प्राणियों को शरीर रूपी धर्मशाला बना कर दी है। सभी जीवात्मायें

भगवान् के पुत्र हैं। हर जीव के शरीर का आकार भी भिन्न–भिन्न है। कोई लंबा, कोई चौड़ा, कोई गोल, कोई छोटा, कोई बड़ा आदि–आदि। साँप का शरीर लंबा होता है, कछुए का गोल, हाथी का मोटा–बड़ा लंबा चौड़ा। पर ये शरीर नाशवान् हैं। भगवान् ने मनुष्य को अपने जैसा शरीर बनाकर दिया है जो पांच तत्वों से बना हुआ है जिसमें जीव और आत्मा दोनों साथ–साथ रहते हैं। जीव अज्ञान प्रधान है और आत्मा ज्ञान प्रधान है। जीव माया में लिप्त रहता है इसलिये बंधन में फंसा है। आत्मा चिन्मय है, उसमें दिव्यशक्ति है। आत्मा निर्लिप्त और नित्यमुक्त है।

भगवान् ने बोला है कि हे मानव! मैने तुम्हें बुद्धि प्रदान की है इसलिये चौरासी लाख योनियों के जीव, जो मेरे पुत्र हैं, उन सबका भरण–पोषण कर। उनकी रक्षा कर। उन सब जीवों में मुझे देख। यदि तू ऐसा न करके, उनको कष्ट देता है तो तुम्हें कभी भी चैन नहीं मिलेगा। कभी शांति नसीब नहीं होगी। हर जीव की एक उम्र निर्धारित होती है, यदि इस अवधि के बीत जाने पर उस शरीर का अंत हो जाता है तो किसी को कोई दोष नहीं परंतु यदि मनुष्य इन शरीरों की आयु पूरी होने से पहले ही नष्ट करता है तो वह पाप का भागी बन जाता है और ऐसे असंख्य पाप मनुष्य अपने जीवन में करता है। अतः उसके दुःखों का अंत नहीं होता।

यह मानव जब से भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, अनंत कोटि कल्प बीत जाने पर भी पुनः भगवान् की गोद को प्राप्त नहीं कर सका है। भगवान् के पास जाने का मार्ग उसे किसी ने बताया ही नहीं है। भगवान् के पास जाने का सही मार्ग कोई सच्चा साधु, कोई भगवान् का प्रेमी साधु ही बता सकता है।

मेरे गुरुदेव इस बात की शत–प्रतिशत (100) गारंटी देते हैं कि जो साधक हरिनाम की चौसठ माला (एक लाख हरिनाम) प्रतिदिन उच्चारणपूर्वक करेगा और कान से सुनेगा तो मौत के समय उसे स्वयं भगवान् लेने पधारते हैं। माला पर संख्या पूरी करें और चलते–फिरते, खाते–पीते, सोते–जागते, बिना माला भी हरिनाम

करता रहे। ऐसे परम भक्त का भगवान् के धाम में भव्य स्वागत होता है और भगवान् उसकी रुचि के अनुसार उसे अपनी सेवा प्रदान करते हैं जहां वह सदा-सदा के लिये परम आनंद में डूबा रहता है।

हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !
निताई–गौर ! हरि बोल !



वैष्णव उत्तम सेइ याहारे देखिले।
कृष्णनाम आसे मुखे कृष्णभक्ति मिले।।

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से जीवों के मुख से श्रीकृष्णनाम उदित हो जाता हो तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति हो, वही उत्तम वैष्णव है।

(श्रीहरिनाम चिंतामणि)

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.02.2003

सुअवसर हाथ लगा

गौरहरि इस भारत वर्ष में 525 वर्ष बाद जग का कल्याण करने आ रहे हैं। 525 वर्ष पहले फाल्गुन मास की पूर्णमासी को ब्रह्ममुहूर्त में 3.00 बजे चन्द्रग्रहण के समय आविर्भूत (प्रगट) हुए थे। वे दयानिधि हम पर दया करने आज फिर फाल्गुन मास की पूर्णमासी को प्रातः 3.00 बजे चन्द्रग्रहण के समय आकर हमारा जन्म मरण का जघन्य दुःख हटाने आ रहे हैं। वैसे तो भगवान् की लीला हर समय ब्रह्माण्ड में सदैव होती रहती है लेकिन आज सभी को प्रत्यक्ष मिल रही है।

कितना बड़ा सौभाग्य है। आज अवसर हाथ लगा है। सभी भक्तों व मेरे गुरुजनों से चरणों में लिपट कर प्रार्थना कर रहा हूँ कि ऐसे सुंदर अवसर को न गंवा कर आज से ही अपना भजन-स्तर बढ़ाने हेतु हरिनाम जप को कान से सुनकर करना आरंभ कर देना चाहिए। ऐसा शुभ अवसर अगले जन्म में नहीं मिल सकेगा। हरिनाम-महामंत्र का प्रतिदिन एक लाख बार जाप तो अवश्य करना चाहिए।

सभी को श्रीगौर हरि की प्रत्यक्ष कृपा मिल सकेगी। यदि इस अवसर को नष्ट कर दिया तो भविष्य में पछताना पड़ेगा। माया किसी को नहीं बख्शती। माया भजन न करने वाले को अंदर के शत्रुओं से मारती रहेगी। भजन से भगवत् कृपा मिलने से माया भजनानन्दी को हर प्रकार की सुविधा देकर सुख प्रदान करती है। कहते हैं अपना भजन गुप्त रखना चाहिए। बात भी ठीक है, क्योंकि भजन का प्रचार होने से प्रतिष्ठा आयेगी। प्रतिष्ठा अहंकार करा देगी। अहंकार भगवान् का दुश्मन है। अतः गिरावट आ जायेगी।

यदि किसी को दूसरे का हित करने का भाव है तो प्रतिष्ठा न आकर अंहकार आएगा ही नहीं, क्योंकि वह स्वयं में दुर्गुण देखता रहेगा उसका भजन देखकर दूसरों का भी उत्साह बढ़ेगा और उन्हें दुःख भी होगा कि उनका तो इतना भजन नहीं हो रहा है, जितना अमुक का हो रहा है तो पश्चाताप् के कारण वह भी अपने भजन को बढ़ाने की चेष्टा करेगा।



गोविन्द गोपाल
राम श्रीनंदनंदन
राधानाथ हरि
यशोमती–प्राणधन।
मदनमोहन
श्यामसुंदर माधव
गोपीनाथ ब्रजगोप
राखाल यादव।।

उपरोक्त सभी नाम भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य नाम है। ये सभी नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। इन मुख्य नामों का कीर्तन करने से श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है।

आइये! हम संकल्प करें कि भगवान् श्रीकृष्ण के उपरोक्त लिखे नामों का कीर्तन कम से कम पाँच मिनट, हम सब सपरिवार प्रतिदिन अवश्य करेंगे।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 15.02.2003

भजन का अंतिम सार

कीर्तन में जब तक तू मगन न होगा।
तब तक दोष जाने का यत्न न होगा।।
कलिकाल में अन्य साधन कुछ भी नहीं हैं।
न पाएगा प्रेमधन जब तक अश्रुपात न होगा।
जप, पूजा, व्रत, नेम कर ले कितना ही तू।
सब व्यर्थ है जब तक मस्ती से हरिनाम न होगा।।
अन्य साधनों से क्या प्यास बुझेगी?
चातक बन गौरहरि का तो प्रेम से भजन होगा।।
तू तोल कर जो देखे नैनों का प्रभु मोती,
तो एक मोती का वजन सारे साधनों का न होगा।।
मन पतित तोल कर जो देखा,
तो वजन अश्रुपात का अधिक होगा।।

उलाहना

यदि मुझ जैसे पापी अपनाए न जाएंगे।
तो आप गौरहरि दयालु कहाए न जाएंगे।
जो आ चुके हैं चरणों में तो ठुकराए न जाएंगे।
अब हम भी आप का दर छोड़ कहीं न जाएंगे।
जगाई-मधाई के पाप आपने स्वयं ले लिए।
तो मेरे पाप-अपराध, आपसे लिए न जाएंगे।
चुप भी रहूंगा यदि आप यह कह दें।
कि तुम जैसे अपराधी तारे न जाएंगे।
तो मैं भी कह देता हूँ आप संतोष न पाएंगे।
अनिरुद्ध दास के आंसू आपका दिल खींच लाएंगे।

प्रार्थना

बहुत दिनों से सुनकर प्रशंसा तुम्हारी।
शरण आ गया गौर–निताई तुम्हारी।।
जो अब टाल दोगे मुझे अपने दर से।
तो होगी हंसी बाप ! दर–दर तुम्हारी।
सुना है घर–घर जाकर अपनाया सबको।
मुझे अपनाओ ये जिम्मेवारी तुम्हारी।।
यही प्रार्थना है, यही साधना है।
जो कुछ हूँ जैसी हूँ, हूँ मैं तुम्हारी।।
ये अश्रु तुमको खबर दे रहे हैं।
कि है याद दिल में बराबर तुम्हारी।।
यह दासों का दास जो है तुम्हारा।
अपना लो अब तो कर दो 'दया' री।।

प्रेम प्राप्ति की युक्ति

कौन कहता है भगवान् आते नहीं,
आते हैं, अपना बल छोड़ उन्हें कोई बुलाते नहीं।
द्रौपदी ने बल छोड़ा, गज ने बल छोड़ा,
तो भगवान् एक क्षण लगाते नहीं।
विषयों का विष–ज्वाला को कोई बुझाते नहीं।
प्रेम की लोरी सुनाकर उन्हें कोई रिझाते नहीं।
अजी हरिनाम को बोलकर, कान से कोई सुनाते नहीं।।
कान से सुनकर हरिनाम को कोई सुनाता है,
नैनों की अश्रु–बाढ़ में हरि को बहा लाता है।
आनंद के सिंधु में भक्त–गोता लगाता है,
अजी कोई आजमा के देखे, प्रत्यक्ष में कोई प्रमाण नहीं,
अनिरुद्ध दास ने आजमाया, तो प्रेमामृत पाया।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 07.03.2003

अवलम्बन ही सार है

जिस प्रकार अनन्तकोटि अखिल ब्रह्मांडों में अवलम्बन के बिना कोई भी स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार मृत्युलोक पृथ्वी के बिना स्थिर नहीं रह सकता। एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से स्वतः ही स्थिरता प्राप्त हो जाया करती है। कोई भी बेल, पेड़ के बिना ऊपर नहीं चढ़ सकती। जैसे भौतिकता की ओर अवलंबन आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिकता का अवलंबन भी बहुत जरूरी है। भौतिकता का अवलंबन दुःखदायक होता है एवं आध्यात्मिकता का अवलंबन परम सुखदायक होता है।

भगवान् की अहैतुकी कृपा से जब मनुष्य जन्म मिलता है तो श्री भगवान् अपने परम प्रियजन श्रीगुरुदेव का मृत्युलोक में आविर्भाव करवा कर मानव को अपना अवलंबन करवाते हैं। श्री गुरुदेव के अवलंबन से मानव अनन्तकोटि जन्मों की दारूण पीड़ा से मुक्त होकर असीम परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

चारों युगों के भिन्न-भिन्न धर्म-कर्म हुआ करते हैं। इन धर्मों का अवलंबन परमावश्यक होता है। यदि अवलंबन नहीं करता है तो मानव माया के पिंजरे में बंद होकर अनंत दुःख भोग करता रहता है। अब कलियुग का समय चल रहा है जिसमें मानव सहज ही में इन दारुण दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कलिकाल का धर्म-कर्म है केवल भगवत् नाम-

सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा, मख और योग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।।

हरिनाम का अवलंबन मानव के लिए परम आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि हरिनाम कैसे जपा जाए तो इसका उत्तर है कि

मन को एकाग्र करके जपा जाए। यदि मन एकाग्र नहीं हो रहा है तो अभ्यास द्वारा मन को एकाग्र किया जाए और संसार से धीरे-धीरे ज्ञान के द्वारा लगाव को, आसक्ति को कम किया जाए। यदि संसार से लगाव रहेगा तो मन कभी भी स्थिरता को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

संसार का लगाव अर्थात् अवलंबन कैसे हटे? इसके लिए बुद्धि द्वारा निर्णय करना चाहिए कि एक न एक दिन इस मानव देह को संसार से अलग होना है। हम लोग नित्य प्रत्येक मानव को शमशान में जाते देख रहे हैं। मानव ही नहीं, सभी प्राणी नित्य मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। अतः वास्तव में हरिनाम का अवलंबन ही सत्य है, अन्य सभी का अवलंबन असत्य है बुद्धि द्वारा बार-बार ऐसा विचार करते रहने से मन एकाग्र होने लगेगा।

लोमश ऋषि, जिनकी उम्र इतनी थी कि जब उनके सिर का एक बाल झड़ता था तो ब्रह्मा जी का शासनकाल समाप्त हो जाता था अर्थात् ब्रह्मा जी मर जाते थे। उक्त ऋषि की उम्र मनुष्य के अनुमान से बाहर है। एक दिन वह किसी सम्राट के महल के नीचे से जा रहे थे। उनके पास एक कमंडल था एवं उन्होंने एक चटाई, अर्थात् भजन हेतु आसन, सिर पर रखी हुई थी। सम्राट् भगवान् का भक्त था। उसने उन्हें प्रार्थना करके सेवा हेतु महल में बुलाया और पूछा कि महाराज जी! आप कहाँ जा रहे हो ? उन्होंने कहा कि वे कोई एकांत स्थान ढूंढ रहे हैं जहां बैठकर वे भजन कर सकें। सम्राट् ने पूछा कि आप कोई कुटिया बनाकर क्यों नहीं भजन करते तो लोमश जी बोले कि एक दिन तो संसार को छोड़ना ही है, कुटिया बना कर आफत मोल क्यों लूं? उस कुटिया में झाड़ू लगानी पड़ेगी, छप्पर बार-बार बनाना पड़ेगा, कितने ही काम सामने आते रहेंगे तो भजन कब होगा ?

सम्राट् बोला कि लोमश जी! आपकी उम्र तो कराड़ों वर्षों से भी ज्यादा है, आपको तो घर बनाना ही चाहिए। महात्मा बोले, आफत मोल क्यों लूं। भजन ही सार है। भजन बिना जीवन बेकार

है, अतः मुझे तो एक गज जमीन चाहिए जहां एकांत में बैठकर भजन कर सकूं। इससे अधिक बखेड़ा करना दुःख मोल लेना होता है। दुःख कोई चाहता नहीं फिर दुःख मोल क्यों लूं? सुख तो भगवत नाम में ही है। उस सुख का कोई बखान ही नहीं कर सकता। अकथनीय है।

अब विचार कीजिए कि मानव 40 साल, 60 साल, 80 साल, या फिर 100 साल के लिए संसार में रहकर क्या–क्या कुकर्म करके वस्तुएं इकट्ठी करता रहता है। यहां तक कि वह अपनी मानव जाति का गला घोंट कर भी स्वयं सुख की नींद सोना चाहता है। आश्चर्य है! विडंबना है! मूर्खता है! ऐसे अज्ञान की भी कोई सीमा है ? बुद्धि से बार–बार इस प्रकार विचार करते रहने से मन में वैराग्य उदित होता है जो हरिनाम–स्मरण में अत्यंत सहायक होता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह पागल मन जापक को मार कर रख देगा। वह माया के चुंगल से छूट नहीं सकेगा। अतः संसार से वैराग्य होना परमावश्यक है।

वैराग्य होने से मन स्वतः ही रुक जाता है क्योंकि अंतःकरण चतुष्टय में एक ही पदार्थ समा सकता है–संसार अथवा भगवान्। संसार रहेगा तो भगवान नहीं रह सकते एवं भगवान् रहेंगे तो संसार नहीं रहेगा। जो मानव अपने जीवन में निरंतर एक लाख हरिनाम करता रहता है, वह आनंदसिंधु में तैरता रहता है। जो नहीं करता, वह दुःखसिंधु में गोता खाता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं–श्री चैतन्य महाप्रभु जी जिन्होंने अपने जनों को एक लाख हरिनाम करने का आदेश देते हुए कहा था कि जो भक्त एक लाख (64 माला) हरिनाम रोज करेगा, उसके घर का प्रसाद मैं ग्रहण करूंगा, जो नहीं करेगा, उसके घर का प्रसाद ग्रहण नहीं करूंगा।

अब प्रश्न उठता है कि एक लाख नाम में किसी का मन लग ही नहीं सकता, क्योंकि 64 माला जपने में 4 से 6 घंटे लग जाते हैं। इतने समय तक श्री भगवान् के प्रति प्रेम हुए बिना मन का लगना अथवा एकाग्र होना बहुत ही कठिन है। लेकिन महाप्रभु जी

जानते थे कि यदि साधकजन इतना अधिक नाम स्मरण जप करते रहेंगे, तो भगवत्–नाम ही उनके मन को लगा देगा एवं यदि उनसे अपराध भी होता रहेगा तो भी उस अपराध का मार्जन भी भगवत् नाम की कृपा से होता रहेगा व एक न एक दिन जापक को पंचम पुरुषार्थ 'प्रेम' अर्थात् नाम जपते हुए पुलक व अश्रुपात इत्यादि उपलब्ध हो जाएगा।

महाप्रभु जी ने इतनी गारंटी क्यों ली ? इसका कारण है मानव को दुःख से मुक्त करना। यदि कोई भक्त 64 माला बिना मन भी करता रहेगा तो महाप्रभु वचनानुसार उसके घर में महाप्रभु का वास होता ही रहेगा। इसमें 1 प्रतिशत भी शक नहीं है।

उक्त लेख जो लिखा गया है, मुझ अल्पज्ञ ने नहीं लिखा, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखवाया गया है। अतः मैं सबसे प्रार्थना करता हूं कि प्रतिदिन 64 माला जप करने का नियम लेवें तो मेरा भी और आपका भी जीवन सुधर जाएगा।

मेरे गुरुदेव का आदेश है कि 'तुम प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करो और अन्य को प्रतिदिन एक लाख कराओ। मैं तुम्हारे पीछे हूं। सभी करने लगेंगे, शक्ति भगवान् देगा।'

प्रति घरे–घरे गिया कर एइ भिक्षा
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण भिक्षा।।

प्रत्येक घर में जाकर यह भिक्षा मांगो कि 'कृष्ण बोलो, श्रीकृष्ण का भजन करो और श्रीकृष्ण संबंधी शिक्षा ग्रहण करो।'

(महाप्रभु की श्रीनित्यानंद जी व श्रीहरिदास जी को आज्ञा)

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 27.03.2003

भौतिक नाम व हरिनाम

भौतिक नामों की तरह आध्यात्मिक नामों को भी कान से सुनने पर ही लाभ होता है। उदाहरणार्थ, जैसे अशोक तुम बाजार जा रहे हो तो बाजार से एक साबुन का पैकेट लेते आना। जब उसका मित्र रमेश, अशोक को जोर से ऐसा बोल रहा था तो अशोक थोड़ा दूर मकान से बाहर था एवं रमेश ने खिड़की में से झांक कर कहा था, इसलिए उसे उच्च स्वर से बोलना पड़ा। अशोक ने कहा, ठीक है, लेता आऊंगा। रमेश ने जब अशोक को यह कहा तब अशोक का मन किसी उधेड़बुन में उलझ रहा था, अतः उसने ऊपरी मन से कह दिया कि ठीक है लेता आऊंगा।

जब अशोक बाजार से गुजर रहा था तो उसको याद आया कि रमेश ने बाजार से कुछ मंगाया था। उसने सोचा, शायद नील का पैकेट मंगाया होगा। जब अशोक ने रमेश को नील का पैकेट सौंपा तो रमेश बोला कि मैंने तो साबुन का पैकेट मंगाया था न कि नील का पैकेट। अशोक ने कहा–"मैंने पैकेट का नाम तो सुना था लेकिन किस वस्तु का पैकेट मंगाया था, पूरा सुन नहीं पाया क्योंकि मेरा बच्चा बीमार था। मैं सोच रहा था कि कौन से डॉक्टर को दिखाऊं। मेरा मन इसी उधेड़बुन में फंस रहा था। अतः मेरा मन पूरा सुन नहीं पाया। मेरा मन कान के पास नहीं था। अतः मैंने सोचा कि नील का पैकेट मंगाया होगा।"

क्या रमेश के कपड़े नील के पैकेट से धुल जायेंगे?

उसने कहा–"कर्म फूटे! यह तूने क्या किया? इसे वापस देकर साबुन का पैकेट लेकर आ क्योंकि मेरे पास साबुन का पैकेट मंगाने को पैसा भी तो नहीं है।"

अशोक बोला–"वह दुकानदार बदमाश है। वह वापस लेगा ही नहीं। मैं तो नहीं जा सकता।"

अशोक द्वारा कान से न सुनने से रमेश का काम बिगड़ गया। कपड़े गंदे थे, उनको धोना आवश्यक था। रमेश की जुबान से उसके कान ने सुना, हृदय (मन) से मनन हुआ था। अशोक के कान ने भी सुना लेकिन मन नहीं होने से पूरा नहीं सुन पाया। शब्द की हरकत तीन जगह हुई परंतु एक जगह न होने से काम बिगड़ गया। न कपड़े धुल सके, न नील का पैकेट वापस हो पाया। बस हरिनाम सुनने का भी शत–प्रतिशत यही निष्कर्ष निकलता है हरिनाम कान से न सुना तो केवल मात्र सुकृति इकट्ठी हो जायेगी, भगवत–प्रेम नहीं मिल सकेगा। सुकृति से अगले जन्म में सत्गुरु की प्राप्ति हो जायेगी। यह मनुष्य जन्म बेकार चला जायेगा।

अब गहरे विचार करने की बात है कि मन के साथ कान से सुने बिना जब भौतिक–कर्म ही सफल नहीं हो पाया तो आध्यात्मिक कर्म कैसे सफल हो सकता है ?

किसान का उदाहरण 100 प्रतिशत सत्य उतरता है। उसका बीज जब उमरे (खाल) के बाहर गिर जाता है तो वह उगता नहीं है। उसे चींटियां, दीमक व चिड़ियां खा जाती हैं।

हरिनाम–बीज, जो गुरुदेव ने कान में दिया है, उसे कान द्वारा ही हृदय–भूमि में गिराना पड़ेगा, जब ही वह हृदय में प्रेम के रूप में अंकुरित हो पायेगा। चार माला के दाने रूपी बीज जब कान से हृदय में गिरेंगे, तब 100 प्रतिशत प्रेम रूपी अंकुर प्रकट हो जायेगा, यदि कोई अपराध न हो अर्थात् 10 नामापराध व मान–प्रतिष्ठा की कामना न हो तो । अन्य रोग तो विरहाग्नि में जल कर ही भस्म हो जायेंगे।

कितने साल नाम जपते हो गये, एक आंसू भी नहीं आया क्योंकि नाम को कान से नहीं सुना। कम से कम एक माला तो सुनकर करे व देखे कि कितना लाभ होता है। गया समय तो चला गया, आगे की सुधि लेवो ताकि यह जन्म सफल हो सके। मरते समय ठाकुर आकर संभालेगा। ठाकुर अगाध दया का समुद्र है।

7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 11.05.2004

भगवत्–प्राप्ति का अंतिम व सरलतम उपाय

इसे ठाकुर जी ही प्रेरित करके लिखवा रहे हैं–

भगवान् ने जीव के लिए अन्तःकरण चतुष्टय–मन, बुद्धि, चित्त एवं अंहकार बनाया। इसमें जीव संसार को या भगवान् को किसी एक को ही बिठा सकता है। स्टेज इतनी छोटी है कि इस पर केवल एक ही बैठ सकता है। इसमें त्रिगुणों का ताना–बाना है, जो संस्कारों से ओतप्रोत है। संस्कार रूपी धागे इतने सूक्ष्म हैं कि नजर में आने असंभव हैं।

मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म चित्त, चित्त से सूक्ष्म अहंकार है। अहंकार ही जन्म–मरण का कारण है। मैं, मेरा जब तक इस अंतःकरण में रहेगा, जीव ठाकुर जी से दूर ही रहेगा। जब मैं, मेरा (अहंकार) चला जाएगा, तब ठाकुर जी का शीघ्र दर्शन हो जाएगा। तू–तेरा ही शरणागति का जन्म करा देता है–अहंकार इतना सूक्ष्म है कि पकड़ में नहीं आता। भक्त का अहंकार–ठाकुर में नहीं आता। भक्त का अहंकार–ठाकुर को सुहाता नहीं, वे उस अहंकार को शीघ्र समाप्त कर देते हैं। जैसे नारद जी ने जब काम पर विजय की थी तो उनके अहंकार को ठाकुर जी ने शीघ्र समाप्त कर दिया था।

अहंकार को जलाने के लिए बुद्धि में तात्विक–ज्ञान रूपी अग्नि प्रकट करनी पड़ेगी। वह हरिनाम–महामंत्र को सादर (आदर के साथ) कान से सुनने पर ही प्रकट हो सकेगी। जिस प्रकार खेत पर घास के बीज को समाप्त करने के लिए उस जगह पर आग जलानी पड़ती है जिससे वहां पर दबे बीजों को भूना जाता है। भुने हुए बीज अंकुरित कभी नहीं होते हैं।

रामायण की उक्ति–
"सादर सुमिरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गौपद इव तरहीं"
ठाकुर जी की उक्ति–
"बेआदर सुमिरन, जो नर करहिं।
कई जन्म भटकत वो फिरहिं।"

भगवत्–प्राप्ति कठिन इसलिए है कि मैं, मेरा अंतःकरण में रमा रहता है। ये केवल प्रेम से हरिनाम–महामंत्र को जपने से ही जा सकता है। इससे विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होकर अन्तःकरण में छिपे शुभ–अशुभ बीजों के संस्कारों को शीघ्र जला देती है। जब संस्कार ही नहीं रहेंगे, तब शीघ्र ही ठाकुर जी को अन्तःकरण पर विराजित होना पड़ेगा।

अब हम इसे तात्विक विचार से समझने का प्रयत्न करते हैं। आपने देखा होगा कि जमीन में कई प्रकार के घास–झंकार के बीज छुपे रहते हैं जो समय पाकर बरसात में या मौसम आने पर स्वतः ही अंकुरित होकर खाद्य–सामग्री जौ, गेंहू आदि को हानि पहुंचाते रहते हैं। अतः उन अंकुरित पौंधों को खुरपी से उखाड़ कर दूर फैंका जाता है। तब फसल अच्छी हो जाती है। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि उस जमीन पर आग जला दें। इससे भुने हुए बीज जमीन में ही नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म देह अथवा कारण देह अथवा स्वभाव रूपी शरीर में चित्त रहता है जिसमें अनन्त जन्मों के शुभ–अशुभ संस्कार दबे रहते हैं जो संग पाकर बाहर आते रहते हैं। चित्त ही संस्कारों का पुंज है। यदि इन संस्कारों को उठते ही दबा दिया जाये तो ये संस्कार के बीज वहीं पर नष्ट हो जाते हैं।

यदि उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाए तो वे संस्कार मन तक आ जाते हैं। तब इन्द्रियां मन को खींच कर अपना स्वार्थ साध लेती हैं, अतः मन गंदा होकर जीव के दुःख का कारण बन जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जब भी चित्त में कोई स्फुरण आवे, विचार द्वारा उसे वहीं पर नष्ट कर दिया जाए ताकि वह मन

तक न आ सके। चित्त की स्फुरण यदि गंदी हो तो वह आवागमन (जन्म–मरण) का कारण बन जाती है। यदि यही स्फुरण भगवान् के प्रति हो तो वह जन्म–मरण छुड़ाने में सहायक बन जाती है। स्फुरण ही जमीन में दबे घास के बीज तुल्य है जो समय पाकर बाहर आ जाती है।

जो चित्त की स्फुरण को दबा सकता है, वही जन्म–मरण से छूट सकता है। सूक्ष्म शरीर ही इसमें रहकर आवागमन करता है। यदि सूक्ष्म शरीर ही सत्संग द्वारा चिन्मय शरीर में बदल जावे तो सदा के लिए आवागमन से छुट्टी मिल जावे। चित्त ही आवागमन का व इसे छुड़ाने का मूल है। यदि चित्त के स्फुरण को उखाड़ फेंक दिया जावे तो जीव को सदैव के लिए श्रीकृष्ण–चरण की प्राप्ति हो जावे।

यदि चित्त की स्फुरणा शुभ हो तो उसे मन तक आने दिया जावे। चित्त एक दम सफेद व स्वच्छ होता है। सफेद रंग पर कोई भी रंग जल्दी चढ़ जाता है। जब तक अहंकार, अन्तःकरण पर छाया रहेगा तब तक अन्तःकरण पर मन का राज्य कायम रहेगा। जब अहंकार नष्ट हो जायेगा तो इसके साथ मन भी मारा जाएगा। अहंकार, मन का साथी है। दोनों एक–साथ रहते हैं। जब साथी मर जाएगा तो मन भी मर जाएगा।

कहने का आशय है कि अपने अन्तःकरण को सुधारो। अन्तःकरण में ही शुभ–अशुभ संस्कारों के बीज मौजूद रहते हैं। हरिनाम रूपी चूल्हे में भाव रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित कर अन्तःकरण में विद्यमान त्रिगुणों के शुभ–अशुभ संस्कार रूपी बीजों को जला डालो। जब यह बीज जलकर नष्ट हो जाएंगे तो शीघ्र ही ठाकुर दर्शन हो जाएगा। जब तक संस्कार, अन्तःकरण की Stage पर विराजित हैं तो ठाकुर कहां बैठे? स्थान खाली होते ही ठाकुर आ टपक पड़ेंगे।

अन्तःकरण में या तो संसार रहता है या भगवान् रहते हैं। एक ही रहा करता है। यह सत्य–सिद्धांत है। अहंकार में मन इतना

ओत–प्रोत (रमा) रहता है कि इसका पकड़ना असंभव रहता है। मन ही जन्म–मरण का कारण है एवं मन ही जन्म–मरण से छुटकारा दिलाने में सक्षम है। अतः भगवत्–दर्शन का सरलतम उपाय (साधन) यही है कि विरहाग्नि जलाकर संस्कारों के बीजों को भस्मीभूत कर दिया जावे। यह होगा केवल हरिनाम–महामंत्र से, जो कलियुग का केवल एकमात्र भगवत्–चरण पकड़ने का निर्दोष साधन–भजन है। दूसरे किसी उपाय से जीवन नष्ट हो जाएगा कुछ मिलने वाला नहीं, मिलेगा केवल पछतावा।

चेतना सार्थक है, सोना निरर्थक होगा। यह ठाकुर जी कह रहे हैं, शीघ्र गौर करना अच्छा होगा। चित्त पर संसारी–आसक्ति रूपी काला रंग बहुत जल्दी पड़ जाता है। हरि भक्त रूपी हरा रंग भी बहुत जल्दी चढ़ जाएगा। भगवान् ने प्रकृति का रंग हरा रचा है, कैसा सुखकारक है ! जहां नजर आती है, हरे–हरे पेड़–पौधे कैसे सुहावने लगते हैं ! काला रंग रूपी रात्रि कैसी दुःखकारक होती है अर्थात् जैसा संग, वैसा रंग। जगत् का संग छोड़कर सन्त का संग करना चाहिए। जगत् का रंग बहुत जल्दी चढ़ जाता है क्योंकि यह रंग कई जन्मों से चढ़ता है। भक्ति का रंग धीरे–धीरे चढ़ता है क्योंकि यह रंग गहरे रंग पर कम चढ़ता है, धीरे–धीरे चढ़ता है।

लेकिन प्रश्न उठता है कि सत्संग कैसे प्राप्त हो ? यह स्वयं के अंदर ही है। वह है–मन लगाकर कान से सुनते हुए हरिनाम महामंत्र का जीभ से उच्चारण तथा संतजनों का स्मरण। कहीं जाने की जरूरत नहीं है। घर बैठे सत्संग हो जाता है। मठ से छपी भजन–गीति में लिखा हैः–

गृहे थाक बने थाक, सदा हरि ब'ले डाक
सुखे–दुःखे भुल ना'क, वदने हरिनाम कर रे।

–श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

अर्थात् आप चाहे घर में रहो या जंगल में रहो, हमेशा हरि को पुकारते रहो। सुख में हो या दुःख में हो, कभी भी उन्हें मत भूलो, मुख से हरिनाम करते रहो। वहीं धाम बन जाएगा। यह भगवत्–चरण

में पहुंचने तथा जन्म–मरण से छूटने का शत–प्रतिशत प्रभावशाली उपाय है।

जो लेख लिखा गया है वह आपके चरणों में बैठकर लिखा गया है, क्योंकि आपके हृदय–कमल पर ठाकुर जी बैठे रहते हैं। उनकी प्रेरणा से ही यह लेख लिखा है। मैं एक तुच्छ जीव हूँ। आप जैसे परमहंस को लेख लिखकर भेजने का अधिकार मुझको हो सकता है क्या ? कदापि नहीं। यदि ऐसा न हो तो मैं महा अपराधी बन जाऊं और ठाकुर जी से विमुख हो जाऊं। आप कुछ भी समझें। जैसा लिखकर कह रहा हूँ, वह ध्रुव सत्य है। मैंने आप गुरुदेव को अपने जीवन की सभी बातें खोलकर बता दीं। आपसे छुपाकर कुछ भी नहीं रखा। गुरु से कुछ भी छुपाकर रखना महा–अपराध है। श्रीराम भरत जी को अपने मन की बात बता रहे हैंः–

"जाते वेगि द्रवहुँ मैं भाई।
भक्ति सो मम भक्त सुखदाई।।"

बस इसी में समझने का सब सार–तत्व है। जैसा प्रभु ने लिखाया, आपके चरणों में भेंट कर रहा हूं। मैंने कुछ नहीं लिखा।



8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

मानस की कुछ चौपाईयां

(पूज्यपाद अनिरुद्ध दास प्रभु जी, रामचरित मानस की जो चौपाइयां या दोहे इत्यादि प्रायः गुनगुनाया करते हैं व जिनसे उन्हें भजन की प्रेरणा मिलती है, वह पाठ्कों के हितार्थ यथारूप नीचे दी जा रही हैं। शब्दों में कहीं त्रुटि हो तो कृपया संशोधन कर लेना)।

आप संतों की कृपा व गुरु-भगवान् की कृपा से मैंने रामायण से भक्त-भक्ति-हरिनाम, जप विधि, गुरु-भगवान की कृपा तथा ज्ञान चर्चा के दोहे व चौपाईयां छांट कर एक डायरी में अंकित किए हैं। इनको अवलोकन करने से निश्चय ही हरिनाम में मन लगने लगता है। रामायण शिवजी के मन से ही प्रकट हुई है।

कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी। ते जेहि विधि शंकर कहा बखानी।।
संभू कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा।।
राम चरित मानस मन भावन। विरचेऊ संभू सुहावन पावन।।
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकई नाम गुण गाई।।
गुरु के वचन प्रतीति न जेहि। सपनेहु सुगम न सुख सिद्धि तेहि।।
जो सठ गुरु संग इरषा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
त्रिजुग योनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।
सुनु सुरेश उपदेश हमारा। रामहिं सेवक परम पिआरा। ।
मानत सुख, सेवक सेवकाई। सेवक बैर-बैर अधिकाई।।
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद-पुराण-साधु-सुर साखी।।
सीता पति सेवक सेवकाई। कामधेनु सम सरसि सुहाई।।
परहित बस जिन्ह के मन माहिं। तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहिं।।
जासु नाप जप एक ही बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
जो सभीत आया सरनाई। राखहुँ ताहि प्राण की नाईं।।
बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा।।

दोहा

मन क्रम वचन कपट तजि जोकर संतन सेव।।
मो समेत बिरचिं सिव बस ताके सब देव।।

पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन भक्त-पद पूजा।।
इन्द्र कुलिस मम् सूल विसाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरहिं। भक्त द्रोह पावक सो जरहिं।।
नाम जीह जप जागहिं जोगी। बिरत बिरंचि प्रपंच वियोगी।।
पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।
राम-नाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा।।
जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
सम्मुख होंहि जीव मोहि जबहिं। कोटि जन्म अघ नासहूं तबहीं।।
जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।
कोऊ न काहू सुख दुःख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता।।
प्रभु ते अधिक गुरु जिय पानी। सकल भाव सेवहिं सबमानी।।

दोहा

राम नाम की औषधी, खरी नियत से खाय।
कोई रोग आवे नहिं, महारोग मिट जाए।।

हरिनाम जप का तरीका

मानव हरिनाम को जपाकर कान से सटाकर।
मन को लगाकर पांच मणियों पर सुनाकर।।
एक माला पूरी कर, इसी तरह नाम को रटाकर।
चार माला सुनाकर, प्रेमामृत निहाल होगा पाकर।।
विरहाग्नि प्रगट कर कुसंस्कार जलाकर।
श्रीकृष्ण को हिय में बिठाकर अपना जन्म सफल कर।।
अनिरुद्ध दास ने सुना तो बताया सभी को गुनाकर।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 01.07.2006

तुच्छ–भेंट

पत्र डालने में मुझे आनंद का अनुभव व आपका चिंतन होने से भजन–कुशलता प्राप्त होती है। आपकी तथा ठाकुर–प्रेरणा से अबकी बार चातुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम करने की इच्छा जाग्रत हुई है। आप कृपा करें। मेरी कामना पूर्ण हो, कोई विघ्न न आने पावे। श्री गुरुदेव के आविर्भाव पर उपस्थित होकर, बाद में, सर्दी में कृष्ण–मंत्र का 18 लाख का 6 मास का पुरश्चरण आपकी कृपा से पूरा होने की कामना है। आप शक्ति प्रदान करें। यदि आप भी यहां आकर मेरा साथ दे देवें तो सोने में सुहागा हो जायेगा। अब भी यदि जुलाई–अगस्त में आकर मुझको कृतार्थ कर दें तो मैं ठाकुर जी की असीम कृपा का अनुभव करूँगा।

पिछली बार आपको गर्मी का कष्ट सहना पड़ा। उसके लिए मैं चरणों में गिरकर क्षमा चाहता हूँ। आपको कष्ट देकर अपराधी बना। अब तो गर्मी बहुत कुछ कम हो गई। अतः भजन आनंद से हो जायेगा। मेरा भी शुभ अवसर आ जावेगा। इस समय कोई उत्सव भी नहीं होवेगा। यदि 15 दिन के लिए भी पधार कर कृपा कर दें तो मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझूँगा। चातुर्मास मेरा सुगंध से भर जायेगा। वैसे आपकी मर्जी है। मैं तो प्रार्थना ही कर सकता हूँ। मेरा बस भी क्या है!

मैंने श्री महाराज जी को भी पत्र दिया था। उनसे मेरा जिक्र कर दें। उनका आने का क्या इरादा है? दस–पांच हजार का योगदान मेरे गुरुदेव के म्यूजियम के लिए देने की प्रेरणा ठाकुर से मिली है। हम गरीब दे भी क्या सकते हैं, लेकिन यदि उनके चरण यहाँ पड़ जावें तो हमारा कितना सौभाग्य होगा। आप साथ में

लेकर आ जावें तो हमारे आनंद की सीमा नहीं रहेगी। फूल उठेगा सारा परिवार। महाराज का पदार्पण हमारे सौभाग्य की बात होगी। उनकी कृपा से परिवार की गाड़ी चल रही है वरना गाड़ी ठप्प ही समझो। मैं तो उनकी चरण–रज–कण की सेवा का अभिलाषी हूँ। आप भी कृपा कर दें तो यह चरण–रज मुझे प्राप्त हो सकती है। वे आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। यह सब आप पर निर्भर है।

आपकी कृपा पर मेरा जीवन चल रहा है। यह जीवन आप पर आश्रित है। अपनावो तो, ठुकरावो तो, आप जानो। भजन है तो सब कुछ है। वरना जीवन बेकार ही है।



10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

संतों के संग से ही जीवन की सार्थकता

आप ही मेरे सर्वस्व हैं। आपके चरणों का चिंतन ही मेरा भक्ति–बल है। आप तो साक्षात् निष्किंचन वृति में सराबोर रहते हैं। ऐसी कृपा करें कि मेरे अंदर भी निष्किंचनता की छाया–मात्र अनुभव होती रहे। मैं तो कामनाओं का पिटारा हूँ।

आपकी कृपा से राधाष्टमी का आयोजन बहुत सुंदर रूप से भजन में गुजरा। श्री राधे जी की असीम कृपा का अनुभव हुआ। अब तो आपको इस भिक्षुक को दर्शन रूपी भिक्षा देने की कृपा करनी चाहिए। मैं मजबूर नहीं कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। आपको खुशी से भिक्षा देने की कृपा करनी चाहिए। मैं मजबूर नहीं कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। आपकी खुशी में ही मेरी खुशी है। परंतु क्या करूँ आपके अभाव में मेरा जी अकुलाता रहता है। यदि आप आ जावें तो मेरा आनंद–सिंधु उमड़ पड़े। मैं अपने आपको परिवार सहित बड़ा भाग्यशाली अनुभव करूँ। मेरा जिया आपके बिना तड़प रहा है। मैं स्वयं अकेला आपके चरणों में आ नहीं सकता।

विरह–सागर में डूबकर ही पैंदे (तल) में हरि–भक्तों के संग में श्री ठाकुर जी के दर्शन हुआ करते हैं। ऐसा मेरा अनुभव कहता है। जब तक जीवन में विरह अंकुर नहीं प्रगटा, तब तक न संसार से वैराग्य होता है, न ठाकुर जी के प्रति प्रेमावस्था का भाव जाग्रत होता है, न ठाकुर जी के प्रति अकुलाहट होती है न ही मोह–माया, प्रतिष्ठा का लोप होता है। मानव–जीवन, जो भगवत्–कृपा से मिला था, बेकार में चला गया। हीरा पाना था, पत्थर को ढूंढता रहा। सारा जीवन रोने व सोने में चला गया।

अब प्रश्न उठता है, विरहाग्नि कैसे प्रज्ज्वलित हो ? यह तो अपने बस की बात नहीं। बस की बात तो है परंतु मन चाहता नहीं। क्यों नहीं चाहता, अनन्त जन्मों के संस्कार इसे अपनी ओर खींचते रहते हैं, तो बेचारा क्या करे। लेकिन जब सच्चा संत, ठाकुर–कृपा से मिल जाये, वह भी किसी सुकृति से तो, जीव को आवागमन रूपी दुःख–सागर से छुटकारा मिल सकता है। आजकल तो सच्चा संत मिलना भी मुश्किल है। "बिना हरि कृपा, मिले नहिं संता।" हरि से आतुरतापूर्वक प्रार्थना की जाए। परंतु वह भी अपने बस की बात नहीं। बस की बात है, यदि संसार से वैराग्य हो जावे। अब संसार से वैराग्य कैसे हो ? जब मन विचार करे–"अरे यह संसार तो दुःखों का घर है। सुख का तो नामो–निशान ही नहीं। देख नहीं रहे, आस–पास लोग तड़प रहे हैं। किसी को बीमारी, किसी को खाने को भोजन नहीं, किसी को प्रकृति की मार पड़ रही है, आदि आदि। फिर मौत मुंह फाड़े खड़ी है। स्वयं का पुत्र अन्ट–शन्ट बकता रहता है। कोई किसी का नहीं है। केवल स्वार्थ नाच रहा है"–ऐसा विचार करोगे तो वैराग्य प्रकट होने में देर नहीं होगी। सब कुछ संभव है, पर मन सो रहा है। अरे, भगवान् ही अपना है, बाकी सब तो पराए हैं।

"बुढ़ापा बहुत खराब है। हाथ–पैर चलते नहीं। भोजन की इच्छा समाप्त है। साधु के पास जा नहीं सकता। केवल चिंतन का ही सहारा है। पड़ा–पड़ा रोता रहता हूँ। हे मेरे गुरुदेव ! हे मेरे शिक्षागुरु! हे मेरे ठाकुर जी ! अब तो जीने की इच्छा समाप्त हो गयी है। अब तो मेरा यहां पर कोई नहीं है। केवल आपके सहारे से जीवन चल रहा है। अब तो संसार से मन ऊब गया है। रो–रो कर प्रार्थना करना ही बल है। अब मैं ज्यादा जीना नहीं चाहता। अब जल्दी से अपने शिशु को गोद में उठा लो एवं प्यार का लड्डू मेरे हाथ में दे दो। बस यही आपसे अंतिम प्रार्थना है।"–इस प्रकार भगवान् से कातर प्रार्थना करने से ही बल मिलेगा।

खटिया में पड़ा–पड़ा रोना आना किसी सौभाग्यशाली जीव का होता है, जिस पर संतों की असीम कृपा होती है। ठाकुर जी की तो संतों पर असीम कृपा होती है। ठाकुर जी तो संतों के सान्निध्य बिना रह ही नहीं सकते। जहां भक्त भगवान् के लिए रोता है, भगवान् भी भक्त के लिए रोते रहते हैं। इस रोने में भक्त व भगवान् को असीम आनंद–सागर में डूबना होता है।

क्या ही अलौकिक रसानुभूति होती है भक्त व भगवान् को। जिसको यह रस मिल गया, वही जान सकता है पर बता नहीं सकता, क्योंकि अन्तःकरण की जिह्वा नहीं।

यदि रोना नहीं, तो कुछ नहीं। सारी साधना बेकार है। श्री गौरांग महाप्रभु इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, भरत इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री भक्ति विनोद ठाकुर, आदि रोने के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। रोना नहीं आता तो इसका खास कारण है–भगवान् के प्यारे भक्तों के चरणों में अपराध। यह अवस्था जल्दी आ सकती है, परंतु इस पर काम हावी रहता है। जो ठाकुर के प्रति प्रेम उमड़ रहा था वह सारा एक बार के स्त्री संग से दब जाता है। हजारों वर्षों की तपस्या (साधना) एक क्षण में समाप्त हो जाती है। विरहाग्नि जलने में पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करना परमावश्यक है। कोई विरला ही स्त्री रूपी माया से बच सकता है। बस वही बच सकता है, जिस पर संतों सहित ठाकुर जी की कृपा हो। जोर–जोर से हरिनाम करना, कान से सुनना विरहाग्नि प्रकट कर देता है। विरह हुआ नहीं कि काम भस्म हुआ नहीं। यही एकमात्र काम से बचने का उपाय है, दूसरा नहीं।

गृहस्थी, स्त्री–रूपी किले में रहता है, अतः बचता रहता है। ऋतुधर्म (मासिक धर्म) के चार दिन बाद संग करने से कोई पाप नहीं लगता, क्योंकि यह पुरुष का धर्म है। विधाता के आदेश का पालन है। दूसरे समय में भजन करने से काम शांत रहता है। बहुत त्यौहार आ जाते हैं, स्वतः ही भजनशील को काम से दूर रहना पड़ता है। लेकिन यह तब ही संभव है जब धर्मपत्नी भी भजनशील

हो। ऐसी पत्नि भी पूर्व जन्म से मिलती है। वैसे तो प्रवचन के साथ काम से बचने की शिक्षा भी बहुत जरूरी है। वह बेचारे क्या करें ? माया–रूपी स्त्री खींच लेती है। इसलिए तो श्री गौरहरि ने छोटे हरिदास जी को ताड़ना दी थी। लकड़ी की स्त्री भी मन को खींच लेती है। लड़कियों से की बात करना, स्वयं को गिराने में सहायक है।

कहते हैं, भजन को छुपाकर रखना चाहिए। बात बिल्कुल ठीक भी है, क्योंकि प्रतिष्ठा आकर भजन–स्तर गिरा देगी। इससे अहंकार प्रकट होगा। लेकिन जिसका अंतर का भाव दूसरे का हित करने का हो, उसे कोई नुकसान नहीं हो सकता। उसको देख–सुनकर प्रेरणा मिलेगी कि मुझ में तो इतना भजन–स्तर नहीं है, पछताएगा तो भजन–स्तर बढ़ेगा।

शास्त्र का वचन–'परहित सरिस धर्म नहीं भाई।'

रामानुजाचार्य जी को इनके गुरुदेव ने मंत्र देकर कहा कि इसे छुपाकर रखना वरना नुकसान होगा। रामानुजाचार्य ने सोचा, इस मंत्र को सबको बताने से उन सबका तो उद्धार होगा, केवल मुझे ही तो नरक–भोग करना होगा। यह सोच कर उन्होंने छत पर जाकर जोर–जोर से मंत्र का उच्चारण कर सबको कहा, इससे जन्म–मरण छूट जाएगा। सब जपा करो। जब गुरु जी को मालूम हुआ कि इसने मंत्र सबको बता दिया तो गुरुदेव ने उसकी भावना से परम खुश होकर आशीर्वाद दिया कि तुझ पर ठाकुर की कृपा सदैव रहेगी।

अब मैं भी बता रहा हूँ–एक लाख नाम, ब्रह्ममुहूर्त में विरह–सागर में गोता लगाकर कर रहा हूँ। मेरा भजन बताने से कभी कम नहीं हुआ, वरन् ज्यादा ही हुआ है, क्योंकि मुझे मान–प्रतिष्ठा शूकर की विष्ठा के समान महसूस होती है। ठाकुर व भक्त कृपा मेरे से दो लाख नाम से भी ज्यादा नित्य करवा रही हैं। मैं बताने से क्यों डरूं ? दूसरों को बताने से उनको लाभ होता है। पांडवों के उदाहरण से पता चलता है कि भगवान् अपने प्यारे भक्त की तरफ

ध्यान दिया करते हैं। अभक्त की तरफ देखते तक नहीं। मैं अपने निजी प्यारे को ही फटकारा जाता है, अन्य को नहीं। मां अपने बच्चे को पीट सकती है क्योंकि वह अपना है, अन्य को नहीं क्योंकि वह पराया है। लेकिन बेटा, बाप को नहीं फटकार सकता क्योंकि वह पूज्य है, केवल इशारे से इंगित कर सकता है। अपने निजी–प्रेमी के लिए यदि वह पूज्य है, तो फटकार लगाने में पूर्ण रुकावट हो जाती है यद्यपि वह गर्त में जा रहा है, लेकिन मजबूर है झिड़कने में। दुःखी तो दिल से बहुत है, परंतु क्या कर सकता है ? इस लेख को गहराई से दिल में विचार करें कि इसका खास आशय क्या है ? रहस्य को प्रकट करना उचित नहीं। तूफान आ रहा है, पेड़ की जड़ उखड़ रही है। तूफान आने पर अवश्यमेव गिरेगा। अब किसका इंतजार है। अंत होने वाला है।

लालसामयी प्रार्थना

हे महाराज !
मुझे अब तो अपना लो।
जन्मों का जो तेरा,
हिये में निष्किंचनता का भाव जगा दो,
बुढ़ापे ने आ घेरा,
तन–मन–बुद्धि हुआ बसेरा,
अब जाने की तैयारी,
हरिनाम में ऐसी लौ लगा दो।
क्षण–क्षण मैं रोता रहूं,
ठाकुर के चरणों को धोता रहूं।
विरह की ज्वाला में झुलसता रहूं,
अपने आपको खोता रहूं।।
आवागमन के भारी दुःख से,
अनिरुद्धदास को बचालो।
हे गुरु महाराज !
मुझे अब तो अपना लो।

11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 17.08.2006

संत-शरण द्वारा ही भक्ति की प्राप्ति

आप ही मेरे जीवन सर्वस्व हैं। मैं सच-सच कह रहा हूँ। मेरा जीवन आपकी कृपा से ही गुजर रहा है। मैं अपने आपको देखता हूं तो अवगुणों का भंडार भरा देखता हूँ। आप मुझमें गुण देखा करते हैं। यह संत का स्वभाव ही होता है। वह गुण ही गुण देखता रहता है। अवगुण तो उसे नजर ही नहीं आता।

पत्र तो न जाने मुझे कौन अदृश्य शक्ति प्रेरित करके लिखवाती रहती है। मुझे भी इसका अचंभा आता है। यह आपकी सेवा का फल हो सकता है क्योंकि हर समय आप मेरे हृदय पटल पर विराजित रहते हैं एवं आपके हृदय-पटल में ठाकुर जी विराजित रहते हैं।

बस यही कारण है कि मेरे पत्र आपको अच्छे लगते हैं। मैंने अच्छी तरह विचार कर देख लिया कि सच्चे संत की शरण ही ठाकुर को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। उसी से हरिनाम करने पर विरहाग्नि जल उठती है। आप मेरे जन्म-जन्म के संगी हैं, अतः सब भूलकर आप पर ही मेरी निगाह टिकी है। मेरे गुरुदेव के बाद, आप व श्री तीर्थ महाराज जी ही मेरे जीवन का आधार हैं। इससे ज्यादा मैं लिखने में असमर्थ हूँ।

भाषण से धर्म-प्रचार नहीं होता।
जो स्वयं भजन करते हैं,
वे ही दूसरों से भजन करवा सकते हैं।

12

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.10.2006

श्री राधा–कृष्ण युगल की पोशाक का रहस्य

आपकी याद में इस गोविंद भगवान् के परिवार का दामोदर–व्रत (कार्तिक–नियम) प्रातः चार बजे से साढ़े 6 बजे तक व रात साढ़े सात बजे से साढ़े नौ बजे तक, आपकी कृपावर्षा से सुचारू रूप से चल रहा है। भविष्य में भी नियमता रहे, ऐसी कृपा करते रहियेगा। प्रातः ठाकुर जी की आरती, तुलसी जी की आरती, राधा–गोविंद कीर्तन, गौर–हरि कीर्तन, तुलसी जी का कीर्तन, श्री गुरुदेव जी की प्रार्थना, गौरहरि कीर्तन, गुरु–परंपरा, गुरुदेवाष्टक, श्रीदेवकीनंदन दास का श्री श्री वैष्णवशरण प्रार्थना–वृंदावनवासी यत वैष्णवेरगण, श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु दया करो मोरे प्रार्थना, नृसिंह देव प्रार्थना, दामोदर अष्टक, जय दाओ जय दाओ की प्रार्थना, अष्टयाम कीर्तन के प्रथम चार याम तक गायन द्वारा कीर्तन करते हैं।

रात्रि में श्रीगुरुदेव–प्रार्थना, गजेन्द्र मोक्ष प्रार्थना, गौर–हरिकीर्तन, हरिनाम–कीर्तन, 5वें से 8वें तक यामकीर्तन, राधे–जय जय माधव दयिते प्रार्थना, श्रीरूप गोस्वामी कृत–देव भवन्तम् वन्दे प्रार्थना, गुरुवर्ग की जय देकर नियम समाप्त कर देते हैं। दिन में नाम जप करता हूँ। 3 लाख हरिनाम बड़ी मुश्किल से हो पाता है लेकिन ठाकुर जी निभा रहे हैं।

एक रोज हरिनाम के जप के समय रात में ठाकुर राधा गोविन्द जी से पूछा कि पिता जी! आप हर समय पीतांबर ही क्यों धारण करते हो एवं माता जी आप नीलांबर ही क्यों धारण करती हो, इसका रहस्य क्या है ? समझना चाहता हूँ।

गोविंद जी बोले,–"मेरी राधा के श्री अंग का रंग पीतांबरी है। निखरे हुए सोने जैसा है। अतः इसकी आभा मुझ पर गिरती रहती है। अतः पीतांबरी रंग की पोशाक मेरे मन को भाती है।"

राधा जी बोलीं, "तेरे बाप का रंग श्याम घटा जैसा नीला है। इस नील की मणि की आभा मेरे गोरे अंग पर पड़ती रहती है। अतः मेरा गोरा रंग नील–झांई से सराबोर रहता है। अतः नीलांबर पोशाक मेरे मन को भाती है। बस यही कारण है कि मुझे नीलांबर जंचता है व प्यारे को पीतांबर जंचता है।"

आप पूछ सकते हो कि भगवान् राधा–कृष्ण के लिये आपका भाव तो माता–पिता का है, जबकि आप एक छोटे से शिशु हो। आपने उनसे वार्तालाप कैसे किया। इसका उत्तर है, ये बातें सुपर नैचुरल दिव्यता लिए हुए होती हैं। ठाकुर–कृपा बिना समझना असंभव है। ठाकुर तो अन्तर्यामी है। मन का भाव उनको पता रहता है। उनकी कृपा से भक्त भी भगवान् के मन की बात जान लेता है, क्योंकि भक्त भी चिन्मय होता है।

मैं भक्त–श्रेणी में नहीं हूँ, लेकिन ठाकुर व संतों की कृपा से दिल के कपाट खुल जाते हैं। संतों की कृपा जिस जीव पर होती रहती है तो उस कृपा के वश होकर वह जीव भी भक्त–श्रेणी में आ जाता है। तब वह मूक वार्तालाप भी ठाकुर से कर लेता है। ठाकुर उसकी मूक बातें सुन लेते हैं और भक्त भी ठाकुर की मूक बातें सुन लेता है क्योंकि दोनों ही चिन्मय होते हैं।

हरिनाम से ही चिन्मयता प्राप्त हो जाती है। लेकिन स्मरण–सहित जाप होना चाहिए। कान तब ही सुन सकेगा, जब मन कान के साथ रहेगा। मन न रहने से कितने ही जोर से पुकारो, कान उस पुकार को पकड़ेगा ही नहीं। स्मरण से ही कुछ मिल सकेगा। बिना स्मरण, सुकृति हो जाएगी जो भगवत् प्रेम लाने में देर कर देगी। स्मरण से इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष व 'प्रेम' मिल जाएगा।

"जाको नाम जपत मन माहिं।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।।"

हरिनाम से दुःख की जड़ ही उखड़ जाती है। एक जुगनू सूर्य भगवान् को उजाला दे रहा है, कितनी मूर्खता है? लेकिन करे क्या? एक सजातीय होने से उसकी तरफ दौड़ता रहता है, चाहे जल कर राख ही क्यों न हो जाए। उसको सूर्य खींचता रहता है। मैं जुगनू हूं मेरे श्री गुरु महाराज सूर्य हैं। मैं बेबस हूँ, लिखकर ही मन को शांति प्रदान करता रहता हूँ। लेखन से याद दूनी बढ़ जाती है। संत का स्मरण, ठाकुर-स्मरण से सर्वोत्तम रहता है, ऐसा शास्त्र-वचन है।

श्रीगौरहरि जी ने अपनी मां को श्री अद्वैताचार्य के प्रति अपराध होने पर कितना सावधान किया है, जबकि हम सब वैष्णव/संत को एक साधारण मनुष्य समझते हैं। संत/भक्त/वैष्णव की निन्दा करना व सुनना दोनों ही खतरनाक हैं। इससे जापक नाम करते हुए भी सात्विक-अष्ट-विकारों से वंचित रह जाते हैं। जब शची माता ने श्री अद्वैताचार्य जी की चरण धूलि सिर पर ली तो तुरंत प्रेम-विकार प्रकट हो गया। यह युक्ति भी श्रीगौरहरि ने ही भक्तों द्वारा प्रार्थना करने पर बताई है। अतः समझना होगा कि संत-चरण-रज, जल व अवशेष-प्रसादी का कितना प्रबल प्रभाव है जो कि सात्विक विकार प्रकट होने में सहायक होता है। यह शास्त्रों में जगह-जगह पढ़ने को मिलता रहता है।

कृष्णभक्तिरसभाविताामतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते

13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 28.12.06

स्मरणकारी को भगवान् अपना लेते हैं

इस समय आप Ph. D Class में पहुंच चुके हो। एक दिन मैं जब आपके साथ कमरा नंबर 21 में आपके संग में हरिनाम जप कर रहा था, उन दिनों में आप L.K.G, U.K.G Class में बैठे थे, आप मेरे Super natural son, Daughter and grandson (पोता)–भौतिक जगत के रिश्ते से लगते हो। सच्चा पुत्र वही है, जो भगवान् के लिए तड़पता है। अब भगवान् ने मेरी प्रार्थना सुन ली है दूसरे पुत्र हैं जो Super natural पुत्र–पुत्री हैं। उनकी भी भगवान् सुन लेगा। आप पर भगवान् ने असीम् कृपा कर दी है, जो अंतिम Stage विरहाग्नि की होती है, आपको उपलब्ध हो गयी। मुझे इतनी जल्दी की उम्मीद नहीं थी, जो आपको प्राप्त हो गयी। अब इसे भविष्य में बढ़ाते रहें। पर यह होगा केवल हरिनाम कान से सुनकर ही।

शास्त्र कहता है, भजन छुपाकर रखना चाहिए। ठीक है, यह है नीचे–स्तर के भक्त के लिए, क्योंकि हीरे की कीमत जैसे मालिन नहीं जान सकती, जौहरी ही जान सकता है, इसी तरह भजन–स्तर की कीमत, उच्च–स्तर वाला भक्त ही जान सकता है। उच्चस्तर वाला भक्त, उच्चस्तर वाले भक्त से छुपाकर रखने से आगे उन्नत नहीं हो सकेगा। मेरे से छुपाकर रखने से आप आगे बढ़ नहीं सकोगे। रात में मेरा भी विरहाग्नि स्तर बढ़ रहा है। 3 बजे से 6 बजे तक अश्रुधारा भक्तों की कृपा से व ठाकुर कृपा से चलता रहता है। यह बात दूसरों को न बतावें। अपने तक ही रखें।

आपने जो पद्य–रचना की, साक्षात् कृष्ण का बचपन का चित्रण, शीशे के माफिक कर दिया। मुझे पढ़कर असीम आनंद हुआ। कई बार पढ़ा एवं अश्रुपात भी हुआ। भगवान् के प्रति जो पद्य–रचना या लेख होता है, वहां सरस्वती आकर जुबान पर बैठ जाती है। भौतिक

चित्रण से सिर धुनकर पछताती है, जो भक्त के लेख को बुरा कहता है, घोर अपराधी बनकर नास्तिक बन जाता है।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"
"ताकी करूं सदा रखवारी।
जिमि बालक राखहिं महतारी।।"

हर प्रकार से भगवान् का भजन करने से भगवान् की शरणागति स्वतः हो जाती है। शरणागत को भगवान अपने हृदय से चिपकाए रहते हैं। पुत्रों को सुरक्षित रखना चाहिए, वरना अपराध के भागी बन जाते हैं। पर जो मेरा प्यारा पुत्र है, उसे मेरे पत्र पढ़ना आवश्यक है। आपके लिए मेरा आदेश है कि अधिक ध्यान ठाकुर जी के नाम की तरफ रखना होगा। कान द्वारा हरिनाम ज्यादा करना होगा। पुत्री को भी कहना, वह भी करे। दोनों के करने से 100 प्रतिशत भगवत्–कृपा मिलती है।

आपके घर का जिम्मा ठाकुर ले रहा है, फिर तुमको क्या फिक्र है। मेरा जिम्मा आपको लेना है, क्योंकि आपको इतनी छोटी आयु में Ph.D स्तर की भक्ति प्राप्त हो गयी है। मैं तो वयोवृद्ध व्यक्ति हूँ। बच्चे को बूढ़े की सेवा करना धर्म है। भगवान् से कह कर मेरा भी भजन–स्तर अर्थात् अधिक विरहाग्नि भड़काने की ठाकुर जी से प्रार्थना करनी होगी। खड़ताल दोनों हाथों से बजा करती है। बचपन में मैंने आपको पाला, अब बुढ़ापे में आपका धर्म है, मुझे शरण देने का। वरना आपको दोष लगेगा। सोच लो, समझ लो कि क्या कह रहा हूँ।

मानुष–जन्म बार–बार नहीं मिलता, अबकी बेर भगवत् कृपा से मिल गया है तो इसे सार्थक करना परमावश्यक है। जो होगा अधिक से अधिक हरिनाम को कान से सुनकर ही होगा।

जपते–जपते हरिनाम से ही भगवत् दर्शन होने लगेगा। 10 करोड़ नाम, कान से सुनने के बाद, हृदय में भगवान् का दर्शन होने लगेगा, लीला स्फूर्ति आदि भी होगीः–

“सुमरिए नाम, रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।”

जबरन भगवान् को आना पड़ता है, जब जीव उसे रो–रो कर पुकारता है। भगवान् तो दया के समुद्र हैं। जब जीव जरा भी उसे याद करता है तो वह तुरंत आकर जीव को संभाल लेता है। जब बच्चा रोता है तो संसारी मां दौड़कर उसे गोद में उठा लेती है, तो श्रीकृष्ण तो अखिल ब्रह्मांडों की मां है। वह तो उस मां से अनंतगुणा वात्सल्य रस समूह का भंडार है। अपना भजन कम न हो, बढ़ता ही जावे ऐसा हरिनाम करना। केवल प्रतिष्ठा से बचना।

आपका पद्य क्या था! श्रीकृष्ण की बाल लीला का पूरा चित्रण था। पढ़–पढ़कर बार–बार रोना आता था। वाह रे पद्य रचना करने वाले! मुझे तो आपने निहाल कर दिया। साक्षात् जैसे टी.वी. पर देखते हैं, वैसा का वैसा दृष्टिगोचर हो रहा था।

दुनियाँ में शिष्य का पैसा हरण करने वाले तो बहुत गुरु हैं
परन्तु जो शिष्य के संतापों को हरण कर ले,
ऐसा गुरु मिलना मुश्किल है।

बहुजन्म कृष्ण भजि’ प्रेम नाहि हय।
अपराध पुञ्ज ता’र आछये निश्चय।।

यदि बहुत जन्मों तक श्रीकृष्ण का भजन करने पर भी प्रेम नहीं होता है, तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यक्ति ने अनेकों अपराध किये हैं।

14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 28.12.2006

कृपा-प्रार्थना

आपकी याद कभी भूलती नहीं है। यह आपकी कृपा का ही प्रभाव है। यदि आपकी इस प्रकार कृपा बरसती रही तो मेरी भी जीवन-नैया सुचारु रूप से चलती रहेगी और ठाकुर जी तथा संतों का ध्यान बना रह सकता है। संत की याद ही भजन करवा सकती है, ऐसा शास्त्र भी कहता है। मठ में बहुत से भजनशील महात्मा हैं, जिनकी कृपा मुझ पर होती रहे तो जीवन सुखमय चलता रहे। मेरा भी भजन बल बढ़ता रहे व अन्य सबका भी।

आप दोनों तो सबके प्राणप्रिय हो। मेरी ओर भी ध्यान कर लिया करें। भक्तजन जिस प्राणी का ध्यान कर लिया करते हैं, उसका भजन-स्तर बढ़ता रहता है। मैं तो अकेला हूँ। केवल याद करके ही जीवन बिताता रहता हूँ। याद ही मेरा संबल है। मैं तो गृहस्थ का कीट हूँ, कहीं आ-जा नहीं सकता। बुढ़ापे ने घेर रखा था। चलना-फिरना असंभव है। आप सबका मुझे सहारा है। आप मठ की सेवा में तल्लीन रहते हैं। गृहस्थ में भी कई अड़चनें आती रहती हैं, परंतु फिर भी कोई परवाह न कर, मठ में आकर भजन-कीर्तन सबसे करवाते रहते हैं। लेखन-सामग्री भी साथ-साथ में करते रहते हैं। मेरी तो तिल मात्र भी सेवा नहीं होती है।

परिवार भी कहीं भेजना चाहता नहीं। बच्चे भी श्री गुरुदेव के आश्रित होने के कारण मैं जबरन करता नहीं, क्योंकि अपराध होने पर भजन गिरने का डर रहता है। वैसे भी भजन एक छाया मात्र, केवल दिखावे का ही होता है। सच्चा भजन तो कहाँ। किसी भक्त का दर्शन मात्र दुर्लभ है। आप दोनों की कृपा मुझ पर होती रहे, बस यही मेरी प्रार्थना है। कभी-कभी मेरी याद कर लें तो ठाकुर जी की कृपा मेरे पर भी होती रहे। श्री राधामाधव जी को मेरा प्रणाम

बोल दिया करें। भक्त द्वारा ही ठाकुर सुनते हैं। भक्त–कृपा से ही ठाकुर सुनते हैं। भक्त कृपा ही ठाकुर कृपा करवा देती है।

आप जिन महात्माओं की सेवा में हाथ बंटा रहे हैं, ये कोई छोटे–मोटे महात्मा नहीं हैं। भगवान् के भेजे हुए पार्षद हैं जिनका नाम श्री गुरुदेव ने सोच समझ कर ही रखा है। जैसा नाम वैसा ही आचरण। साक्षात् वैराग्य मूर्ति हैं। आप इनकी ही सेवा तो कर रहे हैं। आप बड़े भाग्यशाली हो। आपने ऐसे महात्माओं के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर रखा है। मुझ पर भी इनकी अपार कृपा बरसती रहती है। तभी मेरे गोविंद जी की गृहस्थी की पारिवारिक स्थिति सुचारू रूप से चलती रहती है। मैं तो इनके चरणों की रजमात्र हूँ। इनके चरणों की कृपा से मैं आनंद–सिंधु में तैर रहा हूँ।

मैं चाहता हूँ, इनकी आयु बढ़ती रहे। मैं इनके पहले ही चला जाऊँ वरना तो मेरा जीवन दूभर हो जाएगा। इनकी कृपा बहुत सालों से मुझ पर हो रही है। पहले जन्म का ही नाता नजर आता है। मैं इनके बिना रह नहीं सकता।

मेरे गुरुदेव की इन पर साक्षात् कृपा बरसती रहती है। शरीर इनका स्वस्थ है। इनके बराबर वाले महात्मा कई रोगों से ग्रस्त रहते हैं। अब भी जवानों की तरह भागते रहते हैं। मैं तो सात साल छोटा हूँ परंतु चलना दूभर हो गया है। श्रीतीर्थ महाराज जी ने इनको परमहंस की पद्वी दी है। साक्षात् परमहंस की है। जयपुर में जाकर गोविंद–मंदिर में जो स्थिति बनी, उसने मेरे अंदर आनंदसिंधु लहरा दिया। रास्ते में जो उनकी दशा हुई, सराहनीय है। मुझ पर ऐसी कृपा बरसाने हेतु ठाकुर जी से प्रार्थना करें। जिसकी ऐसी दशा बन जाती है, वह तो मेरा पूजनीय है। मैं तो उसके पैर धोकर पीने में कुशलता मानता हूँ। जो भक्ति में बड़ा होता है, वह उम्र में छोटा होने पर भी पूजनीय होता है। मैं वयोवृद्ध हो गया तो क्या हुआ ?

मेरे मन का भाव श्री जी को कृपा कर बता दें। ऐसे पद्य भगवान् के प्रति रचना करने से ठाकुर जी की असीम कृपा होती है।

पद्य बहुत ही सारे–युक्त तथा भावगम्य है जिससे सब लीलाएं स्फुरित हो पड़ती हैं। ऐसी पद्य रचना अवश्य भजन–स्तर बढ़ने में सहायक है।

श्री गुरुदेव का बताया हुआ हरिनाम जपने का साधन

एक बार मैंने श्री गुरुदेव जी से पूछा कि हरिनाम को कैसे जपना चाहिए ? उत्तर मिला कि जिस प्रकार तुम सत्संग या किसी चर्चा को सुनते हो, इसी प्रकार से तुम हरिनाम को सुना करो। सुनने से ही तो कोई बात हृदयगम्य होती है, हृदय में अंकित होती है। फिर हृदय से बुद्धि में आ जाती है। बुद्धि इसका निर्णय करती है। निर्णय होने पर स्थूल शरीर की इन्द्रियों पर आती है। इंद्रियां इसे करना आरंभ कर देती है। इन्द्रियों द्वारा करने पर वह कार्य सफल हो जाता है। अब हरिनाम के ऊपर इसे आजमाइए।

श्री गुरुदेव से हरिनाम कान से सुना, तब हृदय में बैठा। हृदय से बुद्धि में गया। बुद्धि ने निर्णय किया कि हरिनाम करने से दुःख–निवृति व सुख का प्रादुर्भाव होगा। तब जापक माला को हाथ–इन्द्रिय में लेगा। जिह्वा इसे जपना शुरू करेगी। मन इसे पकड़ेगा। कान इसे सुनने की कोशिश करेगा। लेकिन मन ऊबेगा, सुनना नहीं चाहेगा, क्योंकि अभी इसमें आनंद नहीं आएगा। धीरे–धीरे कुछ दिनों में जब आनंद आने लगेगा, तब मन कहीं नहीं जाएगा, नाम में रुचि आ जावेगी।

धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाना। अर्जुन को भगवान् ने अभ्यास के लिए कहा है। मन न लगने से सुकृति होगी। प्रेम नहीं आएगा। सुकृति अगले जन्म में सद्गुरु प्राप्ति करा देगी।

श्री जी का पत्र आया था। उसमें एक पद्य रचना थी। उसमें श्री कृष्ण की बचपन की समस्त लीला वर्णन की थी। भक्तवर ने लिखा

था यदि अनाधिकार चेष्टा की गई हो तो पद्य को फाड़कर फैंक देना। आप उनसे कह देना कि भगवान् के प्रति जो भी लेख लिखा जाता है, वह भगवान् को प्रिय होता है। यदि कोई उसे अनाधिकार चेष्टा मानता है तो वह घोर अपराधी है। इसे लिखने वाला मेरा प्राण–प्रिय है। उसको फड़वाने से तो मैं मायिक हो जाऊँगा। अपराधी बन जाऊँगा। आप उन्हें इस बारे में मेरा मत बता देने की कृपा करें।

माला अलौकिक वस्तु है

श्रील गुरुदेव माला द्वारा जीव का भगवान से नाता जोड़ते हैं। जिस प्रकार विवाह के समय ब्राह्मणदेव पति–पत्नी का गठजोड़ करते हैं अर्थात् पत्नी को उनके पति के सुपुर्द कर देते हैं और वह सारी जिंदगी अपने पति की सेवा में रत रहती है। ठीक उसी प्रकार श्री गुरुदेव माला द्वारा जीव को भगवान् के सुपुर्द कर देते हैं ताकि जीव पूरा जीवन भगवान् की सेवा में, उनके नाम–स्मरण में लगा रहे। श्रील गुरुदेव की अहैतुकी कृपा से जीवात्मा, माया रूपी पीहर (मायके) से भगवत्–चरण रूपी ससुराल में अपना जीवन बिताने के लिये सदा के लिये चली जाती है और भगवत् रूपी पति (परमात्मा) की सेवा में लगी रहती है।

जिस माला का इतना महत्व है, वह कोई साधारण वस्तु नहीं होती। उसे बड़ी सावधानी के साथ रखने और उस पर जप करने संबंधी कुछ बातें सबको ध्यान में रखनी चाहिये। इस बारे में अखिल भारतीय श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी ने कहा है–

"जपमाला" को टांगकर नहीं रखना चाहिये तथा जेब में, विशेष करके निचली जेब में अर्थात् पैंट इत्यादि की जेब में नहीं रखना चाहिये। यात्रा के समय अथवा बाहरी दौरे के कार्यक्रम में, इसे विशेष रूप से गले में लटका कर रखना चाहिये।

माला के संबंध में कुछ जरूरी बातें जो सबको ध्यान रखनी चाहिये, निम्नलिखित हैं :-

1. जब भी हरिनाम करने के लिये, भगवान्–नाम का स्मरण करने के लिये हाथ में माला पकड़ो तो माला को सिर झुका कर प्रणाम करो तथा पुचकार कर प्यार भरा चुंबन देवो क्योंकि माला कोई जड़वस्तु नहीं है। यह एक अलौकिक वस्तु है, भगवान् की प्यारी है। तुलसी के बिना भगवान् कोई भी वस्तु अंगीकार नहीं करते।

2. जब एक माला पूरी हो जावे अर्थात् 108 मनकों (मनियों) पर हरिनाम हो जावे तो माला को फिर से प्रणाम् करे, फिर दूसरी माला शुरू करके 108 मनकों पर हरिनाम करें तो आप देखोगे कि सुमेरू अपने आप ही हरिनाम करने वाले को याद कराने हेतु हाथ में आ जायेगा। सुमेरू को ढूंढना नहीं पड़ेगा। तुलसी माला भक्त के कंठ (गले) का हार होती है। जैसे हम सोने या हीरे के हार को गले में से नहीं निकालते, उसी प्रकार तुलसी माला भी गले में डालकर ही रखना चाहिए।

जब आप माला हाथ में लेकर हरिनाम करते हो तो याद रखो कि किसी भी वैष्णवजन को झुककर प्रणाम नहीं करना। उन्हें सादर हरे कृष्ण, राधाकृष्ण, जय सिया–राम बोलकर प्रणाम् करें। हाथ में माला लेकर झुककर प्रणाम् करने से माला का प्रणाम् हो जाता है जो कि श्रील गुरुदेव की आशीर्वाद की निधि स्वरूप है। भगवान् के सामने श्रीगुरुदेव को प्रणाम् किया जा सकता है। वह भी हाथ से माला को अपने तन से दूर रखकर। भगवान् के सामने, श्रीगुरुदेव को प्रणाम् करना, श्रीगुरुदेव को कष्ट का अनुभव करा देगा। श्री गुरुदेव यह कभी नहीं चाहेंगे कि शिष्य भगवान् के सामने उन्हें झुककर प्रणाम् करें। भगवान् के सामने से हटकर, बगल में होकर प्रणाम् करना श्रेयस्कर होगा अन्यथा श्रीगुरुदेव को प्रणाम् न करने से अपराध हो जायेगा।

3. माला पर हरिनाम करते हुये, किसी वैष्णव या सत्संग के बारे में बातचीत कर सकता है लेकिन संसार के बारे में बातचीत करने से अपराध बन जायेगा। यदि कोई वैष्णव नहीं है तो उसे "जय श्रीकृष्ण" बोलना चाहिये और उससे संसारी वार्तालाप न करना ही उचित होगा।

4. धाम में परिक्रमा करते हुये, यदि पेशाब आ जावे तो माला को पूरी करके या अधूरी छोड़कर, माला को शुद्ध स्थान पर रखकर पेशाब करना युक्तिसंगत है। जहां तक संभव हो तो अपने पास एक छोटी सी शीशी या बोतल में पानी रखना चाहिये। पेशाब करने के बाद हाथ धोकर, मुख को धोकर, फिर जपमाला को हाथ में लेकर जप करना ही ठीक है। यदि माला अधूरी रह गई थी तो उसे गिनती में नही लेना चाहिये। माला पर शुरू से जप करना चाहिये। अधूरी की गई माला की भी अदृश्य रूप से जप में गिनती हो जाती है।

5. भगवत्–प्रसाद पाते समय माला अपने पास इस तरह रखे कि झूठा (जूठा) हाथ स्पर्श न हो सके। कई बार ऐसी जगह भी प्रसाद पाना पड़ता है जहां माला को अपने से दूर रखना परेशानी का कारण बन सकता है जैसे आपने माला कहीं रख दी और बंदर उसे उठा कर ले गया या फिर जल्दी–जल्दी में माला वहीं भूल गये। इसलिये माला को बड़ी सावधानीपूर्वक, संभाल कर रखना चाहिये।

6. जब माला की झोली (beadbag) मैली / गंदी हो जावे तो उसे भगवत्–पर्व के दिन धोना / युक्तिसंगत है। माला झोली को शुद्ध स्थान पर ही सुखाना चाहिये तथा बंदर इत्यादि से बचाकर रखना चाहिये। माला यदि खो जाती है तो जघन्य अपराध बन जाता है। कई लोग जपमाला को कहीं भी जैसे खाने के मेज पर, चारपाई पर, बिस्तर या फिर सोफे पर रख देते हैं, ऐसा करने से माला का अपमान होता है। जिस प्रकार आप अपनी कीमती वस्तुओं (रुपया, पैसा, गहने इत्यादि) को बड़ी सावधानी से संभाल कर एवं सुरक्षित रखते हैं, उसी प्रकार माला को भी संभाल कर

रखना चाहिये। श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला खो जाने पर दुबारा प्राप्त करना असंभव होगा। माला खो जाने से श्री गुरुदेव से नाता टूट जाता है जो भजन में बहुत बड़ी बाधा बन जायेगा। जैसे सबको अपनी जान (जिंदगी) प्यारी होती है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला भी हमें अपनी जी–जान से अधिक प्यारी होनी चाहिये तभी भजन में तीव्रता आवेगी वरना भजन में शिथिलता आ जावेगी। भजन में मन नहीं लगेगा।

7. रात को सोते समय माला को प्रणाम् करके सोना चाहिये। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, दूर से ही माला को प्रणाम करने से भक्ति में तीव्रता आ जावेगी। प्रणाम करने के बाद, पेशाब से निवृत होकर, हाथ–पैर और मुंह धोकर, माला को फिर से प्रणाम करके, माला हाथ में लेकर जप शुरू करना चाहिये। ऐसा करने से हरिनाम में मन लगने लगेगा। किसी अंजान भक्त को माला की महिमा बताने से भी हरिनाम में मन लगने लग जावेगा। यही तो सच्चा सत्संग है जिससे भक्ति का आविर्भाव होता है, भक्ति प्रकट होती है। माला के बारे में जो कुछ भी बताया गया है, जापक इसे झंझट न समझें वरना हरिनाम में मन नहीं लगेगा। संसार की बातों में तो हमें झंझट महसूस नहीं होता परंतु जहां हमारे भले की बात हो, जिसमें हमारा कल्याण हो, यदि ऐसी बातों को कोई झंझट समझता है तो यह उसकी मूर्खता होगी, अज्ञान होगा।

8. जिस प्रकार जीवात्मा अपने मन को सदैव साथ रखती है यद्यपि वह जानती है कि उसका यह मन भी पराया है, भगवान् का है, उसी प्रकार भक्त भी माला को यही सोचकर सदैव अपने साथ रखें कि यह मेरे श्रीगुरुदेव की दी हुई है, यह भी पराई है। श्री गुरुदेव द्वारा दी हुई यह माला ही तुम्हें दुःखों से छुड़ाकर सुख के मार्ग पर ले जावेगी। अतः इसे अपने प्राणों से भी प्यारी समझकर संभाल कर रखना होगा।

9. वास्तव में श्रीगुरुदेव ने हम पर अपार कृपा करके, हमें यह माला दी है, यह माया को परास्त करके, जीत लेने का अमोघ

हथियार है जो श्रीगुरुदेव ने हमें सौंपा है। यदि इस हथियार को अपने से दूर रखोगे तो माया कभी भी आक्रमण कर देगी। माया तो हमारी घोर शत्रु है। शत्रु तो मौका मिलते ही आक्रमण कर देगा पर यदि हमारे पास, अपनी सुरक्षा में, श्रीगुरुदेव द्वारा दी हुई माला है तो माया हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। श्रीगुरुदेव ने माला के रूप में, हमें जो यह अमोघ हथियार दिया है, उसमें हरिनाम की अतुलित दिव्यशक्ति समाहित है। अखिल लोक ब्रह्मांडों में कोई भी इस दिव्य शक्ति को परास्त नहीं कर सकता। यहां तक कि ब्रह्मांडों को सृजन करने वाले भगवान् भी इसकी शक्ति के आगे नतमस्तक हो जाते हैं अर्थात् आत्म–समर्पण कर देते हैं। श्री गुरुदेव द्वारा दी गई इस माला पर, जब साधक संख्यापूर्वक, कान से सुनकर, उच्चारणपूर्वक हरिनाम करता है तो उसके हृदय में विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है, फिर भगवान् बेबस हो जाते हैं और उन्हें आना ही पड़ता है।

10. जिसको यह अमोघ हथियार प्राप्त हो जाता है, वह बहुत भाग्यशाली होता है। अखिलकोटि ब्रह्माण्डों में भगवान् भी जिसके आगे नतमस्तक हो जायें, उस माला की महिमा वर्णनातीत है। भगवान् मां यशोदा के डर से थर–थर कांपते हैं, रोते हैं, यहां तक कि डर के मारे उन्होंने पेशाब भी कर दिया। यह सब उस लीलाधर की लीला है। अपने भक्त के लिये वे क्या नहीं कर सकते! जो अहीरों की छोहरियों को छछिया भर छाछ पर नाच सकता है, उसे जब उसका प्यारा भक्त तुलसी (जो भगवान् को अतिशय प्यारी है) माला के मनकों पर नाम ले लेकर प्रेम से पुकारेगा, तो खिंचा हुआ चला नहीं आयेगा क्या ? उसे आना ही पड़ता है–यह उसकी प्रतिज्ञा है।

इस संसार में अनगिनत जीव हैं। उनमें भी अरबों मनुष्य हैं। उन असंख्य मनुष्यों में कितने ऐसे भाग्यशाली जीव हैं जिनके पास श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त यह अमोघ हथियार है। एक ऐसा हथियार

जो माया को परास्त करके इसी जन्म में जन्म–मरण के आवागमन से छुड़ा कर भगवान् के धाम–गोलोकधाम में ले जायेगा।

आजकल लोग माला को गले में डालकर रखने में शर्म महसूस करते हैं, उसे पर्स में या पैंट की जेब में रखते हैं, यह अपराध है यही एक कारण है कि हरिनाम साधकों का भजन में मन नहीं लगता। जब नाम रूपी नैया में साधक की श्रद्धा ही नहीं है, विश्वास ही नहीं है तो साधक उस नैया में बैठकर भवसागर से पार कैसे हो सकेगा ? बिना श्रद्धा और विश्वास के तो मंझधार में ही गोते खाता रहेगा। जहां श्री गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी माला का सम्मान नहीं होता, वहां हरिनाम में रुचि हो ही नहीं सकती। हरिनाम में रुचि हुए बिना कुछ भी नहीं होगा।

परमाराध्य, पतितपावन, परमकरुणामय ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज, जो इस समय अखिल भारतीय चैतन्य गौड़ीय मठ के प्रधानाचार्य हैं, को मैंने हमेशा ही देखा है कि उनकी जपमाला हमेशा उनके गले में ही होती है। जपमाला की वास्तविक महिमा तो वही जानते हैं। हमें भी उनसे यह शिक्षा लेनी चाहिये।

प्रेमीभक्तो ! भगवान् के पास पहुंचने में अनगिनत बाधाएं हैं जो हमारे रास्ते में आती हैं। हम मठ मंदिर में जाते हैं। वहां भी केवल जड़ दर्शन करते हैं। भावदर्शन तो किसी विरले को ही होता है। इसी प्रकार हम तीर्थयात्रा या धाम–परिक्रमा करने जाते हैं पर बिना भाव से, केवल मात्र परिश्रम करके वापस आ जाते हैं। तीर्थ–यात्रा, जड़–भ्रमण बन कर रह जाता है और हम तीर्थ अपराध या धाम–अपराध लेकर घर वापस आ जाते हैं। बिना भावदर्शन के सब कुछ व्यर्थ है, मन का भ्रम हैं यह मैं नहीं, श्रील नरोत्तम दास महाशय ने कहा है–

तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर–भ्रम,
सर्वसिद्धि गोविंद–चरण।

सुदृढ़ विश्वास करि, मद–मात्सर्य परिहरि,
सदा कर अनन्य–भजन।
कृष्ण भक्त अंग हेरि, कृष्ण भक्त संग करि,
श्रद्धान्वित श्रवण–कीर्तन।
अर्चन, स्मरण, ध्यान, नवभक्ति महाज्ञान
एई भक्ति परम कारण।।

(श्री प्रेमभक्ति चन्द्रिका 17.18)

कई लोग ऐसा समझते हैं कि तीर्थ यात्रा करने से पुण्य होता है और उससे मनोरथ सिद्ध होते हैं किन्तु तीर्थयात्रा एकमात्र परिश्रम ही है। यह केवल मन का भ्रम है कि तीर्थयात्रा से पुण्य होता है, वास्तव में श्रीगोविंद के चरणों की भक्ति ही सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली है। अतः दृढ़–विश्वासपूर्वक श्री गोविंद का अनन्य भजन करना चाहिये, किसी भी दूसरे साधन द्वारा मनोरथों की पूर्ति की आशा नहीं रखनी चाहिये। अज्ञानमय अहंकार तथा दूसरों के उत्कर्ष को सहन न करने की प्रवृति का त्याग कर देना चाहिये। श्रीकृष्ण के भक्तों का दर्शन करना, उनका ही संग करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण नाम–लीलागुणों को सुनना एवं उनका कीर्तन करना चाहिये। श्रीकृष्ण की पूजा, उनका स्मरण तथा ध्यान, यही वैष्णवों के लिये आचरणीय है। यही नवविधा–भक्ति का महत् स्वरूप है। इसी नवविधा भक्ति का आचरण ही प्रेम–भक्ति का प्रधान कारण है।

हे हरि! मैं अगणित अपराधों से ग्रस्त हूँ, भयंकर संसार रूपी समुद्र में गोते खा रहा हूँ तथा बिल्कुल ही आश्रयहीन हूँ। अतः आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ। आप अपने अनेक गुणों में से केवल एक गुण–'कृपा' के द्वारा मुझे अपना बना लें अर्थात् मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार कर लें।

15

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 31.12.2010

अति महत्वपूर्ण पत्र
सबसे सुगम भगवत्-प्राप्ति

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा भगवत्-प्रेम पाने की प्रार्थना। इस इतबार के आयोजन में, श्री गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज स्वयं बोलकर सभी साधकों को सावधान करना चाहते हैं। नये साल जनवरी, 2011 से सभी भक्त / साधक यह प्रण करें कि-"मैं इस वर्ष में किसी में दोष दर्शन नहीं करूंगा तथा प्रतिदिन 8 या16 माला अधिक जप करूंगा।" यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। आज मेरे गुरुदेव आप सबको स्वयं रोषवृति में बोलेंगे। जैसा एक मां अपने बच्चे के थप्पड़ लगाती है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भी सबकी मां ही है। वे सदैव हमारा मंगल चाहते हैं। अब मेरे श्रीगुरुदेव की वाणी श्रवण करें।

मैं भक्तिदयित माधव सभी साधकगणों को सतर्क व सावधान कर रहा हूं कि जो भी मैंने इतवार का आयोजन केवल नाम महिमा का आरंभ किया है, यह मेरे ठाकुर जी द्वारा आदेश प्राप्त करके ही किया है। जो भी साधक इसमें शंका तथा अविश्वास करेगा, वह कलि महाराज से घोर दंड प्राप्त करेगा। भगवत्-शक्ति माया उसे पैरों नीचे कुचलती रहेगी, जिस साधक की सुकृति, संत अपराध से कमजोर रहेगी, वही इस आयोजन को काल्पनिक समझेगा व मानेगा।

अरे मन्द भाग्यशालियो! मैंने राजस्थान में केवल मेरे प्रिय शिष्य अनिरुद्धदास को इस नाम महिमा के लिये चुनकर आदेश

दिया है कि तुम तीन लाख हरिनाम नित्य करो तथा एक लाख हरिनाम अधिक से अधिक साधकगणों को करावो।

मेरे शिष्य अनिरुद्धदास ने आपत्ति की कि मैं अल्पज्ञ यह सब कैसे कर सकता हूं। आपके आदेश का पालन करना, मेरी सामर्थ्य के बाहर है। तब मैंने कहा कि तुमको इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें पीछे से सामर्थ्य देता रहूंगा। तुम तीन लाख हरिनाम करना आरंभ करो। फिर अनिरुद्धदास ने आपत्ति खड़ी कर दी कि मैं हर प्रकार से कमजोर तथा शक्तिहीन हूँ। मेरा आदर–सत्कार होगा तो मुझे अहंकार आना सहज है, तो मेरा पतन होना भी सहज ही होगा। तब मैंने बोला कि अनिरुद्ध, अहंकार तेरे को छूएगा भी नहीं। मैं हर प्रकार से तुम्हारी रक्षा करता रहूंगा। तुम्हें क्या चिंता है तब मैं तुम्हारे पीछे खड़ा हूँ। तुम बेफिक्र होकर आयोजन शुरू करो। जो साधक सुकृतिवान होगा वह इस आयोजन में 80 प्रतिशत (अस्सी प्रतिशत) शामिल होता रहेगा। जिसकी सुकृति कमजोर होती होगी, वह इस आयोजन को बीच में ही छोड़ देगा। जो भगवान् के भक्त का अपराध करता है उसकी सुकृति जड़ से समाप्त हो जाती है। यदि कोई अदोषदर्शी बनकर अपने साधन में, हरिनाम में निरंतर संलग्न होता रहेगा तो उसका मार्ग निष्कंटक व साफ होता रहेगा और वह एक दिन पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था को उपलब्ध कर लेगा।

जो साधक अनिरुद्धदास में दोषारोपण करेगा उसकी भगवद्–भक्ति समूल नष्ट हो जाएगी तथा उसकी कलहकारिणी स्थिति आ जायेगी। मैं सभी साधकगणों को सावधान कर रहा हूँ। ध्यान देकर सुनो। जिसको हनुमान जी ने दर्शन दिया। जिसको भगवान् ने हृदय रूप में आकर स्वयं रबड़ी खिलाई, क्या वह साधारण मानव है ? जो कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा को जहर समझता है, क्या वह साधारण मानव है ? जो रात को एक बजे उठकर हरिनाम करता हुआ प्रातः काल आठ बजे तक लगातार (सात घंटे) एक ही आसन पर बैठ सकता है जिसकी उम्र 81 वर्ष की हो चुकी है और जो

3 लाख हरिनाम से अमृत उपलब्ध करके निरोगी अवस्था को उपलब्ध कर रहा है, क्या वह साधारण मानव है ? क्या अठारह घंटे में कोई तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करना सहज नहीं है। जिसके कारण आज कितने नर–नारी नित्यप्रति एक लाख हरिनाम कर रहे हैं। जिसने सभी साधकों का मन बदलकर अपने अधीन कर लिया, क्या वह साधारण मानव है ?

उसके दोनों हाथों में भगवत्–आयुधों के छः चिह्न हैं–शंख, सुदर्शन चक्र, गदा व वैजयन्ती माला इत्यादि हैं और जो दोनों हाथों में साफ दिखाई देते हैं। क्या भगवत्–आयुधों के चिह्न अनिरुद्ध ने स्वयं बनाये हैं। श्रीमद्भागवतपुराण में लिखा है कि जिसके हाथ या पैर में भगवान् के आयुधों का एक भी चिह्न हो, वह भगवान् का भेजा हुआ मानव पृथ्वी पर आता है। जिसके द्वारा अनेक साधकगणों का गोलोकधाम गमन होगा यदि भक्त अपराध न हो तो कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं। अनिरुद्धदास को, जो टाउन प्लानर तथा इंजीनियर की पोस्ट पर था तथा बच्चों को पढ़ाने में रत था क्या इसे सत्संग का मौका मिला होगा ? उस समय न तो कोई सड़क थी, न कहीं नदियों पर पुल थे। काम की भी भरमार थी। ऐसे में सत्संग कहां मिला होगा! वह तो उम्र भर सत्संग से वंचित ही रहा है।

जिसने सन् 1954 में, किसी के बताये बिना ही, कृष्ण मंत्र का अठारह लाख जप छः महीने में पूरा करके पुरश्चरण किया और वाक्सिद्धि उपलब्ध की और उसका लाभ साधारण जनता को होता रहा। जब मैंने मना किया तब इसने हाथ देखना तथा अपनी वाक्सिद्धि के लाभ को देना बंद कर दिया। सन् 1952 में इसकी पूर्ण दीक्षा हुई थी और सन् 1954 में ही इसने पुरश्चरण भी कर लिया था। क्या वह साधारण मानव है ?

मैं बोल रहा हूँ जिसको इससे लाभ लेना हो, ले लो। ऐसा अवसर फिर नहीं मिल सकेगा। साधकों के उद्धार के लिये वह अपना

समय लगा रहा है। यह मानुष जन्म फिर नहीं मिलेगा। इसी जन्म में भक्ति प्राप्त कर भगवान् से मिल लो।

जो मेरे इस प्रवचन को झूठा समझेगा वह गर्त में चला जायेगा तथा भक्ति से हाथ धो बैठेगा तथा दुःख व कष्ट में पड़ा हुआ जीवन काटता रहेगा। अब भी आंखें खोलकर मार्ग पर चलना ही सर्वोत्तम होगा।

दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को नहीं पहचाना तो परिवार सहित नष्ट हो गया। श्रीचैतन्य महाप्रभु को मायापुर धाम में कईयों ने नहीं पहचाना तो नरकगामी हो गये। प्रहलाद् जी को उसके पिता ने नहीं पहचाना तो मृत्यु की गोद में चला गया। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। सुकृति के अभाव में कोई भी महान् पुरुषों को नहीं पहचान सकता।

भगवत्–कृपा के अभाव में कोई किसी को नहीं पहचान सकता। बड़े–बड़े योगी, तपस्वी भी भक्त अपराध से नरकगामी हो जाते हैं। पिछले गुरुवर्ग को भगवत्–दर्शन हुये हैं। तुम सबको भी हो सकते हैं। भगवत्–प्राप्ति कोई मुश्किल नहीं है। बहुत सहज है यदि मन काबू में हो तो कुछ भी करना–धरना नहीं होता। भगवत्–मार्ग पर ध्यानपूर्वक थोड़ा अग्रसर होता रहे तो भगवत्–प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। ऐसा अवसर केवल कलियुग में ही हाथ में आता है। सत्युग, त्रेता तथा द्वापर में भगवत्–प्राप्ति कठिनाई से होती है।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। सभी साधकगण क्या अनिरुद्धदास का आचरण नहीं देख रहे हो। फिर भी श्रद्धा और विश्वास नहीं होता तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है।

मैंने अनिरुद्धदास को प्रेरित कर लगभग 500 पत्र रातों में लिखवाये हैं। क्या कोई साधारण व्यक्ति ऐसे प्रभावशाली पत्र लिख सकता है और फिर एक ही विषय पर, श्री हरिनाम की महिमा पर इतने पत्र लिखने में कोई भी सक्षम नहीं हो सकता। ये सब मेरी प्रेरणा से ही हुआ है। अब भी आंखें खोलो। अब भी अमृत का प्याला पी सकते हो। वरना बर्बादी तो प्रत्यक्ष सामने है ही।

मैं बोल रहा हूँ, ध्यान से सुना। भगवान् तो हर समय प्राप्त हैं ही परंतु हमारी आंखें मिच रहीं (बंद) हैं, हमें दिखाई नहीं देता। इस संसार में भगवान् से नजदीक कोई नहीं है। केवल मन की आंखों से अन्तःकरण में नजर डालो। भगवान् अपने पुत्र को गोद में लेने को हाथ फैला रहे हैं और बोल रहे हैं कि कहां गुम हो गया। अब तो मेरी गोद में आ जा। मेरी गोद से बिछुड़ गया इसलिये दुःखी है। अब सुनो, भगवान् बोल रहे हैंः–

"मेरी गोद में आने के साधन व उपाय बता रहा हूं। श्रीगुरुदेव के मुख से, मैं ही बोलता हूँ। श्रीगुरुदेव के मुखारविंद से जो शब्द निकलता है, उसे अपना लो। मैं गुरुदेव के मुख से ही खाता हूँ तथा गुरुदेव के पदारविन्द से आकर तुम्हें अपनाता हूँ और गोद में चढ़ाकर प्यार भरा चुंबन करता हूँ।

श्री गुरु पदनख मणिगण जोती।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती
उघरहिं विमल विलोचन हियके
मिटहि दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित निमानक
गुप्त प्रगट जो जेहि खानिक।

मैं बोल रहा हूँ। ध्यान से सुनो। **"जो साधक हरिनाम करते हुए श्रीगुरुदेव के चरणों के नाखूनों की जगमगाती हुई आभा को देखता रहेगा तो उसकी नजर दिव्य हो जायेगी। उसके हृदय के ज्ञान के नेत्र खुल जायेंगे और माया के दुःख कष्ट खत्म हो जायेंगे, तथा मेरे मुख से निकले हुये धर्मशास्त्र, बिना पढ़े ही हृदय में प्रगट हो जायेंगे।"**

अब मैं माधव चेता रहा हूँ। जिस प्रकार श्रीगौरकिशोर दास बाबा जी अनपढ़ थे परंतु हरिनाम स्मरण से सभी शास्त्र उनके हृदय में प्रगट हो गये थे। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। अपने श्रीगुरुदेव के चरणों के नखों का ध्यान करते हुये, कम से कम आठ माला, कान से सुनकर, करना चाहिये तो उक्त स्थिति प्रगट हो जायेगी।

देखो ! बचपन, जवानी, बुढ़ापा तथा मौत तो अटल सिद्धांत में आते हैं। इनका तो Fundamental Rule है–यह बदला नहीं जा सकता।

यदि कोई बुरा काम करता है तो कौन कहता है कि मत करो। यह मन ही कहता है क्योंकि मन स्वयं भगवान् है और आत्मा भी शरीर में भगवान् है। शरीर में अन्य सभी अवयव जड़ हैं। फिर भी इंसान बुरा काम कर बैठता है। यह कौन करवाता है ? यह इसका स्वभाव ही करा देता है। जानते हुए भी कर बैठता है। पिछले जन्मों के संस्कार मरते नहीं हैं, जाग्रत रहते हैं। यही प्रेरित कर बुरा कर्म करा बैठते हैं।

बुरा काम करना कैसे बंद हो ? यह किसी महापुरुष की संगत से ही मूल सहित छूट जाता है। उसकी तरंगें दुर्गुणों को जलाती रहती है। यह संग मानसिक भी हो सकता है तथा सामने स्थूल भी हो सकता है।

संसार की सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं फिर भी इनको महत्व देते हो। स्वयं कभी नष्ट नहीं होता। यदि स्वयं को महत्व देवोगे तो दुःख, कष्ट दिखाई ही नहीं देगा। यही तो ज्ञान है और सभी अज्ञान की श्रेणी में आता है। निर्गुणवृति वाला, तुरीय अवस्था वाला तथा परमहंस अवस्था वाला, संसारी वस्तुओं को महत्व नहीं देता। वह स्वयं को महत्व देता है। अतः परमानंद भाव की उपलब्धि करता है अर्थात् वह भगवत्–प्राप्ति कर लेता है। स्वयं कौन है ? वह है भगवान् का पुत्र। जैसे भगवान् सभी जड़–चेतन के मां–बाप हैं। यदि मानव इनको पुत्र के समान समझे तो वह किसी भी प्राणी, अप्राणी को नुकसान नहीं पहुंचा सकता। वह इनकी रक्षा, पालन तथा भरण पोषण करेगा क्योंकि ज्ञानी मानव समझेगा कि इन सब में मेरा प्यारा भगवान् विराजित है। इनको परेशान करना मेरे भगवान् को परेशान करना ही है। तब मानव भगवान् को पा लेगा। भगवान् की प्राप्ति में उत्कट अभिलाषा ही काम आती है।

जिस दिन किसी को संसार का संबंध नहीं सुहायेगा तो क्या वह भगवान् के बिना रह सकेगा? उसी दिन भगवत्–प्राप्ति का योग बन जायेगा। मन में यह बैठ जाये कि संसार असत्य है, भगवत्–प्राप्ति करना ही सत्य है, तब देर नहीं लगेगी।

जब भक्त के हृदय में उच्च सीमा की विरहाग्नि जल उठेगी तथा समझने लगेगा कि अब भगवान् प्रकट होने वाले हैं, मैं भगवान् बिना एक पल भी नहीं रह सकता। प्राणवायु रुकने की स्थिति में आ जाती है तब भगवान् को प्रकट होना ही पड़ता है। तब भगवान् रुक नहीं सकते। ध्रुव को यही स्थिति प्राप्त हो गई थी। तब संसार में सभी का सांस रुक गया था। तब भगवान् को ध्रुव के पास आना ही पड़ा। ध्रुव की रुकी हुई प्राणवायु को खोला क्योंकि ध्रुव की सांस रुकने से प्रलय जैसी स्थिति बन गई थी।

यह स्थिति जब ही आती है जब संसार का लगाव मूलसहित नष्ट हो जाता है।

मैं हरिनाम की जाप–विधि बता रहा हूँ। वाचक जप वह होता है जब जीभ से उच्चारण होकर, दूसरे पास वाले को सुने तथा स्वयं का कान सुनता रहे। उपांसु जप वह होता है जो कंठ से उच्चारण हो, जिसमें होठों की हरकत हो, जिसे स्वयं के कान ही सुने पर पास बैठा व्यक्ति न सुन सके। यह कानाफूसी के नाम से भी पुकारा जाता है। मानसिक जप वह होता है जिसको मन ही जपे, दूसरा न सुने पर अपने अंदर का कान सुने। ऐसे महसूस हो कि कोई मेरे अंदर बैठा नाम जप कर रहा है।

आश्चर्य तो यह है कि मानव के सामने प्रतिदिन संसार में कोई न कोई मर कर शमशान में जाता ही रहता है फिर भी मानव यही नहीं समझता कि एक दिन उसे भी शमशान में आना ही पड़ेगा। यही तो आश्चर्य की बात है। युधिष्ठर ने यक्ष को यही जवाब दिया था तभी तो पांडव यक्ष के चुंगल से छूट पाये। महाभारत शास्त्र में लेख है।

ज्ञान द्वारा देखा जाए तो मानव या कोई भी नित्य ही मर रहा है। स्वयं ही मौत के पास जा रहा है। मां कहती है, बहिन, मेरा बच्चा अब तो पांच साल का हो गया तो मां राजी होती है। मां को मालूम नहीं कि उसके बेटे की उम्र प्रतिदिन घटती जा रही है। वह मौत के पास जा रहा है। यह एक साधारण सी बात है।

जीने की इच्छा, करने की इच्छा तथा पाने की इच्छा–ये तीनों ही जितनी प्रबल होंगी उतनी ही संसार में फंसावट का काम करेंगी तथा दुःखी करती रहेंगी क्योंकि इनमें स्थिरता नहीं है। ये सब नष्ट होने वाली हैं। जब उक्त इच्छाएं समाप्त हो जाएंगी तो मानव निर्भय होकर आनंद में अपना जीवन बसर करेगा तथा मन को भगवत्–भजन में सरलता व सुगमता से लगा पायेगा। उक्त इच्छाओं के कारण ही मन डांवाडोल रहता है। कहावत है–"जब आवे संतोष धन, तो सब धन धूरि समान।" यही तो ज्ञान है और सब अज्ञान है।

अर्जुन ने जब भी कोई काम करने की इच्छा की तभी श्रीकृष्ण ने उसे महात्माओं के पास ले जाकर उसकी इच्छाओं का दमन कर दिया क्योंकि भगवान् समझते थे कि ये इच्छाएं ही मन को दुःखी करती रहेंगी। केवल भगवत्–प्राप्ति की इच्छा ही सुखदायक होती है अन्य सभी इच्छाएं तो दुःखों को बुलाने की होती हैं।

वैराग्य लाने के तो बहुत दृष्टांत हैं। जितना भी बोला जाये, सब थोड़ा है। जो बोला है, इसी को हृदयंगम करे तो लाभ ही लाभ है।

यहीं पर श्रीगुरुदेव अपने वक्तव्य को विश्राम दे रहे हैं।

देखो ध्यान देकर सुनो। शास्त्र में लिखा है कि हाथ से ताली बजाना, कीर्तन में जोर–जोर से ताली बजाना स्वास्थ्यवर्धक है। इसका संबंध दिल से है। इससे खून शरीर में आता–जाता है। उसका मार्ग खुलता रहता है और हार्ट फेल नहीं होता, कीर्तन में नींद नहीं आती और मन भी स्थिर रहता है। सब तरह से लाभ ही लाभ है। इसलिये कीर्तन में दोनों हाथों से ताली बजाना चाहिये।

यहीं पर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं।

सभी को मेरी नये साल की शुभकामनायें तथा सबको मेरा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो।

हरि बोल ! हरि बोल !

स्निग्ध-शिष्य के हृदय में ही गुरु-तत्त्व प्रकाशित होता है, वह ही गुरुजी के हृदय की बात को जान सकता है।



16

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 10.12.2010

अशुभ विचारों को दूर करने का तरीका

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

कोई भी शुभ या अशुभ विचार सबसे पहले चित्त में स्फुरित होता है। इस मानव शरीर में पांच कोष होते हैं। पहला अन्नकोष जो अन्न पर निर्भर करता है, दूसरा प्राणमय कोष, जो प्राणवायु पर निर्भर करता है। तीसरा मनोमय कोष जो मन के संकल्प-विकल्प पर निर्भर रहता है। चौथा विज्ञान कोष जो बुद्धि की सोच पर निर्भर रहता है और पांचवां आनंदमय कोष जो चित्त के चिंतन पर निर्भर रहता है। यही आत्मा का वासस्थान है।

इसी प्रकार शरीर भी तीन प्रकार के होते हैं। पहला-स्थूल शरीर जो हड्डी मांस, रुधिरादि से निर्मित है। दूसरा-सूक्ष्म शरीर जो अदृश्य रहता है। यह इन्द्रियों का शरीर है और तीसरा-कारण शरीर जो स्वभाव का शरीर होता है। कारण शरीर ही मानव के जन्म-मरण का कारण है। जिस मानव की अशुभ कर्म करने में रुचि होती है, वह आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है।

जब मन अशुभ कर्म करने पर अग्रसर (उतारू) हो जाता है तो सबसे पहले चित्त में स्फुरणा (हरकत, हलचल) उदय होगी। इस स्फुरणा को यदि यहीं पर दबाया नहीं गया, खत्म नहीं किया तो यह मन पर हावी हो जायेगी। जब मन इसे पकड़ कर काबू कर लेगा तो यह विचार में पलट कर इन्द्री पर हावी हो जायेगी। इन्द्री पर आने पर मानव काबू से बाहर हो जायेगा। फिर समझाने से भी नहीं समझेगा। फिर उसे इस स्फुरणा को प्रेक्टीकल (व्यावहारिक)

रूप में करना ही पड़ेगा। जब काम पूरा हो जायेगा तो बाद में पछतायेगा और सोचेगा कि मुझे ऐसा घृणित कर्म नहीं करना चाहिये था।

अब पछताये होत क्या, जब चिड़ियां चुग गई खेत।

अब विचार करने की बात यह है कि इस बुरे काम को रोका कैसे जाये। इस समस्या का हल यह है कि जब भी कोई गंदी भावना, अशुभ–विचार मन में आवे, स्फुरणा चित्त में हिलोरें मारे तो उस हिलोर को वहीं पर दबा दो। अब इस विचार को दबाएं कैसे ? इसका उत्तर यह है कि उसी वक्त उस स्थान को छोड़ दो और जाकर ठंडा पानी पीओ। किसी बुजुर्ग आदमी के पास जाकर बैठ जाओ और उससे कोई बातचीत करनी शुरू कर दो। वार्तालाप शुरू होते ही चित्त की स्फुरणा वहीं मर जायेगी। दूसरा उपाय यह है कि मन माफिक (जो मन को अच्छा लगे) किसी दूसरे काम में जुट जाओ और उस स्फुरणा की ओर ध्यान ही मत दो। पर ध्यान रखना कि इसमें मन की दृढ़ता बहुत जरूरी है। यदि मन कमजोर हुआ तो सारा काम मिट्टी में मिल जायेगा। यह होगा बुद्धि द्वारा गंभीरता से विचार करने पर ही अन्यथा पागल (बेकाबू) मन फिसल जायेगा। इससे बचने का भी एक तरीका है–भगवान् का नाम जोर–जोर से उच्चारण करो। नाम से सहायता मांगो। नाम अवश्य ही इसमें सहायता करेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसे कोई भी आजमा कर देख सकता है।

चिंतन का उद्गम स्थान है चित्त जिसको आनंदमय कोष के नाम से पुकारा जाता है। इसमें ही परमात्मा के रहने का स्थान है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार से यह स्थान निर्मित है। साधक को अभ्यास के साथ इसे ही नियंत्रण में करना चाहिये। इसको काबू में करने से भगवत्–दर्शन की शक्ति उदय हो जाती है। इस कोष में ही शुभ–अशुभ चिंतन आरंभ होकर मन के पास चला जाता है। फिर मन संकल्प–विकल्प द्वारा चिंतन का उद्बोधन करके इसे इन्द्री पर पहुंचा देता है। फिर साधक का चिंतन, स्थूल रूप में आने

पर नियंत्रण के बाहर हो जाता है। अतः अशुभ चिंतन को चित्त में ही समाप्त कर देना होगा। पर शुभ चिंतन को रोकना नहीं, इससे भक्तिमार्ग निष्कंटक खुलता हुआ चला जाता है।

अशुभ चिंतन का उद्गम स्थान है पिछले जन्मों के कुसंस्कार जो चित्त में आकर साधक को कर्म करने को बाध्य करते रहते हैं। यदि साधक को सच्चा सत्संग प्राप्त हो जावे तो पिछले अशुभ संस्कार की जड़ ही समाप्त हो जाती है। सच्चा सत्संग एक क्षण में ही कुसंस्कारों की जड़ काट देता है पर ऐसा सत्संग मिलेगा कहाँ ? ऐसा सच्चा सत्संग मिलेगा आचरणशील साधु के पास। जिसकी करनी और कथनी में कोई अंतर नहीं। जो अंदर है, वही बाहर है। जो कुछ उपदेश देता है, उस पर स्वयं भी आचरण करता है। ऐसा साधु ही सच्चा सत्संग दे सकता है। जिस साधु का स्वयं का भजन का आचरण नहीं वह किसी भी साधक का मन कभी नहीं बदल सकता। जो स्वयं ही कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा के चक्करों में फंसा हुआ है, वह किसी का उद्धार क्या करेगा ! पर जो साधु–कंचन (रुपया, पैसा) कामिनी (स्त्री–संग) तथा प्रतिष्ठा (प्रसिद्धि) से दूर है, वही भक्तिमार्ग पर बेखटके अग्रसर हो सकता है और दूसरों को भी प्रेम मार्ग पर ले जा सकता है अन्यथा सब दिखावा है, बनावटीपन है, कपट है। ऐसा साधु भगवान् से कोसों दूर है।

इस कलिकाल में भक्ति का प्रेम मार्ग केवल मात्र हरिनाम की शरण होने पर ही मिलना संभव है। किसी दूसरे साधन से नहीं मिलेगा। हरिनाम भी कान से सुनना पड़ेगा तभी शरणागति होगी। कान द्वारा श्रवण न करने से भगवत्–प्रेम बहुत दूर की वस्तु होगी। जब संसार का कोई भी काम बिना सुने नहीं होता तो भगवान् की प्राप्ति तो बहुत दूर की बात है। इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी ने संकीर्तन करने का प्रचार किया है। सबके साथ मिलकर भगवान् के नामों का उच्चारण करना कीर्तन कहलाता है। फल दोनों का समान ही है।

कलियुग में किसी को भी भगवान् का प्रत्यक्ष तथा असली दर्शन नहीं होता। साधक उस तेज को सहन ही नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् अपने भक्तों को छद्म रूप (भेष बदल कर) दर्शन देने स्वयं आते हैं। मुझे भगवान ने छद्म दर्शन दिये हैं। ट्रेन में आकर मुझे रबड़ी खिलाई। जब भक्त सच्चे मन से भगवान् को चाहता है, याद करता है, पुकारता है, उसके लिये रोता है तो भगवान् भी उसे मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। अपने भक्त को भगवान् रोता नहीं देख सकता, बेचैन हो जाता है पर यदि सच्ची भावना नहीं होगी, व्याकुलता नहीं होगी तो भगवान् भक्त के पास कभी नहीं आयेंगे।

भगवान् को मन चाहता ही नहीं है, मन चाहता है संसार को धन–दौलत, पुत्र–परिवार को। अपनी खुशहाली को। जब मन में भगवान् के लिये छटपटाहट होगी, व्याकुलता बढ़ेगी तो संसार से वैराग्य होने लगेगा। संसार से आसक्ति (फंसावट) कम होने लगेगी। जब सच्चा ज्ञान अन्तःकरण में उदय होगा तब ही वैराग्य का उदय होगा। कान से सुनकर कम से कम तीन लाख हरिनाम करने से यह होगा। किसी किसी साधक को इससे कम संख्या में हरिनाम जपने से भी हो सकता है। ऐसे साधक की पिछले जन्मों की भक्ति होगी तो ऐसा होगा। इसकी कसौटी क्या है?

श्रीगुरुदेव जी द्वारा बताया गया 'कसौटी का दर्पण' नामक लेख 'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' भाग (एक) में छपा है। उसे पढ़कर कोई भी साधक यह जान सकता है कि इस दर्पणमयी कसौटी में वह कितना खरा उतरता है और उसे अपनी भक्ति का स्तर भी पता लग सकता है। भक्ति सच्ची है या कपटमयी है–यह सब पता चल जायेगा।

साधकों की शिकायत आती है कि हम हरिनाम ले रहे हैं पर हमारे दुःख, हमारे क्लेश दूर नहीं हुये। भई, आपके दुःख क्लेश कैसे हटेंगे? अपने आप को टटोलो। अपने अंदर झांक कर तो देखो कि अंदर कितनी गंदगी भरी पड़ी है। कितने अवगुण, कितनी

कपटता भरी पड़ी है। जब मन ही मैला है तो कर्म कैसे उज्ज्वल हो सकता है। तुम्हारे अंदर जो ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार भरा हुआ है उसने तुम्हें गंदा बना रखा है। फिर शिकायत करते हो कि हरिनाम करते हुए भी हमारा दुःख, कष्ट हटता नहीं है। हम अपना चेहरा अपनी आंखों से नहीं देख सकते। अपनी आंखों से अपना चेहरा देखने के लिये हमें दर्पण की जरूरत होती है। किसी सच्चे साधु से संपर्क करो वह ही दर्पण का काम करेगा। आपका चेहरा आपको दिखा देगा। तभी आपको अपनी कमियों का पता चलेगा। तभी आप अपना स्वभाव जान सकोगे। तुम सच–सच बताओ कि भगवान् को कितना चाहते हो। केवल दूसरों को दिखाने के लिये नाटकबाजी करते हो। एक तरफ पूजा का दिखावा तो दूसरी ओर सिर में डंडे मारना।

तुम अपनी खुशहाली चाहते हो। तुम्हें भगवान् से क्या लेना–देना! दूसरों की बुराई करने में जो आनंद आता है वह साधु–संग में नहीं आता। करोड़ों में कोई एक व्यक्ति भगवान् को चाहता है बाकी सबका व्यवहार कपटपूर्ण है, इसीलिये सभी दुःखी हैं। हमें लगता है कि हम सुखी हैं पर यह सुख केवल छायामात्र है, जो कुछ समय के लिये है। यह सुख स्थिर नहीं है, स्थायी नहीं है। जैसे बादल आकाश में आते हैं उसी प्रकार यह सुख भी आता–जाता रहता है।

इस कलियुग में लोभ का साम्राज्य है। दूसरों की बात छोड़ो, साधु–साधु को मरवा रहा है। समय बहुत खराब चल रहा है। शासन में कोई दम नहीं है। सुनने वाला कोई नहीं है। केवलमात्र भगवान् ही रक्षा और पालन करने वाले हैं। अतः भगवान् की शरण में रहना ही उपयुक्त है। आपकी शिकायत आती है कि भगवान् हमारी बात सुनते ही नहीं। मेरे श्रील गुरुदेव कह रहे हैं–

“भगवान् तो सुनते हैं पर तुम भगवान् की नहीं सुनते। इसीलिये दुःखी हो।”

जिसके अन्तःकरण में गंदगी भरी हुई है, कलुषित भावनायें रमी हैं, वहां हरिनाम रूपी भगवान् आकर कैसे बैठ सकते हैं? पहले मनरूपी दर्पण की मैल अर्थात् धूल को साफ करो तब हरिनाम रूपी भगवान् आकर विराजमान होंगे। मन को तो एक दूसरे की बुराई करने में, नीचा दिखाने में आनंद आता है, वहां हरिनाम स्मरण करने में आनंद कैसे आ सकेगा! आनंद तो दूसरी तरफ मुड़ गया।

कहने का मतलब यह है कि स्वयं अपने आपको टटोलो, भविष्य का मार्ग साफ दिखाई पड़ेगा। मेरे गुरुदेव बार–बार समझा–समझा कर हार गये, फिर भी समझ में नहीं आता। आप अपने आपको सुधारो। कोई कुछ भी करे, आपको किसी से क्या लेना–देना। अपने मार्ग पर सच्चाई से बेखटके चलते रहो। गन्तव्य स्थान पर पहुंच जावोगे, नहीं तो बीच में अटक कर, किसी गहरे खड्डे (खाई) में गिरकर अपना जीवन बरबाद कर लोगे।

अभी भी समय है। अभी भी समझ जावो। आंखें बंद कर हरिनाम स्मरण में जुट जावो। कोई कुछ भी करे, उसकी परवाह न करो। भगवान् सब देख रहे हैं। आप अपना लक्ष्य निर्धारित करो। हरिनाम ही आपको अपनी मंजिल पर पहुंचा देगा। अपना मार्ग मत छोड़ना। समय आने पर आनंद सिंधु प्राप्त हो जावेगा। मेरे श्रील गुरुदेव ने पिछले पांच–छः वर्षों में मुझे हरिनाम पर ही पाँच सौ से ज्यादा पत्र लिखवाये हैं जो 'इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति' नामक पुस्तक में छपे हैं। इस पुस्तक के तीन भाग छप चुके हैं जिन्हें पढ़कर आज सैकड़ों साधकों का जीवन बदल गया है और वे एक लाख (64 माला) हरिनाम की कर रहे हैं और आनंदसिंधु में गोते लगा रहे हैं। आप भी इस पुस्तक को बार–बार पढ़ते रहो। आपका सच्चा मार्गदर्शन होता रहेगा। इस पुस्तक में भगवत् वाणी है, शास्त्रों का सार भरा पड़ा है।

मेरे श्रीलगुरुदेव का मार्गदर्शन करने वाला वक्तव्य यहीं विश्राम लेता है।

हे मेरे मन! तू गिरिराज गोवर्धन में रहने वाले कमललोचन श्रीकृष्ण का चिन्तन कर! हे मेरी जिह्वा! तू उन्हीं का नाम व उनकी गुण–महिमा का कीर्तन कर। हे मेरे मस्तक! तुम उनके ही श्रीचरणों में झुक जाओ। हे मेरे हाथों! तुम उनके सामने स्वयं को जोड़ लो। ओ मेरे दीर्घ शरीर! तू उन्हें साष्टांग दंडवत्पूर्वक प्रणाम कर।

हे मेरी आत्मा! तुम केवलमात्र उनका ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि जीवों के मंगल की प्राप्ति के लिए एकमात्र वे ही धन्य हैं, पुण्यतम हैं और परम दिव्य हैं।



17

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.01.2006

भगवान् से स्वाभाविक प्यार

मैं जो भी आपके चरणों में लेख प्रस्तुत करता हूँ वह केवल मात्र संतों से सुनकर तथा धर्म–ग्रंथों से पढ़कर ही करता हूँ। आप जैसा बोला करते हैं कि मुझे ठाकुर जी से बुद्धि का तात्विक ज्ञान प्राप्त होता रहता है, सही नहीं है, क्योंकि मैं अपने को जानता हूँ कि मैं कैसा हूँ, दुर्गुणों से भरे मन में क्या ठाकुरजी कृपा करेंगे ? कदापि नहीं।

आपके चरणों में लिखने का कारण मात्र सत्संग की भूख ही है जो यहां पर मिलता नहीं है। अतः भूख मिटाने के लिए आपके समक्ष लिखना पड़ता है। उससे मुझे शांति का अनुभव होता है। संत की याद ही ठाकुर की प्रसन्नता में सहायक होती है। लिखने में संकोच भी होता है कि एक परमहंस संत को अनुभव लिखकर भेजना अपराध तो नहीं है। फिर सोचता हूँ कि यदि अपराध होता तो ठाकुर जी के प्रेम से दूर हो जाता, लेकिन ऐसा तो नहीं है। अतः दिल खोलकर आपके चरण–युगल में लिख–लिखकर भेजता रहता हूँ।

भागवत शास्त्र में कपिल भगवान् अपनी मां देवहूति को भक्ति की प्राप्ति के लिए उपाय बता रहे हैं। स्वाभाविक प्रवृति ही भगवान् को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। कोई विरला ही ऐसा हो सकता है जिसमें स्वाभाविक ही भगवान् से प्यार हो। यह केवल मात्र पूर्व–जन्मों के भक्ति–संस्कारों पर ही निर्भर करता है, जैसे जड़ भरत जी थे। मैं तो अभी शुरूआत की श्रेणी में ही हूँ।

यह मैं सत्य कह रहा हूँ कि जो भी ठाकुर के प्रति लगाव हो रहा है, यह केवल मात्र आपकी कृपा का ही फल है। मैं जानता हूँ

कि आपकी कृपा शुरू से ही मुझ पर हो गई थी। आपकी कृपा से ही मन में उद्गार उठकर लेख के रूप में लिखे जा रहे हैं।

सुखमय जीवन बिताने का एकमात्र साधन है हरिनाम। कलिकाल का दुश्मन-नाम। हरिनाम से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है। लेकिन सही नाम होता नहीं।

इसके निम्न कारण हो सकते हैं :-

1. भगवत्-चरणों में स्वाभाविक लगाव का न होना। संसार में लगाव होना।

2. किसी भी तरह का अहंकार।

3. प्रतिष्ठा की चाह। संतों के प्रति अश्रद्धा। गुरु को संसारी मानना।

4. नेक कमाई से प्राप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध न होना।

5. ठाकुर जी का प्रसाद न समझकर खाद्य पदार्थों का सेवन करना।

6. असत्संग का त्याग न करना। मन से भी असत्संग का त्याग होना चाहिए। कुविचारों से दूर रहना चाहिये।

7. केवल मात्र भगवत्-प्राप्ति ही ध्येय न होना।

8. संतों-भक्तों से सच्चा प्यार न होना व अपराधों से न बचना।

उक्त मुख्य कारणों से भगवान् के प्रति लगाव नहीं होता। जहाँ लगाव होगा, ठाकुर के लिये रोयेगा। यही शरणागति का लक्षण है। जिसकी शरणागति सच्चे रूप में हो जाएगी, उसकी तड़फन उतनी ही तेज होगी। तब स्वतः ही दुर्गुण नष्ट होकर सद्गुण आकर बस जायेंगे व हरिनाम में रस आएगा वरना हरिनाम भार बन जाएगा। सूक्ष्म देह का नाश नहीं होगा। आवागमन होता रहेगा। ठाकुर चरण नहीं मिलेगा। ऐसा मैंने सुना व पढ़ा है।

गोपियों का स्वाभाविक ही कृष्ण के प्रति झुकाव रहता था। ऐसा झुकाव कोई विरले प्राणी का ही हुआ करता है। ठाकुर जी के दो पुत्र हैं–पहला संत व दूसरा नास्तिक। जब संत से स्वाभाविक ही सच्चा प्रेम होता है, तब समझना चाहिए कि अब आवागमन का चक्कर मिटने वाला है।

सबसे खतरनाक है सन्त अपराध। चाहे कैसा भी प्रेमी–भक्त हो, सन्त व भक्त–अपराध से वह नीचे स्तर पर आ गिरता है। ज्ञान, कर्म–मार्ग में परणित हो पड़ेगा।

रामायण से उदाहरण –

इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला,
कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई,
भक्त–द्रोह पावक सो जरई।।

पावक–ऐसी प्रचंड अग्नि होती है जिस अग्नि में लोहा–पत्थर पिघलकर पानी बन जाता है।

जो अपराध भगत कर करहिं,
राम रोष पावक सो जरहिं।।

गुरुदेव का अपराध और भी खतरनाक है। यदि हो जाता है तो करोड़ों युगों तक नरक–वास करना पड़ता है। गुरुदेव साक्षात् भगवद्–रूप होते हैं।।

राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहीं कोऊ जग त्राता।।
कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानऊं एक भगति कर नाता।।

आप सब कुछ जानते हैं, आपसे कुछ छिपा नहीं है। परंतु सत्संग की प्यास बुझाने को लिखना पड़ता है।

आपका सत्संग मुझको सोने में सुगंध बन जाएगा।

रामायण का कथन है :

दोहा

मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर संतन सेव।
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताके सब देव।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानि। बिनु सत्संग न पावहिं प्राणी।
पुन्य पुंज बिनु मिलहि न संता। सत-संगति संसृति कर अन्ता।।

इस जन्म में तो मैंने ऐसा कोई पुण्य नहीं किया जो आप जैसे संतों का समागम करता रहता हूँ। पिछले जन्म का कह नहीं सकता। लेकिन संत का हृदय तो मक्खन से भी कोमल होता है, आप बिना मतलब सबका कल्याण चाहते हैं।



श्रीहरिनाम करते-करते श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से जब जीव का भाग्य उदय होता है, तभी नाम-सेवा से उसकी भाव-सेवा उदित होती है। भक्ति के अन्य सभी साधनों का फल है – अन्त में नाम में प्रेम प्रदान करना-इसलिये नाम-साधक श्रीहरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता है। श्रीहरिनामनिष्ठ किसी दूसरी साधना को नहीं करता।

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

18

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 10.02.2006

मनुष्य तन भगवान् की धरोहर

दार्शनिक शास्त्र का सिद्धांत एक ऐसा दर्शन कराने का सिद्धांत है जिससे वास्तविक दर्शन लाभ होता है। जैसे एक टेढ़ी-मेड़ी सर्प के रंग की लकड़ी रास्ते में अंधेरे में पड़ी है। पांच-सात व्यक्ति रास्ते से जा रहे हैं। कोई कहता 'सर्प' है। कोई कहता 'सर्प' होता तो चलता, कोई कहता है मरा हुआ सर्प है। कोई कहता लकड़ी छुआ कर देखो।

किसी ने लकड़ी लगायी तो वह हिल गया, तो सभी ने कहा कि सर्प बीमार दिखता है। चल नहीं पाता, उजाला करो, क्या बात है। उजाला करते ही लकड़ी मिली। तब सभी को दर्शन मिलने से पूर्ण विश्वास हो गया कि वास्तव में यह लकड़ी थी परंतु इसका टेढ़ा-मेढ़ापन व रंग सर्प के समान था। अब दर्शन से वास्तविक वस्तु का पता चल गया। यह है दर्शन-शास्त्र। इसी में मैं विश्वास करता हूँ, जब तक मैं परीक्षा नहीं कर लेता, भक्ति-पथ पर चलने में पूर्ण विश्वास नहीं होता। जब करके देख लेता हूँ तो वास्तविक मार्ग मिलता है।

सभी भक्त कहते हैं कि जब तक 'तृणादपि सुनीचेन'-अवस्था नहीं आयेगी, तब तक भगवत्-दर्शन तथा शरणागति की प्रेमावस्था नहीं आ सकती। अब प्रश्न यह उठता है कि यह उक्त अवस्था आये कैसे ? यह अवस्था तब ही आ सकेगी जब अहंकार का नाश होगा। जब तक अहंकार (मैं, मेरा) अन्तःकरण में रहेगा, तब तक 'तृणादपि' की अवस्था आ नहीं सकेगी।

भगवान् ने अन्तःकरण चतुष्ट्य को जीव में प्रतिष्ठित किया है – (मन, बुद्धि-चित्त-अहंकार)। यह अहंकार ही जीव का महान

शत्रु है। जब तक 'मैं', 'मेरा' चित्त में रहेगा व 'तू', 'तेरा' में प्रतिष्ठित नहीं होगा, तब तक 'तृणादपि' की स्थिति आ नहीं सकेगी। यह अवस्था थी जड़ भरत जी की। संसार ने उन पर खूब आघात किया, परंतु वे सहते ही गये क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि यह तन तो धरोहर के रूप में भगवान् ने मुझे दिया है। इससे मेरा क्या लेना–देना। उनका अहंकार नष्ट हो चुका था।

भगवान् ने जीव को यह तन धरोहर के रूप में दिया है। यह धरोहर 10–20–50–100 वर्ष के लिये मिली है। जीव ऐसा कृतघ्न है कि धरोहर देने वाले को ही भूल जाता है। इसका दुरुपयोग करने पर भगवान् जीव को संसार रूपी कारागार में डाल देते हैं।

इस धरोहर की रक्षा व रख रखाव के लिए भगवान् ने जीव को दस इन्द्रियाँ दी हैं। इन्द्रियों से ठीक प्रकार से काम लेने के लिए बुद्धि प्रदान की है। तन के रख–रखाव के लिए हवा, पानी, उजाला व जमीन दी है। परंतु जीव इनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग कर धरोहर रखने वाले को भूल कर मस्ती से अपना जीवन बिताता रहता है।

अहंकार भगवान् को सुहाता नहीं है। जब–जब भी भक्तों को अहंकार ने दबोचा, तब–तब ही भगवान् को अपने भक्तों का अहंकार नष्ट करना पड़ा।

जब अहंकार 'तू'–'तेरा' भगवान् व भक्त के प्रति हो जाता है तो 'मैं'–'मेरा' भाव नष्ट होकर 'तू'–'तेरा' भाव जाग्रत हो पड़ता है और स्वतः ही सद्गुण अन्तःकरण में आ विराजते हैं। दुर्गुण नष्ट हो जाते है।

'मैं' बुद्धि फसांने वाली, 'तू' बुद्धि भगवत–चरण में पहुंचाने वाली होती है। जैसे–किसी ने किसी को 50/– रुपये धरोहर में दिए व कह दिया कि जब चाहूँगा, मांग लूँगा। उसने उन रुपयों की शराब पी ली। क्या दुबारा वह रुपया ले सकेगा ?

भगवान् ने जो तन धरोहर के रूप में दिया, उन तन से वह अनर्थ करता गया तो क्या भगवान् दुबारा मानुष–तन दे देंगे। उस धरोहर से उसे शुभ कर्म करना चाहिए था परंतु जिसने धरोहर दी उसे ही भूल गया तो सजा मिलनी ही चाहिए। अतः उसे चौरासी में घूमना ही होगा।

जो धरोहर की परवाह न कर आत्म–हत्या कर लेते हैं, उन्हें तो कभी भी मानुष–तन मिलता ही नहीं। जब संत–पद–रज, संयोग से उनको छू जाये तो ही उनको मानुष तन मिल सकता है। संत–पद–रज का प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि संसार का मोचन हो जाए। दुराचारी से दुराचारी भी संत–पद–रज से सदाचारी बन कर भगवत्–चरण में पहुँच जाता है। पारस–पत्थर लोहे को सोना बना देता है परंतु भगवान् तो भक्त के अनुसार चलने वाले हैं। भक्तों के लिए अवतार लेकर भक्तों के संग खेला करते हैं।

रूपकः–सेठ रूपी भगवान ने मनुष्य रूपी ग्राहक को आत्मा रूपी अमूल्य रत्न 10–20–50–100 साल के लिए धरोहर के रूप में सौंपा और कहा कि जब मैं मांगू, देना होगा। इस धरोहर के रख–रखाव व सुरक्षा के लिए तन रूपी तिजोरी संभलवाई तथा बुद्धि रूपी ताला तिजोरी पर लगाने को दिया तथा बुद्धि की एक चाबी जीव को स्वयं के लिए दी व दूसरी चाबी माया रूपी मैनेजर को सौंपी।

जीव रूपी ग्राहक इतना बेपरवाह हो गया कि जिसने धरोहर दी, उस सेठ रूपी भगवान् को ही भूल गया। मैनेजर ने उस धरोहर को खर्च कर डाला। जीव देखता ही रह गया एवं एक दिन उस अमूल्य धन से वंचित होकर भटकन में पड़ गया तथा दुःखों पर दुःख भोगता रहा। अब वह मानुष तन की आत्मा रूपी धरोहर सदा के लिए खो बैठा।

अहंकार (अहम्) ही माया का न खुलने वाला बंधन है। जब तक यह अन्तःकरण से दूर नहीं होगा, तब तक वह अपने खास

घर–जो भगवत्–चरण हैं, नहीं पहुँच पाएगा। अहंकार खत्म होते ही तृणादपि सुनीचेन की स्थिति स्वतः ही आ टपकेगी।

अंहकार जाएगा हरिनाम (कृष्ण) की कृपा से। यह कृपा होगी अद्वैताचार्य जी के रोते हुए भजनानुसार नाम–जप से। भगवान ने जैसा लिखवाया, वैसा आपके चरणों में सेवा के रूप में दे रहा हूँ। मैं अल्पज्ञ क्या सेवा कर सकता हूँ।

बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन-धाम।।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक :18.02.2006

अहम् से हानि

धर्म–शास्त्रों में पढ़कर, संतों से श्रवण कर तथा प्रभु–प्रेरित होकर ही लिखा जाता है, मेरी इसमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं है। मैं अल्पज्ञ कैसे तात्विक विषय पर लिखने में सक्षम हो सकता हूँ। संतों में यही तो गुण होता है कि सबमें और सब ओर गुण ही गुण देखा करते हैं। अवगुण तो उनकी नजर में आता ही नहीं। यह मैं आपको सच–सच कह रहा हूँ। आपसे छिपाऊँ तो नरक में जाऊं। श्रीगुरुदेव से कपट करना जघन्य अपराध होता है।

रामायण, (रामचरित मानस) शिवजी के मन से प्रगट हुआ है। इसलिए इस धर्म–शास्त्र का नाम मानस पड़ गया। ब्रह्मा–शिव तो साक्षात् भगवान्–स्वरूप हैं। अतः यह भगवान ने ही रचा है। इसी को अपनी भाषा में श्रीतुलसीदास ने लिखा ताकि एक नासमझ भी इसको समझ सके। यह मैंने संतों से सुना है। महादेव जी अपनी धर्म–पत्नी उमा को सदैव इसे सुनाया करते हैं।

“भाव कुभाव अनख (क्रोध) आलसहुं।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूं।।”

हरिनाम को कैसे भी जपा जाए, दसों–दिशाओं में मंगल कर देता है। मन दसों–दिशाओं के अलावा कहाँ जाएगा, जहाँ भी मन हरिनाम को ले जाएगा, वहाँ का मंगल निश्चित होगा ही। क्योंकि नाम का स्वभाव ही वांच्छा–कल्पतरु, चारु चिंतामणि है। मानो मन खेत में चला गया तो फसल अच्छी हो जाएगी, किसी जन के पास चला गया तो उस जन की सुकृति बन जाएगी। यदि मन भगवान में चला गया तो भगवान् का लाभ मिल जाएगा अर्थात् भगवत्–प्रेम मिल जाएगा। यह तो ध्रुव सत्य व दार्शनिक सिद्धांत है।

अब हर आस्तिक को अपना मन टटोलना चाहिए कि मन नाम जपते हुए कहाँ जाता है। सारी उम्र बीत जाती है, फिर भी नाम में रुचि नहीं होती, इसका कारण केवल मात्र है कि मन भगवान् की तरफ गया ही नहीं। यदि जाता तो अब तक भगवान् के दर्शन की अकुलाहट हो जाती।

भगवान् में मन लगाने के अनन्त मार्ग हैं। इतना मसाला है कि जापक इतना जप कर ही नहीं सकता। ब्रह्मा से लेकर अपने श्रीगुरुदेव तक अनन्त संत हो गए हैं, उनके चरणों में जाकर नाम जपते हुए प्रार्थना करे। अनन्त भगवत्–धाम में जाकर घूमना शुरू कर दे। अनन्त भगवत् लीलाएं हैं, राम–कृष्ण–नृसिंहदेव–वामन भगवान् आदि, जो कि भागवत्, रामायण में भरी पड़ी हैं। कहाँ तक गिनाया जाए, जापक इतनी लीलाएं जप ही नहीं सकता। मन भगवान् के अलावा कहीं जा ही नहीं सकता।

जापक दो अपराध तो सदैव करता ही रहता है। नाम को अवहेलनापूर्वक जपना तथा मन से संतों का दोष देखते रहना। संत तो चिन्मय होते हैं। इसलिए जापक का अपराध होता ही रहता है। स्वयं को देखते नहीं कि स्वयं में कितने सारे दुर्गुण भरे पड़े हैं। अपने दुर्गुणों को देखना, अहं को समाप्त करना है। अहं ही अपराध कराता है। अहं को भगवत्–चरणों में सौंपने से सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाता है। अहं ही दुखों की जड़ है। अहंकार भगवान् को तनिक भी सुहाता नहीं है। भक्त जब थोड़ा–बहुत ही अहं भगवान को सौंप देता है, तब भगवान् उसकी अहं से रक्षा करते हैं। अहं न रहने से सारे अन्दरूनी शत्रुओं का नाश स्वतः ही होने लग जाता है। यह सब होगा हरिनाम को मन लगाकर जपने से। जपते हए सतर्क रहें कि मन कहीं जा तो नहीं रहा है। तैलधारावत जप शीघ्र ही भगवान् के प्रति छटपटाहट पैदा कर देता है, फिर तो रोने का तांता लग जाता है। विरहाग्नि सभी दोषों को जलाकर राख कर देती है। बस आवागमन से छुटकारा मिल गया। दुखों का अंत हो गया। जीवन थोड़ा है, पश्चाताप की आग में जलना चाहिए।

प्रथम चित्त से ही सारा स्मरण होता है। बुरी स्फुरणा होते ही पकड़ना चाहिए कि बुरे रास्ते तो नहीं जा रहा है। मन बड़ा शैतान है। बुरी स्फुरणा मन में पहुँचते ही इन्द्रियां हावी हो जाती हैं। बस फिर क्या है गिरना ही पड़ता है।

नारी, माया की साक्षात मूर्ति है। प्रेम–भाव को एक क्षण में समाप्त कर देती है। उसने ब्रह्मा, शिव, नारद, विश्वामित्र आदि तक को अपने पैरों से कुचल डाला। लकड़ी की नारी तक भी खतरनाक है। अच्छी संगति में पड़ा मानव भी नारी के लिए जग जाता है। इससे बचाव श्रीहरि ही कर सकते हैं। गृहस्थ तो अपनी जेब में जहरीली बोतल रखता है। सदैव अमृत समझ कर पीता रहता है क्योंकि यह निरंकुश है। अन्य आश्रम वालों पर अंकुश है। पर नारी उनको भी नहीं छोड़ती।

महाप्रभु जी ने छोटे हरिदास को क्यों दंड दिया, क्योंकि नारी का क्षणिक संग भी प्रेमावस्था का बहुत बड़ा शत्रु है। एक क्षण का संग हजारों साल की तपस्या खाक में मिला देता है। मरते दम तक यह पिंड नहीं छोड़ता। आजकल का रवैया बहुत ही खराब है। भगवान को कौन चाहता है ? सारा संसार नारी को चाहता है।

गृहस्थ भी बड़े–बड़े संत हुए हैं। भूतकाल में सभी गृहस्थ थे एवं उन्होंने भगवान् को अपना अहं सौंप दिया था। वे भगवान् से बातें करते थे। गृहस्थ, नारी–रूपी किले में सुरक्षित रहता है, अतः शत्रुओं से बचा रहता है। अन्य आश्रम वाले किले के बाहर रहते हैं। अतः दुश्मन हर समय उन पर हावी रहता है। लेकिन संत भी भगवान् से बातें करते हैं। क्योंकि उन्होंने अपना अहंकार (अहं) भगवान् को सौंप रखा है।

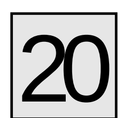
नारी साक्षात् माया का रूप है। इससे जो बचा है, उसी ने भगवान् को पाया है। इससे रक्षा भगवान् ही कर सकते हैं। अपने बल से कौन विजय पा सकता है। हरिनाम ही इसकी महाऔषधि है। इसका सेवन सतर्कता से करना चाहिए। यही हर तरफ से रक्षा

करता है, यदि कोई इसको आदरपूर्वक जीभ से जपकर अपनाए। अपना अहं इसमें बहुत बड़ा शत्रु है। जब तक अहं रहेगा, दुर्गुण रहेंगे ही। दुर्गुणों को भगवान् देखते भी नहीं। भगवान् देखते हैं कि इसने अपनापन मुझको कितना सौंपा है, उतनी अनुपात में श्री भगवान् भी भक्त की रक्षा व देखभाल रखते हैं।

जैसा आपकी चरण धूलि से मिला, मैंने आपके युगल-चरणों में रखा। यही मेरी तुच्छ सेवा आपकी कृपा से हो रही है। कृपा करें, मेरा मन हरिनाम में रुचिपूर्वक लगे। आपसे यही आशा है।

दो फूल आपके चरणों में

1. कौन कहता है कि घनश्याम आते नहीं,
आते हैं, पर उनको दिल से बुलाते नहीं।
दिल से बुलाते तो घनश्याम कहीं जाते नहीं।।
रोना ही घनश्याम को खैंच लाता है।
श्रद्धा की बगिया में घनश्याम मस्ती से गाता है।
कपट का हृदय घनश्याम को भाता नहीं।
स्वच्छ हृदय में उनको कोई बिठाता नहीं।।
हरिनाम की मीठी लौर (ध्वनि) उन्हें कोई सुनावे।
तो घनश्याम इक क्षणभर भी रुकने न पावे।
दास अनिरुद्ध का, घनश्याम को रोना भावे।।
2. भक्त कहते हैं कि हरिनाम में मन लगता नहीं,
लगता है पर अहं शत्रु को, कोई तजता नहीं।
महत्व हरिनाम का कोई समझता नहीं।।
श्रवण कर हरिनाम, तो निश्चय ही हिय अकुलाय,
विरह-ज्वाला कर दर्शन प्रभु का पाये।
क्यों नाम अपराध कर जीवन अमूल्य गंवावे।
मौत सामने खड़ी है, फिर भी चेत न आवे,
सचेत किया बार-बार, फिर भी सोता ही रह जावे।
दास अनिरुद्ध गुरुदेव वचन पर, जीवन अपना बितावे।।



श्रीश्रीगुरुगौरांगो जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.03.2005

अन्तःकरण के भाव

जब भजन कम हो जाता है तो आपको याद कर मन ही मन रोता रहता हूँ। पत्र देने पर ही शांति मिलती है। इसके बाद भजन-स्तर बढ़ जाता है। न मालूम क्यों ?

आप समुद्र हैं, मैं एक बूंद हूँ। मुझमें अनन्त अवगुण भरे पड़े हैं जिनके कारण भजन-स्तर आगे बढ़ नहीं रहा है। यह जो ठाकुर जी की तरफ खिंचावट हो रही है, यह भी आप संत की कृपा का फल है। अब जगत् से मन ऊबता जा रहा है। मौत सिर पर खड़ी है, न जाने कब अचानक आकर दबोच लेगी। यह मानव-जन्म बेकार न हो जाए, बस यही हर क्षण चिंता लगी रहती है। न घर में मोह है, न पैसे में। मैं आपसे झूठ बोलकर अपराध नहीं लेता। यदि ऐसा होता तो ठाकुर जी की खिंचावट खत्म हो जाती एवं मैं नास्तिक बन जाता।

एक न एक दिन तो सबकुछ छोड़ना ही होगा।

आपके सिर पर काल मंडरा रहा है, अतः शीघ्रचेतना ही श्रेयकर होगा। अब हम कूच करने वाले हैं। अब तो आपकी कृपा से 4-5 घंटे इकतारे से कीर्तन में ही खर्च हो रहे हैं। और अधिक समय देकर जीवनयापन करूंगा, सहायता व प्रेरणा आपसे मिलती है। मन भी आपकी कृपा से खूब लगता है। तड़फन का ही सहारा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अंतिम सांस में ठाकुर जी आकर संभालेंगे। मेरा किसी में मन नहीं है। केवल आपके चरणों में ही मन दौड़ता रहता है। संत गुरुभाई तो बहुत हैं परंतु आपके चरणों का ही इस तृण को सहारा है। यह क्यों ? ठाकुर जी जानें।

श्री गोपीनाथ बाबा ने छींड में इस ठाकुर घर पर 11 साल तक

रहकर भजन किया था। उनका यह इकतारा दिया हुआ है। इससे मेरा मन कीर्तन से बाहर जाता नहीं। विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होती रहती है। इस घर पर श्रीगुरुदेव की पूर्ण कृपा तो है ही, तब ही तो गुरुदेव जी ने मेरे ताऊ जी को प्रत्यक्ष आकर दर्शन दिया था व ताऊ जी ने दूसरे दिन जबरदस्त विशाल भंडारा किया था। यह सन् 1966–67 की घटना है। मुझे कभी–कभी ऐसा अनुभव होता है कि ठाकुर जी दर्शन भी दे देवेंगे क्योंकि संतों की कृपा भी मुझ पर रहती है। कभी–कभी विरह भी चरम–सीमा पर हो जाता है। लेकिन लगातार नहीं रहता, अतः आपको पत्र देना पड़ता है। तब फिर विरह जगने लगता है। मेरी चर्चा (बातें) किसी को न बतावें। मेरा भजन गिर जावेगा। हमारा संसार ज्यादा दिन का नहीं है। रास्ते के लिए पूरी सामग्री अभी से इकट्ठी करनी होगी। समय निकल जाने पर इतना नुकसान होगा कि जिसकी सीमा नहीं।

कृष्ण नाम, भक्तसेवा सतत करिबे।
कृष्ण–प्रेम–लाभ ता'र अवश्य हइबे।।

हमेशा श्रीकृष्णनाम व भक्त सेवा करते रहें।
ऐसा करने पर श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।



21

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.03.2006

भक्तिमय आचरण

आपकी कृपा से मैंने पूरी (तीनों खंड) नई चैतन्य भागवत को पढ़कर यही निचोड़ निकाला है कि आपको इसी जन्म में भगवत्-प्राप्ति निश्चय ही हो जायेगी।

मैंने जैसा संतों के मुखारविंद से सुना है तथा धर्म-शास्त्रों में पढ़ा है वैसे का वैसा लिखकर आपके चरणों सेवार्थ भेज देता हूँ। इससे मेरा मन आपकी याद में रहता है तथा लिखने से ठाकुर जी का स्मरण रहता है। इससे बड़ा मन को लगाने का क्या साधन हो सकता है ?

मन से ही बंधन, मन से ही घनानंद होता है, इसमें दो राय नहीं। यदि नीचे लिखे अनुसार मन पाजी चलता है तो निश्चय ही शत-प्रतिशत भगवत्-प्रेम प्राप्ति का अंतिम पुरुषार्थ प्राप्त होकर इसी जन्म में ठाकुर का सानिध्य मिल सकता है तथा जन्म-मरण का असहनीय दुःख मिट सकता हैः-

1. सोते समय भगवान् व भक्त का चिंतन करने की आदत मन को डालें। निद्रा भी मृत्यु की पुत्री है। मरते समय जैसा भाव होगा, अगला जन्म उसी भाव से मिलेगा, उसी प्रकार सोते समय जैसा भाव होगा, वही भाव रात को तथा प्रातः जगने तक चलता रहेगा वही भाव रोम-रोम में धीरे-धीरे रम जाएगा। जगने पर भी उक्त चिंतन करते हुए खाट से नीचे उतर कर शौचादि करना चाहिए।

2. श्री चैतन्य भागवत् में पढ़ा है कि जब भगवद्-प्रसाद सामने आता था तो महाप्रभुजी उसकी प्रदक्षिणा कर हाथ जोड़कर प्रसाद सेवन करते थे। हरिनाम जपते हुए हर ग्रास खाते रहना चाहिए ताकि हर एक ग्रास निर्गुण की प्राप्ति करा सके। जैसा अन्न

वैसा मन। जिस भाव में खायेंगे, उसी भाव की सात्विक निर्गुण धारा चालू होगी। जब भी पानी पीना हो तब यह भाव रखना चाहिए कि इसे ठाकुर जी पी रहे हैं, फिर मैं इस अमृत को पीऊँगा व अमरता की प्राप्ति कर सकूंगा। इसे करके देखने से मालूम होगा।

3. अहंकार को भगवत्–चरणों में सौंपना। अहं ठाकुरजी के प्रति हो तो शरणागति का प्रादुर्भाव स्वतः ही प्रकट हो जाता है तथा 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि' की स्थिति हो जाती है। जब तक अहं शत्रु की आसक्ति त्रिगुण अवस्था में रहेगी तब तक निर्गुण अवस्था नहीं आ सकती। अहं में प्रतिष्ठा की गंध छुपी रहती है जो महसूस नहीं होती। जब तक प्रतिष्ठा–शूकरी–विष्ठा की गंध हृदय में रहेगी, ठाकुर जी बहुत दूर रहेंगे, अतः साधक को सावधानीपूर्वक अहं का संभालना परमावश्यक है। अहं बदलते ही ठाकुर प्रकट होने में देर नहीं होगी।

जब तक अंहकार स्वयं में रहेगा, तब तक साधन शून्य रहेंगे। चाहे कितना ही हरिनाम करो, कितना ही सत्संग करो, कितना ही शास्त्र अवलोकन करो, रिजल्ट होगा शून्य। हरिनामादि केवल मात्र अहं को बदलने के लिए होता है ताकि अहं स्वयं में न होकर ठाकुर में ठहर जाये। यही शरणागति का दूसरा नाम है।

गोपियों ने कौन सा साधन–भजन, सत्संगादि किया था। भीलनी ने कौन सा शास्त्र पढ़ा था। केवल मात्र अहं को प्रभु चरणों में सौंपा था। गोपियों को संसार की कोई परवाह नहीं थी। इसी कारण ठाकुर जी (कृष्ण) उनके पीछे–पीछे फिरते रहते थे व अनेक बहाने बना कर उनसे मिलते रहते थे तथा जबरन छीन–छीनकर घर में जाकर खाते–पीते थे। राम जी संतों को छोड़ भीलनी की कुटिया में गए एवं उसने रामजी के जाते ही अपने प्राणों को छोड़ दिया क्योंकि उसने अहं को ठाकुर जी के चरणों में सौंप दिया था।

4. भगवत्–प्राप्ति के अलावा दूसरा कोई ध्येय न हो वरना अहं स्वयं में रहेगा।

5. काल का भय आठों याम रहे।

6. असत्–संग का त्याग, मन व शरीर दोनों से हो।

7. हरिनाम को अपनी सच्ची कमाई समझकर संत व ठाकुर जी का स्मरण करते हुए जप करना (मन को संसार में भटकाना वर्जित)

मन को लगाने का अनन्त मसाला है, यदि मन चाहे तो। स्वयं के गुरुवर्ग, ठाकुर के 24 अवतारों के चरित्रांकन में, भागवत पुराण के अनन्त संत, रामायण के अनन्त संत, सनकादिक से लेकर अब तक के संत चरित्रादि, धामादि, तीर्थाटन। जापक इतनी माला जप ही नहीं सकता जितना लंबा–चौड़ा मन को रोकने का मसाला ठाकुर जी ने दिया है, जीव को अपनाने के लिए। दुर्भागा जीव उनको चाहता ही नहीं। फिर भगवान् क्या करें, जब पुत्र ही गोद में आना नहीं चाहता। भगवान् तो हाथ फैलाकर जीवों को गोद में चढ़ाना चाहते हैं, लेकिन जीवों को बाप की परवाह ही नहीं। इसमें किसका कसूर है ?

8. संतों से प्रेम, वरना मन संसार रूपी भव–सागर में डूब जाएगा।

9. मन, वचन, कर्म से अपराध से बचता रहे। यदि हो जावे तो मन, वचन, कर्म से क्षमा मांग ले। ब्रह्मा व शिवजी भी यदि ठाकुर के प्रेमी का अपराध कर दें तो ठाकुर एक दम मना कर देता है और कहता है कि मुझे कुछ नहीं मालूम, जिनका अपराध हुआ है, उन्हीं से क्षमा मांगो।

10. जीव मात्र पर दया करें क्योंकि सबके हृदय–कमल पर ठाकुरजी विराजमान रहते हैं। जीव को दुःखी करने से ठाकुरजी स्वयं दुःख महसूस करते हैं। अतः माया दुःख देने वाले को परेशान करती रहती है।

11. गणेश, शिव, ब्रह्मादि को भगवान् ने अखिल ब्रह्मांड को चलाने के लिए नियुक्त किया है, उनसे केवल मात्र यही मांगे कि

मेरा अहंकार भगवत्–चरणों में लग जाए, भगवत्–प्यार ही मेरा अंतिम पुरुषार्थ रहे।

उपर्युक्त 11 साधन ठाकुर को प्रकट कर आवागमन से मुक्ति दिला देते हैं। इनको विचार कर समझना चाहिए। यह संतों से सुना–सुनाया लिख कर भेज रहा हूँ, अंगीकार करने की कृपा करें। हरिनाम को कान से सुनकर ही भगवत्–प्रेम मिलेगा वरना सब व्यर्थ हो जाएगा। भौतिकता की बातें सुन–सुनकर ही तो हृदय में संसार रम गया। इसी प्रकार सत्संग का महत्व है। अध्यातम की बातें सुन–सुनकर भौतिकता के रंग को हटाकर प्रेम का रंग चढ़ाना होगा।

शास्त्रों में केवल हरिनाम में मन लगाने की चर्चा की गई है, सबका निचोड़ यह है कि हरिनाम को कान से सुनकर हृदय से बेकार का कचरा बाहर निकाल दिया जाए ताकि प्रेम का अंकुर निकल सके। जिह्वा से जपने से ही तो कान सुन सकेगा शास्त्रीय उदाहरणः–

1. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानहिं तेऊ।।
2. जीह नाम जप सुनहुं भवानी। भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी।।
3. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।।
4. पुलक गात हिय सिए रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।
5. सादर सुमिरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।
6. मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नयन बहे नीरा।।
7. करउं सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।
राम–राम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोई।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होई ।।

दसों इन्द्रियों रोक कर तथा कान से सुनकर, जीभ से उच्चारण कर ही घर्षण होकर विरहाग्नि जल सकती है। पूरा जीवन बीत गया, अश्रु एक भी नहीं आया। अनेक उदाहरण शास्त्रों में जीभ से

जपने के हैं। कान से सुनकर ही कुछ मिल सकता है। भटकन से सुकृति अवश्य एकत्रित होगी जो कई जन्म की देरी करा देती है। आवागमन तो अवश्य हटेगा, परंतु देर होगी।

दार्शनिक सिद्धांत भी है, जैसे आक्सीजन हाईड्रोजन मिलने पर जल प्रकट होता है, दो लकड़ियों का घर्षण आग प्रकट कर देती है, माचिस की तीली का घर्षण आग पैदा करता है, चकमक को पत्थर पर रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, इसी प्रकार बहुत से उदाहरण हैं।

इसी प्रकार जीभ का उच्चारण व कान का श्रवण विरहाग्नि को प्रकट करा देता है। मेरे गुरुदेव का आदेश है :

While chanting Hari Nam sweetly listen by ears.

स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर (स्वभाव) हरिनाम से पवित्र हो जाते हैं। अनुभव भी कहता है व भक्त कहा करते हैं कि जप भी खूब कर रहे हैं परंतु प्रभाव कुछ नहीं होता। होगा कैसे, ठीक ढंग से जपो, फिर सब कुछ मिल जाएगा।

उक्त सब लेखनी का ज्ञान संतों की कृपा से व शास्त्र पढ़ने से मिला है जिसे आपके गले में सुगन्धित फूलों के रूप में पिरोकर पहनाने जा रहा हूँ, कृपया अंगीकार करें।

श्रीमन् महाप्रभु की प्रतिज्ञा

जिस धन को प्राप्त करना ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं इस संसार में सभी को प्रदान करूँगा और इस अवतार में उस धन (प्रेम) को वितरण करने में पात्र–अपात्र का भी विचार नहीं करूँगा।

22

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
13.07.07

विरह प्राप्ति में बाधाएँ

भक्त के सामने झूठ, कपट करना घोर अपराध है। मैं आपकी सेवा को हर समय याद रखता हूँ। आपकी यह बात सुनकर मुझे बहुत दुःख होता था कि इस जन्म में तो मुझे पाँचवां पुरुषार्थ-प्रेम मिलना असम्भव ही है, आपकी कृपा से ही मिल सकेगा। यह बात मेरे हृदय को विदीर्ण किए जा रही थी।

'विरहावस्था' जब रात में होती थी तो आपकी चर्चा मुझे अखरा करती थी। "ठाकुर जी! क्या आप इतने निष्ठुर हो गये, जो कुछ बात सुनते तक नहीं ?''-मैं ठाकुर जी से कहता था।

आप मेरे हृदय-स्पर्शी अन्तरंग साथी हो। मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ, जबकि आप Phone पर कहते हो, "अनिरुद्ध जी! मुझे आप भूल से गए हो।" जब ऐसी बात सुनता हूँ तो मेरा कलेजा विदीर्ण होने लगता है। "हे मेरे ठाकुर जी! मैं कब उनके मुख से सुनूँगा कि अब तो मुझे भगवान् के प्रति विरह हो रहा है ?"

विरह होना एक खंडे (तलवार) की धार है। बिना भक्त-कृपा से हरिनाम संख्या अधिक होना भी असम्भव ही है। यह मेरी कृपा नहीं है। यह हरिनाम की कृपा ही है जो मेरे पर बरस कर, आप पर बरसने लगी है। विचार करने की बात है। विरह की यह अवस्था हर समय नहीं रहती। हर समय रहती है जब पूर्ण रूप से संसारी-वासना अन्तःकरण से दूर हो जाती है। जब सच्चा ज्ञान हृदय में स्थान पा लेता है। तब हर समय भगवान् की याद हृदय को बींधती रहती है। अतः जब कभी शुष्क हृदय हो जावे तो पश्चाताप् करना चाहिए। शुष्क हृदय तब ही होता है जब भवरोग हृदय को दूषित करता है। जब सत्संग से भवरोग मिट जाता है या किसी सच्चे संत का संग

प्राप्त हो जाता है तो रोग हृदय से दूर हो जाता है। फिर वही विरह–अवस्था जागृत हो जाती है। संत–कृपा जिस जीव पर एक बार हो गई, उसे ठाकुर हटा नहीं सकता। संत के पीछे ठाकुर चलते हैं। संत बनने में देर नहीं होती, यदि जीव हरिनाम की–3 लाख संख्या करने लग जाए। धीरे–धीरे हरिनाम ही उसे संत की पदवी तक पहुँचा देता है।

अब जब आपने हरिनाम की अधिक संख्या पर जोर दिया तो हरिनाम (ठाकुर) ने विरह दे दिया। जिसको एक बार ठाकुर के प्रति विरह हो गया, वह फिर नष्ट नहीं होता। यदि भक्त अपराध व मान–प्रतिष्ठा को काबू में रखे तो। 'अहम्' प्रेम–रस को पी जाता है। वहाँ शरणागति का भाव मूल सहित नष्ट हो जाता है। 'मैं' पना, भगवान् से दूर कर देता है। 'तू'–पना, भगवान् को पास बुला लेता है।

श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि तू योगी बन, अभ्यास और वैराग्य से मन को काबू में कर अर्थात् मेरा नाम अधिक संख्या में कर, जिससे संसार से वैराग्य हो जाएगा अर्थात् संसारी राग की आसक्ति धीरे–धीरे कम होती जाएगी। जिस परिमाण में आसक्ति कम होगी, उसी परिमाण में मेरे से अनुराग (प्रेम) होता चला जाएगा। जब मेरे से अनुराग होता चला जाएगा, तो स्वतः ही मेरे लिए छटपटाहट होना स्वाभाविक ही है। अधिक हरिनाम करने से ही विरहावस्था जागृत हो जाती है। अतः नामाचार्य श्री श्रील हरिदास जी, श्रील गौरकिशोरदास बाबा जी व श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी ने लगातार तैलधारावत् हरिनाम किया। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सबके सामने है। जब तक हरिनाम संख्या अधिक मात्रा में नहीं होगी, तब तक संसारी आसक्ति नहीं मिटने वाली। जब तक संसारी आसक्ति रहेगी, अन्तःकरण को दूषित करती रहेगी। जहाँ अन्तःकरण (हृदय) दूषित रहेगा तो ठाकुर जी से लगाव होना बिल्कुल असम्भव होगा। जब भगवान् से लगाव होगा ही नहीं, तब विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होना सम्भव ही नहीं। फिर आप मुझे दोष देते रहते हो कि मुझ पर

तो आपकी कृपा है ही नहीं। आपकी कृपा बिना भगवान् की कृपा कैसे होगी ?

अब आप ही बतावें, इसमें मेरा क्या दोष है ? जब आप हरिनाम संख्या अधिक करते ही नहीं तो भगवत्–कृपा कैसे हो सकती है ? हलवा बना रहे हैं 5 किलो आटे का, और पानी इसमें डाल रहे हो 100 ग्राम। क्या हलवे का Taste जीभ पर आ सकेगा ? इसी प्रकार जो कलि का धर्म है, "कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिर–सुमिर नर उतरहिं पारा।।" क्या आप हरि का नाम जितना चाहिए, उतना कर रहे हो ? फिर मुझे दोष देते रहते हो कि आप ठाकुर जी से मेरे लिए कहते नहीं हो। अब ठाकुर जी भी आप पर कृपा कैसे करें, जब आप उन्हें चाहते ही नहीं। ठाकुर की दया की तो कोई सीमा ही नहीं, परन्तु आपकी भी दया ठाकुर जी पर होनी चाहिए। जब अपनी हरिनाम संख्या आप बढ़ाते ही नहीं, तो भी ठाकुर जी की आप पर दया हो गई। कैसी बिडम्बना है! हमारे गुरुवर्ग–पार्षदों ने हरिनाम को अपने जीवन में अपनाकर, ठाकुर को अपने पास छद्म रूप से बुला लिया। अरे भाई! ठाकुर तो अपने नाम के पीछे दौड़े आते हैं। हरिनाम ही सारी दुविधाएँ हटाने को तैयार हैं। यदि आप चाहो तब ही। आप चाहते ही नहीं हो, केवल बातें बनाना आपको आता है।

बातें बनाने से काम नहीं होगा। कुछ करके दिखाओ। तब ठाकुर जी का असीम प्यार तुम पर बरस पड़ेगा। यह भी ठीक है कि ठाकुर सुनता है। सुनेगा तब ही, जब खुद भी तो कुछ करे। खुद तो कुछ करना चाहता ही नहीं। मुझे तो बनी–बनाई सामग्री मिलती रहे। भाई! भक्त ने प्रसाद की थाली आपके सामने रख दी, जब हाथ चलाओगे ही नहीं तो क्या प्रसाद मुख में चला जायेगा ? भक्त तो ठाकुर जी से कहता–कहता थक जाता है और समझता है कि मेरी बात ठाकुर जी सुनते ही नहीं। अरे भाई! सुने भी तो कैसे सुने ? कृपा चाहने वाला, कुछ तो करे! निठल्ला होकर बैठा रहे और

कहता रहे तुम मुझको चाहते ही नहीं हो। ठाकुर से जोर देकर कहते ही नहीं हो।

तब मैं तो हैरानी में आ गया और ठाकुर जी से पूछना पड़ा कि कैसे निष्ठुर हो, मेरी सुनते ही नहीं हो, तब ठाकुर जी ने कृपा चाहने वाले की, सारी पोल खोलनी शुरू कर दी। अन्त में लिखना पड़ा कि आप में यह कमी है। अतः ठाकुर जी की कृपा होगी नहीं।

अब, जब आपने हरिनाम पर जोर दिया और हरिनाम संख्या बढ़ाई, तब ही तो ठाकुर–कृपा आप पर बरसने लगी। विरहाग्नि जलने लगी। जब आप ठाकुर जी को चाहते ही नहीं तो ठाकुर क्यों चाहने लगे। यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है, इसे कोई काटे तो उसका जवाब मेरे पास है।

विरहाग्नि (प्रेम–भक्ति) पाँचवां पुरुषार्थ है, जो करोड़ों में से एक को प्राप्त होता है। मैंने कहा कि जो करोड़ों में से एक को होता है। वह हजार में एक को होगा। जो मेरी बात मानेगा, वरना करोड़ों में एक को भी नहीं होगा।

यह पत्र आपको आधी रात में लिखकर डालना पड़ा, जब ठाकुर जी का आदेश हुआ तथा आदेशानुसार ठाकुर जी ने ही लिखवाना शुरू किया। क्या यह अधम जीव उक्त लेख लिख सकता है ? बिल्कुल असम्भव है। आप मानो या न मानो, मुझमें कोई शक्ति नहीं है। शक्ति है भगवान् की। भगवान् ही, लेखन–सामग्री तैयार करवाते हैं। मैं तो उनकी कठपुतली हूँ। जैसा नचाते हैं, नाचता रहता हूँ, मुझसे पत्र लिखवाकर ठाकुर जी अपने भक्तों को, अपने चरणों में लेना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी तरह से भक्त, किसी के द्वारा उनके चरणों में चला जावे।

मुझे ठाकुर जी ने कठपुतली बनाया। कठपुतली का काम है नाचना। अब जैसा ठाकुर जी नचावें, अपने भक्तों को नाच दिखावें। यह भक्तों की सेवा ठाकुर जी ने दी है, जो मेरा जीवन सफल करती जा रही है।

मैं तो भक्तों के मन की प्रसन्नता का साधन हूँ। मुझे कोई भक्त न समझे। हाँ, भक्तों के तन की छाया मुझे शीतलता दे रही है। उससे मैं अपना जीवन आनन्द से गुजार रहा हूँ। यह मेरी सुकृति का ही फल हो सकता है।

सभी भक्तों की कृपा से इस ठाकुर जी के परिवार का सन्त समागम 19 दिसम्बर से 22 दिसम्बर 2007 तक होकर 23 दिसम्बर से 28 दिसम्बर तक जयपुर में हुआ, अतः सभी भक्त–प्रवर, मुझ पर कृपावर्षण करने के लिए पधारें। श्री विष्णु महाराज जी का फोन आया था, इससे पता चला है।

एक आश्चर्यजनक घटना आप भक्तों की कृपा से इस घर पर, जो ठाकुर गोविन्द का है, हुई है। उसे लिखकर सुनाने जा रहा हूँ। सुनकर आपकी नामनिष्ठा में और अधिक वृद्धि हो जायेगी।

मेरा बेटा बैंक में है। दोनों दम्पत्ति मिलकर डेढ़ लाख हरिनाम कर रहे हैं। उसका Transfer दूसरे स्थान पर हो गया। जो उसका साथी है, वह यूनियन का मैम्बर है। उसने लिस्ट देखकर कहा कि आपका Transfer अमुक स्थान पर हो गया। इस पर उसने कहा कि मैं तो नहीं चाहता था परन्तु जैसी ठाकुर जी की मर्जी, जाना ही होगा। जहाँ बदली हुई, उस बैंक के मैनेजर ने बड़े अफसर से कहा कि यदि अमरेश इस बैंक में आ जावे तो बैंक अच्छी तरह चल सकता है। उसकी बदली यहाँ पर कर दो। उसने हाँ कर दी। List तैयार हो गयी। उस मैनेजर ने अमरेश से पूछा कि वे कब Join कर रहे हैं ? अमरेश ने कहा–"जब रिलीव कर देंगे, आ जाऊँगा।"

अमरेश ने कहा "ठाकुर जी! ऐसी गलत जगह भेजकर क्यों मेरा धर्मभ्रष्ट करवा रहे हो। वहाँ दो नम्बर का पैसा नहीं खाऊँगा तो बैरी बनूँगा। मुझे बचालो, मेरे ठाकुर जी।"

दूसरे दिन रिलीव करने लगे तो क्या हुआ। जयपुर से एक पत्र आया, जिसमें इसके नाम के बदले दूसरे का नाम लिस्ट में छपा था। दूसरे को जाना पड़ गया। सभी बैंक वाले अचम्भा करने लगे।

यह गलत कैसे हो गया। उस बैंक वाले भी व इस बैंक वाले भी अचम्भा करने लगे।

"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"

उक्त पंक्ति कृतार्थ हो गयी। जो भगवान् के नाम पर निर्भर है, उस पर भगवत–कृपा स्वतः ही हो जाती है। शरणागत की भगवान हर जगह रक्षा करते हैं तथा संकट हरते हैं। यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। धर्मशास्त्रों के अर्थ भगवत्–कृपा के बिना समझना असम्भव है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर–सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

इसका आशय क्या है ? जरा अन्तःकरण से सोच–विचार करना चाहिए। सार वही है कि जीव को हरिनाम का ही आसरा लेना चाहिए तथा हरिनाम को अधिक से अधिक संख्या में जपना चाहिए। तब ही भगवत् कृपा मिल सकेगी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है–गौरपार्षद जिन्होंने नाम को लाख–लाख जपकर जगत को जानकारी दी थी। जब तक नाम को कलियुगी जीव नहीं अपनाएगा, तब तक उसे भगवत–कृपा मिलना असम्भव है। फिर कहता रहेगा कि मुझ पर भगवान् व भक्त कृपा करते ही नहीं हैं। कृपा कैसे हो, पहले स्वयं की कृपा भी तो हो अर्थात् नाम को स्वयं भी तो अधिक संख्या में जपे। गौरपार्षद पागल थे क्या ? जो लाखों संख्या में नाम जपा करते थे। 18 घंटे नाम जपते थे। आप 10 घण्टे तो नाम करो। 10 घंटे में 3 लाख हरिनाम हो जाता है या 11 घंटे में हो जायेगा। तब प्रेमावस्था स्वतः ही प्रकट हो जायेगी। नाम सुमिरन ही जीवन का आधार होना चाहिए अर्थात् मन लगे न लगे, नाम–संख्या लाखों में होनी चाहिए। विचार करने की बात है–क्या गुरु वर्ग का शुरू में ही नाम में मन लग गया था ? गौरहरि ने एक लाख नाम को क्यों प्राथमिकता दी थी ? क्या शुरू में मन लग जाता है ?

23

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
16.7.07

हरिनाम का स्मरण अन्तःकरण से हो

फोन पर अधिक भक्ति-चर्चा नहीं हो सकती, अतः पत्र द्वारा ही आपसे आशीर्वाद लिया जा सकता है। अतः मुझ अधम पर कृपा करते रहिये। मेरा चतुर्मास में आपके चरणों में आना असम्भव जान पड़ता है। परिवार वाले भेजकर प्रसन्न नहीं हैं; मैं भी जबरन आना नहीं चाहता क्योंकि मैं अपराध से डरता रहता हूँ। यहाँ भी मेरा भजन सुचारू रूप से आप सबकी कृपा से चलता रहता है। पत्रों द्वारा जैसे ठाकुर प्रेरित करता है, मैं लेख रूप में आपसे कहता रहूँगा। मेरी प्रसन्नता तो इसी में है कि हरिनाम आप सबका प्रेम सहित होता रहे वरना जीवन शीघ्र गर्त में जा ही रहा है। सब सुविधायें होते हुए भी यदि हरिनाम नहीं हो रहा है तो जीवन में इसके तुल्य कोई नुकसान नहीं है। यह होगा नाम-जापकों की कृपा से। अपनी सामर्थ्य से कुछ भी नहीं होगा अपने गुरु-वर्ग में नाम-जापकों की बहुतायत है। जिससे भी प्रार्थना करोगे, नाम का आशीर्वाद मिलेगा ही। शिवजी उमा महारानी को माध्यम बनाकर जीवों को सच्चा रास्ता बता रहे हैं कि

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

सुमिर-सुमिर, दो बार क्यों कहा गया है ? इसका आशय है कि चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते, उबासी लेते, छींकते-खांसते हर समय हरिनाम मुख से उच्चारण करने से सुकृति होती है। जैसा कि संसार में देखा जाता है कि आपस में मिलते हुये बोला करते हैं

"भैया राम-राम!" "राधा-गोविंद!" "जै श्री राधे!" -

आदि आदि। इसका आशय यह है कि किसी भी तरह मुख से हरिनाम उच्चारण हो तो सुकृति इकट्ठी होकर जन्म-जन्मातर में

कभी तो दुःख के सागर, आवागमन, जन्ममरण से छुटकारा मिलेगा। मै नहीं कह रहा हूँ। धर्म–शास्त्रों में लेख है–

"भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ।।"
''जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (जीभ) नाम जप जानेऊ तेऊ।।''
''कृत जुग त्रेता, द्वापर पूजा मख अरु जोग।''
''जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावहिं लोग।।"
''चहुँ जुग तीन काल तिंहु लोका। भये नाम जप जीव बिसोका।।"
''चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहीं आन उपाऊ।।"

कितने उदाहरण देकर समझाया जाये, कोई अन्त नहीं है।। अतः जो भी नाम का जीवन में सहारा लेगा, वही इस जीवन में सुख–सागर में तैरेगा। श्रीगुरुवर्ग ने केवल माला का नियम इसीलिये बनाया है कि जापक पर अधिक भार न बन जाये। छोड़ भी सकता है। लेकिन दो–चार साल के बाद तो एक लाख नाम यानि 64 माला का नियम लेना चाहिये। यदि इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति करनी हो तो, सुखी जीवन बिताना हो तो। फिर दोबारा मानुष जन्म मिलना असम्भव ही है। सभी कहते रहते हैं कि सेवा कर रहे हैं। हरिनाम का समय मिलता ही नहीं है। फिर तो सेवा से भक्ति मिलनी चाहिये। सेवा का आशय–भक्ति। यदि भक्ति (सेवा) असली (वास्तविक) है तो ठाकुर से लगाव होना चाहिये। जब लगाव होगा तो ठाकुर जी से प्रेम तो होगा ही। जब प्रेम होगा तब शरणागति का भाव आयेगा ही। यदि शरणागति का भाव आएगा तो विरहाग्नि प्रगट होना परम–आवश्यक है। यह तब ही होगा, जब संसार से प्रेम हटेगा। केवल कहने से कुछ नहीं होता। केवल बुद्धि ही कह रही है, हृदयगम्य आचरण हुआ ही नहीं है। अंतःकरण ने इसे स्वीकार किया ही नहीं है। कहते–कहते सारी उमर चली गयी कि सेवा ठाकुर की हो रही है तो सेवा का फल तो ठाकुर से प्रेम होना चाहिये। यदि नहीं है तो केवल दिखावा है। कठपुतली का नाच है। जरा गहरे दिमाग से सोचो। आप धोखे में हो। असलीयत बहुत दूर है। हरिनाम–संख्या, एक लाख से तीन

लाख करनी होगी। श्रीगौरहरि ने एक लाख नाम प्रतिदिन जप करने के लिए सबको आदेश क्यों दिया था। वे जानते नहीं थे कि 64 माला में शीघ्र मन नहीं लगेगा, लेकिन अधिक जप होगा तो सुकृति ज्यादा होगी। वही सुकृति नाम में मन लगा देगी। हमारे गुरुवर्ग ने क्यों संख्या बढ़ाकर, रात में 2 बजे उठकर प्रातः तक हरिनाम करते थे। दिन में भी नाम पर ही दिन बिताते थे। क्या वे पागल थे? नहीं! हम पागल हैं, जो बहाना बनाते रहते हैं कि समय ही नहीं मिलता। और कामों के लिये समय कैसे मिल जाता है? यह सभी काम असार व अनित्य हैं। जो नित्य रहने वाला कर्म है, उसके लिये समय नहीं मिलता। क्यों अपना जीवन नरक में जाने के लिये तैयार कर रहे हो? शर्म की बात है। ज्ञानी होते हुये भी अज्ञानी बनते जा रहे हो। गहरा दुःख है लेकिन क्या किया जाये? कोई मेरी सुन ही नहीं रहा है। समय सबको मिलता है। मैंने नौकरी की, तब मुझे एक लाख हरिनाम का समय कैसे मिल जाता था? सच्ची बात तो यह है कि हरिनाम में 100% श्रद्धा नहीं है। जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ मन का लगाव स्वतः ही होता है। झूठ–मूठ कहने से काम चलने वाला नहीं है। थाली सामने परोसी गई, फिर भी खाना नहीं चाहो तो परोसने वाला क्या करे! भूखे मरो! कर्मों को रोवो! समय चला जायेगा सिर पर हाथ रखकर रोवोगे। दिन में, (सूर्य भगवान् का अपराध), दोनों संध्या, पर्व, त्योहार, माहवारी, प्रातः, शाम, एकादशी, पूर्णमासी, मंगलवार, बेमन से, रुग्णावस्था, क्रोधवृत्ति व अप्रसन्नता की अवस्था में जो भी स्त्री–संग करता है, वह महान अपराधी होकर दुष्टों को जन्म देता है। वही सन्तान माँ–बाप तथा पड़ोसियों के दुःख का कारण बन जाती है। हरिनाम में इसका मन नहीं लग सकता। घर में कलि का प्रवेश हो जाने से कलह रहेगा। हरिनाम का अनुष्ठान करके स्त्री संग करो तो महात्मा जन्म लेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कोई किसी के दुःख का कारण नहीं है। स्वयं ने ही दुःख का बीज बोया है। काम का वेग भक्ति को नाश कर देता है। प्रेमावस्था को सुखा देता है। अतः संयम रखकर जो हरिनाम

करेगा, वही शरणागति–भाव को जागृत करेगा वरना धूलि में से तेल निकालना चाहेगा।

अब भी समय रहते समझ जावो, वरना दण्ड भोगना पड़ेगा। संयम तोड़ोगे तो रोगी हो जाओगे। हड्डियाँ गल कर निकलेंगी। फिर भजन बहत दूर की बात होगी। समझाते–समझाते, मैं तो थक गया, कब चेत होगा ? क्या सोते ही रहोगे ? एक दिन हमेशा के लिये सो जावोगे। कोई नहीं पूछेगा। अब खास बात बता रहा हूँ। सभी कहा करते हैं कि हरिनाम में मन नहीं लगता। लगेगा कैसे ? क्योंकि इसका लाभ किसी को मालूम ही नहीं है। लाभ मालूम हो तो नाम पर श्रद्धा अवश्य होगी। जब श्रद्धा होगी तो मन कहीं जायेगा नहीं। जब मन कहीं नहीं जावेगा तो एक अलौकिक–आनन्द की मस्ती अनुभूत होगी। मस्ती में झूमेगा। कभी हंसेगा। कभी सुस्त होकर पड़ा रहेगा। एक पागल जैसी स्थिति प्रगट हो जायेगी। निडरता आ जायेगी, जैसे प्रहलाद महाराज को आई थी। हरिनाम–महामंत्र की चार माला कान से सुनकर करने से अन्तःकरण में एक अलौकिक भगवत्–दर्शन होने लगेगा जिससे मन वहाँ से हटना नहीं चाहेगा। दिन रात आनन्दानुभूति हृदय में लहरें लेने लगेगी। यह अवस्था इसलिये नहीं हो रही है क्योंकि अन्तःकरण में संसार का कूड़ा–कर्कट भरा पड़ा है। चार माला करने से वह कूड़ा–करकट जलकर, अश्रुधारा में बहकर बाहर निकल जायेगा। चार माला क्यों नहीं हो रही है ? इसका कारण है–भक्तापराध। मान–प्रतिष्ठा की चाह में अहंकार छुपा रहता है। अहंकार भगवान् का शत्रु है। शत्रु से प्यार करना भगवान् से दूर रहना ही है। आप सभी Phone करते रहना तो सजगता रहेगी वरना आँखें बन्द हो जायेंगी। यह मैं उकसा नहीं रहा हूँ। इस तरह से ठाकुर जी ही मेरे माध्यम से आपको अपनाना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ! नारायण वासुदेव

24

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
1.08.07

जय श्रील गुरुदेव

मन की सृष्टि का मुख्य विधाता है। जैसा संकल्प–विकल्प मन का होगा, वैसा ही सृष्टि का प्रादुर्भाव होगा। जब मन में हरिनाम का प्रवेश (आवेश) नहीं है अर्थात् मन एकमात्र हरिनाम नहीं करता है तो उस मन से शुद्ध सेवा भी होना निश्चय ही असंभव रहेगी। जो सेवा होगी, वह भौतिकी सेवा होगी न कि आध्यात्मिक सेवा।

आजकल हम देख भी रहे हैं कि प्रत्येक मंदिर में कथा–कीर्तन भी होता है, आकर्षणमय आयोजन भी होते रहते हैं, परन्तु मन का बदलाव कुछ भी नहीं हो रहा है। भगवत्–प्रेम अथवा ठाकुर की तरफ। मन का झुकाव होना चाहिये लेकिन झुकाव हो रहा है माया की तरफ आपस में लड़ना–झगड़ना, सोना, खाना, पैसा बटोरना और मौज उड़ाना–यही स्थिति प्रत्येक स्थान पर होती हम देख रहे हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है ? केवल मात्र हरिनाम की अवहेलना से। हरिनाम जो कलियुग का एकमात्र मुख्य धर्म है, उसे ठुकराने से। यदि साधक चौंसठ माला हरिनाम की नहीं करते तो सेवा, कथा कीर्तन के आकर्षणमय आयोजनों में कोई बल नहीं रहेगा। केवल दिखावामात्र ही रहेगा।

मेरे गुरुदेव ने जब संसार छोड़ने का मन किया तो वृन्दावन मठ में सभी शिष्यों को गुरु होते हुए भी आवेदन किया था कि जो हरिनाम को अधिक से अधिक अपनायेगा, वही मेरा खास प्यारा शिष्य व मेरी सेवा का अधिकारी होगा। यही पूरी चर्चा का मुख्य विषय था। तब से मैं उनकी कृपा–प्रार्थना कर, उनका आदेश

उनकी ही कृपा से पालन कर रहा हूँ। अन्यों को भी, जैसी मेरे मन की भावना है, अधिक से अधिक हरिनाम करने की प्रार्थना करता रहता हूँ। इसमें कोई भी मेरी शक्ति नहीं है। इसके पीछे केवल मात्र गुरु की कृपा तथा तीन लाख नाम का आशीर्वाद है। जिसको भी बोलता हूँ, तीन लाख नाम ही अपना प्रभाव डालकर उसके मन को हरिनाम में लगाता रहता है। बहुतों को लाभ भी हो रहा है। पंचम पुरुषार्थ– जो प्रेमावस्था है, वो तो बहुत दूर की बात है फिर भी साधकों को नाम की कुछ–कुछ उपलब्धि हो रही है। इसके पीछे गुरुदेव व मेरे पर कृपा बरसाने वाले संतों का तथा हरिनाम की प्रेरणा का हाथ है।

यदि सुचारु रूप से सेवा करनी हो तो मूल सेवा होगी–चौंसठ माला हरिनाम जप की। प्रत्येक साधक प्रेमपूर्वक मन लगाकर करें तो हरिनाम ही ठाकुर की शुद्ध–सेवा सभी से करवा लेगा। अब जो सेवा हो रही है, पैसे की तथा मान–प्रतिष्ठा की इससे ठाकुर को कोई लगाव ही नहीं है। अब तक की ठाकुर सेवा में कोई बल होता तो प्रत्येक धार्मिक स्थान भौतिक स्थल नहीं बनता। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। क्या हरिदास ठाकुर बाइस बाजारों में बेरहमी से पिटकर भी अपनी जिंदगी से हाथ नहीं धो लेता ? प्रहलाद जी, तो केवल पाँच वर्ष के बालक थे। उनके पिता बहुत बड़े सम्राट् थे। यदि वो चाहते तो अपने पुत्र को हाथों से पकड़कर, भींचकर खत्म कर सकते थे। उसका पिता मारने का हर उपाय कर के थक गया। क्या प्रहलाद का बाल–बांका कर सका ? उसका पिता स्वयं जिंदगी से हाथ धो बैठा!

मीरा एक अबला नारी थी, बेचारी बेसहाय थी। उसके जेठ ने उसे मारने की कोई कसर नहीं छोड़ी, क्या मार सका ? कहते हैं :–

"जिसको राखे साइयां, मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।।"

जब ऐसे–ऐसे ज्वलन्त उदाहरण हैं फिर भी मानव की आंख खुलती नहीं। बेहोश होकर सोता रहता है। बहुत बड़ा दण्ड मिलेगा।

कोई बचाएगा नहीं। अकेले को भुगतना पड़ेगा। देवता भी तरस रहे हैं कि हमें मानव देह मिल जाये तो हमारा यह आवागमन, जो दारूण दुःख का समुद्र है, छूट जावे। कितने दुःख की बात है! हमारा जन्म भी भारत में हुआ है, जहाँ भगवान आते हैं। फिर अच्छे कुल में हुआ। रहने के लिये अनुकूल स्थान भी मिला। संग भी अच्छा मिला। फिर उससे भी बड़ा सौभाग्य कि भगवान् ने सतगुरु रूप में आकर हमें अपनाया। सबसे बड़ा सौभाग्य कि हमने ऐसे कलियुग में जन्म लिया। जिसमें जप, तप ध्यानादि नहीं करना पड़ता। केवल घर में (वन में नहीं) रहना है। गर्मी में पंखे के नीचे तथा सर्दी में हीटर के पास, मकान में बैठकर, बड़ी आसानी से हरिनाम कर सकते हैं। इतनी सुविधा होते हुए भी आँख बन्द करके सोये हैं। इतना नुकसान कर रहे हैं, जिसकी कोई हद नहीं। अभी तो शरीर स्वस्थ है, नाम–धन कमा लो। रुग्ण होने पर खाट में पड़े–पड़े चिल्लाना पड़ेगा। नरक–भोग करना पड़ेगा। कोई साथ नहीं देगा, अकेले तड़पोगे।

शुद्ध नाम तब ही होगा, जब हम अन्य–अभिलाषा से शून्य होकर होंगे। भगवान् को पुकारो। कोई भी काम जब अपने सुख के लिए होगा तो काम तथा भगवान् के सुख के लिये होगा तो प्रेम। जैसे बच्चा माँ–माँ पुकारता है तो माँ को सुख होता है क्योंकि बच्चा माँ पर ही आश्रित रहता है। यदि भक्त, भगवान् के सुख के लिये पुकारता है, तो शरणागति बिन–बुलावे प्रगट हो जावेगी। जब शरणागति हो जायेगी तो भगवान् शरणागत के आश्रय बन जायेंगे।

श्री हरिनाम की एक माला भी यदि नाम को कान से सुनकर की जाए तो यह सोलह माला के बराबर होगी अर्थात् 1 माला=16 माला। इस तरह से चार माला करने पर यह 64 माला के बराबर होंगी यदि हरिनाम को सुनकर की जाएँ तो। यदि बिना कान के सुने हरिनाम होगा तो फिर एक माला की बजाय 16 माला ही करनी पड़ेंगी। 16 माला में, एक से डेढ़ घंटा समय लगेगा जबकि कान से सुनने पर एक माला अधिक से अधिक 10 मिनट में हो

जाती है। 4 माला 45 मिनट में हो जायेंगी। कान से हरिनाम को सुनना अधिक लाभदायक होगा। कान का न सुनना नुकसानदायक होगा। शिवजी नाम संख्या का प्रमाण घोषित करते हुए कह रहे हैं–"जासु नाम जप एकहिं बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।" कम संख्या में जपना अधिक लाभदायक है। हरिनाम को सुनकर के 4 माला से विरहाग्नि में जलना इसलिए घोषित किया गया है क्योंकि यह 64 माला के जपने से भी अधिक लाभप्रद है। 4 माला में अष्ट–सात्विक विकार प्रगट होंगे ही जबकि नाम को बिना कान से सुने 64 माला में भी कदापि नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमाकर देख सकता है। मेरी शत–प्रतिशत गारंटी है।

"जासु नाम जप सुनह भवानी। भव–बंधन काटहिं नर ज्ञानी।।"
"नाम–प्रसाद शंभू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।"
"नाम प्रभाव जान शिव जी को। कालकूट फल दीन अमी को।।"

विष, अमृत बन गया। जिस साधक को हरिनाम में रुचि हो गयी उसने अखंड, असीम सत्संग कर लिया। अनेक मंदिरों का ठाकुर–दर्शन कर लिया। अनेक तीर्थाटन कर लिया व अनन्त–पुण्य अर्जन कर लिया अर्थात् जो भी धर्मार्थ कर्म करना था, सभी अर्जन कर लिया। उसे अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पति हस्तगत हो गयी। अगर हरिनाम में रुचि नहीं हुई तो उक्त सभी धर्म–कर्म निरर्थक हो गये। उक्त धर्म–कर्म इसलिए अर्जन किये जाते हैं ताकि भगवत्–नाम में रुचि उत्पन्न हो जाये। भगवत्–नाम में सच्ची रुचि होना कोई कठिन काम नहीं, यदि थोड़ा सा अभ्यास किया जाये। इससे मायिक–आसक्ति धीरे–धीरे कम होती जायेगी व भगवत्–आसक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। मानप्रतिष्ठा व भक्त–अपराध से बचने पर शीघ्रातिशीघ्र भगवत्–प्रेम प्रकट हो जाता है। अन्य दुर्गुण अष्ट सात्विक विकारों में दग्ध हो जाते हैं तथा सद्गुण हृदय में उदय होने लग जाते हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती। हरिनाम–स्मरण के लिये मन को

एकाग्र करने हेतु तीन साधन

भक्त का भाव **कान का श्रवण** **जीभ का उच्चारण**	} **मन**

1. जीभ का उच्चारण+कान का श्रवण+भक्त का भाव। भाव में प्रेम–रसास्वादन की कामना करनी चाहिए।

2. किसी सन्त के चरणों में बैठकर हरिनाम–स्मरण करना एवं उस सन्त की सेवा में स्वयं को नियोजित करना। जैसे–शरीर में मालिश, स्नान, तन को दबाना आदि। प्रसाद–पानी देकर सेवा करना। इसमें नाम श्रवण गौण होगा तथा ज्ञान नेत्र द्वारा सन्त–दर्शन मुख्य होगा। इससे हृदय में एक प्रकार की रील चलेगी।

3. किसी गौर–पार्षद द्वारा ठाकुर जी से सिफारिश करवाना। इसमें भी हृदय–मन्दिर में एक रील गठित होगी। इसमें भी हरि–स्मरण अर्थात् कान का श्रवण गौण होगा तथा ज्ञान नेत्र द्वारा दिव्य–दर्शन प्राप्त होगा।

ठाकुर या सन्त के नाम, रूप, गुण, लीला आदि में कोई अन्तर नहीं होता, चारों समान ही होते हैं।

भक्त, भक्ति, भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इन सबको वंदन किए, नाशें विघ्न अनेक।।

उक्त साधन करने से मन, मायिक–चिन्तन से बिल्कुल बच जाता है तथा दिव्य–दर्शन का लाभ स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। भक्त का काल्पनिक संकल्प–विकल्प सत्यता के लिए होता है। हम धर्म शास्त्रों में देखते आ रहे हैं कि मानसिक रूप से फाग खेलने पर ठाकुर का डाला हुआ रंग प्रत्यक्ष में नजर आता है। गर्म खीर के भोग में अंगुली डालकर देखने पर प्रत्यक्ष में फफोले अंगुली पर नजर आने लगते हैं।

सन्त व ठाकुर का शरीर चिन्मय होता है, मायिक नहीं होता। सन्त पर दोषारोपण करना स्वयं को संकट में डालना है। जिस

प्रकार गंगा जी के जल में गन्दी नालियाँ आकर मिलने पर भी गंगाजल सदैव पवित्र रहता है, उसी प्रकार सन्त सदैव निर्मलता को प्राप्त किए रहता है।

भगवान् तो सन्त को अपना आराध्य देव घोषित करते हैं। इनके प्रति दोषारोपण करना महान अपराध है। यदि दोषारोपण होता है तो हरिनाम स्मरण समूल नष्ट हो जाता है। सोचना भी बड़ा खतरनाक है। अतः साधक को सन्त–दोषारोपण से बड़ी सावधानी से बचते रहना चाहिए तब ही उसे पंचम पुरुषार्थ–प्रेम की प्राप्ति हो सकेगी, विरहाग्नि जल सकेगी तथा अष्ट–विकार प्रकट हो सकेंगे। वरना लाख–लाख हरिनाम–स्मरण से भी कुछ लाभ प्राप्ति नहीं हो सकेगी। आजमाकर देखा जा सकता है।

कोई–कोई साधक कहा करते हैं कि हमारा मन एक माला में नहीं टिकता। यह इनकी बहुत बड़ी भूल है। संसारी काम में घंटों तक मन कैसे टिक जाता है ? वहाँ भी मन नहीं टिकना चाहिए। केवल बेपरवाही के अलावा कुछ नहीं है। अपना जीवन बर्बाद करना है। मानव जन्म दुबारा नहीं मिलेगा। फिर–चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाते रहोगे। ऐसा सुन्दर संयोग (मौका) मिला परन्तु यदि नासमझी से इसे बर्बाद कर दिया तो इसका दण्ड अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

सतयुग, त्रेता व द्वापर में साधक को अत्यंत परिश्रम करना होता था। तपस्या, यज्ञ तथा पूजा हजारों साल तक करने पर भी भगवत्–प्राप्ति नहीं होती थी लेकिन कलिकाल में घर बैठे, भगवत् प्राप्ति सहज में हो जाती है। सब साधन उपलब्ध होते हुए भगवत्–नाम नहीं होता तो कितनी मूर्खता है। रोना पड़ेगा, पछताना पड़ेगा। अब भी समझ जावो तो श्रेयस्कर हो सकता है। शरणागत का जीवन तो भगवान् स्वतः ही सुन्दर रूप से चलाते रहते हैं। उसको कुछ करना ही नहीं पड़ता। किसी न किसी के द्वारा हृदय में प्रेरित करते रहते हैं। फिर भी मानव समझ नहीं रहा है। अफसोस है, दुःख है, पर क्या किया जाए–इसका असीम दुर्भाग्य।

25

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
5.08.07

श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रतिदिन एक लाख नाम करने का भक्तों को आदेश

मैं अल्पज्ञ, मूढ़, अज्ञानी, अधम, भगवत्-संबंधी लेख लिखने में सक्षम नहीं हूँ परन्तु श्री गुरुदेव व भक्तों की कृपा परवश होकर ऐसा व्यसन हो गया है कि एक मात्र हरिनाम की महिमा को, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा प्रेरणा देकर, प्रेरित किया जा रहा है। अन्तःकरण में यह पूर्ण विश्वास जम गया है कि श्री गुरुदेव की कृपा से भक्तों की कृपा, मुझ अधम पर बरसती रहेगी। मेरा भजन-स्तर बढ़ता रहेगा। ऐसा प्रत्यक्ष में महसूस भी हो रहा है। प्रतिदिन तीन लाख नाम कोई भी अपनी शक्ति से नहीं कर सकता। इस नाम की कृपा से ही चंडीगढ़ में बहुत से भक्त एक लाख नाम करने में लगे हैं एवं उनको प्रत्यक्ष संसारी व आध्यात्मिक लाभ भी दिखाई दे रहा है। बारबार फोन आ रहे हैं कि हम आपको लेने आ रहे हैं। आपके बिना हमारा भजन-स्तर घटता जा रहा है।

मैंने कह दिया कि जन्माष्टमी पर आ सकता हूँ थोड़े दिनों के लिए क्योंकि गृहणी भी भक्त है, बीमार रहते हुये भी एक से डेढ़ लाख नाम नित्य कर रही है। उसके अपराध से मैं डर रहा हूँ। यह मुझे भेजना नहीं चाहती।

हरिनाम साध्य व साधन दोनों है

देखा गया है कि सभी धर्मावलम्बी-हिन्दु, सिख, मुस्लिम, ईसाई आदि माला पर प्रभु का नाम जपते रहते हैं। कलियुग में ही नहीं, चारों युगों में नाम का प्रभाव शास्त्रों ने घोषित कर रखा है-

"चहुँ जुग, चहुँ श्रुति, नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।"

यदि कोई साधक एक लाख नाम नित्य स्मरण करे तो नाम ही साधक की संसारी बाधा तथा आध्यात्मिक बाधा को दूर कर अपने में रुचि पैदा कर देता है। नाम में रुचि नहीं है, इसका खास कारण है– पूर्ण श्रद्धा की कमी। मन वहीं लगता है जहाँ उसे लाभ दिखाई देता है। इससे बड़ा कोई लाभ नहीं है।

"लाभ कि किछु हरि–भक्ति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति वेद पुराणा।।"
''हानि कि जग एहि समय किछु भाई।
भजिये न रामहिं नर तन पाई।।"

–शिव वचन

साधक हरिनाम भी तब ही कर सकेगा जब यह वह अपराधों से तथा मान–प्रतिष्ठा से बचता रहेगा। भगवत्–संबंध जोड़े बिना भजन आरंभ ही नहीं होता। दास का, सखा का, माता–पिता आदि का भाव। माता–पिता के संबंध में शिशु का न अपराध होता है न मान–प्रतिष्ठा की चाह रहती है। अतः शीघ्र ही हरिनाम में रुचि बन जाती है। यह सम्बंध भी श्री गुरुदेव व ठाकुर जी देंगे, जब हरिनाम–संख्या अधिक होगी।

यह तो प्रत्यक्ष ही है, सभी जानते भी हैं कि गौरहरि जी ने अपने गृहस्थ भक्तों को आदेश दिया था कि जो गृहस्थ, नित्य चौंसठ माला जप करेगा, उसी घर में मैं भोजन करूँगा। यह एक बहाना था। इससे सभी भक्त एक लाख हरिनाम करने लग गए। गौरहरि जी को अच्छी तरह पता था कि चौंसठ माला में किसी का मन निरंतर लगेगा ही नहीं, परन्तु भगवत्–नाम ही अधिक संख्या में जपने से अपने में रुचि पैदा करा लेगा। भागवतादि शास्त्रों में लिखा भी है कि खाते–पीते, सोते–जागते, चलते–फिरते, फिसलते, खाँसते, उबासी लेते भी नाम उच्चारण होने से सुकृति अवश्य होती रहेगी। उक्त अवस्था में मन से नाम नहीं निकलेगा। इसी वजह से

गौर–हरि ने साधक को नाम में लगा दिया। अब मेरी भी सुन लो। श्री गुरुदेव ने मुझे भी स्वप्न में आदेश दिया कि तुम तीन लाख हरि–नाम नित्य किया करो तथा अन्यों को भी एक लाख नाम की प्रेरणा करो। यही मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी। मैंने निवेदन किया कि मुझमें ऐसी शक्ति नहीं जो एक गिरा हुआ प्राणी अन्यों को प्रेरणा दे सके। श्री गुरुदेव जी बोले, "भगवान् जी व तुम्हारा तीन लाख 'हरिनाम' ही अन्यों को हरिनाम जप करने को बाध्य कर देगा। तुम्हें केवल आग्रह करना है।"

मन लगाने के लिये एक माला ही काफी होगी। अधिक बोझ डालना उचित नहीं। एक माला में 1728 बार (16x108) भगवान् को पुकारना पड़ता है। तो भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर एक लाख भी करा देंगे, चाहे मन लगे या ना लगे।

"Chant Harinam Sweetly & Listen by Ears."

शिव जी ने कहा है :–

1. "सादर सुमिरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।"

2. "राम नाम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोई।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होई।"

3. "कर में तो माला फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं।।"

जब संसार का काम ही बिना मन के बिगड़ जाता है तो बिना मन के हरिनाम कैसे सफल होगा ? उदाहरण के तौर पर मान लो– मेरे बहुत प्यारे दोस्त का पुत्र बहुत ज्यादा बीमार हो गया। वह डाक्टर की उधेड़बुन में था कि किसको दिखाऊँ। शहर में डाक्टर को दिखाना था। पत्नि से परामर्श कर रहा था। मैंने उसे कहा कि तुम शहर जा रहे हो तो मेरे लिये एक किलो अंगूर लेते आना। उसने कहा कि लेता आऊँगा। जब डाक्टर को दिखा कर लौट रहा था तो उसे याद आया कि मित्र ने कुछ मंगाया था परन्तु मैंने अच्छी तरह सुना नहीं, क्योंकि मैं चिंता में था। पत्नि को बोला कि तूने सुना

होगा क्या मंगाया था ? उसने कहा कि शायद बर्फी मंगाई होगी। उसने एक किलो बर्फी का डिब्बा लाकर मेरी मेज पर रखा और कहा कि ये रही आपकी बर्फी। मैंने देखते ही माथे पर हाथ मारा और बोला कि कर्म फूट गए। बुखार में बर्फी खाऊँ। अंगूर मंगाये थे। अंगूर शहर में मिलते हैं। कोई जाने वाला भी नहीं। अब मैं क्या खाऊँ ? बेचारा हक्का-बक्का रह गया। खिसकना भी मुश्किल हो गया। मैंने कहा कि घर क्यों नहीं जाते हो। यह बर्फी भी लेते जाओ और खुश होकर खाओ। अब विचार करना होगा कि जब बिना मन के संसार का काम ही बिगड़ जाता है तो बिना मन अर्थात् बिना कान के सुने हरिनाम कैसे सफल होगा ? फिर भी सुकृति तो होगी ही। इसी वजह से एक लाख नाम करना ही चाहिये।

मन का स्वभाव तो लगने का है परंतु साधक श्रद्धा कम होने से लगाना नहीं चाहता। एक परीक्षार्थी तीन घंटे तक मन को इतना लगा देता है कि यदि उसके पास कोई खड़ा हो तो उसे मालूम तक नहीं पड़ता कि उसके पास में कोई खड़ा भी है क्योंकि उस समय उसको मन लगाने में ही लाभ दिखाई देता है। जब पत्र लिखते हैं या कोई अंकों का जोड़ लगाते हैं तो भी पंद्रह बीस मिनटों तक मन कहीं नहीं जाता।

निष्कर्ष यह निकलता है कि साधक हरिनाम का लाभ नहीं समझता इसीलिये उसका मन डाँवाडोल रहता है। हरिनाम के बराबर संसार में कोई लाभ नहीं व मन से न जपने पर इसके बराबर त्रिलोकी में कोई नुकसान भी नहीं है। कहते हैं कि समय नहीं मिलता यह तो केवल बहाना है। समय सभी को मिलता है। प्रातःकाल जल्दी उठो। ग्राम्य-चर्चा मत करो। समय जरूर मिलेगा। जवानी में नाम को नहीं अपनावोगे तो बुढ़ापे में कई रोगों से ग्रसित होकर चिल्लाते रहोगे। फिर पछताने के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा।

मन का स्वभाव ही ऐसा है कि जहाँ उसको लाभ दिखाई देता है, वहाँ वह शीघ्र लग जाता है। नाम की कितनी कीमत है। संसार में देखा जाता है कि कोई आपस में मिलता है तो बोलते रहते हैं– राम–राम जी, जै गोपीनाथ की आदि–आदि क्योंकि नाम मुख में आने से धीरे–धीरे भाग्य उदय होने लगता है। अतः ऐसा रिवाज चला है। मैं असमर्थ हूँ। सुचारु रूप से मुझे लिखना भी नहीं आता। गाँव का एक गंवार कैसे लिख सकता है ? अपनी गाँव की भाषा में ही तो लिखेगा। अतः भक्तगण मेरी कमी पर नजर नहीं करके, लेख पर नजर रखें।

भक्त का हरिनाम में मन तब ही लग सकता है जब वह टी. वी. और अखबार से बिल्कुल सम्बंध तोड़ देगा। टी.वी. साक्षात् कलि का रूप है। इसने सारी मर्यादा का लोप कर दिया। शर्म खत्म कर दी। बदमाशी के अलावा कुछ शिक्षा नहीं देता। रहा अखबार जो इधर–उधर की चर्चा कर सबको भ्रमित करता रहता है। Mobile भी इसी का रूप है। गुप्त रूप में क्या–क्या करवाता रहता है। इससे तो थोड़ा संपर्क रखना ही होगा। जरूरी काम इससे शीघ्र हो जाते हैं। इनमें भक्त की फंसावट होना स्वाभाविक ही है।

हरिनाम अधिक जपने से अर्थात् एक लाख से तीन लाख तक जपने से यह हरिनाम ही अष्ट–विकार जागृत कर देगा। शरणागति–भाव तब ही उदय होगा। जब अष्ट–विकार जागृत होगा तब संसार अन्तःकरण से निकलेगा। नाम ही की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। बहुत सत्संग भी किया। बहुत शास्त्र–पठन भी किया। बहुत साधु–संग भी खूब की लेकिन हरिनाम अधिक संख्या में नहीं हो रहा है। इसका क्या कारण है ? इसका केवल मात्र एक ही कारण हो सकता है– भक्त–अपराध! पिछले जन्मों का तथा इस जन्म का। मान–प्रतिष्ठा की भूख अन्तःकरण में लगी है। भगवत्–प्रसाद को प्रसाद समझ कर नहीं लिया। इन्द्रिय तर्पण कर प्रसाद–सेवन किया। मन्दिरों में जहरीला दान भी आता है। ठाकुर

तो पचा सकता है परन्तु साधारण व्यक्ति नहीं पचा सकता। भगवान् घोषणा कर रहे हैं–

"कोटि विप्र वध लागहि जाहू।
आये शरण तजहुँ नहिं ताहू।।"

भक्त थोड़ा भी भगवान को पुकारेगा तो क्या भगवान् नहीं सुनेगा ? भगवान् को पुकारने से श्रद्धा बढ़ती है। पहली भक्ति है–नाम सेवा, दूसरी है मठ–मंदिर–सेवा, गुरु–सेवा आदि–आदि। यदि दोनों साथ–साथ हों तो शरणागति का भाव आने में देर नहीं होगी।

मन्दिरों में देखा जा रहा है कि सभी साधक सेवा में रत रहते हैं परन्तु माला को हाथ में लेना नहीं चाहते। सेवा, सात्विक न होकर तामसिक–राजसिक हो रही है। कठपुतली सेवा होती है। माला तो दूर की बात है, आरती में भी आना मुश्किल है। घर छोड़ा, भाई–बन्धु छोड़े, फिर भी भजन से अति दूर। भजन–गीति सभी प्रकार से ठाकुर–प्राप्ति का साधन बता रही है। इसे गौर से पढ़ो भगवत–चरणों में मन लगाने का साधन अर्थात् हरिनाम में मन कैसे लगे, सब कुछ समझ में आ जावेगा।

(क) हरिनाम को कान से सुना जाये। परंतु कहते सुना गया है कि थोड़ी देर बाद मन भाग जाता है। यह तो स्वाभाविक है। मैं मानता हूँ। जब निरंतर हरिनाम में मन लग जाता है तो जीभ तथा कान का घर्षण होता है। यह घर्षण ही विरहाग्नि प्रगट कर देता है। ऐसा सत्य–सिद्धान्त है। क्या भगवान् निर्दयी हैं ? जो सुनेंगे नहीं ? भगवान् तो दया के समुद्र हैं जब जीवात्मा उन्हें बार–बार पुकारती है तो वह रह नहीं सकते, दौड़े चले आते हैं। कोई भी आजमाकर देख सकता है, लेकिन वही आजमाएगा जिसको भगवान् की जरूरत है।

"मम गुन गावत पुलक सरीरा
गद्‌गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"

"ताकि करूँ सदा रखवारी।
जिमि बालक राखहिं महतारी।।"

जब पुलक होगा व अश्रुधारा बहेगी तो भगवान् अश्रुधारा में बहकर अन्तःकरण में से बाहर प्रगट हो जायेंगे।

(ख) मन, क्रम, वचन कपट तजि, जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।

राम जी की उक्त घोषणा कितनी श्रद्धा उत्पन्न कर रही है! भगवान् का खास रहने का स्थान है–सन्तों का हृदय–कमल। साधक जब भी हरिनाम पर बैठे तो अपने गुरु चरणों में बैठकर हरिनाम शुरू करे। इसके बाद श्री माधव महाराज जी, श्री प्रभुपाद जी, श्री गौर किशोर दास बाबा जी, श्री भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्री जगन्नाथ बाबा जी तथा अन्य कितने ही गुरु वर्ग हैं जिनके चरणों में बैठकर स्मरण कर सकता है क्योंकि मन को कोई आधार चाहिए। अतः इस प्रकार हरि–स्मरण करता रहे। मन अवश्य रुकेगा। सन्त दयालु होते हैं, कृपाकर मन लगा देते हैं। भगवान् साधक को सन्त के हृदय से देखते रहते हैं।

(ग) हरिनाम–स्मरण करते हुए धाम का दर्शन मानसिक रूप से करते रहो। जैसे नाम कर रहे हो और गिरिराज गोवर्धन की सात कोसी परिक्रमा कर रहे हो। राधा–रमण व बाँके बिहारी का दर्शन कर रहे हो। यमुना–स्नान कर रहे हो। तट पर बैठ कर नाम–स्मरण कर रहे हो। बरसाना, नंदगांव, गोकुल में जाकर घूमना शुरू कर दो। मन लगाने का बहुत मसाला है यदि कोई साधक प्रयास करे तो।

(घ) 24–अवतारों की अनन्त लीलाएँ शास्त्रों में हैं, उन अवतारों की लीलाओं का ध्यान कर नाम स्मरण करते रहो। धीरे–धीरे आनंद आवेगा तो संसार का आनंद फीका पड़ता जायेगा। राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, कपिल, कच्छपादि अवतारों को स्मरण करो।

(ङ) गौर हरि का विरह–विलाप, जो नीलाचल में होता रहता है, उसका ध्यान कर हरिनाम स्मरण कर सकते हैं। नवद्वीप धाम में विचरण कर नाम–स्मरण हो सकता है। पंच–तत्व से प्रार्थना कर सकता है, उनसे सिफारिश करवा सकता है। शची माँ, देव विष्णु प्रिया जी के चरणों में जाकर रो सकता है। गौरहरि को निताई से सिफारिश करवा सकता है। गौरहरि की अनेक लीलाओं का ध्यान कर नाम–स्मरण कर सकता है। त्रिलोकी को आँख के इशारे से खत्म करने वाला वह कन्हैया, यशोदा माँ की छड़ी से डर के मारे काँपता रहता है, यहाँ तक कि पेशाब भी कर देता है।

सन्तों के जीवन चरित्र स्मरण कर, हरिनाम स्मरण कर सकता है। न जाने कितने ही मन को लगाने के तरीके हैं पर यदि कोई चाहे तो। मसाला कम नहीं है, सीमा रहित है।

हरिनाम ही इस युग का तारक व पारक मंत्र है। शीघ्र अपना लो तो सर्वोत्तम है। जो समय जा रहा है वह लौटकर कभी नहीं आता। अब भी आरंभ करना श्रेयस्कर होगा। मौत सिर पर नाच रही है, अचानक आकर निगल जावेगी।

भजन गीति के 29वें पेज पर सम्बंध–ज्ञान या भक्तों की शरणागति बहुत अच्छी तरह समझ में आ जाती है। इससे भजन–स्तर बढ़ने में सहायता मिलती है।

अपराधशून्य ह'ये लय कृष्णनाम।
जबे जीव कृष्णप्रेम लभे अविराम।।

यदि जीव अपराधशून्य होकर कृष्णनाम लेता है तो वह बिना किसी बाधा के कृष्णप्रेम प्राप्त करता है।

श्रेयस्तत्रहितं वाक्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम्
(विष्णु पुराण 3.12.44)
परमार्थ विषय में यद्यपि अत्यन्त अप्रिय
वाक्य हों तो भी मंगलकारी हैं।

26

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
13.07.07

विरही सन्त को स्वयं भगवान् लेने आते हैं

**"सतजुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावहिं लोग।।"**

समाधान एक दम साफ है कि कलियुग में केवल मात्र हरिनाम से ही उद्धार होना सम्भव है। दूसरा कोई भी साधन नहीं है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डों में जब भी कलियुग का समय होगा तो हरिनाम (हरे कृष्ण-महामन्त्र) ही जन्म-मरण रूपी दारूण दुःख से छूटने का साधन होगा।

सतयुग में हजारों साल ध्यान द्वारा तप करो। अपने तन, मन को कसो। सर्दी, गर्मी, बरसात, भूख-प्यास को सहन करो तब भी भगवान् को निश्चित तौर पर प्रसन्न कर लेना सम्भव नहीं है। त्रेता युग में यज्ञ करो। सामग्री इकट्ठी करो। सद् ब्राह्मणों से प्रार्थना करो। शुद्ध घी, समिधा जुटा लो। बहुत बड़ा आयोजन करने पर भी यज्ञ यदि पूरा हो जाए तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। यज्ञ भी कई प्रकार के होते हैं। यदि मंत्र शुद्ध न बोला जाए तो अनिष्ट होने की आशंका रहती है। यज्ञ कराने वाला भी नष्ट हो सकता है। द्वापर में प्रेम सहित भगवान् का अर्चन (पूजन) करो। यदि मन, तन शुद्ध नहीं तो अर्चन भी व्यर्थ हो जाता है।

अब रहा कलियुग का समय। इसमें कोई भी अनिष्ट होने की आशंका नहीं है। कैसे भी, कहीं भी, शुद्ध हो या अशुद्ध हो-हरिनाम का उच्चारण करते रहो। घर में रहो। गर्मी हो तो पंखा चला लो, सर्दी हो, हीटर चला लो। बरसात हो, अंदर बैठकर स्मरण करते रहो। चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते, गिरते-पड़ते, कैसे

भी हरिनाम लिया जाए तो सुकृति इकट्ठी होती रहेगी। यह सुकृति भगवान् को प्रसन्न करने से संत से मिला देगी। यदि मर गया तो आगे के जन्म में सद्गुरु से भेंट करवा देगी। संत भगवान् को प्राप्त करने का मार्ग बता देगा। कितना सरलतम साधन है। परन्तु अभागा मानव, अपना जीवन व्यर्थ में खर्च कर, अंत में चौरासी लाख योनियों में भटकने को चला जाता है। भगवान् गारंटी ले रहे हैं–

"कोटि विप्र बध लागहिं जाहूँ। आए शरण तजहुँ नहीं ताहूँ।।"
"सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासंहु तबहिं।।"

सन्मुख होना तथा शरणागत होना क्या है ? इसका आशय है 'हरिनाम' को अपनाना। इसको जिसने महत्व नहीं दिया, उसकी धाम–सेवा, ठाकुर सेवा, भक्त का प्यार संबंध, सब सारहीन हैं। हरिनाम को अधिक संख्या में करना होगा अर्थात् एक लाख तो कम से कम है। जैसे कि चैतन्य महाप्रभु जी ने सब भक्तों को आदेश दिया है–मन लगे, न लगे, जपना ही होगा। भागवत् में घोषणा की गई है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, सोते–जागते, यदि नाम जबरन भी निकल जाए तो भी लाभप्रद है।

भगवान् की प्रथम सेवा है–हरिनाम करना। दूजी सेवा है–ठाकुर सेवा–अर्चनादि अथवा मठ सेवादि, भक्तों से प्रेम–संबंध, तब शरणागति का प्राकट्य होगा। भगवान से सन्मुखता होगी तो मठ–सेवा होगी। परन्तु हरिनाम मन से नहीं होगा तो भगवान् से प्रीति नहीं होगी।

कहने को नित्य पाठ–कीर्तन होता है तो भी आजकल मन्दिरों में भजन–स्तर गिरता जा रहा है। इसका कारण है–राजसिक व तामसिक सेवा। इसके पीछे है पैसा व मान–प्रतिष्ठा की भावना। सात्विक–सेवा होने से भजन–स्तर अवश्य बढ़ेगा। भगवान् का प्रसाद भी इन्द्रियतर्पण के लिए पाया जाता है। हरिनाम लेते हुए प्रसाद पाना चाहिए। इससे मन शुद्ध होकर भगवान् की तरफ आकर्षित होगा।

हरिनाम सर्वशक्तिमान है। यह सब कुछ निर्गुणता से करवा देगा। हरिनाम मूल है यदि इस में हरिनाम जप रूपी पानी नहीं दोगे तो मंदिर–सेवा तथा भक्त की सेवा सूखी ही रह जाएँगी। प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। जहाँ हरिनाम–स्मरण की प्रधानता नहीं, वहाँ दोनों सेवाएँ प्रभावहीन हो रही हैं।

गुरुवर्ग के समय में हरिनाम की प्रधानता थी। तब सेवा तथा आपस का प्रेम ठीक से चलता था। हरिनाम की प्रधानता होने से स्वतः ही शरणागति भाव उदित होने से ठाकुर सेवा तथा आपस का प्रेम स्वतः ही होने लग जाता है। यदि ऐसा नहीं है तो भजन का लाभ भी नहीं है, केवल दिखावा है।

हरिनाम में रुचि पैदा करने के लिए शुद्ध आचार–विचार परमावश्यक है। यदि भगवत्–प्राप्ति ही साधक का अंतिम ध्येय हो तो साधक समय को बड़ी सावधानी से खर्च करेगा। भगवत्–नाम व चिंतन के द्वारा समय को अपनाएगा। सीमित भोजन करेगा व सीमित शयन करेगा। संसार से सीमित संबंध रखेगा। ग्राम्य–चर्चा से दूर रहेगा। पठन–पाठन में तथा हरिनाम में स्वयं को नियोजित रखेगा। अष्ट–प्रहर आध्यात्मिक भावों में रहेगा। तब ही उसके अंतःकरण से संसार हटने लगेगा। सद्गुण आकर रमने लगेंगे तथा दुर्गुणों का लोप हो जाएगा।

जब इस लोक से जाने का समय होगा तब भगवान् स्वयं अपने प्रेमी–शरणागत भक्त को लेने आएंगे। दिव्य–देह से अपने धाम में ले जाकर धूमधाम से स्वागत करेंगे। जैसा भक्त का भाव होगा, वैसी सेवा में भगवत्–चरणों में लग जाएगा।

भगवान जी हमारे माँ–बाप हैं। जीव ने उनको छोड़ कर माया को माँ–बाप बना रखा है। अतः दुःख पर दुःख भोग रहा है। मौसी किसको निहाल करती है ? अपना शिशु हो तो प्यार करे। दूसरी माँ के शिशु को क्यों प्यार करने लगी। शिशु माँ की शरणागत होता है

और माँ को उसका हर क्षण ध्यान रहता है। इसी प्रकार भक्त जब शरणागत होता है अर्थात् उसका नाम पुकारता है तो भगवान् उसका हर क्षण ख्याल रखते हैं। बिना हरिनाम के शरणागति का भाव कभी आ नहीं सकता। अतः नाम–स्मरण बिना साधक दुखी ही रहता है।

रामायण का असली नाम है। 'राम चरित मानस'। यह शिवजी के मन से प्रगट हुई है। इसीलिये इसका नाम मानस हुआ। वाल्मीकि मुनि जी ने जब हृदय में अष्ट प्रहर राम–नाम स्मरण किया तब यह उनके हृदय में प्रगट हुई तथा तुलसीदास जी ने कलि के जीवों के हेतु इसे सरल भाषा में लिख दिया ताकि सभी अल्पज्ञ जीव इसे समझ लें।

"संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा।।"
"कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी। जेहिं विधि शंकर कहा बखानी।।"
"राम चरित मानव मन भावन। विरचेऊ शंभु सुहावन पावन।।"

बे–मन से अर्थात् विवश होकर भी यदि मुख से हरिनाम निकल जावे तो अनेक जन्मों के पाप जलकर राख हो जाते हैं। यह बात शिवजी रामचरित मानस में बता रहे हैं।

स्वयं उमा को साथ लेकर अष्ट–प्रहर राम–स्मरण करते रहते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने भी सभी भक्तों को आदेश दिया है कि जो 64 माला (एक लाख नाम) नित्य स्मरण करेगा, उसी के घर जाकर प्रसाद पाऊँगा। एक लाख नाम लेने वाले पर नाम ही कृपा कर देता है। मन स्थिर हो न हो, धीरे–धीरे नाम ही रुचि पैदा कर देता है। हरिनाम के अभाव में न मठ की सेवा सफल होती है और न भक्तों से प्यार का संबंध होता है। न अपराध से बचा जा सकता है, न मान–प्रतिष्ठा से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है। हरिनाम ही इन दुर्गुणों को दूर करता रहता है तथा सद्गुणों को अंतःकरण में जमा करता रहता है।

प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि वृद्ध–गुरुवर्ग खटिया में पड़े–पड़े हरिनाम माला को नहीं छोड़ते। मरते दम तक माला हाथ से दूर नहीं होती। पूजा–पाठ, अर्चन, कीर्तन से दूर रहकर तैलधारावत्, सदा हरिनाम में लीन रहा करते हैं क्योंकि कलियुग का केवल मात्र धर्म–कर्म, हरिनाम–स्मरण ही है। इसी से भगवान् भक्त के अधीन हो जाते हैं।

द्वापर, में अर्जुन जब सोता था तो उसके रोम–रोम से हरिनाम अर्थात–'कृष्ण' 'कृष्ण' की ध्वनि निकलती रहती थी। कितने उदाहरण दिए जाएँ, कोई अंत नहीं। जिसने हरिनाम की शरण ली है, उसने इस लोक में तथा मरने के बाद परलोक में भी सुख भोग किया है। "न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू।।" "राम राम कहि जे जमुहाहिं। तिनहिं न पाप पुन्ज समुहाहिं।।" कितनी गारंटी है कि यदि उबासी लेते भी नाम मुख से निकल जाए तो पापों का ढेर जलकर भस्म हो जाएगा।

"राम नाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद् गावा।।"
"जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।"
''जिन कर नाम लेत जगमाहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।''
"सुनहु राम का सहज सुभाऊ।। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।"

मौत सिर पर खड़ी है, अब भी समझ जाओ। मानव जन्म अब आगे नहीं मिलेगा। चौरासी में फिर से जाना पड़ेगा। मौका चूकने से गहरा पछताना पड़ेगा। कोई किसी का नहीं है। न कोई साथ जाएगा। अकेला अपने कर्मों की गठरी लाद कर ले जाएगा। फिर पीछे पछतावेगा। खाना पीना तो पशु–पक्षी भी करते हैं। इस खाने–पीने के पीछे अमूल्य समय व्यर्थ न करो। संसार दुःखालय है। प्रत्यक्ष में देखकर भी अंधे हो रहे हैं। क्या किसी को सुखी देखा है ? स्वयं का पुत्र ही पिता को सजा दे रहा है। माँ को ठोकरों से मार रहा है। अपने–अपने कर्मों का भोग स्वयं को ही भोगना पड़ता है, कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता। अपने शुभ–अशुभ कर्म ही सुख–दुःख देते रहते हैं; दूसरों को दोष देना मूर्खता है।

सबसे सर्वोत्तम कर्म है कलियुग में हरिनाम स्मरण करते रहो। हर क्षण सुखी रहोगे। भगवान् हर क्षण तुम्हारी देखभाल करेंगे जैसे मीरा की, प्रहलाद की, आदि आदि।

नाम की कीमत शिवजी ने जानी है–

"नाम प्रभाव जान शिव जी को। कालकूट फल दीन्ह अमी को।।"

"नाम प्रसाद शंभु अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।"

"उल्टा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।।"

''शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।"

''सगुण उपासक, पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।।''

''ते नर प्राण समान मम। जिनके द्विज पद प्रेम।।"

''सुन उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।"

शास्त्र में गारंटी के कई उदाहरण हैं, तब भी साधक को पूरी श्रद्धा नहीं होती। इसका खास कारण है–अपराध बहुत हैं। भगवान् के सिवाय सभी प्राणियों में दुर्गुण हैं, अतः दुर्गुणों की तरफ न देखकर उसके गुणों की तरफ देखना श्रेयस्कर है। साधक का खास उद्देश्य भगवत्–प्राप्ति का है जो सर्वोत्तम ध्येय है। किसी का भी दोष देखना भगवान् को सुहाता नहीं है, अतः भगवान् हरिनाम अर्थात् अपना नाम, उसकी जीभ पर आने नहीं देते, क्योंकि साधक उनके प्यारे का दोष देखता है। नाम व भगवान् दो नहीं, एक ही हैं। अतः भगवान् दोष देखने वाले से दूर हो जाते हैं। लोग कहते रहते हैं–'मेरा मन हरिनाम में बिल्कुल नहीं लगता, आप कृपा करो।' ऐसे व्यक्ति पर कोई भक्त यदि कृपा भी करे, तो भी भगवान् उस सिफारिश को मानते नहीं। वे कहते हैं, साधक स्वयं को तो सुधारे। स्वयं तो खड्डे में गिरे, फिर भक्त उसको कैसे बचा सकता है? जानबूझ कर गिरना चाहे तो उसे कौन बचा सकता है। फिर कहते हैं कि भगवान् सुनता नहीं। सुन भी नहीं सकता क्योंकि भक्त आपको जैसा करने को कहते हैं, वैसा करने को तो तैयार नहीं। उक्त लेख भगवत् प्रेरणा से लिखा गया है। मैं अल्पज्ञ लिखने में सक्षम नहीं हूँ।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

27

छींड की ढाणी

मंदिरों में भक्ति के लोप का कारण

माला हरिनाम-जप-स्मरण संकीर्तन तथा चौंसठ माला हरिनाम-जप-स्मरण की अवहेलना।

महाप्रभु गौरहरि जी ने अपने भक्तों को आदेश दिया कि जो भी चौंसठ माला हरिनाम की करेगा, उसके घर पर जाकर प्रसाद पाया करूँगा। महाप्रभु जी को अच्छी तरह मालूम था कि चौंसठ माला में किसी का मन नहीं लग सकता, परंतु बिना मन भी जो करेगा, उसका मंगल होना निश्चित ही है।

जैसे शिवजी उमा को कह रहे हैं :-

"बिबसहुँ जासु नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।"

विवश होकर भी किया भगवत् नाम मंगलदायक होता है। श्रीमद् भागवत में भी लिखा है कि जो जबरन भी जिसके मुख से नाम निकल जायेगा, तो उसका भी कल्याण निश्चित है। तब ही गौरहरि जी ने ऐसा आदेश सबको दिया है। ऐसा एक नियम चल रहा है कि आपस में मिलने पर राम-राम, राधे-राधे आदि हरिनाम मुख से निकालते रहते हैं। मठों में आपस में प्रेम की हवा भी नहीं है। इसका खास कारण ठाकुर जी ने प्रेरणा कर लिखवाया है कि भगवत्-भक्ति रूपी पेड़ की जड़ के खड्डे में यदि हरिनाम रूपी पानी बहुतायत से गिरता रहे, तो पेड़ की शाखा, पर शाखा रूपी ठाकुर सेवा (भक्ति) तथा भक्तों में प्यार का सम्बंध रूपी टहनियां, पत्ते, फल फूल रूपी भक्तों के सौहार्द का सम्बन्ध चिरकाल तक स्थिर रहेगा। पेड़ को उगाने वाले को परमानन्द रूपी अलौकिक फल क्षण-क्षण में प्राप्त होता रहेगा।

यदि हरिनाम रूपी जल भगवद्-भक्ति रूपी पेड़ में नहीं सींचा गया तो वह ठाकुर-सेवा रूपी शाखा, पर शाखा रूपी टहनी, पत्ते,

फल, फूल इत्यादि से वंचित रह जायेगा। एक दिन भक्ति रूपी पेड़ सूखकर गिर जायेगा। भक्ति रूपी फलों से हाथ धोना पड़ेगा। भक्ति रूपी फल की उपलब्धि न होने पर शरीर में विटामिनों की कमी से शरीर रूपी साधक रोग–ग्रस्त हो जायेगा अर्थात् विषयों की ज्वाला से उसका तन–मन, जर–जर होकर गिर पड़ेगा। धार्मिक स्थलों रूपी बीहड़ जंगल में सेवक, सूखे बांसों का झुरमुट (विषयों) रूपी आंधी में आपस में टकराकर अपने ध्येय से वंचित हो जायेगा।

हरिनाम–स्मरण रूपी भक्ति–रस में सींचे हुये सेवक वर्ग में काम अग्नि का स्पर्श हो ही नहीं सकता। कलि का धर्म, जो नाम का संकीर्तन व जप है, साधक को उससे अलग होकर केवल खाना–पीना, सोना, मौज उड़ाना ही केवल मात्र धर्म रह जायेगा। विषयों की ज्वाला प्रत्येक साधक में भड़कती रहती है। यदि प्रत्येक साधक चौंसठ माला जप करने लग जाये तो उनका सौभाग्य उदय हो जावे। प्रत्येक मठ साधक यदि चौंसठ माला करने लग जाये तो शत–प्रतिशत ढांचा ही बदल जाये। गुरुवर्ग के समय में सभी हरिनाम–स्मरण पर जोर देते थे तो भक्ति महारानी नृत्य करती थीं। हरिनाम न होने से हर साधक के हृदय में विषयों की ज्वाला धधक रही है। कई साधक तो हाथ में माला तक नहीं पकड़ते। कीर्तन में भी गिने–चुने ही बैठते हैं।

कलि का प्रथम धर्म है– हरिनाम–स्मरण को अपनाना। हरिनाम को अपनाने से ही ठाकुर की शुद्ध सेवा (भक्ति) हो सकती है। यदि नाम नहीं है तो सेवा केवल कपट होगी। आपस में प्रेम नहीं होगा। क्रोधाग्नि हृदय में जलती रहेगी। कपट–सेवा होगी केवल पैसे की तथा मान–प्रतिष्ठा की। इससे ठाकुर जी कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? ठाकुर जी यदि प्रसन्न होते तो क्रोधाग्नि बुझ जाती।

गौरहरि दक्षिण यात्रा पर जाते समय सबसे बोले–मैं अकेला ही जाऊँगा। श्री नित्यानंद ने कहा–"आप अकेले जावोगे तो आपके दोनों हाथ तो माला व नाम संख्या में रुके रहेंगे; बर्हिवास (अंगवस्त्र)

दण्ड कौन सम्भालेगा ? अतः किसी एक को साथ ले जाना होगा। आप बेहोश भी हो जाते हो। अतः हम अकेले नहीं जाने देंगे।"

महाप्रभु जी ने स्वयं हरिनाम जप की जगत् को शिक्षा दी कि हर समय माला जपनी चाहिये। पर साधकगण, इससे वंचित रहते हैं।

हरिनाम व जप भी श्री कृष्ण की प्रीति व खुशी के लिये होना चाहिए। जैसे शिशु जब मां–मां पुकारता है तो मां को अपार खुशी होती है। इसी प्रकार सभी तो भगवान के शिशु हैं। जब भक्त उनको पुकारता है तो उनको बहुत खुशी होती है। लेकिन नाम–जप अपने सुख के लिये किया जाता है। मेरा परिवार सुख–शांति में रहेगा। धन मिल जायेगा। तन–मन खुश रहेगा, आदि–आदि। गोपियाँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। वे कृष्ण की प्रीति के लिये सब काम करती थीं। अपने लिये कुछ नहीं करती थीं। यही है शुद्ध भक्ति। दूजी भक्ति तो अन्याभिलाषमय होती है।

चौंसठ माला स्मरण करने से अपराधों का मार्जन भी होता रहता है। अतः सभी को चौंसठ माला करनी चाहिये। धीरे–धीरे नाम ही प्रेम की अवस्था तक पहुँचा देगा। अपनी शक्ति से कोई भी पांचवां पुरुषार्थ (श्री कृष्ण–प्रेम) नहीं पा सकता। जप का उद्देश्य केवल मात्र भगवत् प्राप्ति ही होना चाहिये, तब ही प्रेम की अवस्था तक पहुँच पायेगा। जब भगवत्–प्राप्ति का ध्येय होगा तो वह ग्राम्य चर्चा व अखबार टी.बी. इत्यादि से दूर रहेगा।

श्री चैतन्य अवतारे बड विलक्षण
अपराधसत्त्वे जीव लभे प्रेमधन।।

श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में एक बहुत विलक्षण बात है कि अपराध रहने पर भी जीव प्रेम–धन को प्राप्त कर लेता है।

28

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18.8.07

निष्काम भक्ति

श्री गुरु देव जी का जब धाम पधारने का समय आया तो श्री गुरुदेव जी ने वृन्दावन के मुख्य मठ में प्रवचन किया। उस समय मैं वहाँ पर मौजूद था। उन्होंने गुरु होते हुए भी सभी शिष्यों से आवेदन किया कि जो हरिनाम को श्रवण करके, अधिक से अधिक जपेगा, वही मेरा प्यारा शिष्य होगा। उन्होंने यह तो नहीं कहा कि जो ठाकुर जी का अर्चन-पूजन करेगा, वह मेरा प्यारा शिष्य होगा। वे जानते हैं कि हरिनाम से हृदय निर्मल बनेगा तो भगवान् के प्रति प्रेम का आविर्भाव होगा। तभी ठाकुर जी की सात्विक सेवा अपने आप होगी।

चैतन्य चरितामृत के 201 पेज पर लिखा है कि प्रेम के बिना ठाकुर जी की सेवा-भक्ति नीरस होगी। इससे भगवान् को सुख नहीं होता। भक्त के हृदय में प्रेम नहीं होता तो भगवान् में सेवा लेने की वासना ही जागृत नहीं होती। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जब तक साधकगण हरिनाम श्रवण को नहीं अपनाएँगे अर्थात् 64 माला नहीं करेंगे, तब तक शुद्ध ठाकुर-सेवा होनी असम्भव ही है। भजन में गिरावट निश्चय ही रहेगी। देखा गया कि बहुत से साधक मन्दिरों में रहते हुए भी हाथ में माला तक नहीं पकड़ते। ठाकुर-आरती में तथा संकीर्त्तन में नहीं बैठते। खाना-पीना, सोना, मौज उड़ाना ही उनके जीवन की शैली बन गया है। तभी ऐसे स्थानों पर भी कलि का प्रवेश होकर भौतिकवाद का बोलबाला हो रहा है। पैसा व मान-प्रतिष्ठा का दौर चल रहा है।

जहाँ ठाकुर जी का सुख-विधान नहीं, वहाँ पर कपट का व्यापार रहता है। भक्त-सेवा यदि दिखाने की भी हो, तो भी ठाकुर

को वहाँ सुख होता है। यदि भक्त–सेवा हृदय से होगी तो ठाकुर, सेवाकारी पीछे–पीछे घूमते हैं। ऐसा शास्त्र का वचन है।

नाम–श्रवण भी यदि ठाकुर जी के सुख के लिए होगा तो वह शुद्ध भक्ति की श्रेणी में आयेगा। इस भावना से नाम श्रवण करना चाहिए कि नाम लेने से मेरे ठाकुर जी को सुख मिलता है। ठीक वैसे ही, जैसे बच्चा माँ–माँ करता है, तो माँ को सुख मिलता है। मैं ठाकुर जी का नाम–श्रवण करूंगा तो लोग मुझे भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुखी व समृद्ध हो जाएगा इस प्रकार अन्य–अभिलाषा रहने से प्रेम नहीं काम की श्रेणी में आ जाएगा। परन्तु न करने से तो यह भी उत्तम है। पतिव्रता स्त्री यदि पति के सुख के लिए सभी काम करती है तो वह सती श्रेणी में आती है। शिष्य, यदि गुरु जी के सुख के लिए सब काम करता है तो वह गुरु–निष्ठ श्रेणी में आ जाता है। भगवान् अपने भक्त के अधीन रहते हैं। गोपियाँ जो भी कर्म करती थीं, नन्दलाल के सुख के लिए करती थीं तो भगवान् का मन गोपियों से हर समय प्रसन्न रहता था। गोपियों के बिना नन्दलाल का मन लगता ही नहीं था इसीलिए उन्हें रासलीला का आयोजन करना पड़ा।

इसी प्रकार यदि मंदिरों की सेवा भगवान् के सुख के लिए होगी, तब ही वहाँ के रहने वालों का सुख–विधान हो सकेगा। यह तब ही होगा जब वहाँ रहने वाला प्रत्येक साधक–भक्त–हरिनाम–महामंत्र की 64 माला श्रवण पूर्वक कीर्तन करेगा। इसके अभाव में ऐसे स्थानों की स्थिति सुधारना असंभव ही है। मन्दिरों में पैसा भी हर प्रकार का आता रहता है। जिसको खाने से मन मलीन होता रहता है। 'जैसा अन्न वैसा मन'। अतः प्रसाद समझ कर सेवन करना चाहिए। प्रसाद पाते समय मन ही मन हरिनाम जप करते रहने से वह पेट में जाकर सात्विक व निर्गुणता की लहर चला देगा। तामसवृत्ति को समाप्त कर देगा। जहाँ रोग होता है, वहाँ निरोग रहने की व्यवस्था भी होती है लेकिन कोई भी इस पर ध्यान ही नहीं देता।

प्रथम सीढ़ी हरिनाम ही है, जो कलि का धर्म है। दूसरी सीढ़ी ठाकुर जी का अर्चन–पूजन है, जो द्वापर का धर्म है। द्वापर का धर्म तब ही फलीभूत होगा जब कलि का धर्म अपनाया जाएगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो ठाकुर–पूजा केवल कपटमय होगी! शास्त्र का वचन भी है–

"नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगलवासा।।"

स्वाभाविक प्यार से जो नाम लेता है, वह दूसरों का भी मंगल विधान करता रहता है।

"जासु नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।"

भगवान् का नाम ही ऐसा है कि इससे समस्त दुःखों की जड़ ही कट जाती है।

"राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।
जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।"

जो नाम का प्रभाव जानना चाहें तो अपनी जीभ से जप कर देख सकते हो।

"बिबसहुं जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं।।"

यदि किसी के कहने से भी नाम मुख से निकल जाए तो अनन्त जन्मों के पाप जो रचे–पचे हैं, एक क्षण में जलकर राख हो जावें।

"सादर सुमिरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।"

जो प्रेम से नाम लेता है, उसका जीवन गौ के पैर से बने खड्डे को लांघने के समान सुगम हो जाता है।

"सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहिं।।"

भगवान् आश्वासन देते हुए कहते हैं कि वे उनका नाम पुकारने वाले के अनेक जन्मों के पापों को उसी समय नष्ट कर देते हैं।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"
"ताकी करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।"

जिसको पंचम पुरुषार्थ–'प्रेम' प्राप्त हो जाता है उस भक्त को मैं एक क्षण भी अपने दिल से दूर नहीं करता क्योंकि वह मेरे शरणागत है।

"कोटि विप्र वध लागहिं जाहू। आए शरण तजहूँ नहीं ताहू।।"

विचार करने पर समझ में आ जाएगा कि जब हरिनाम महामंत्र (हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।) की 64 माला सभी जपने लग जाएँगे तो मन निर्मल बनेगा। मन जब तक निर्मल नहीं होगा, तब तक ठाकुर जी की शुद्ध सेवा नहीं होगी। अशुद्ध सेवा को ठाकुर जी ग्रहण नहीं करेंगे। देखा जा रहा है कि आजकल हरिनाम नाम–मात्र को ही हो रहा है। इसको कोई भी काट कर देखे तो ठाकुर का वचन भी झूठा हो जावे। यह ठाकुर जी ने ही प्रेरणा करके लिखवाया है। गलत कैसे हो सकता है।

आगे शास्त्रोक्त वचन है :–

**"चहुँ जुग चहूँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।"**

कलियुग में नाम श्रवण के अलावा दूसरा साधन ही नहीं है कि जिससे भगवान् को सुख हो।

"कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।"

मंदिरों में यदि कलि का धर्म 'नाम' नहीं होगा तो वहां विपत्ति रहेगी।

**"मन–क्रम वचन मोर गति, भजन करें निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, करऊँ सदा विश्राम।।"**

जो मेरे सिवाए किसी और को नहीं जानता व मेरा भजन मेरे सुख के लिए करता रहता है, उसके हृदय में मैं सदैव विश्राम करता हूँ। वहीं मुझे सुख मिलता है।

**"सुगण उपासक पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम जिनके द्विज–पद प्रेम।।"**

जो दृढ़ता पूर्वक मेरा नाम लेता रहता है व दूसरों को मेरे नाम में लगा कर हित करता रहता है, ऐसा प्राणी मुझे मेरे प्राणों से भी प्यारा है।

"शुक सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।"

जो ब्रह्म में लीन रहते हैं, वे भी नाम की कृपा से प्रभु के प्रेम सुख का आस्वादन करते हैं।

"सुनहू राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ।।"

अपने भक्त का थोड़ा भी गर्व भगवान् रहने नहीं देते क्योंकि यह अभिमान अपने को बड़ा कर देता है भगवान् दीन–बंधु हैं। अहम् बंधु नहीं है।

"सुन सुरेस उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।"
"मानत सुख, सेवक सुखकाई। सेवक बैर, बैर अधिकाई।।"

मेरे भक्त का बैरी मेरा भी बैरी है। वह कुल सहित नष्ट होकर सदैव नरक भोग करता है।

"सुनह उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।"

कितना आश्चर्य है कि ऐसा सुगम अवसर हाथ लगा, फिर इस स्वर्ण अवसर को विषयों में रम कर गंवा रहे हैं।

भारत में जन्म हुआ, जहाँ भगवान् का अवतार होता है। फिर शुभ–लगन में जन्म हुआ। अच्छे व उच्च कुल में जन्म हुआ। फिर श्रीमानों की गोद में खेले। सतगुरु, सौभाग्य से प्राप्त हुए। सन्तों का समागम मिला, फिर भी विषयों में रम कर अपना जीवन व्यर्थ–चर्चा में गँवा दिया तो ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा।

TV (टीवी) अखबार तथा मोबाईल साक्षात् कलि के अवतार हैं। जो इनका संग करता है, वह भक्ति–पथ पर नहीं चल सकता। टी.वी. में जो धार्मिक पिक्चरें आती हैं देखने वालों पर उनका क्या प्रभाव पड़ सकता है ? अखबार भी एक वासना है। दुनियाँ भर की

सूचनाओं से भक्त को क्या मतलब है ? मोबाईल भी भजन करते समय बाधा डालता रहता है। बार–बार फोन आते रहते हैं। थोड़ा लाभप्रद जरूर है। आवश्यकता अनुसार काम लेना उचित है।

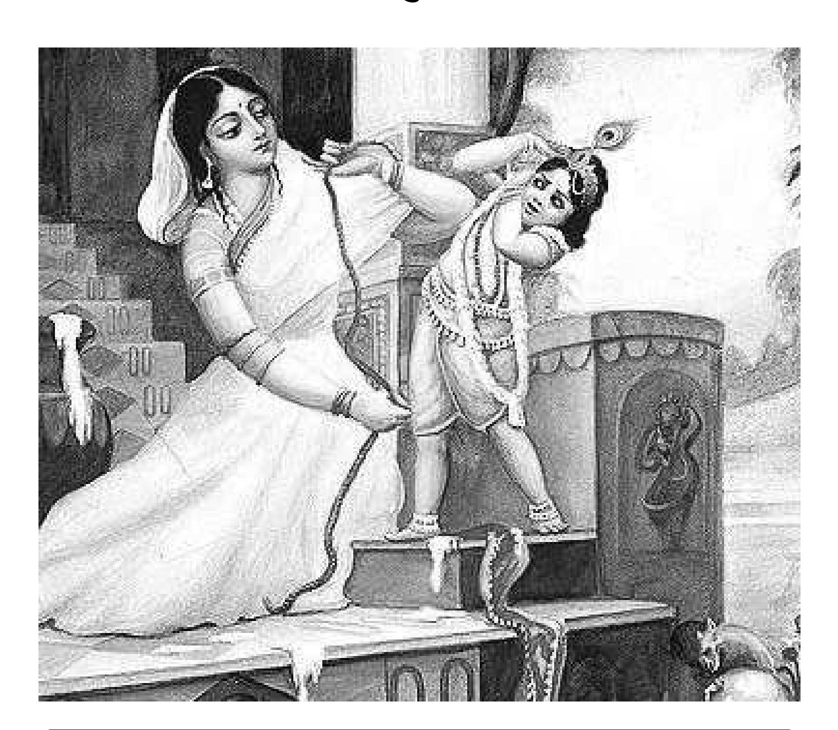
भजन करने वाले नवयुवकों को मोबाईल से क्या काम है ? Mobile पर गुप्त बातें करके अपने आचरण को ही बिगाड़ना होता है। उनका मन भजन में कदापि नहीं लगेगा। क्योंकि उनकी उम्र ही बिगड़ने की होती है। कुसंग हर वक्त जेब में रखा रहता है। बाहर जावो तो अश्लील फोटो बाजारों में देखो। लड़कियों का पहरावा अश्लीलता का द्योतक है। फिर खान–पान, रहन–सहन व भरी जवानी। कहाँ तक बचोगे, असम्भव है।

सच्चे संत का संग ही बचा सकता है। जो प्रभु–कृपा के बिना मिलना असंभव है। कथा–कीर्त्तन, आरती–दर्शन यदि ऊपरी मन से होगा तो वह अन्तःकरण को छूएगा नहीं। ऐसे में मनुष्य–जन्म को गर्त में ही ले जाना होता है। शिक्षा भी काम नहीं दे सकती, क्योंकि कुसंग का पलड़ा भारी पड़ता है। कोई उपाय नहीं। यदि उक्त कुसंग से मुख मोड़ लें तो कुछ सम्भव हो सकता है परन्तु यह बहुत मुश्किल है।

जिस प्रकार दसवीं का विद्यार्थी कलैक्टर नहीं बन सकता उसी प्रकार जो अर्चक 64 माला (एक लाख) हरिनाम नित्य नहीं करता, उसकी अर्चन–पूजा ठाकुर जी ग्रहण नहीं करते। अर्चन अर्थात् पुजारी ही देव को पुजाता है। जो स्वयं ही अयोग्य है, वह ठाकुरजी की क्या पूजा कर सकता है ? चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार प्रत्येक साधक–भक्त को प्रतिदिन 64 माला हरिनाम की करना परमावश्यक है। यदि श्री गौरहरि के इस आदेश का पालन नहीं होता अर्थात् कलियुग के मुख्य धर्म–हरिनाम की 64 माला नित्य जप नहीं करते तो द्वापर का धर्म–ठाकुर जी का अर्चन, 'पूजन' व्यर्थ ही होगा। प्रथम कक्षा में बैठे नहीं किन्तु बी.ए. की डिग्री लेना चाहते हो। कितनी मूर्खता की बात है ? यदि उक्त आदेश का पालन नहीं होता तो मंदिर में वास भी गृहस्थ आश्रम में वास के समान

ही है। जो भी लिखा गया है, ठाकुर जी की प्रेरणा से लिखा गया है। इसको कोई काट नहीं सकता।

स्वयं को बदलो। दूसरों को नहीं बदल सकते। चाहते हुए भी कुछ लोग 64 माला करने में असमर्थ हैं क्योंकि उनका मन रूपी घोड़ा चंचल है। अब वह घोड़ा अपने मालिक के बेकाबू हो चुका है। चाबुक खाकर भी इधर–उधर दौड़कर मालिक को खड्डे में गिरा देता है। अतः ऐसे लोग महान दुःखी हैं।



नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानं
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यं ततो द्रुत्य गोप्या

(श्री दामोदराष्टक–1)



छींड की ढाणी
21.8.07

अनन्त कोटि भानु-उदय का उजाला

गुरु, ठाकुर द्वारा प्रेरित होकर यह लेख लिखा जा रहा है। मैं अल्पज्ञ व अधम, उजाला करने में असमर्थ हूँ। इस तथ्य को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में कोई काट नहीं सकता, क्योंकि इसमें श्रीगुरुदेव की शक्ति काम कर रही है।

हरिनाम से अल्पकाल में शरणागति का प्रादुर्भाव होकर शक्ति जाग्रत होना।

जो 'हरिनाम' भगवान के सुख के हेतु किया जाता है, वह 'हरिनाम' शुद्ध-निर्मल भक्ति में आता है एवम् जो 'हरिनाम' स्वयं के सुखी करने हेतु किया जाता है (अर्थात् मुझे सब भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुखी व समृद्ध हो जाएगा आदि-आदि), वह हरिनाम शुद्ध-भक्ति में न आकर मलीन-'काम-भक्ति' में आता है।

जैस याज्ञिक ब्राह्मण की पत्नियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के सुख के लिए (कि भगवान् को सुख होगा) पतियों के नाराज होने पर भी भोजन लेकर गईं। गोपियाँ, पतियों के विरुद्ध होने पर भी कृष्ण के सुख-विधान में अपना जीवन-यापन करती रहती थीं। जब एक छोटा बच्चा माँ-माँ बोल कर पुकारता है तो माँ को कितना सुख मिलता है। स्त्री अपने पति के लिए हर प्रकार की सेवा में संलग्न रहकर पति का सुख-विधान करती है तो वह 'गुरु-निष्ठा' की श्रेणी में आता है व भगवान् उसके पीछे-पीछे घूमते रहते हैं कि इसकी पद रज मुझ पर पड़ती रहे एवम् मैं पवित्रता लाभ करता रहूँ। प्रह्लाद भगवान् के सुख के लिए कीर्तन करते थे तो भगवान् पत्थर के खम्भे से प्रगट हो गए। मीरा भगवान् को पद्य सुना-सुनाकर सुखी करती रहती थी तो अन्त में भगवान् के मुख में समा गई।

जब भगवान् के सुख के लिए भक्ति की जाती है तो शीघ्र शरणागति का भाव जाग्रत हो जाता है। भगवान् गीता में कहते हैं कि भक्त जिस तरह मुझे भजता है अर्थात् याद करता है, वैसे ही मैं भी उसको याद करता हूँ।

To every action, there is an equal & opposite-reaction-

यह सत्य सिद्धान्त है। जिस भाव से भक्त, भगवान् को भजते हैं, भगवान् भी वैसे ही भाव से भक्त को भजते हैं। उनका सुख–विधान, स्वतः ही साधक का सुख–विधान होगा ही। सुख–विधान ही ठाकुर की शुद्ध–भक्ति है, वरना तो अशुद्ध अथवा काम–भक्ति होगी। कामना पूरी हो जाएगी, परन्तु भगवान् से प्रेम नहीं होगा। शरणागति भाव नहीं आवेगा। पंचम पुरुषार्थ से वंचित रहना पड़ेगा।

जैसी हरकत होगी, वैसी ही बरकत होगी। गरीबी को लेकर सुदामा द्वारिका गया तो महल–मकान–वैभव मिल गया। भगवान् ने नरसी भक्त का भात भर दिया क्योंकि उसको भात की जरूरत थी। बिल्व मंगल को भगवान् की जरूरत थी तो भगवान् ने अंधा होने के कारण, हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाया। कबीर जी को भक्ति सहित ज्ञान मिल गया। रैदास भक्त को दिव्य–दृष्टि मिल गई। तुलसीदास व बाल्मीकि जी के अन्तःकरण में भगवत्–लीलाओं का प्रकाश होने पर उन्होंने रामायण की रचना कर दी।

जिस भाव में भगवान् को पुकारा जाता है, उसी भाव में भगवान् को जबरन आना पड़ता है। भगवान् के सुख के लिए उन्हें पुकारना अति श्रेष्ठत्तम भक्ति–पथ है। अपने सुख के लिए पुकारना निम्न श्रेणी की भक्ति है। न करने से तो यह भी उत्तम है।

किसी भी भाव का सम्बन्ध हो–दास का, सखा का, वात्सल्य का, मधुर भाव का–सभी भावों में भगवान् का सुख–विधान हो सकता है। नाम–श्रवण करते हुए ऐसी भावना दिल में रखने से भगवान् का सुख–विधान कर सकते हैं। जैसा भगवान् को भजोगे, वैसा भगवान् तुमको भजेंगे। उनको सुख होगा तो स्वतः ही साधक को सुख होगा।

आप प्रश्न कर सकते हो कि हरिनाम–श्रवण भगवान् के हेतु कैसे किया जाता है तो ठाकुर जी बता रहे हैं कि जैसे खेल में भक्त शिशु को माँ की याद आती है तो वह माँ–माँ कहकर पुकारता है। आवाज कानों में पड़ते ही सब काम–काज छोड़कर माँ बच्चे के पास भाग जाती है। क्या वह घर में रह सकती है ? नहीं क्योंकि इसमें माँ को सुख होता है। इसी प्रकार जब भक्त, भगवान् को 'हरे', 'राम', 'कृष्ण' अर्थात् (माँ–माँ) कहकर पुकारता है तो क्या भगवान् जो वात्सल्य–रस के समुद्र हैं दूर रह सकते हैं। लेकिन पुकारने में भेद रहता है। ऐसा अन्त–करण से गहराई से चिन्तन करे कि मैं भगवान् का बच्चा हूँ। भगवान मेरे माँ–बाप हैं। सभी तो भगवान् के बच्चे हैं। मैं उनको पुकारूँगा, तो वे मेरे पास आवेंगे। ऐसी पक्की भावना हो तो निसंदेह शीघ्र ही शरणागति–भाव जाग्रत हो जाएगा। इसमें भगवान् को सुख होता है क्योंकि वे सोचते हैं कि भक्त, संसारी वस्तु माँगता ही नहीं है, वह तो मुझे ही माँग रहा है। यह है नाम–श्रवण का तरीका। स्वयं भगवान ही प्रेरणा–पूर्वक इसे लिखवा रहे हैं। मैं 100% कुछ लिख नहीं सकता। अब आप कुछ भी समझें। अपराध मोल ले सकते हो।

भगवान् के सुख हेतु की जाने वाली भक्ति से ऊपर कोई भक्ति नहीं है। लेकिन यह भक्ति तब ही जागृत होगी जब भक्त का 100% ध्येय भगवत्–प्राप्ति होगा। घर छोड़ने से भगवत्–प्राप्ति नहीं हआ करती यदि ऐसा हो तो सभी त्यागी भगवान् को प्राप्त कर लें। अधिकतर, इनमें अन्य–वाच्छा अन्तःकरण में रहती है। करोड़ों में से किसी एक का भगवत्–प्राप्ति का ध्येय होता है। सच्चे दिल से पूछकर देखें कि वास्तव में उनके मन में क्या प्राप्त करने की इच्छा है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

ठाकुर जी की पूजा करने वाले प्रत्येक साधक का पहला धर्म है– एक लाख 'हरिनाम' करना। इनको समय की कमी भी नहीं होती। एक लाख (64 माला) सभी कर सकते हैं। क्या सभी पूजक

ऐसा करते हैं ? यदि नहीं करते तो ठाकुर–अर्चन–पूजा, केवल कपटमयी होती है। जब हरिनाम के श्रवण के अभाव में प्रेम होगा ही नहीं, तो प्रेम से ठाकुर का शृंगार व प्रसाद–अर्पण कैसे होगा ? मैंने देखा है कि कई स्थानों पर ठाकुर जी का शृंगार कई–कई दिनों में होता है। अर्पण करने के बाद कितनी देर तक प्रसाद मंदिर में रखा रहता है। ठाकुर जी द्वारा प्रसाद पाने का चिंतन होना श्रेयस्कर है।

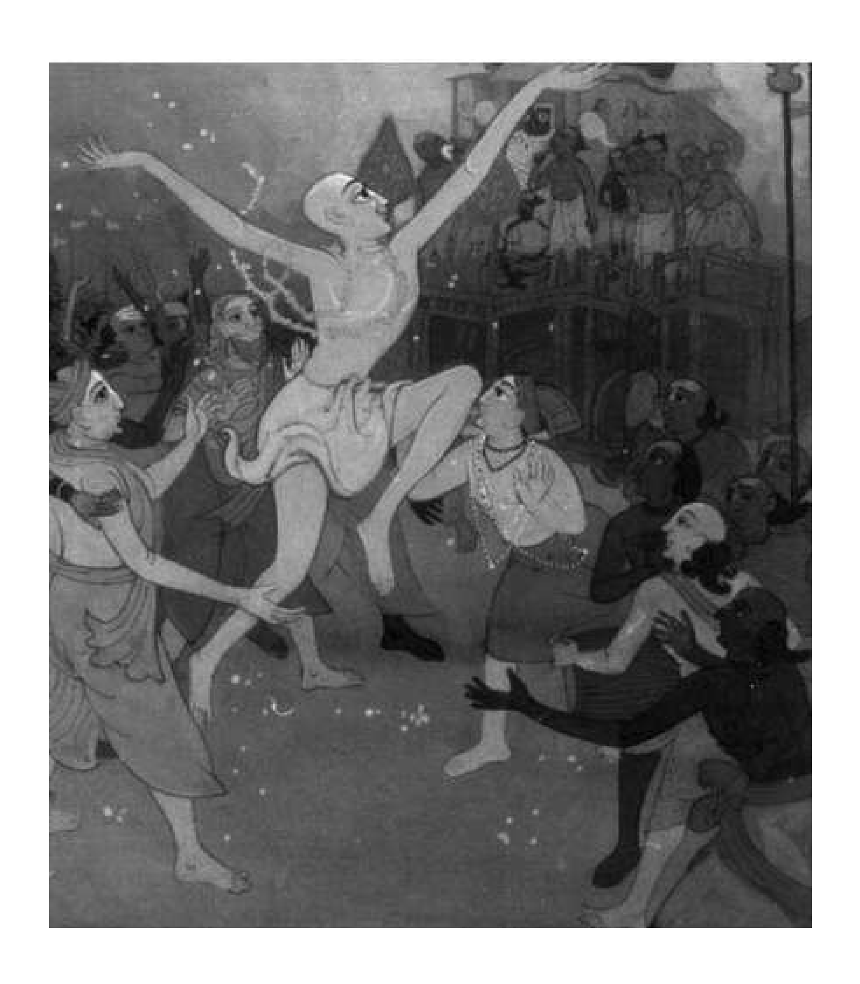
आरती के समय अधिकतर दर्शनार्थियों को यह मालूम नहीं रहता कि आज ठाकुर जी ने किस रंग का पोशाक पहन रखा है, क्योंकि दर्शन अन्दर की आँखों से नहीं, चर्म–नेत्रों से होता है, जो स्थायी नहीं होता। कीर्तन–नृत्यादि के समय साधकों को पुलक–अश्रुपात होना चाहिए। केवल पेट का खाना Digest हो जाए और भूख लग जाए, इस विचार से कीर्तन–नृत्यादि नहीं करना चाहिए। मेरा अपराध न हो जाए, ऐसा सभी को नहीं होता, परन्तु अधिकतर ऐसा हो रहा है। ठाकुर का दर्शन अन्तःकरण से होना चाहिए। दर्शन के समय ठाकुर जी से मूक बातें भी होनी चाहिए। ऐसा करने से ठाकुर जी का जवाब भी मिलता है।

जब तक कलि का धर्म– 'हरिनाम' का श्रवण नहीं होगा, तब तक द्वापर का धर्म, अर्चन–पूजनादि ढकोसला मात्र ही होगा। प्रथम कक्षा पास की नहीं B.A. की क्लास में बैठ गए। क्या B.A. का प्रमाण पत्र मिल जाएगा ? कितनी मूर्खता है। साँप की लकीर को पीटे जावो, साँप तो हाथ से निकल गया। मैं अर्चन–पूजन के विपरीत नहीं लिख रहा हूँ, यह अवश्य होना चाहिए पर पहले एक लाख हरिनाम होना जरूरी है।

जब हम अन्तःकरण में गहरे रूप से विचार–विमर्श करते हैं तो निष्कर्ष निकलता है कि कलिकाल का एकमात्र धर्म है– हरिनाम–स्मरण–कीर्तन। सभी साधकों को प्रतिदिन कम–से–कम 64 माला हरिनाम–स्मरण की करना परमावश्यक है। ठाकुर का अर्चन–पूजन–यह द्वापर का धर्म है, जो कलिकाल में भी हो रहा है

अतः अति उत्तम है; परन्तु नाम–स्मरण को छोड़कर अर्चन–पूजन करना कौन सा धर्म है ? L.K.G., U.K.G. कक्षा को छोड़कर चौथी कक्षा में बैठना क्या युक्तियुक्त है ?

–0–



30

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23.8.07

हरिनाम ही कलियुग का शासक

जिस देश में कोई शासक (राजा) नहीं है, वहाँ अराजकता फैलना एक साधारण सी बात है। अतः देश में राजा होना परमावश्यक है।

इसी प्रकार इस कलियुग में हरिनाम ही राजा (शासक) है। यदि कलियुग (देश) रूपी इस लोक में शासक नहीं रहेगा तो पूरे संसार रूपी आध्यात्मिक क्षेत्र में अराजकता फैलना एक साधारण सा विषय होगा। जैसा कि हम पूरे पृथ्वी–क्षेत्र में देख रहे हैं, हरिनाम राजा की अनुपस्थिति में क्या–क्या न होने वाले काम प्रत्यक्ष में हो रहे हैं। इनसे बचना बिल्कुल असम्भव है। इसमें सज्जन–दुर्जन सभी पिसे जा रहे हैं।

यह तो हुई संसार की स्थिति। अब बात करें मंदिरों की जिन्हें आध्यात्मिक केन्द्र माना जाता है व जहाँ अखिल–ब्रह्माण्डों के स्वामी–भगवान् विराजमान रहते हैं। वहाँ भी हरिनाम रूपी राजा की अनुपस्थिति में अराजकता फैलना एक आश्चर्य का विषय है। परन्तु ऐसे स्थानों पर हरिनाम रूपी राजा अपना स्थान ग्रहण नहीं कर रहा है, क्योंकि ऐसे केन्द्रों को चलाने के लिए योग्य कार्यकर्त्ता नहीं हैं। इनके अभाव में हरिनाम रूपी शासक अपना स्थान ग्रहण नहीं कर रहा है।

अब इन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए सद्गुरु परमावश्यक है तथा सद्गुरु देव के विश्वासपात्र, शिक्षा गुरुवर्ग की भी बहुत आवश्यकता है। यदि ऐसी पाठ्शाला खुले, तो ऐसी अराजकता का नामोनिशान ही समाप्त हो जाए, इसमें बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। स्वयं को तपस्या करनी पड़ेगी। हर प्रकार का कष्ट झेलना पड़ेगा। त्याग करने पर कुछ सम्भव हो सकता है बिना बलिदान, कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि अराजकता चरम सीमा तक पहुँच

चुकी है। हरिनाम ही राजा का सिद्ध विश्वासपात्र, समर्थ कार्यकर्त्ता है ऐसा कार्यकर्त्ता अकेला ही अराजकता को समाप्त करने के लिए काफी है।

एक सींक से कूड़ा साफ नहीं किया जा सकता। यदि कई सींकें एक जगह बाँध दी जाएँ, तो वह बुहारी का रूप बन जाती है। इस बंधी हुई बुहारी से संसार का पूरा कूड़ा साफ किया जा सकता है। इसी प्रकार से यदि सभी साधक हरि के एक लाख नाम करके नाम–श्रवण करने लग जाएं तो सभी के मन का कूड़ा साफ होकर निर्मलता में बदल जाए। तब ऐसे स्थानों का उत्कर्ष बहुत शीघ्र उदय हो जाए। सभी असुविधाएँ स्वतः ही दूर होकर दिव्यता का प्रसार हो जाए व प्रेम का विस्तार हो जाए।

अकेले साधक रूपी सींक से मन का कूड़ा साफ नहीं हो सकता। सभी साधक रूपी सींकें इकट्ठी होकर हरिनाम रूपी दिव्य बुहारी से अपने–अपने मन के व मन्दिरों के कूड़े को साफ कर सकती हैं।

सारा का सारा हृदय–रोग रूपी कूड़ा साफ होकर ऐसे संस्थानों का उत्कर्ष उदय हो जाए। लेकिन ऐसा होना असम्भव सा जान पड़ता है क्योंकि कूड़ा इतना ज्यादा हो चुका है कि साफ करना असम्भव लगता है। गुरु–संत–ठाकुर ही इसमें सक्षम हैं। यदि चाहें तो चिपका हुआ कूड़ा भी साफ हो सकता है। परन्तु इन महानुभावों को कोई याद तक नहीं करता तो कैसे हो सकता है ?

कलिजीवेर अपराध असंख्य दुर्वार।
गौरनाम बिना ता 'र नाहिक उद्धार।।
अतएव गौरनाम बिना कलिते उपाय।
ना देखि कोथाय आर, शास्त्र फुकारय।।

कलियुग के जीवों के अपराध असंख्य और भीषण हैं, गौरनाम बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता। इसलिये शास्त्र बार–बार उच्च–स्वर से कह रहे हैं कि गौरनाम के अतिरिक्त कलियुग के जीवों के उद्धार का अन्य कोई भी उपाय दिखाई नहीं देता।

31

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
24.8.07

शास्त्रीय सत्य-सिद्धान्त की अवहेलना

द्वापर का धर्म-कर्म है, भगवान् को साक्षात् समझकर शुद्ध-भक्ति द्वारा ठाकुर जी की श्रद्धा-प्रेम से अर्चन-पूजा करना। यह ठाकुर जी की शुद्ध अर्चन-पूजा तब ही श्रद्धा-प्रेम से हो सकेगी जब पूजा करने वाला स्वयं भक्तिमान हो। पुजारी भक्तिमान तब ही होगा, जब वह कम से कम जो कलि का धर्म-कर्म है-64 माला (एक लाख हरिनाम) का नित्य श्रवण-पूर्वक जप करेगा।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं महाप्रभु गौरहरि; जिन्होंने अपने भक्तजनों को आदेश दिया कि सभी को एक लाख हरिनाम नित्य श्रवण करना होगा। इस आदेश का आशय यह था कि इन पर ठाकुर जी की अल्पकाल में कृपा हो जाए। नाम ही रुचि पैदा कर संसार से इनकी आसक्ति छुड़ा देगा व संतों का संग करा देगा। 'बिन हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।'

हरिनाम-श्रवण के अभाव में ठाकुर जी का अर्चन-पूजन एक कठपुतली होगा। बिना हरिनाम के श्रद्धा-प्रेम होगा ही नहीं, क्योंकि हरिनाम-श्रवण रूपी धन, पूजक के पास है ही नहीं। बिना धन के कुछ होता ही नहीं। द्वापर की भक्ति, जो ठाकुर जी की पूजा-अर्चन है, वह इसलिए परमावश्यक है कि साधकजन ठाकुर जी की शरण में रहकर, कलि का धर्म-कर्म जो हरिनाम श्रवण-कीर्तन है, शान्ति पूर्वक कर सकें। मंदिरों में ठाकुर जी विराजमान होते हैं। इनके संरक्षण से हरिनाम-श्रवण-संकीर्तन बड़ी सुगमता से होता रहता है। इनके अभाव में उक्त-साधन होना असम्भव ही है क्योंकि अराजकता फैलने का भय बना रहता है।

इसी कारण भक्त–गृहस्थी अपने घर के एक कमरे में ठाकुर जी का चित्रपट रख कर निर्भय होकर सोता है। ठाकुर जी को अपना स्वामी समझकर हरिनाम–श्रवण–कीर्तन का आयोजन नित्य सुगमता से करता रहता है। अराजकता का भय नहीं होता।

भक्त–गृहस्थ नित्य ठाकुर को भोग अर्पित करता है। शयन कराता है। गर्मी में पंखा करता है। सर्दी में गर्म शाल औढ़ाता है। कष्ट आने पर ठाकुर से प्रार्थना करता है। बैठकर मूक बातें भी करता है। समस्याओं का हल भी पूछता है। संतों की कथा ठाकुर को प्यारी लगती है तो उनका चरित्र सुनाता है। ठाकुर जी को हर प्रकार से सुखी देखना चाहता है। ठाकुर जी भी उसे सुखी करते रहते हैं। "जिस प्रकार भक्त मुझे भजता है, मैं भी उसी प्रकार से उस भक्त का भजन करता हूँ। To every Action, there is an equal and opposite reaction जैसी हरकत, वैसी बरकत होगी ही, यह गीता जी का वचन है।"

अब रहा कलियुग का धर्म–कर्म; तो जहाँ हरिनाम श्रवण–कीर्तन नहीं हो रहा है, वहाँ शुद्ध अर्चन–पूजन भी नहीं हो पाएगा। वहाँ अराजकता फैलनी जरूरी ही है। नाम–श्रवण–कीर्त्तन के अभाव में जो धर्म–कर्म, अर्चन–पूजा होती है, वह शक्तिहीन रहती है, क्योंकि मूल वृक्ष की जड़ में यदि श्रवण–रूपी जल नहीं दिया गया तो ठाकुर जी का पूजन–अर्चन रूपी वृक्ष सूख जाएगा और एक दिन गिर पड़ेगा। अतः निष्कर्ष यह निकला कि प्रत्येक साधक को कम से कम एक लाख हरिनाम–श्रवण अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने से कीर्त्तन–प्रवचन में बल प्रकट हो जाएगा, वरना सभी साधक बलहीन होते रहेंगे। केवल समय को बर्बाद करते रहेंगे, कुछ उपलब्धि नहीं मिलेगी।

पहली कक्षा में तो बैठे नहीं B.A. की कक्षा में बैठ गए तो क्या कुछ उपलब्धि हो सकेगी ? केवल हाथ पर हाथ रखकर समय गुजारते रहोगे। इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है ? मानव–जन्म तो भगवान् की कृपा से मिला है, व्यर्थ में खोते रहो।

अमूल्य–रत्न हाथ लगा था, पत्थर समझ कूड़े में फैंक दिया। दुबारा मिलने को तरसते रहोगे।

ठाकुर जी का अर्चन–पूजन, ठाकुर जी के सुख हेतु श्रद्धा–प्रेम से होना चाहिए। इसलिये नहीं होना चाहिये कि संसार मुझे भक्त कहेगा। मुझे धन मिल जाएगा। यह है काम–भक्ति की श्रेणी।

मैं ठाकुर जी को आज ऐसी सुन्दर पोशाक से सजाऊँगा कि दर्शकगण देखते ही रह जाएँगे। इत्र–फूल से ठाकुर जी के कमरे को महका दूँगा। ठाकुर जी को बहुत सुख होगा। आज ठाकुर को तरह–तरह का भोग अर्पण करूँगा। ठाकुर जी उसे पाकर तृप्त हो जाएँगे। इस प्रकार ठाकुर से सुख हेतु जो अर्चन–पूजन होता है, वह शुद्ध–निर्मल–भक्ति की श्रेणी में आता है। जो ऐसी ठाकुर–सेवा करते हैं, ठाकुर जी उनसे बातें भी करते हैं। हर हालत में यह ठाकुर जी का ही विधान है–ऐसा समझना चाहिए।

"धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ अच्छा होय।
माली सीचें सौ घड़ा, रितु आए फल होय।।"

श्रीमन् माधवेन्द्र पुरी जी एक बार (खीरचोरा) गोपीनाथ मन्दिर में दर्शन हेतु गए तो किसी ने कहा कि यहाँ रात को अमृत के समान स्वादिष्ट खीर का भोग लगता है तो माधवेन्द्र पुरीपाद जी की इच्छा हुई कि यदि थोड़ी सी खीर–प्रसाद मुझे चखने को मिल जाए तो मैं भी अपने गोपाल जी का ऐसी खीर का भोग लगाऊँ। थोड़ी देर में पछताने लगे कि मेरी जीभ खाने को ललचा रही है। इससे वे दुःखी हुए।

यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। जब भक्त भगवान् के सुख के लिए सोचता है तो भगवान् भी भक्त के सुख की सोचते हैं। रात को गोपीनाथ जी ने पुजारी को खीर का एक कुल्हड़, जो उन्होंने छिपाकर रख लिया था, माधवेन्द्र पुरी को देने के लिए स्वप्न में कहा। पुजारी उनको बाजार में, जहाँ बैठकर वह जप कर रहे थे, खीर का कुल्हड़ देकर आए। उन्होंने वह खीर खाई और कुल्हड़ फोड़ कर गल–वस्त्र में बाँध लिया एवम् उसके टुकड़ों को हर रोज

थोड़ा–थोड़ा खाते रहे क्योंकि वह ठाकुर जी का महाप्रसाद था। हरिनाम लेते रहे और ठाकुर जी की कृपा के लिए रोते रहे। अतः हरिनाम ठाकुर के सुख हेतु ही लेना चाहिए। मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं। शास्त्रीय सिद्धान्त को न अपनाने से प्रत्येक पूजा–स्थल में अराजकता फैलती जा रही है। फिर भी चेतना नहीं होती। यही कलियुग का प्रकोप है। स्वयं को सुधारो दूसरे नहीं सुधरेंगे।

कोई साधक (विशेष कर कोई त्यागी भक्त) यदि नित्य प्रति एक लाख हरिनाम–महामन्त्र का जप नहीं करता तो साफ प्रगट होता है कि भगवत् प्राप्ति उसका उद्देश्य नहीं है। केवल मान–प्रतिष्ठा, धन कमाना व मौज उड़ाना ही उसका ध्येय है। T.V. देखने वाले व Mobile का दुरुपयोग एवं फिजूल उपयोग करने वाले साधक भक्त क्या भगवान् को चाहेंगे ? बिल्कुल नहीं। यदि वे भगवान को नहीं चाहते तो फिर घर छोड़ कर किस लिए आए हैं। मेरा कहना है कि यदि वे भगवान को चाहते तो T.V. इत्यादि से दूर रहते। संसार में बहुत साधुवेशधारी हैं किन्तु ऐसे करोड़ों साधुओं में कोई एक भगवान् को चाहता है, बाकी सब तो असाधुता में ही रमण कर रहे हैं। गीता जी का भी यही कथन है।

यह लेख मैंने नहीं लिखा, किसी अदृश्य–शक्ति द्वारा प्रेरित करके लिखवाया गया है। स्वयं गृहस्थ में फंसा प्राणी, ऐसा लेख लिखकर दूसरों को किस प्रकार ऊपर उठा सकता है जबकि वह खुद ही गिरा पड़ा है।

नवद्वीपे जेबा प्रभु करय गमन।
सर्व अपराधमुक्त हय सेइ जन।।
जो कोई भी व्यक्ति नवद्वीपधाम में जाता है,
वह सब प्रकार के अपराधों से मुक्त हो जाता है।

32

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28.8.07

श्री हरिनाम ही परमानन्द का जनक

भगवान् ने कलियुग को चार लाख बत्तीस हजार साल के लिए मृत्यु लोक में राज करने का आदेश दिया। कलि का स्वभाव चांडाल प्रकृति का है अतः जो उसके स्वभावानुसार जीवनयापन करेगा, उसी के अनुकूल कलि राजा का बर्ताव होगा। जो इसके स्वभाव के विरुद्ध होगा, उसे कलियुग कभी सुखी नहीं देख सकेगा। ऐसा इस समय देखने को मिल भी रहा है।

कलि राजा पर शासन करने वाला अखिल ब्रह्माण्डों का पालनकर्ता हरिनाम (भगवान्) है। जो मानव श्री हरिनाम की शरण में रहकर अपना जीवनयापन करेगा, उसे कलि कभी भी नहीं सताएगा क्योंकि उसके ऊपर ठाकुर जी का शासन है।

भगवान् ने जब उसे राजा बनाया तो उसे कहा था कि यदि मेरे भक्तजन से टकराएगा तो जल कर खाक हो जाएगा। प्रत्यक्ष में देखा भी जा रहा है कि जिस घर में, मंदिर आदि में, मस्जिद में सच्चा प्यार (हरिनाम) नहीं हो रहा है, वहाँ हर समय कलह मचा रहता है। सद्-व्यवहार वहाँ है ही नहीं। सौहार्दपना मूल से चला गया है। यहाँ तक कि मार-पीट भी होती रहती है।

कलि का प्रकोप प्रत्यक्ष नजर आ रहा है। धनी भी दुःखी, गरीब भी दुःखी। राजा भी दुःखी तो रंक भी दुःखी। कोई सुखी नहीं, क्योंकि इस मृत्यु लोक में कोई रक्षक नहीं; सभी भक्षक बनकर सता रहे हैं।

सच्चे भगवत् भक्त ही (जो हरिनाम एक लाख 64 माला नित्य स्मरण करते हैं) सुखी हैं, क्योंकि उनके रक्षक-पालनकर्ता हरिनाम हैं। इन पर भी कलि का प्रभाव तो पड़ता ही है पर हरिनाम

करने से वे बिगाड़ से बच जाते हैं। प्रत्येक परिवार में, समाज में, गांव में, शहर में, देश–विदेश में कलह कराना, अराजकता, मारपीट, लूट–खसोट करवाना और कहीं पर भी शान्ति न रहने देना एवं देख–देखकर हँसना–यह कलियुग का धर्म है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

जो सच्चे अन्तःकरण से हरिनाम करता है, उस पर कलि का प्रभाव नहीं पड़ता। वही इस लोक में परम सुखी है। बाकी सभी दुःख की आग में झुलस रहे हैं।

प्रत्येक जगह कुसंग का बोल बाला है। कलि ने बोला है कि संपूर्ण मृत्यु लोक को कुसंग की धधकती हुई आग में नहीं झोंक दूँ तो मेरा नाम कलि ही क्या हुआ ? ऐसे–ऐसे आविष्कार यहाँ पर करूँगा कि कोई बच नहीं सकेगा। यहाँ तक कि ऋषि–मुनि भी इनकी चपेट में आए बिना नहीं रह सकेंगे। T.V. का आविष्कार जो मैंने किया है, उसमें बालक–वृद्ध तक कुसंगी बनते रहेंगे। धर्म, मर्यादा, सत्य, न्याय–कुछ भी बचा नहीं रहेगा। दूसरा आविष्कार है अखबार जिसमें झूठी–सच्ची खबरें छापकर लोगों का सारा समय बर्बाद करता रहूँगा। सद्मार्ग के हेतु समय बचने नहीं दूँगा। तीसरा आविष्कार है–मोबाईल जिसमें गुप्त षड्यन्त्र रचकर बर्बादी का माहौल बनाता रहूँगा। भविष्य में एक आविष्कार और करने वाला हूँ, देखते जाओ। एक ऐसी मशीन बनाऊंगा कि वह मशीन 1000 मीटर दूर से ही घर की, बैंक की, कारखाने की, धन–दौलत बताती रहेगी। मैं मौका देखकर उस पर हमला करके सारा माल–मत्ता लूट कर ले जाऊँगा एवं सबको वहीं पर कत्लेआम कर जाऊँगा। कोई रक्षक नहीं होगा। कोई सुनने वाला नहीं होगा। पैसे का बोलबाला होगा। पैसा देकर आजादी से घूमता रहूँगा। परीक्षित जैसों को भी मैंने नहीं छोड़ा तो और तो मेरे लिए मच्छर–मक्खी हैं।

केवल हरिभक्त (नाम–जापक) पर ही मेरा प्रभाव नहीं चलेगा, जो करोड़ों में एक ही होगा और सब पाखंडी होंगे। माला जपेंगे और गला काटेंगे। वे मेरे चंगुल से बाहर नहीं जा सकेंगे।

गौरहरि ने क्यों एक लाख (64 माला) हरिनाम की करने का अपने जनों को आदेश दिया है इसका कारण है कि हरिनाम द्वारा कलि की दुष्टता से बचाव हो सके। भविष्यकाल बहुत खतरनाक आवेगा जिनमें भगवान् का भक्त ही बच पावेगा। गौरहरि भी जानते थे कि 64 माला में किसी का मन रुकेगा नहीं, परन्तु नाम ही धीरे-धीरे मन को रुकवाएगा, जब आनंद आने लगेगा।

"धीरे-धीरे रे मना धीरे सबकुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रितु आए फल होय।।"
धैर्य रखना होगा।
"भाव कुभाव अनख आलसहूँ
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।"

गौरहरि ने इसी वजह से 64 माला करने का आदेश दिया था। इस आदेश का पालन सभी को करना चाहिए। तब ही मंदिरों में प्रेम-श्रद्धा से पूजा हो सकेगी, वरना कपटमयी पूजा तो होती ही है। पुजारी ही देवता को पुजवाता है। जब पूजक ही श्रद्धाहीन होगा, तो अन्य भी वैसा ही करेंगे। जब श्रद्धा नहीं होगी तो संकीर्तन पाठ भी कपट की श्रेणी में आवेगा। इससे श्री विग्रह-पूजा ग्रहण नहीं करेगा व सोता ही रहेगा। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद पुजारी ही ठाकुर को जगाता है वरना सो जाएगा। सजीवता नहीं रहेगी। भगवान् गौरहरि अच्छी तरह से जानते थे कि ऐसा कलियुग आएगा जिसमें ऋषि-मुनि महात्मा भी नहीं बच पाएँगे, अतः इससे बचने का उपाय अभी से बताना उचित है।

यह शर्त लगा दी कि जो 64 माला (एक लाख) हरिनाम श्रवणपूर्वक करेगा, उसी के घर पर मैं प्रसाद पाऊँगा। इससे गहरा विचार करने पर यह निश्चय होता है कि हरिनाम श्रवण के अभाव में मानव को दुःख सागर में निश्चय ही डूबना पड़ेगा। अतः अभी से इनके बचाव का उपाय बताना उचित होगा।

इन वचनों पर आस्तिकजनों को पूरा ध्यान देना चाहिए कि जो आदेश उन्होंने दिया है कितनी गंभीरता लिए हुए है। जैसा कि देख

भी रहे हैं। जिस ठौर पर भगवान् का नाम श्रद्धा व प्रेम से नहीं हो रहा है, वहाँ कलि महाराज ने कलह मचा रखा है। मंदिर हो, घर हो, या वन हो–सभी ठौर कलह से सभी प्राणी भीषण आग में झुलसते जा रहे हैं।

इस हरिनाम का अमित प्रभाव है। तभी स्वयं भगवान् राम ने अपने नाम के लिए घोषणा की है कि–

"कहाँ कहौं लगि नाम बड़ाई
राम न सकहिं नाम गुण गाई।।"

नाम सर्वसमर्थ हैं। आराध्यतम् हैं। साधन व साध्य दोनों नाम में ओत–प्रोत रहते हैं। "चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहीं आन उपाऊ।" जिसने नाम की शरणागति ले ली, अर्थात् रात–दिन जप रहा है। उसने सद्मार्ग पर अपना जीवन–यापन कर लिया। जिसने नाम की शरणागति नहीं ली, उसका सभी आध्यात्मिक कर्म न के बराबर है, क्योंकि कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम जपना ही होता है। वह उसने छोड़ रखा है। मूल में पानी दिया नहीं तो वृक्ष कैसे हरा–भरा रह सकता है ?

मंदिरों के ठाकुर जी, जो हरिनाम से ही सजीवता धारण किए हुए हैं, नाम के अभाव में सजीव कैसे रह सकते हैं। केवल पत्थर की मूर्ति ही दिखाई देगी। दर्शन होता है–अन्तःकरण के ज्ञान नेत्र से, वह नेत्र हरिनाम–श्रवण के अभाव में खुलते नहीं। जब हरिनाम–श्रवण रूपी काजल का नेत्रों में अन्जन होगा, तब दिव्य दृष्टि स्वतः ही जाग्रत हो जायेगी।

नाम से ध्रुव ने, प्रह्लाद ने भगवान् का हृदय दहला दिया। अन्य भक्तों ने भगवान् के हृदय को मोल ले लिया। गहरा विचार करना होगा कि जो समय गया सो गया अब भी चेत कर हरिनाम को अपनावो। खटवांग राजा ने तो दो घड़ी में ही भगवान् को पा लिया था। सात दिन में परीक्षित जी ने गोलोक धाम की प्राप्ति कर ली थी।

धैर्य रखो, घबरावो नहीं। संसार से मन एक दम हटा लो तो भगवान् शीघ्र मिल जाएंगे। भगवान् केवल तुम्हारा मन लेना चाहते हैं। अब तक मन माया को सौंप रखा है, अब इसी क्षण यह मन भगवान् को सौंप दो तो तुम्हारा अनन्त कोटि जन्मों के दुःखों का बखेड़ा इसी क्षण समाप्त होता हुआ दिखाई देगा।

संसार में रहते संसार का काम भी करो लेकिन फंसावट से दूर रहकर हर समय हरिनाम करते रहो व भगवान् को नहीं भूलो। बस तुम्हारा काम बन जायेगा। केवल मन को पलटना है। माया–मोह ही अगला जन्म करवाते हैं। पलट कर मोह को भगवत–चरणों में रख दो।

"सन्मुख होहिं जीव मोहिं जबहिं।
जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहिं।।"

हरिनाम–श्रवण को अपनाना ही भगवान् के सामने होना है, अन्य कोई साधन नहीं है–

"कोटि विप्र वध लागहिं जाहू। आये शरण तजहूँ नहीं ताहू।।"

समय बड़ी तेजी से जा रहा है, बालपन गया, जवानी गई, बुढ़ापा आकर आपको सुचेत कर रहा है कि अब भी चेत जावो, कुछ नहीं बिगड़ा है वरना अचानक मौत आकर तुम्हें निगल जावेगी। इससे पहले कि मौत आवे, भगवान् के चरण में लेट जावो तो यमराज के मुख पर कालिख पुत जायेगी। भगवान स्वयं अपने संग में, प्रेम से स्वागत सहित, अपने धाम में ले जाएँगे। चूको मत, अभी से नेत्र खोलकर चल दो। मंगल होगा। कलि ने Mobile का जो आविष्कार किया है, यह कामदेव का तथा क्रूरता का साक्षात् स्वरूप है। इसे 10% अच्छा उपयोग होता है तथा 90% खराब उपयोग हो रहा है। भजनानन्दी को भजन के समय बंद रखना चाहिए। आवश्यकता अनुसार ही काम लेना उचित है। T.V.तथा अखबार से क्या मतलब है। इनसे तो भगवत–चिंतन में बहुत नुकसान होता है। जो भी भक्त इनसे काम लेगा उसका भजन–स्तर गिरता ही रहेगा।

33

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
1.1.07

भय से आक्रांत की दुःख-विज्ञप्ति

आत्मा जब से परमपिता परमात्मा से बिछुड़ा तब से इसे एक पल का चैन नहीं है। ठौर-ठौर (84-लाख योनियों) की ठोकरें खाता फिरता है। परमपिता को भूलने से माया इसे दुःख के पिंजरे में डालकर दुःख पर दुःख दे रही है। आत्मा विशुद्ध चेतन-परमात्मा की शक्ति का अंश होते हुए भी दुःख पर दुःख भोग रहा है। यह अज्ञानमय कुसंग के कारण है। जब तक इसकी भगवान के प्यारे जन से भेंट नहीं होगी, तब तक अनन्त कोटि जन्म-जन्मान्तर तक अनेक योनियों में भटकता रहेगा। भगवान् के प्यारे जन से यह भेंट भी भगवत-कृपा बिना नहीं होती।

प्रथम तो इसे नरक-तुल्य गर्भाशय के कष्ट झेलने पड़ते हैं। गर्भाशय से बाहर आने पर संसारी कष्ट उसके पीछे पड़ जाते हैं। शिशु अवस्था में उसे कुछ ज्ञान नहीं रहता, न हलचल करने की शक्ति रहती है, न बोल सकता है। उसे मक्खी-मच्छर खटमल परेशान करते हैं। कभी कान दर्द, कभी पेट दर्द, कभी भूख, कभी प्यास-इनसे आक्रान्त रहता है।

बड़ा होने पर मन न मानते हुए भी पाठ्शाला जाना पड़ता है, जबकि इसका मन खेलने में रहता है। लेकिन क्या करें, माँ-बाप जबरन भेजते हैं। पाठ्शाला में मास्टर धमका देता है। बराबर वालों से लड़ पड़ता है। उच्च पाठ्शाला में जाने के लिए आपस में होड़ लग जाती है कि कौन पढ़ने में व खेलने में सर्वोत्तम है। परीक्षा में कम नम्बर आने पर रात को नींद नहीं आती। बराबर वाले चिढ़ाते हैं। यहाँ तक कि आत्महत्या करने की तैयारी लगती है। अनपढ़ गरीब होने पर, इसे मजदूरी पर जाना पड़ता है। जबकि यह रोग-ग्रस्त है। लेकिन क्या करें, पेट भरता नहीं है। शादी होने पर

धर्मपत्नि से बनती नहीं है। बच्चे बहुत हो गए। अतः रात–दिन गरीबी के कारण बेचैन रहता है। अतः गलत तरीके से कमाना चाहता है तो सजा का हकदार होना पड़ता है।

बड़ी मुश्किल से B.A. M.A. पास की है, परन्तु नौकरी के लिए भटकता रहता है। अतः हार कर मजदूरी करने लग जाता है। मजदूरी करने की आदत नहीं है, क्योंकि 20 साल तक पढ़ा है काम किया तो कभी नहीं, अतः रो–रोकर दिन बसर करता है।

फौज की नौकरी मिल गई तो अफसरों की डॉट डपट सहनी पड़ती है। दुश्मन राष्ट्र की पकड़ में चला जाए तो ऐसी दुर्दशा भोगनी पड़ती है कि देखने वाला बेहोश हो जाए। इतना मारते हैं कि मरता भी नहीं, न जीता ही है। चाहता है कि मर जाऊँ तो अच्छा है। गर्म लोहा शरीर में दागते हैं, बर्फ में डाल देते हैं, न जाने क्या–क्या सजा देते हैं।

इतने भयानक दुःखों को देखकर भी मानव सुख की तरफ नहीं जाता। बुढ़ापा तो इतना दुःखदायक है कि क्षणभर चैन नहीं मिलता। सांस आती नहीं। शरीर दर्द करता है। खांसी चैन नहीं लेने देती। खाट में पड़ा–पड़ा तड़पता रहता है। बेटे–पोते पूछते नहीं कि बाप का क्या हाल है। घर से निकाल देते हैं। खाना देना तो दूर, पूछते तक नहीं हैं। अंत में तड़पता हुआ मर जाता है। यह है मानव–जीवन की गाथा। इस लेख को पढ़ने से संसार से वैराग्य होने की संभावना है।

मन ही मन सब समय अर्थ की चिन्ता करते–करते तुम्हारे दिन व्यर्थ में नष्ट हो रहे हैं। यह अर्थ नहीं, अनर्थ है, इसे समझो। पत्नी, पुत्र, बन्धु–बान्धव आदि कोई भी अपना नहीं है। मरने के बाद कोई किसी का नहीं रहता। इसलिये कहता हूँ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

34

छींड की ढाणी
7.1.07

भगवत् प्राप्ति का केवल मात्र एक ही साधन–हरिनाम जप

सृष्टि के पहले एक भगवान् के अलावा कुछ नहीं था। भगवान् ने लीला रचाने हेतु अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना की। वे ब्रह्माण्ड में स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु व शिव रूप में अवतरित हुए। ब्रह्मा को सृष्टि बढ़ाने का आदेश दिया। विष्णु को सृष्टि के जीवों का पालन का भार सौंपा व शिवजी को उनके कर्मानुसार मौत देने का भार सौंपा।

ब्रह्मा ने सृष्टि करना आरम्भ किया। जो सृष्टि प्रगट हुई, वह ब्रह्मा को ही सताने लगी। ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि यह सृष्टि तो मुझे ही सता रही है, मैं क्या करूँ? परमात्मा ने आदेश दिया कि मुझे याद करके अर्थात् मेरा भजन करते हुए सृष्टि रचो। ब्रह्मा ने ऐसा ही किया तो प्रथम उनके मन से ही श्रीनारद का अवतार हुआ। इसके बाद उनकी भौंओं (भृकुटि) से रुद्र अवतार हुआ। इसके बाद सप्तऋषि प्रगट हुए। इन ऋषियों से ही सृष्टि का विस्तार हुआ। उक्त बात इसलिए अंकित हो गई कि इसमें हरिनाम का ही प्रसंग है।

पिछले युगों में बच्चे 25 साल तक गुरु–आश्रम में शास्त्र श्रवण करते थे। उनका खून सात्विक होता था। उनसे जो संतानें होती थीं वह शुद्धवृत्ति–अच्छे स्वभाव वाली होती थीं। कलियुग में बच्चों को अधिक से अधिक धन कमाने की शिक्षा दी जाती है। अतः बच्चों का स्वभाव ही राजसिक–तामसिक होता जा रहा है जिससे संतानें बुरे–स्वभाव की होती जा रही हैं। माता–पिता को दुःख देती हैं। उनमें धर्म का तो 1% भी भाव नहीं है। जो संतान माँ–बाप तक

को नहीं मानती, वह परमपिता परमात्मा को कैसे मान सकती है? असली बाप अर्थात् परमात्मा को भूलने के कारण माया उनको हर प्रकार से दुःख देती रहती है।

नाम–शब्द की शक्ति द्वारा ही सृष्टि का काम चलता है। इसके अभाव में कुछ भी कर्म हो ही नहीं सकता। इन नाम–शब्दों में दुःख व सुख भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ –किसी ने किसी को अपशब्द बोला तो तुरंत हृदय में उथल–पुथल मच गई एवं क्रोध का प्राकट्य हो गया। किसी ने किसी को प्रेम भरा शब्द बोला तो उसके हृदय में सुख की स्फूर्ति प्रगट हो गई। शब्द की शक्ति से बाण चलते थे। शब्द की शक्ति से 'मेघ' राग से बरसात होती है। इसी प्रकार शब्द की शक्ति से ही भगवान, भक्त के पीछे–पीछे फिरते हैं। शब्द की शक्ति से लैक्चरार के शब्द सुनने से इन्जीनियर की पद्वी प्राप्त हो जाती है। जो कुछ सफलता मिली, वह केवल मात्र शब्द के सुनने से मिली।

इसी प्रकार हरिनाम–महामंत्र रूपी शब्दों को कान से सुनने पर ही भगवत–प्रेम जागृत होता है। कहते हैं कि मन नहीं लगता (रुकता) है, बिल्कुल गलत बात है। एक इंजीनियर बिना सुने इंजीनियर कैसे बन गया? पत्र लिखते हैं, तब कैसे मन रुकता है? हरिनाम को बिना सुने, भगवान् कैसे मिल जाएगा?

इसी प्रकार हरिनाम–महामंत्र के शब्दों में भी अपार शक्ति निहित है। यदि किसी सुकृतिशाली जीव को इन नामों में श्रद्धा बन जाए तो इसी जन्म में हृदय रूप में भगवत्–दर्शन होकर जन्म–मरण से छुटकारा मिल जाए तथा गोलोकधाम की प्राप्ति हो जाए।

शब्दों से जुड़ कर मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें भगवान् ने अपार शक्ति भर दी; जिनसे एक क्षण में सृष्टि का प्रादुर्भाव हो जावे। मन्त्रों से राक्षस वायु रूप से आकाश में उड़कर देवताओं से युद्ध करते हैं, गायकजन दीपक राग गाकर दीपक जला देते हैं। मेघ राग से बरसात बरसा देते हैं इत्यादि।

शब्द के बिना सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। जरा गहरा विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम–जापक के पास समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। अर्थ–धर्म–काम–मोक्ष तथा अष्ट सिद्धियाँ–नव निधियाँ उसे सुलभ हो जाती हैं।

जब भगवान ही मिल जाते हैं तो इससे बड़ा लाभ क्या हो सकता है।

यह सब होगा केवल मात्र हरिनाम महामंत्र के शब्दों के श्रवण से ही। अनेक जन्म बीत जाएँगे, श्रवण बिना कुछ नहीं मिलेगा। सुनना तो Most Essential (बहुत जरूरी) है। सुने बिना तो सृष्टि का काम ही नहीं चलता तो फिर भगवान् कैसे मिल जाएँगे, यह तो असम्भव ही है। हरिनाम–महामंत्र की चार–माला कान से सुनकर करने से भगवान् के लिए छटपट प्रगट हो जाती है, यदि कोई अपराध न हो व मान–प्रतिष्ठा की इच्छा न हो तो!

जरा सोचो !

तुम्हारे मरने के बाद तुम्हारी देह का संस्कार करने के बाद सभी अपने–अपने घर चले जायेंगे। जब कोई किसी का हो ही नहीं सकता तो क्यों मिथ्या आशा लगाकर बैठे हो तथा किसलिये विषयों के प्रति आसक्त हो रहे हो ? इसलिये तो कह रहा हूँ कि इन पत्रों को पढ़ो! समझो और हरिनाम करो–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

नवद्वीपे बसि' जेई मंत्र जप करे।
श्रीमंत्र चैतन्य हय, अनायासे तरे।।

श्रीनवद्वीप धाम में जो व्यक्ति मंत्र जप करता है। उसका मंत्र साक्षात् मूर्ति धारण कर उसके सामने प्रकाशित होता है और वह व्यक्ति अनायास ही भवसागर को पार कर लेता है।

35

छींड की ढाणी

व्यवहार में एक साधारण विचार

एक स्थान पर एक महात्मा का सत्संग हो रहा है। वहाँ हमारा एक परिचित व्यक्ति बैठा सत्संग सुन रहा है। वह किससे सुन रहा है–कान से। जब हम उसे पूछेंगे कि सत्संग में महात्मा जी ने क्या बोला तो जितना उसने सुना उतना वह आपको सुना देगा। यदि उसका मन कहीं किसी ओर होगा तो वह नहीं सुना सकेगा तब उसे सत्संग का कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार, हरिनाम को, कान से न सुनने से 'प्रेम' नहीं मिल सकेगा। इसमें केवल अभ्यास की जरूरत है। मन एक स्वच्छ वस्तु है, यदि अभ्यास किया जाए तो इस पर कोई भी रंग शीघ्र ही चढ़ सकता है। गंदा रंग भी, स्वच्छ रंग भी, जैसा संग किया जाये।

सत्संग में हजारों व्यक्ति बैठे हैं, हमने अपने एक परिचित व्यक्ति को पुकारा–"दिनेश! यहाँ आना।" दिनेश, पुकारते ही वह उठकर आपके पास आयेगा, परन्तु आने के बाद आप ने उससे बात नहीं की और न उसकी सुनी तो वह नाराज होकर वापिस चला जायेगा। इसी प्रकार हमने हरिनाम से अर्थात् भगवान् का नाम लेकर भगवान् को पुकारा। भगवान् एक क्षण में प्रगट हो गये, क्योंकि भगवान् हर क्षण, हर ठौर, कण–कण में व्याप्त हैं, उनको आने में देर नहीं लगती। अब आपका मन कहीं और चला गया तो भगवान् वहाँ से उसी समय चले जायेंगे। क्योंकि भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। यदि भगवान् से जापक का प्यार होता तो मन टिकता, प्यार न होने से मन दूसरी ओर चला जाता है। हमारा सच्चा प्यार जगत से है, झूठा प्यार भगवान् से है।

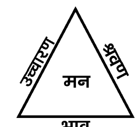
प्रेम ही भगवान् के लिये रुलाता है। सच्चा प्यार है नहीं, अतः रोना आता नहीं। जहाँ भगवान् के लिये रोना प्रगट हो जाता है,

वहाँ भगवान् रुक नहीं सकते, क्योंकि जीव उनका वास्तव में खास पुत्र है। जब तक वास्तविक बाप की गोद नहीं मिलेगी, तब तक जीव-आत्मा को वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जब भगवान् की गोद मिल जायेगी तो इसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-चारों पदार्थों की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी वरना दाने-दाने के लिये भटकता फिरेगा।

यह प्राप्ति होगी केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनने पर ही। जब महसूस करते हो कि जगत का व्यवहार भी कान से सुनने पर ही सफल होता है तो हरिनाम को बिना सुने कैसे लाभ होगा। कान से सुने बिना संसार का काम चल ही नहीं सकता।

मन को हरिनाम में लगाने का तरीका–

हमारा मन एक त्रिभुज में बंद है।



हमारा मन हृदय के भाव, कान के श्रवण और जीभ के उच्चारण रूपी त्रिभुज में बंद है। उसको कोई बाहर जाने का रास्ता नहीं है। एक भुजा हरिनाम उच्चारण की, दूसरी भुजा कान से सुनने की, तीसरी भुजा भाव की अर्थात् भगवान को तुम क्या बोल रहे हो (भाव में भगवान को बोलना चाहिए कि मैं आपका प्यार चाहता हूँ)। भगवान से प्यार होने पर संसार से मन का लगना अपने आप ही हट्ता चला जायेगा। संसार में रहते हुये कर्म करेगा, परन्तु फंसावट नहीं होगी।

गुरु जी का आदेश 1966 में सचिवालय में–

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by Ears."

यही तरीका शिव जी, उमा को बता रहे हैं–"सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव वारिधि गो पद इव तरही।।" (सादर सुमिरन means chanting Harinam sweetly) जो प्रेम से हरिनाम लेगा, संसार में उसका जीवन इस प्रकार हो जायेगा जैसा गौ के खुर से बने खड्डे को सुगमता से लांघ लिया जाता है।

"मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नैन बहे नीरा।।"

''ताकी करऊँ सदा रखबारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।''

उक्त प्रण राम जी अपनी प्रजा से कर रहे हैं।

"सुमरिये नाम रूप बिन देखे, आवत हृदय स्नेह विशेषे।।"

नाम जपते–जपते हृदय में भगवान् नजर आयेंगे। उक्त बात मैं अपने अनुभव की बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कहते हैं भजन को छुपाकर रखना चाहिये। ठीक भी है, क्योंकि घमंड आ जाता है। लेकिन मेरा भजन बढ़ता जा रहा है। इसका एक मात्र कारण है, हर समय अपने भजन में कमी ही देखना। जितना सुपात्र को प्रेरणा करता हूँ, उतना लाभ होता है। मैं ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूँ। एक लाख नाम संतों की व भगवान् कृपा से अश्रुपात में ही हो जाता है। एक क्षण मन इधर–उधर नहीं जाता है। कभी–कभी तो बिना अश्रुधारा के भी होता है। इसमें भी कोई अपराध मन से हो जाता होगा, क्योंकि घर में भी गुरु–भाई तथा भक्त रहते हैं।

श्री गौरहरि ने अपनी माँ का अपराध माना। उसने अद्वैताचार्य के प्रति अपराध किया था। उसने कहा था यह बूढ़ा मेरे बेटे का घर छुड़ाएगा। अतः मेरा भी अपराध हो जाता होगा। नामापराध तथा मान–प्रतिष्ठा की इच्छा न होने पर स्वतः ही नाम में प्रेम आने लगता है। 1954 में जब कृष्णमंत्र का पुरश्चरण किया था, उस समय मुझे 3–3 घंटे विरह होता था। अब फिर विरह जागृत हो रहा है। यह संतों व भगवत्–कृपा का फल है। यह मैं इसलिये बता रहा हूँ कि तुमको भी ऐसा हो। भगवान् विरह बिना नहीं मिलते। जब माँ ही शिशु को रोये बिना गोद में नहीं लेती, तो भगवान् बिना रोए कैसे मिलेंगे। परन्तु भगवान् तो वात्सल्यरस के सिंधु हैं, रोने से शीघ्र भक्त के पास आकर उसे संभालते हैं जो हम अपने जीवन में देख भी रहे हैं। यह रोना तो करोड़ों में से किसी एक को मिलता है। जिसको मिल गया, उसकी 21 पीढ़ी भगवान् की हो गई। (मेरी पोती) को जो रोना आ रहा है, वह पूर्ण जन्म की भक्ता बाई है। 10 साल की बाई को इतना ज्ञान, बिना भक्ति के हो नहीं सकता। यह रोना शरणागति का प्रत्यक्ष लक्षण है। शरणागति ही उत्तम

भक्ति का लक्षण है। शरणागति ही भगवान को खींच लाती है।

हरिनाम में रति–मति न होने के मुख्य कारण केवल मात्र दो ही हैं– (1) नामापराध (2) मान–प्रतिष्ठा की चाह।

अपराध, भगवान का शत्रु है। मान–प्रतिष्ठा से साधक को अहंकार हो जाता है। अहंकार श्री नारद जी–शिवजी आदि को हुआ था। उस अहंकार का ठाकुर जी ने छेदन किया। इन दो को हरिनाम प्रेमी संभाल ले तो अन्य अवगुण हरिनाम में प्रेम–होने से विरहाग्नि में जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। जो अवगुण बाहर दिखाई पड़ते हैं, वे केवल छाया–मात्र हैं। महात्माओं में अवगुण देखने से, उनका अपराध जापक को हो जाता है। समर्थ को दोष नहीं लगता। श्री गुरुदेव का अपराध तो अत्यन्त खतरनाक होता है। भक्त अपराध भी भगवान् का दुश्मन है। अपराध होने पर रूखा हरिनाम ही होता रहता है। इस जाप से केवल सुकृति इकट्ठी होती है, जो अगले जन्म में सतुगुरु के चरणों की प्राप्ति करायेगी। चाहे कोई कितना बड़ा महात्मा हो, अपराध करने पर वह भी भगवत् प्रेम से वंचित ही रहता है।

" जो सठ गुरु सन ईर्षा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।"
''त्रिभुज जोनि पुनि धरहिं शरीरा। अचुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।"

प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने भी भक्तों को दुःख दिया है, सभी भक्ति से वंचित हुए हैं।

''जो अपराध भक्त का करहीं। राम रोष पावक सो जरहीं।।"
''इन्द्र कुलिश मम सूल बिशाला। काल दंड हरि चक्र कराला।।''
''जो इनका मारा नहिं मरहिं। भक्त द्रोह पावक सो जरहिं।।"
"पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।"
"सानुकुल ताहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करहिं भक्त–सेवा।।"
"मन क्रम वचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।"(भगवत वचन)

अगला वचन शिव पार्वती को सुना रहे हैं–

1. राखहिं गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध, नहिं कोऊ जग त्राता।

हरिनाम को कान से सुनना ही पड़ेगा, वरना भगवत–प्रेम बड़े दूर की बात है!

2. मन थिर करि तब शम्भु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।
3. मुनि तापस जिन्ह ते दुःख लहहिं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं।।
4. राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुराण साधु सुर साखी।।
5. भक्ति गत अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो सन्त होई अनुकूला।।
6. सुनह, उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।
7. कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।
8. शरण गये प्रभु ताहू न त्यागा। विश्व द्रोहि कृत अप जहि लागा।
9. जो सभीत आया सरनाई। राखहूँ ताहि प्राण की नाईं।।
10. सगुण उपासक, परहित, निरत नीति दृढ़ प्रेम।
ते नर प्राण समान मम, जिनके द्विज पद प्रेम।।
11. हरि हर निंदा सुने जो काना होय पाप गो घात समाना।।

भक्ति बढ़ाने की लगभग 350 चौपाइयाँ मैंने रामायण से छाँट कर रखी हैं, जिनके हृदय में रखने से भगवान् के चरणों में प्रेम प्राप्त होकर संसार से वैराग्य प्रगट हो जाता है। यह सब शिवजी अपनी अर्धांगनी उमा को सुनाते रहते हैं। आप संतों की कृपा से ही ऐसी प्रेरणा मिलकर सेवार्थ आपके चरणों में अर्पित करता रहता हूँ। बस आपकी कृपा की ही तृष्णा है। कृपा करते रहें!

जीवन के सार (वास्तविक उद्देश्य) को जानो।

देखो!

मनुष्य जीवन भवसागर से पार होने के लिये

अर्थात् केवलमात्र भजन करने के लिये ही प्राप्त हुआ है।

इसीलिये मेरी प्रार्थना सुनो–

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

36

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
7.3.07

एकाग्रता पूर्वक जप का महत्त्व

आप सब भक्तों की याद मुझे सताती रहती है लेकिन परिवार के बंधन की वजह से आपके चरणों में स्थान पाना मेरे लिये असंभव सा ही है। ये भी मुझे छोड़ना नहीं चाहते व आप भी मुझे अलग रखना नहीं चाहते। यह दुविधा वृद्धावस्था में आ पड़ी है। जैसा ठाकुर जी को मंजूर होगा, वही सही अवस्था होगी। वैसे मैं आपका क्या भला कर सकता हूँ। मैं खुद ही कीचड़ का कीट हूँ। गुरु महाराज ने मुझे उजागर कर दिया। अब तक मुझे कोई नहीं जानता था। अब चारों तरफ से खींचातानी हो गई। मैं भी मजबूर हूँ। आपको जो लाभ हो रहा है वह हरिनाम-स्मरण से व ठाकुर जी की कृपा से हो रहा है तथा गुरु जी का हस्तकमल सिर पर होने से हो रहा है। सच पूछो तो जैसा आप समझ रहे हैं, वैसा मैं नहीं हूँ। मेरा तीन लाख हरिनाम जो हो रहा है, किसी अलक्ष शक्ति द्वारा ही हो रहा है एवं वही शक्ति मेरे से कहलाकर आपको हरिनाम करने को प्रेरित कर रही है। देखा जाय तो पांडवों को जिताया श्रीकृष्ण ने और नाम अर्जुन का हो गया। भगवान् ही सब करवाते हैं। किसमें शक्ति है कि किसी का भला कर सके। मेरे पत्रों के लेखों को छपाकर पुस्तक रूप में परिणित करने से तो मेरी ख्याति होगी। मैं नहीं चाहता कि मेरी ख्याति बढ़े। इससे तो मुझे नरकगामी होना पड़ेगा। एक साधारण मानव क्या ख्याति के योग्य है? ख्याति भगवान् के अलावा किसी की नहीं होती। ख्याति-योग्य केवलमात्र भगवान् ही हैं। जो भी मैंने गुरु महाराज के चरणों में पत्र डाले हैं, वह मैंने स्वयं नहीं लिखे, किसी अलक्ष शक्ति द्वारा प्रेरित होकर आधी रात में लिखवाये गये हैं। आपसे झूठ बोलकर मैं नरकगामी हो जाऊँगा। जबकि मैं जीवन भर सत्संग में नहीं जा सका।

घर–गृहस्थी से फुर्सत ही नहीं मिल पाई। फिर इंजीनियर की नौकरी में कहाँ समय था। हरिनाम के अलावा पत्रों में कुछ भी नहीं लिखा है। हरिनाम–स्मरण से कैसे लाभ हो सकता है ? यही खुलासा पत्रों में लिखा गया है। इससे साधक, जो हरिनाम करना चाहता है, सुचारु रूप से उच्चारण कर भगवत्–अनुभूति प्राप्त कर शरणागति–भाव में संलग्न हो सकता है। मेरे लेखों में, जो अलक्ष शक्ति ने प्रेरित होकर लिखवाये हैं, 1% भी कमी नहीं है। मैंने गारंटी ली है कि जो भी साधक कान से सुनके चार माला कर लेगा, 100% विरह सागर में डूबेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। कोई आजमाकर देख सकता है। हाँ, शर्त यह है कि यदि साधक मान–प्रतिष्ठा तथा भक्त–अपराध से बचे, तब ही उक्त अवस्था प्राप्त कर सकेगा। इससे सब को लाभ पहुँचेगा अतः पुस्तक छपवाना सर्वोत्तम ही है। यदि इसमें Objection होता है तो छपाना उचित नहीं है। जैसा सब साधक चाहें, कर सकते हो। यह प्रश्न भी तब उठा जब सभी ने पत्रों को डायरियों में उतारना आरम्भ किया और उनकी इच्छा छपवाने की हुई। मैंने मना भी किया था कि छपवाने की क्या जरूरत है, तब महाराज जी ने कहा कि इन पत्रों से सभी को लाभ होगा। इसमें आपका क्या नुकसान है ? मैंने कहा, जैसी आपकी मर्जी। मैं तो आपके विचारों से सहमत ही हूँ। इसमें किसी को एतराज नहीं होना चाहिये।

निताई चैतन्य बलि' जेइ जीव डाके।
सुविमल कृष्ण प्रेम अन्वेषये ता'के।

जो जीव 'हा निताइ! हा चैतन्य।'
कहकर पुकारता है,
सुविमल कृष्ण प्रेम उसे ढूँढ़ता फिरता है।

37

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
2.7.07

हरिनाम–शब्द की शक्ति

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। जीह (जीभ से) नाम जप जानहिं तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा, सन्त, पुराण उपनिषद गावा।।
जिनकर नाम लेत जग माहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
कह हनुमन्त बिपत्ति प्रभु सोई। जब तक सुमिरन भजन न होई।।
मन थिर कर तब शम्भू सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।।

मन एकाग्र करना परम आवश्यक है, जो नाम रूपी शब्द को कान से सुने बिना कभी नहीं हो सकता। मन+कान को एक ठौर अर्थात् एक साथ रखना होगा।

नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगलवासा।।
सन्मुख होहिं जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघनासहूँ तबहीं।।

श्री गुरुदेव की शरण में जाते ही अनन्त कोटि जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में जिह्वा द्वारा उच्चारित शब्द की शक्ति का प्रभाव अकथनीय होता है। शब्द के अभाव में भगवत् सृष्टि का कोई भी कर्म हो ही नहीं सकता।

शब्द की शक्ति से अष्टसिद्धि व नवनिधि का प्रादुर्भाव होता है। इसी से ब्राह्मणों का सृजन व प्रलय होता है। इसी से श्रवण–दर्शन–स्पर्शनादि हो पड़ते हैं। कहने का आशय है कि यदि शब्द–शक्ति का अभाव हो जाए तो सभी चर–अचर स्थावर–जंगम नश्वरता को प्राप्त हो जावें। सभी शब्द भगवान् श्री हरि से ही प्रगट हुए हैं। 'हरि' ही शब्द का उद्‌गम स्थान है। सभी शब्द हरिमय ही हैं। हरि के अभाव में शब्द का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। शब्द–शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। दुःख–स्वरूप व सुख–स्वरूप दोनों प्रकार के होते हैं। उदाहरणस्वरूप किसी ने किसी को अपशब्द अर्थात् गाली–गलोज से संबोधित किया तो उसका अन्तःकरण

दुःख की आग से उथल–पुथल हो गया। उस शब्द ने क्रोध को जागृत कर दिया जो अनिष्टकारक, दुःखकारक हो गया। इसी प्रकार किसी ने किसी को आदर–सूचक शब्द से संबोधित किया तो उस शब्द से सुनने वाले के अन्तःकरण को प्रेमामृत से आच्छादित कर दिया, जो सुखकारक हो गया।

इसी प्रकार प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ प्रभाव होता ही है। बिना प्रभाव किए शब्द विलीन नहीं होता। शब्द–शक्ति से विमान चलते थे, धनुष से अग्नि बाण, वायु–बाण आदि तीर चलते थे। प्रलय तक हो पड़ता था। संगीत विद्या से दीपक जल जाते थे व मेघ बरसात करते थे। शब्द–शक्ति से समुद्र सूख जाते थे, आदि–आदि। इसी प्रकार भगवान् का कोई भी नाम उच्चारण करने पर सुनने वाले का परम मंगल कर देता है। इसी कारण से कलियुग में भगवान ने नाम रूप से अवतार लेकर, सरलतम साधन–

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

महामंत्र का आविष्कार कर प्रचार किया है।

जो भी मानव उक्त हरिनाम रूपी महामंत्र को अपने जीवन में अपनाएगा, वह असीम दुःख (जन्म–मरण) से मुक्त हो जावेगा, जैसा कि भूतकाल में, भक्तों ने इसे अपना कर, अपना मंगल–विधान कर भविष्य में आने वालों के लिए इसे सरलतम मार्ग के रूप में निश्चित किया है।

चारों युगों में ही हरिनाम का प्रभाव निश्चित है परन्तु कलियुग में तो विशेष करके श्रीहरि ने हम जीवों पर कृपा करके ही इस महामंत्र को प्रकट किया है जिससे सरलता से जीव अपना उद्धार कर सकता है। स्वयं हरि ने श्रीगौर हरि के रूप में अवतार लेकर इस नाम को अपनाकर सभी को शिक्षा दी है। उन्होंने स्वयं भक्त बनकर इस सरलतम मार्ग को दर्शाया है।

आरम्भ में इस महामंत्र में मन नहीं लगता क्योंकि माया–मोहित जीव विषयों में ओत–प्रोत रहता है। विषयों के विष

की मस्ती उसे चढ़ी रहती है। जब जीव, जबरन हरिनाम जपने लग जाता है तो साधु–कृपा से उसे थोड़ा सा चस्का लगने लग जाता है व उसका विषयों का विष उतरने लग जाता है। तब इस मंत्र में उसका मन लगने लग जाता है कुछ गुरु कृपा से, कुछ संतों की कृपा से नाम लेते रहने से धीरे–धीरे असत्संग छूटने लग जाता है, दुर्गुण कम होने लग जाते हैं व सद्गुण अन्तःकरण में घुसने लग जाते हैं। तब, हरिनाम में रुचि पैदा होने लग जाती है।

कलिकाल का युग, दुर्गुण–प्रधान होने से भगवान् ने कृपा करके मानव के मंगल हेतु सरलतम् साधन रूप से इस हरिनाम–महामंत्र को सरलतम उपाय रूप से उपलब्ध करा दिया है लेकिन दुर्भागा मानव इस तरफ देखता तक नहीं। अपना जीवन सोने में व कमाने में व्यर्थ खर्च कर डालता है। उसे पता नहीं कि एक दिन यहाँ से जाना पड़ेगा तथा फिर मनुष्य–जन्म नहीं मिलेगा।

दूसरे का हित करना भगवान् को प्रसन्न करने का सबसे बड़ा साधन है। जो दूसरों का हित करता रहता है, उसे जग में कुछ भी असंभव नहीं रहता। सभी उसे प्रेम की दृष्टि से देखा करते हैं।

परहित बस जिन्ह के मन माहिं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कुछ नाहिं।।
सुन उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।
सगुण उपासक, परहित निरत नीति दृढ़नेम।
ते नर प्राण समान मम जिनके द्विज पद प्रेम।।

जो माया को, ईश्वर को तथा अपने स्वरूप को नहीं जानता, वही 'जीव' नाम से कहा जाता है। इसका बारम्बार जन्म–मरण होता रहता है।

भक्ति के सब साधनों में श्रेष्ठतम है–हरिनाम का स्मरण। जिसको इसमें रुचि हो गई, उसने सभी भक्ति–प्रधान साधनों का पूर्ण समापन कर लिया जिसको हरिनाम में रुचि नहीं हुई, उसको अन्य साधनों से आवागमन (जन्म–मरण) का दारुण दुःख हटाने

में अनेक जन्म व्यतीत हो जाएँगे। अन्त में हरिनाम ही पार लगाएगा। क्योंकि हरिनाम की चार माला होने पर अन्तःकरण में शत–प्रति–शत भगवान् के लिए अकुलाहट हो जाती है। आँखों से लगातार अश्रुधाराएँ बहने लगती हैं तथा नाक से श्लेषमा टपकने लग जाता है।”

यह स्थिति तभी आती है जब संसार से वैराग्य का भाव तथा भगवान् से राग के भाव का प्रादुर्भाव होने लग जाता है। यही है सत्य रूप में शरणागति का लक्षण। उक्त भाव के अभाव में शरणागति के भाव का आना असम्भव ही है। शरणागति का भाव तब ही उदय होगा जब भगवान् के लिए हृदय में छटपट मचेगी।

भगवान् शरणागति भाव वाले जीव को एक क्षण के लिए भी अपने वक्ष–स्थल से अलग नहीं रख सकते। यह भगवान् के लिए असम्भव ही होगा। यह होगा हरिनाम की 4 माला स्मरण करने से अर्थात् नाम को कान से सुनने से ही हरिनाम में जिस साधक की रुचि हो गई, उसने सतसंग, धर्म–शास्त्र पठन, तीर्थाटन, वर्णाश्रम–धर्मादि सभी पूरे निभा लिए। यदि नाम में रुचि नहीं हुई तो इनका अंतिम फल न मिलने से शरणागति रूपी फल नहीं मिल सकेगा। जब तक शरणागति का भाव अन्तःकरण में नहीं जागृत हुआ, तब तक भगवत्–कृपा अर्थात् भगवान् के प्यारे से वँचित ही रहना पड़ेगा।

भक्तापराध तथा मान–प्रतिष्ठा की चाह–ये दोनों, शरणागति का भाव उदय होने में मूल–बाधक रहेंगे। समय बड़ी तेजी से जा रहा है। अतः भक्ति रूपी धन, किराए हेतु इकट्ठा कर लेने में ही मंगल है, वरना अकथनीय नुकसान होगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
हर समय सोलह नाम वाले इस महामंत्र का जप करते रहो।

38

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.4.07

मन को हरिनाम में लगाने का सरलतम साधन

भक्त-कृपा ही, भक्ति-प्राप्ति का मूल है। भगवान् के रहने का कोई अलग से स्थान नहीं है। भक्त का हृदय-कमल ही, ठाकुर जी का मंदिर है। अतः भक्त चरण का चिंतन ही परम पुरुषार्थ 'प्रेम' को प्राप्त करा सकता है। ठाकुर जी का चिंतन इतना सक्षम नहीं है, जितना भक्त का चिंतन। स्वभावानुसार भक्त में जो गन्दगी दिखाई दे रही है, वह सूर्य को बादल द्वारा ढकने के समान समझनी चाहिए, वरना घोर दुःख भोगने पड़ेंगे। जिस प्रकार गंगाजी में गंदा पानी रहने पर भी सदैव पवित्र व स्वच्छ रहती है। उसी प्रकार भक्त सदैव निर्मल है, यह मैंने भी गुरुदेव जी से सुना है।

निम्न प्रकार अपना जीवनयापन करने पर मन हरिनाम में निश्चित रूप से लग जाएगा-

1. प्रसाद पाते या जल-सेवन करते समय मन ही मन हरिनाम करते रहो।

2. असत्-संग भूल कर भी न करो।

3. इन्द्रियों का तर्पण ठाकुर जी के लिए करते रहो।

4. अखबार उपन्यास आदि कभी न पढ़ो, मन चंचल होगा।

5. T.V. भूल कर भी न देखो। यह साक्षात् कलि का रूप है।

6. असत् संकल्प-विकल्प का चिंतन कभी न करो।

7. सत्-शास्त्र का अवलोकन खाली समय में करते रहो।

8. गुरु-संत-धाम का चिंतन करते रहो।

9. हरिनाम को कान से सुनते रहो।

10. मौत को हर क्षण याद रखो।

11. मानव-जन्म अब भविष्य में न होगा, यदि भजन न किया तो फिर से चौरासी के चक्कर में जाना होगा, इसे हमेशा याद रखो।

12. 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मान-देन कीर्तनीयः सदा हरि'-भाव में सदैव रत रहो।

13. भगवान् से अपने भावानुसार नाता जोड़ो।

14. मरने वालों के संग शमशान भूमि में जाते रहो।

15. दस-नामापराधों से बचते रहो।

16. मान-प्रतिष्ठा को अपना घोर शत्रु समझते रहो।

17. जब मन असत् विचारों में जाने लगे तो साक्षात् रूप से अथवा मानसिक चिंतन से उस स्थान को छोड़कर महान-आत्माओं के चरणों में जा बैठो अथवा अकेले में जोर-जोर से हरिनाम करो। हरिनाम को कान से सुनकर करना।

18. हरि-मंदिरों की सेवा में रत रहो।

19. युवक हो, तो बराबर वालों के संग मत बैठो।

20. आँखों को बुरे दृश्यों से बचाते रहो।

21. ताश, चौपड़, शतरंज खेलकर समय बर्बाद न करो।

22. हर क्षण हरिनाम में मन लगाना सीखो।

23. क्रोध के वेग से तथा उपस्थ के वेग से बचो, वरना भगवत्-प्रेम की लहर आती हुई रुक जाएगी। हजारों वर्षों की तपस्या एक क्षण में विलीन हो जाती है।

भगवत्-भक्त-चरणों में सेवा हेतु प्रस्तुत रहो, इस भावना से कि भक्तों का आशीर्वाद मिलेगा तो भजन-स्तर और बढ़ जाएगा।

उक्त प्रकार से जीवन यापन करने पर, 100% हरिनाम में मन लगाकर व पूर्ण-वैराग्य में डूब कर भगवत्-प्रेम-रस-सिंधु को प्राप्त किया जा सकता है।

★जय श्री राधे★



जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम आविर्भूत होता है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न लीला-विलासरस में निमज्जित हो जाता है। उसे व्रज में श्री राधा के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त हो जाता है और उसका मन सदैव युगल-सेवा में ही लगा रहता है

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

हरिनाम का साधन

हरिनाम जपने का चारों युगों में ही महत्त्व है, लेकिन कलियुग में केवल मात्र हरिनाम अन्तःकरण से करने पर ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तथा भगवत्–प्रेम जो पंचम पुरुषार्थ है, प्राप्त हो जाता है। अन्तःकरण से नाम–जप करने के दो साधन हैं। पहला साधन कान से श्रवण करना व दूसरा भक्त के माध्यम से हरिनाम करना। दूसरा साधन पहले साधन से सरलतम है। लेकिन पहले साधन से प्रेम–विरह की प्राप्ति शीघ्र होती है। दूसरे साधन से देर में प्रेम प्राप्त होगा।

दस–नामापराधों में नौवां नामापराध–अनमने मन से हरिनाम जपना प्रायः सभी से होता रहता है, लेकिन घबरायें नहीं। माला भी उक्त दोनों साधनों से हो जावे तो अन्य माला अनमने मन से करने पर भी अपराध का मार्जन हो जाता है। भगवान् भक्त की चूक नहीं देखते, वह भक्त का प्रयास ही देखते हैं, जैसे शिशु घर में कुछ नुकसान भी कर दे तो माँ शिशु का अपराध नहीं मानती।

अनमने मन से हरिनाम करना भी न करने से अच्छा है। इससे सुकृति इकट्ठी हो जाती है एवं अगले जन्म में सदगुण से सम्बन्ध हो जाता है।

भक्त की कृपा ही प्रेम–भक्ति प्राप्त होने का मूल है। अब प्रश्न यह है कि भक्त की कृपा कैसे मिल सकती है ? भक्त की कृपा–भक्त की सेवा से, भक्त के चिंतन से, भक्त पद–रज, पदजल व भक्त के अवशेष–प्रसाद से ही प्राप्ति हो सकती है। भक्त का संग दूर से भी हो जाता है। भक्त चिन्मय होता है। साधक 500 कोस दूर रह कर भी मन से भक्त (सन्त) का संग कर सकता है। भक्त के माध्यम से ही भगवत्–प्राप्ति होती है। भगवान् किसी को सीधे नहीं मिलते।

क्यों इसलिये नहीं मिलते कि भगवान्, न तो बैकुंठ में, न मंदिर–मस्जिद–चर्च में वास करते हैं, किन्तु वह तो भक्त के हृदय–मंदिर में ही वास करते हैं। अतः भक्त के चरणों में मानसिक रूप में बैठकर हरिनाम करना चाहिए। मानसिक रूप से राधाकुण्ड पर जाकर उन्हें स्नान कराना चाहिए, उनका चरण धोकर पीना चाहिए, उनका जूठन–प्रसाद खाना चाहिए। इससे भगवत्–प्रेम शीघ्र प्राप्त हो जाता है। भगवान् जापक के हृदय में प्रगट हो जाते हैं।

"सुमरिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय स्नेह विशेषे।"

– शिव वचन

"While chanting Harinam sweetly, listen by ears"

– श्रीलगुरुदेव

"सादर सुमरिन जे नर करहिं। भव बारिधि गो–पद इव तरहिं।"

– शिव वचन

प्रधानमंत्री से मिलने हेतु उसके अंगरक्षक से मिलना होगा। इसी प्रकार भगवान् से मिलने हेतु उनके भक्त से मिलना होगा।

शरणागत भक्त की बात भगवान् कभी टालते नहीं। शरणागत भक्त को कैसे पहचानें ? शरणागत भक्त, रुचिपूर्वक हरिनाम करता है। रुचिपूर्वक हरिनाम तब ही होगा जब संसार में उसका लगाव कम होगा। संसार में मन का लगाव जितना कम होगा, उतनी अधिक हरिनाम करने में रुचि होगी। वह हर समय भगवत् चर्चा ही करेगा। संसारी बातों से वह दूर रहेगा। नाम जपने तथा भगवत्–चर्चा होने पर रो देगा। रोना तब ही आवेगा जब उसका नाता भगवान् से जुड़ा हुआ होगा। भगवान से सम्बन्ध होना अत्यंत जरूरी है। भगवान् मेरे माँ–बाप हैं, भाई हैं, सखा हैं, आदि–आदि। बिना सम्बन्ध प्रेम होगा ही नहीं।

अब विचार करना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु किसकी बात मानते हैं। किसकी बात नहीं टालते। शची माँ, अद्वैताचार्य, ईशान ठाकुर जो निमाई को गोद में खिलाते रहते थे, जिनके बिना निमाई रोता रहता था। ऐसे बहत से गुरुवर्ग हैं, जिनको निमाई से प्यार

था। ऐसे किसी गुरुवर्ग के पास जाकर उनसे प्रार्थना करके निमाई के पास जाना चाहिए। निमाई इनकी सिफारिश को स्वप्न में भी नहीं टालेगा और आप पर कृपा–वर्षा कर देगा। इसी प्रकार कृष्ण से, कपिल भगवान से, नृसिंह देव, शिव जी, हनुमान आदि से कृपा ली जा सकती है। इस साधना से मन कहीं और नहीं जावेगा। शीघ्र–प्राप्ति हो जावेगी। संसार करते हुए ही तन्मयता से भजन होता रहेगा। शरणागति–भाव प्रगट होने पर भगवान् उसकी हर क्षण देखभाल रखेगा। जैसे माँ अपने शिशु की देखभाल रखती है; क्योंकि शिशु माँ के शरणागत है। कितना सरल जप करने का तरीका है। गुरुवर्ग ने इसी प्रकार भजन कर भगवान् से लगाव किया था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने भजन में लिखा है–वैष्णव चरण, कल्याणेर खनि, मातिब हृदये धरि–वैष्णवों के चरम कल्याण की खान हैं। हे हरि! मैं कब उन चरणों को हृदय में धारण करके मतवाला होऊँगा। वैष्णव चरित्र सदा ही पवित्र है। जो वैष्णवों की निंदा करते हैं, उनसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बात भी नहीं करते। श्रील नरोत्तम ठाकुर ने कहा है "ठाकुर वैष्णव पद, अवनीर सुसम्पद" कि वैष्णवों के श्री चरण ही पृथ्वी की सम्पदा हैं। वैष्णवों के चरण की रज ही मस्तक का आभूषण है। वैष्णवों का संग सदा आनंद क्षेत्र प्रदान करता है। जो वैष्णवों का आश्रय लेकर भजन करता है, उसका श्रीकृष्ण परित्याग नहीं करते।"

जो कोई भी नाम का प्रभाव जानना चाहता है उसे जिह्वा से नाम जपना चाहिये।

"रामनाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा।।"

– शिव वचन

सरलतापूर्वक गुरु वैष्णवों की सेवा में तत्पर रहकर, सर्वदा ही श्रीनाम भजन करने पर समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं।

– श्रील वामन गोस्वामी महाराज

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

हरिनाम स्मरण (जपने) के प्रायः तीन ही साधन

हरिनाम जपने के प्रायः तीन ही साधन हैं :-

1) कान से सुनना तीनों साधनों में होगा।

2) संतों के चरण में बैठकर नाम-जप करते रहना। इसमें गुरुदेव से लेकर गुरु-परम्परा में जो संत आए हैं, उनके श्री चरणों में बैठकर नाम-जप करते रहना। इसमें श्रवण गौण रहेगा तथा संत चरण में बैठना मुख्य रहेगा।

भगवान कहते हैं, मैं न वैकुण्ठ में, न मंदिर में, न धाम में, मैं केवल मात्र भक्त के हृदय में सदैव विराजता हूँ। यदि मेरा दर्शन करना हो तो भक्त से प्रेम का नाता जोड़ लो, मैं प्राप्त हो जाऊँगा। गुरु व संत के माध्यम से मैं प्रगट हो जाता हूँ। यदि कोई मुझे इनके अभाव में देखना चाहे तो मैं उधर झाँकता भी नहीं।

3) श्री गौर-निताई व श्रीकृष्ण जिनकी बात मानते हैं, उनसे प्रार्थना करना होगा। निमाई अपनी माँ शची की, अद्वैताचार्य आदि की बात मानते हैं। उनके पास जाकर प्रार्थना करें। वे यदि साधक को उनके पास ले जाकर सिफारिश करेंगे तो उस भक्त पर कृपा अवश्यमेव होगी ही। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के लिए करना होगा।

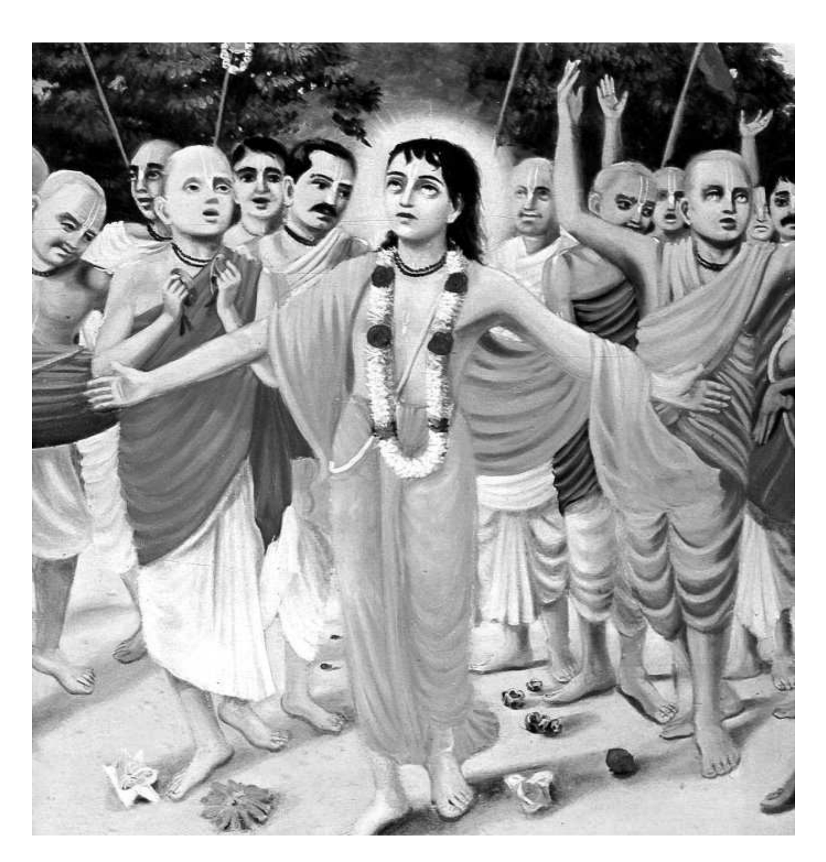
उक्त प्रक्रिया में एक रील सी बनकर मन को एकाग्र कर देगी। कान का श्रवण इसमें गौण रहेगा, रील मुख्य होगी। मानसिक-भजन शत-प्रतिशत सच्चा होता है। शास्त्र में अनेक उदाहरण हैं। भक्त की बात भगवान को माननी पड़ती है। कान से सुनने पर शीघ्र शरणागति प्रकट होती है, क्योंकि उसमें विरहाग्नि जल पड़ती है। रील में देर होती है। जीभ का उच्चारण व कान का श्रवण, घर्षण पैदा कर, भगवान् के लिए विरह प्रगट कर देता है।

उक्त प्रकार का नाम–जप शीघ्र भगवत्–रति प्रकट कर देता है। उक्त दो साधन ऐसे सरल हैं कि इसमें मन टिक जाता है। संसार का चिंतन रफूचक्कर हो जाता है। इन तीनों साधनों से चण्डीगढ़ में (बहुत से लोगों) को लाभ हो रहा है व हुआ है। ये केवल मन पर ही निर्भर है, कोई मुश्किल नहीं है।

विष्णु प्रिया (मेरी पोती) को एक साल में विरह कैसे हो गया। जब भी फोन करता हूँ, सुनता हूँ कि कथा कर रही है। हो सकता है रोज अश्रु न आवें, कभी–कभी ही सही। बीज तो पड़ गया। बूढ़े हो गये, क्या कभी अपने प्रभु के लिए रोए ? यह सब बेपरवाही ही है। 1954 में मैंने कैसे पुरश्चरण कर लिया ? जिसमें 3–3 बार रोना होता था। इसी कारण वाक् सिद्धि आई। ना–समझी से बरबाद करता रहा। किसी का हित हो जाये तो अच्छा है। अभी भी हित होने की वजह से अपना भजन बांटता हूँ तो मेरा भजन उ त्तरोत्तर बढ़ता रहता है। मुझे मान–प्रतिष्ठा की तनिक भी चाह नहीं है, यदि होती तो प्रतिदिन 3 लाख नाम मन–सहित नहीं होता। भगवान् को मन चाहिए। भगवान् किसी समय में नहीं बंधे हैं। बूढ़े हो गए परन्तु हरिनाम करते हुए एक अश्रु नहीं आता। लेकिन किसी ने अभी हरिनाम लिया है, उसको भगवान के लिए रोना आता है।

समय बातों में बरबाद हो रहा है, जितनी जरूरत हो, उतनी ही बात करनी चाहिए। दुनियाँ तो रो रही है, उनके साथ तुम भी रोते रहो। हरिनाम ही सम्पत्ति है, लूटनी हो तो लूट लो, वरना रोना तो है ही। तुम दुनियाँ के नहीं हो। तुम राधा–गोविंद के परिवार में हो। अब भी समझ जावो तो ठीक है। मुझे गोविंद का नुकसान सहन नहीं होता। बस, इसी से झगड़ा होता है और मुझे कोई परवाह नहीं है। रात में प्रेम सहित कीर्तन करो। समय निकाल कर हरिनाम करो। यदि छटपट नहीं होगी तो केवल कपट का भजन है। भजन गीति में रोने की ही शिक्षा है। उसे ग्रहण करो तो सब कुछ मिल पाएगा।

एक माला भी कान के श्रवण से नहीं होती तो इसका मतलब है बेपरवाही। बैंक में भी मन के बिना काम हो जाता होगा? हरिनाम का महत्त्व नहीं समझा। मन को जिसका महत्त्व समझ में आता है वहीं मन लगता है। पछताना पड़ेगा, रोना पड़ेगा, अब भी समझ जावो। मुझ पर पूर्ण कृपा है। परिवार में ऊपर से प्यार रखो। समय बरबाद मत करो। खुशामद मत करो। खुशामद करो भक्त की।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

41

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

चण्डीगढ़

दिनांक : 1.6.2007

भगवान्-प्रेम प्राप्ति में गुरु वैष्णव तथा हरिनाम का महत्व

मानुष जन्म बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों के बाद भगवान् जीव को यह सोच कर एक मौका देते हैं कि मेरी गोद से बिछुड़ा हुआ प्राणी अनन्त भीषण दुःखों की ज्वाला में जल रहा है। अब इसे मानुष देह देना परमावश्यक है ताकि मुझ नित्य-पिता की गोद में आकर अपने भीषण दुःखों से अपना पिंड छुड़ा सके। लेकिन माया-मोहित जीव को जब तक सन्त-संग न मिल सके, तब तक वह माया से पिंड छुड़ा नहीं सकता। दुर्भाग्यवश जीव फिर उन्हीं चौरासी लाख योनियों में घूमता-फिरता है। साधु की कृपा से इसे ज्ञान होने पर यह भक्ति-पथ का पथिक होकर भगवत-चरणों में जा पहुँचता है, जहाँ से फिर वापिस लौटना नहीं पड़ता। वहाँ जाकर अलौकिक आनन्द-सिन्धु का रस पीता रहता है। भगवद्धाम में उसे अन्दर-बाहर का कोई रोग नहीं सताता। सदा नवयुवक उम्र में ही रहता है। बुढ़ापा, झुरियाँ पड़ना, सफेद बाल होना आदि वहाँ नहीं होता। सदा आनन्द की मस्ती में घूमता रहता है। मन चाही वस्तु तुरन्त उपलब्ध हो जाती है। कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। ऐसा एक गोलोक धाम है। वहाँ श्रीकृष्ण अपने पार्षदों के संग लीला करते रहते हैं। उसी में वह शामिल होकर आनन्द से भक्ति करता रहता है। भगवान्, भक्त की भाव-पूर्ण भावना से ही प्रसन्न होते हैं। भक्तवत्सल भगवन् का झुकाव केवल भावपूर्ण जाप की तरह होता है। जो उनके नाम के जप का जीभ से उच्चारण करते हुए व कान से सुनते हुए करता है, अचल-निश्चल व एकाग्रमन होकर श्री हरिनाम-धुन में लौ लगाता है तथा नाम पर अपने को निर्भर कर देता है वह नाम श्रवण को ही अन्तिम सिद्धि मान लेता है।

श्रीनाम का अभ्यासी नाम के जप से, चिन्तन से, आराधना से, ध्यान से, नामी–भगवान् को अपने हृदय–मंदिर में ऐसे प्रकट कर लेता है जैसे यज्ञ करने वाला दो लकड़ियों को आपस में रगड़ कर अग्नि प्रकट कर लिया करता है। परन्तु नामाभ्यासी को नाम को लगन से, संशय रहित निश्चय से, पूरे भरोसे से व बड़ी तत्परता से जपना चाहिए। इसमें शिथिलता होने पर सफलता होने में सन्देह हो सकता है। नाम बेकार नहीं जाता। सुकृति होने पर अगले जन्म में सद्गुरु प्राप्त कर लेता है। नाम–योग की महिमा अगम्य है। कहा भी है–जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह (जीभ) नाम जप जानेऊ तेऊ।। "हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा"।। "नाम प्रसाद संभू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।" जप–साधक को यदि अपनी मंजिल पर पहुँचना हो तो वह अपने मन से ईर्षा–द्वेष को जड़ से उखाड़ फैंके, वरना भगवत्–प्रेम आने से देर होगी। भगवत्–प्रेम ही अन्तिम पुरुषार्थ है। भगवान की अन्तिम उपलब्धि शरणागति है। शरणागति के लक्षण हैं–भगवान् के लिए छटपट व आँखों से अश्रुधारा। जब तक अश्रुधारा नहीं, तब तक शरणागति भी नहीं। शरणागति ही अश्रुधारा प्रगट करती है। यह तब ही होगी, जब संसारी आसक्ति कम होती जाएगी। शरणागति के प्रकट होने में दो जबरदस्त रोड़े हैं– (1) दस नामापराध व (2) अहंकार (मान प्रतिष्ठा की चाह)। भक्त–अपराध होने पर हाथ में माला लेना दूभर हो जाता है तथा अहंकार आने पर नास्तिकता का उदय हो जाता है। भगवान् कहते हैं कि यदि शिवजी को भी अहंकार हो जाता है तो वह भी अपनी स्थिति से नीचे गिर जाते हैं। साधारण की तो बात ही क्या है!

यदि उक्त दो अड़चनें शान्त रहती हैं तो अन्दर के दुर्गुण हरिनाम को कान से सुनने पर विरहाग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं तथा अश्रुधारा में बहकर–सूक्ष्म शरीर से बाहर निकल जाते हैं। सद्गुण अन्दर अपना जमाव करने लग जाते हैं। सब का हित करना ही उस साधक का सर्वश्रेष्ठ कर्म हो जाता है।

"परहित बस जिनके मन माहीं।
तिन्हँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।"

(शिव वचन)

श्री गुरुदेव कान रूपी नौका में शिष्य को बिठाकर, हरिनाम–मंत्र रूपी मल्लाह को संसार–रूपी अथाह सागर को पार करने हेतु भेजते हैं। शिष्य अपने गुरुदेव के आदेश से मन्त्र को अपना कर श्रवण रूपी लट्ठे (चप्पू) से नौका को चलाकर अथाह संसार–रूपी सागर को पार कर जाता है तो फिर वह आनन्द–तट रूपी गोलोक में पहुँच जाता है तथा सदैव के लिए दुःख–सागर से छुटकारा पा जाता है। आवागमन रूपी अन्धकूप से निकलकर अमृत–सागर में तैरने लग जाता है।

जिस साधक को हरिनाम का चस्का लग गया, उसे अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पत्ति मिल गई। उसे भगवत प्राप्ति हो गई। अब उसे और कोई सम्पत्ति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रही। उसने तो अपनी 21 पीढ़ियों का उद्धार कर लिया। उसका रोना–धोना समूल नष्ट हो गया। जिसने नाम का सहारा ले लिया, उसका हिंसक प्राणी भी प्यारा बन गया।

"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"
"लाभ कि किछु हरि भक्ति समाना। जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराणा।"

भरत जी का राम–नाम जपना कैसे होता था?

पुलक गात, हिय सिय–रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृश गात।
राम–राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जल जात।।

उक्त प्रकार से जब जप होगा तब शरणागति अर्थात् भगवत्–प्राप्ति होगी। शरणागत को भगवान एक क्षण भी छोड़ कर कहीं नहीं जाते। उसकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त रखते हैं।

मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकि करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहीं महतारी।।
सन्मुख होहिं जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघनासहूँ तबही।।

गुरु–आश्रित होते ही अनन्त कोटि जन्मों के पाप जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। भविष्य में यदि गुरु आदेशानुसार जीवनयापन करता है तो अन्त में आवागमन रूपी भीषण दुःख से सदा के लिए छूट जाता है। दुसंग में, स्त्री–लम्पट का संग सबसे खतरनाक है। इसे दूर से ही त्याग देना श्रेयस्कर है। यह साक्षात् माया का असली रूप है। आजकल T.V. साक्षात् 'कलि' का अवतार है, जो बच्चे से लेकर बूढ़े तक को चरित्रहीन कर बर्बाद कर रहा है। कलि का दूसरा अवतार है– मोबाइल (Mobile) जो छुप कर बदमाशी की Training दे रहा है तीसरा, अखबार भी कलि का ही रूप है। इसे भक्त को तो पढ़ना ही नहीं चाहिए। यह भक्ति का असली शत्रु है। यदि इनका संग नहीं किया जाए तो भगवत–प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। जो भी भविष्य में आविष्कार होगा, ऐसे यन्त्र का होगा जो मानव का नाश करता रहेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो भी हरिनाम का आसरा लेगा, वही इस कलि से बच पायेगा। यह कलि इतना खतरनाक है कि हर गृहस्थी में कलह मचा कर आनन्द से नाचता रहता है। इससे बचने का हरिनाम के सिवा कोई उपाय नहीं है। भाव से जीभ से उच्चारण करके, कान से श्रवण करने से 2 से 4 माला जप होने पर 100% अश्रुधारा बहेगी। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमा कर देख सकता है। जिसको उक्त स्थिति प्राप्त हो गई, वह भगवान् का प्यारा हो गया। उसे शरणागति, जो भक्ति का जीवन प्राण है, उपलब्ध हो गई।

भगवान् सीधा कभी नहीं मिलता। भक्त के माध्यम से ही मिलता है अर्थात् गुरु के माध्यम से भगवान् उपलब्ध होता है। गुरुवर्ग में किसी के भी चरण में बैठकर नाम–जप करना होता है। मानसिक रूप से सन्त की सेवा करते रहना चाहिए तथा चरणों में बैठकर हरिनाम जप करना चाहिए। मानसिक चिन्तन शत–प्रतिशत

सत्य होता है क्योंकि सन्त मायिक नहीं होता, चिन्मय होता है इसलिए उसका चिन्तन भी चिन्मय होता है। कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम श्रेणी के सन्त होते हैं। उत्तम श्रेणी के सन्त की तन–मन–धन से सेवा करने से भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

"मन क्रम वचन, कपट तजि, जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।"
" पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।"
''सानुकूल तिन पर मुनि देवा। जो तजि कपट करें भक्त सेवा।।"
"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"
"राम नाम का अमित प्रभावा।
सन्त पुराण उपनिषद गावा।।"
"कहौ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकई नाम गुण गाई।।"
"जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
जीह (जीभ से) नाम जप जानेऊ तेऊ।।"

हरिनाम का प्रभाव जो जानना चाहे, वह हरिनाम को जीभ से जप कर जान सकता है।

अति आहार, अति निद्रा, अति विषय–प्रयास, ग्राम्य कथा, नियम–आग्रह, दुःसंग तथा लोभ–भक्ति का विनाश करते हैं। उत्साह, निश्चय, धैर्य, सत्संग, अन्याभिलाषा नहीं करना, अनुकूल–अनुशीलन–भक्ति को बढ़ाते हैं।

हरिनाम का अधिक अनुशीलन होने से अनुकूल परिस्थिति का प्रादुर्भाव हो जाता है तथा सात्विक अष्ट–विकारों का प्राकट्य हो पड़ता है। भगवत्–प्राप्ति का संयोग होने लगता है तथा परमानंद की लहरें उठने लग जाती हैं। जब संपूर्ण निर्भरता या संसार का आसरा छूटने लगता है तो भगवत्–शरणागति का अंकुर अन्तःकरण में अंकुरित होने लग जाता है। आवागमन रूपी भीषण दुःख का सदैव के लिए अन्त हो जाता है तथा भगवत् चरण–प्राप्ति रूपी सुख की उपलब्धि हो जाती है।

–0–

42

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
15.06.07

भक्त अधीन भगवान

माँ के हृदय तथा शिशु के हृदय का संबंध जुड़ा रहता है। जब शिशु 'माँ'-'माँ' का शब्द पुकारता है तो माँ कितने ही काम में व्यस्त हो, शीघ्र दौड़ कर शिशु को गोद में लेकर पुचकार कर प्यार भरा स्तन पिलाती है।

इसी प्रकार भक्त के हृदय का संबंध, भगवान् के हृदय से जुड़ा रहता है। जब भक्त 'हरे कृष्ण', 'हरे राम' पुकारता है तो भगवान् का हृदय अकुला उठता है, वे एक क्षण में प्रगट हो जाते हैं क्योंकि भगवान् हर स्थान में, कण-कण में तथा हर क्षण मौजूद रहते हैं। जैसा कि गीता जी में श्री भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि भक्त जैसा मुझे भजता है, याद करता है, मैं भी उसी तरह वैसे ही भक्त को भजता हूँ, याद करता हूँ।

भक्त रोता है, भगवान भी रोते हैं। रोना, शरणागति के बिना आ ही नहीं सकता। शरणागति ही भगवान् को खींच लाती है। हृदय से रो रो कर पुकारना ही सच्ची शरणागति है। तभी जीव की आत्मा तड़फेगी कि भगवान् मुझे कब मिलेंगे ? तब ही संसार से वैराग्य हो सकेगा। जब तक वैराग्य नहीं होगा, तब तक शरणागति का जन्म भी नहीं होगा। भगवान् कहते हैं कि मैं भी भक्त के शरणागत रहता हूँ। भक्त जैसे नचाता है, मुझे वैसे ही नाचना पड़ता है। यह स्थिति आवेगी हरिनाम को कान से सुनने पर ही। अन्य कोई साधन नहीं है।

आप दलदल में फंसे हुये हैं। आपके भजन की चिंता करना ही मेरा प्रथम धर्म है। मेरे ठाकुर जी दलदल में फंसे हुए को, निकालने में सक्षम हैं। मैं तो प्रार्थना ही कर सकता हूँ। भगवान् अवश्य ही शीघ्र सुनेंगे।

मैंने तो दीपावली के बाद आने की घरवालों से अनुमति मांगी थी, परन्तु सब मना करते हैं कि आप वहाँ रहकर संतों से सेवा लेते हैं। यह ठीक नहीं है। आपका भजन जब यहीं हो रहा है, तब जाने की क्या जरूरत है ? अतः मेरा आपके चरणों में आना सम्भव नहीं होगा।

–0–

मनमानी से भी जरुर मिलेगा

भक्ति को शास्त्र में निरपेक्ष कहा गया है। यानी यह किसी की अपेक्षा नहीं रखती, यह भगवान् की ही तरह परम स्वतंत्र है, न शास्त्र, न विधि, न निषेध, न मंत्र, न नियम, न साधन, न ज्ञान। इस बात के प्रमाण में ऐसे अनेक संत हुए हैं, एक संत ने भोग न लगाने पर प्रभु को पहले तो खूब हड़काया, न मानने पर डंडा उठा लिया, प्रभु प्रकट हो गए और भोग लगाया, ठाकुर को डंडा मारना शास्त्रीय नहीं है, न भक्ति के 64 अंगों में आता है। इसी प्रकार हम जो कर रहे हैं, उलटा–सीधा, उचित–अनुचित, अशास्त्रीय, हमें यदि आत्मिक आनंद मिल रहा है, प्रभु का अहसास हो रहा है, हम गद्‌गद् हैं, तो इससे बढ़कर कुछ भी नहीं, न शास्त्र, न साधु, न संत, न विद्वान्। और यदि संतुष्टि है नहीं, भटकन बनी हुयी है, अहसास हो नहीं रहा, आनंद का लेश भी नहीं है, तर्क–कुतर्क, हार–जीत का सिलसिला, राग द्वेष, अहंकार–प्रतिष्ठा बनी है तो हम भटक रहे हैं और यह भटकन शास्त्र विधि का अनुसरण करने पर ही दूर होगी, मनमानी बंद करनी ही होगी। आत्म–निरीक्षण से स्वयं को स्वयं ही पैनी दृष्टि से नापना होगा, दूसरा कोई कुछ भी कहे, कहता रहे।

43

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
10.07.07

हरिनाम से असम्भव भी सम्भव होना

आपका भजन-स्तर बढ़ने की मुझे अत्यंत चिंता रहती है। दिनांक 06.07.07, शाम को, आपका फोन आने पर मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं कह नहीं सकता। मुझ अधम को आपने बोला-"मेरा भजन-स्तर, हरिनाम-स्मरण क्यों नहीं बढ़ रहा है। आप ठाकुर जी से मेरे लिए प्रार्थना हृदय से नहीं करते। मेरे में क्या कमी है? कृपया मुझे बताएँ।"

यह बात मुझको गहरे रूप में आहत कर गई। अतः मैं उसी रात में सुबह 3 बजे उठकर हरिनाम करते हुए ठाकुर जी के चरणों में रो-रोकर प्रार्थना करने लगा। उस दिन मुझे ज्वर आ गया था, अतः देर से उठा। वैसे 2 बजे नित्य उठ जाता हूँ, वरना मेरा 3 लाख हरिनाम 9-10 बजे तक पूरा नहीं हो पाता। कम होने पर दूसरे दिन करना पड़ता है।

मैं आपको एक आश्चर्यजनक घटना बता रहा हूँ। यह हरिनाम की असीम कृपा का ही फल है। अमरेश (मेरे सुपुत्र) का चुरु (राजस्थान) से पत्र आया था "बाबू जी! मेरा Transfer बैंक की दूसरी शाखा में हो गया है जो एकदम खराब ब्रांच है। सभी बैंक वाले कह रहे थे कि अब तो मुझे जाना ही पड़ेगा।" मैंने कहा "जैसा ठाकुर जी चाहेंगे, वैसा ही होगा।" नई ब्रांच के मैनेजर ने उसे रिलीव होकर, तुरंत ज्वाइन करने को कहा तो उसने कहा कि वह अगले ही दिन रिलीव होकर शीघ्रातिशीघ्र Join कर लेगा)

"हे मेरे गुरुदेव! मैं आपको क्या बताऊँ, जब उसे रिलीव करने वाले ही थे कि जयपुर से एक Order आया कि उसके स्थान पर अमुक व्यक्ति, उस बैंक में Join करेगा। पत्र को पढ़ते ही मेरी

अश्रुधारा चालू हो गई। हे मेरे ठाकुर! आप कितने दयालु हो! प्रत्यक्ष में शरणागत की रक्षा करते हो। यह कैसे हो गया। उसके नाम पर दूसरे व्यक्ति का Order हो गया।

ऐसा ही हरि ॐ (मेरे दूसरे सुपुत्र के साथ हुआ)। उसका मैनेजर गलत काम करवाता था। अतः झगड़ा होता रहता था। लेकिन हरि ॐ व उसके बच्चे स्मरणपूर्वक हरिनाम करते हैं। मेरी पोती विष्णुप्रिया को तो आपने प्रत्यक्ष देखा ही है। हरिनाम करती हुई रोती रहती है। मेरा पोता ध्रुव जो 6 साल का है, कीर्तन करके कभी–कभी रोने लग जाता है। जब उससे पूछते हैं कि ध्रुव तुम क्यों रो रहे हो तो वह कहता है कि कृष्ण भगवान् मुझे रुला रहे हैं। न मालूम, क्यों रोना आ जाता है।

हरि ॐ आधा लाख (32 माला) जप, बड़े ध्यानपूर्वक करता रहता है। अचानक क्या हुआ कि उसके मैनेजर का Transfer बहुत दूर ठाकुर जी ने करवा दिया। मैं तो समझ गया कि उसने भगवान् के भक्त–हरि ॐ का अपराध कर दिया था। मैंने हरि ॐ को कहा था इसको इसका दण्ड शीघ्र मिलने वाला है। तू चिंता मत कर! अब दूसरा मैनेजर आया है। वह हरि ॐ से पूछ कर काम करता है। हालांकि वह हरि ॐ से Superior है, तो भी उससे डरता है। अब सोचिए, यह सब ठाकुर जी की कृपा के बिना और क्या हो सकता है? ठाकुर जी अपने भक्तों के साथ लीला करते रहते हैं ताकि उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।

मैं 100% गारन्टी के साथ कह सकता हूँ कि जो भी साधक अन्तःकरण से हरिनाम का स्मरण करते हैं, उनकी देखभाल ठाकुर हर समय करता है।

अमरेश भी प्रातः 3 बजे बड़ी तल्लीनता से हरिनाम करता है। वह तो रो–रोकर ठाकुर जी को पुकारता है, क्योंकि वह मुझसे भजन छुपाता नहीं है। मैंने भी सभी को कह रखा है कि ठाकुर जी की बात मुझसे छुपाना नहीं। इससे श्रद्धा और अधिक बढ़ती है। ठाकुर जी अधिक याद आते हैं।

अमरेश को कल स्वप्न आया कि आप छींड में आये हो तथा बहुत बड़ा संत–समागम हो रहा है। आप यहाँ की चरण–रज अपने शरीर पर लगा कर जोर–जोर से रो रहे हैं। रात को आपका Phone आ ही गया। मुझे आश्चर्य हुआ। अंदर की भावना कितनी प्रबल होती है कि उसने आपको Phone करने को प्रेरित कर दिया।

अब मैं पीछे की चर्चा बता रहा हूँ। रात में मैंने ठाकुर जी से कहा कि जब आप अन्य भक्तों का भजन–स्तर बढ़ा सकते हैं, उनकी विरहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकते हैं तो क्या भजन–स्तर बढ़ाने में आपको कुछ जोर पड़ रहा है। मुझे इसका जवाब देना होगा, वरना मैं आपसे बात ही नहीं करूँगा। रो–रोकर मैं ठाकुर जी से कहने लगा।

अब ठाकुर जी मुझे अन्तःकरण में आकाशवाणी द्वारा बता रहे हैं कि जिसके लिए तुम मुझे बार–बार कहकर बुला रहे हो, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। उसी का दोष है, जो भजन–स्तर नहीं बढ़ा रहे हैं। तब मैंने कहा क्या दोष है? मुझे बताइये ताकि मैं उन्हें समझा सकूँ। वैसे मैं तो अधम हूँ फिर भी आपके आदेश का पालन करूँगा। एक तो सबसे बड़ा दोष है कि उसकी हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा नहीं है। जरा गहरा सोच कर देखें कि जिस ओर पूर्ण लाभ दिखेगा, क्या उस ओर मन न लगने का प्रश्न उठता है? बोले, क्या गलत है? मैंने कहा है–जहाँ अधिक लाभ होगा, वहाँ से मन कहीं जाएगा ही नहीं। यह तो एक साधारण–सी बात है।

"दूसरा दोष है वह मेरी निर्गुण–सेवा नहीं करता। निर्गुण–सेवा का दूसरा आशय है– प्रेम–भक्ति? क्या प्रेम से सेवा होती है? इसमें केवल कर्म ही प्रधान है। भक्ति का लेश भी नहीं है। रजोगुणमयी सेवा हो रही है। अपने मन में गहरा विचार कर देखें। जब सच्ची सेवा ठाकुर देता है तो उसमें प्रेमाश्रु बहता है। मन में गहरा विचार करें।"

"तीसरा दोष–थोड़े से काम से मन घबरा जाता है। क्या यह शरणागति का भाव है? मुझ पर उनका कहाँ विश्वास रहा? सभी

काम मैं ही करवाता हूँ। मेरे बिना एक काम भी वे पूरा नहीं कर सकते। हर समय हर बात पर चिंतित रहना, क्या शरणागति का भाव है ? अब तुम ही बताओ, उनको हरिनाम कैसे फल देगा ?”

“चौथा दोष–वृद्धावस्था होने पर खटिया उन्हें प्यारी लगती है। यह तो स्वाभाविक है। लेकिन मेरा चिंतन तो हो सकता है। चिंतन भी नहीं करते। निद्रावस्था में समय गुजर रहा है। असुविधाओं का चिंतन रहता है। क्या मैं न के बराबर हूँ ? जो काम असुविधाजनक आ जाता है, क्या वह काम मैं सुविधाजनक नहीं कर सकता ? क्या मेरे बिना कोई काम बन सकता है ? उनको मेरे पर विश्वास की कमी है। यदि सब काम मुझ पर छोड़ दे तथा प्रेम सहित मेरा नाम रटे तो क्या विरहावस्था से वंचित रह सकेगा ?”

“मेरी कृपा की कमी नहीं है, उसकी श्रद्धा की कमी है जो उनका मन मेरे नाम में नहीं लगता। अब उनको अधिक दिन इस पृथ्वी पर रहना नहीं है। अभी से अपना मन मेरे नाम में लगा दें। घर को छोड़ने की जरूरत नहीं है। सभी सुविधा में है। नाम को हृदय से जपें, इसी जन्म में उनका उद्धार हो जाएगा। ठाकुर जी ने आगे कहा है कि वे दुर्गुणों की ओर ध्यान नहीं देते। दुर्गुण तो हर इन्सान में होते हैं क्योंकि उनकी माया को पार करना दुस्तर है। केवल हरिनाम की शक्ति ही माया से निपट सकती है। नाम के बिना शास्त्र पठन–पाठन, तीर्थाटन, दान, योग, यज्ञादि कुछ भी उद्धार करने की शक्ति नहीं रखते। इनमें समय खर्च करना व्यर्थ होगा अर्थात् भगवत् प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। वैसे अच्छा कर्म करना तो उचित ही है, कभी न कभी उसका उद्धार तो होगा ही। कई जन्मों के बाद आवागमन से छुटकारा मिल जाएगा।

हरिनाम यदि स्मरणपूर्वक जपा जाए तो प्रेम उत्पन्न करा सकता है। भगवान् कहते हैं कि मैं प्रेम के अधीन ही रहता हूँ। इसी जन्म में दुःख सागर से पार हो जाएगा। जब तक मेरे नाम में रुचि नहीं होगी, तब तक उद्धार होने में संदेह है। कुछ भक्तों को नाम में रुचि हो गई है तथा वे आधा व एक लाख हरिनाम करने लगे हैं।

विरह भी होता है। इसका कारण है केवल नाम में श्रद्धा। ठाकुर जी की कृपा उन पर हो रही है।

मेरे पत्रों की पुस्तक छपाने से अन्य को लाभ होगा। यह तो ठीक बात है, परन्तु मेरी ख्याति हो जाएगी। यह मेरे लिए जहरीला कांटा बन जाएगा। यदि मेरा नाम इसमें न हो तो मेरे लिए सोने पर सुहागा हो। इसमें किसी को ऐतराज भी हो सकता है। मेरे परिवार वाले ख्याति से नफरत करते हैं। केवल इतना जरूर है कि दूसरों का हित इन लेखों से हो सकता है, जिससे ठाकुर की कृपा इस अधम पर बरसती रहेगी।

ठाकुर जी को भूले हुए जीव पर एक लेख लिखा जा रहा है।

किसी दम्पत्ति का एक 6–7 साल का बच्चा किसी मेले में गुम हो गया। बहुत तलाश करवाई, परन्तु मिला नहीं, अब वह बच्चा घर–घर में भीख माँग कर खाता रहता। सर्दी–गर्मी बरसात में कहीं पर जाकर अपना जीवन बसर करता रहता। वह भी अपने माँ–बाप, शहर, मकान से अनभिज्ञ था। पूछने पर भी कुछ बता नहीं सकता था।

जब वह बारह साल का हो गया तो अचानक, उस शहर में आ गया जहाँ उसका जन्म हुआ था। एक गली में एक मकान का काम चल रहा था। उसने मकान मालिक को बोला, मुझे काम पर लगा लो। मालिक ने कहा–"क्या मजदूरी लोगे ?'' उसने कहा–"रोटी, कपड़ा–जो चाहे दे देना।" मालिक ने रख लिया। जब वह टोकरी ढो रहा था तो मकान–मालकिन ने उसे गौर से देखा तो उसे ध्यान आया कि मेरा बच्चा इसी की सूरत जैसा था। कहीं यह वही तो नहीं है। मेरे बच्चे के एक हाथ में दो अंगूठे थे। दाहिनी आँख में लहसुन का चिह्न था। उसने उसे बुलाया और पूछा–"तुम्हारे माँ–बाप का नाम क्या है ?" उसने मालकिन के पति का नाम बताया तथा माँ का नाम भी बता दिया और कहा मैं मेले में गुम हो गया था। अब तक मैं माँ–बाप से नहीं मिला। मालकिन ने

कहा–"तू ही मेरा बेटा है। तेरे हाथ में दो अंगूठे का निशान है। दाहिने आँख में लहसुन का निशान है। हम ही तेरे माँ–बाप हैं। बस फिर क्या था! बिछुड़ा हुआ बच्चा माँ–बाप से मिल गया।''

कहने का तात्पर्य है कि जीव अपने बिछुड़े हुए माँ–बाप (भगवान्) से हरिनाम के द्वारा मिल सकता है। अब तक न जाने कितने माँ बाप करता हुआ भटकता रहा। अब तो परम शान्ति की गोद में आ जा।

जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।

जिस व्यक्ति को धाम की कृपा प्राप्त होती है उसे धाम की कृपा के फलस्वरूप साधुओं का संग मिलता है। साधुसंग में रहकर भजन करते–करते वह कृष्ण प्रेम में डूब जाता है। प्रेम में आविष्ट होना ही परम आनन्द का विषय है।

श्रील गुरुदेवजी की अन्तिम वाणी के कुछ अंश

मैंने मठ की रजिस्ट्री की है, वह किसी की Personal (व्यक्तिगत) सम्पति नहीं है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मठ में रहकर हर एक आदमी हकूमत करेगा, स्वेच्छाचारी हो जाएगा। ऐसा नही। ऐसा करने से जीवन बरबाद हो जाएगा। अतः मठ को चलाने के लिए एक Management Scheme होना आवश्यक है। वहां एक आदमी मठ का (आचार्य) होगा। आचार्य को प्रधान भी कहते हैं और President भी कहते हैं। मेरे चले जाने से एक व्यक्ति मेरे स्थान पर बैठेगा। वह कौन बैठेगा ? यह पद वोट से निश्चय किया जाये, यह हमारे गुरुजी का विधान नहीं है। वोट द्वारा आचार्य निर्णय करना हरिभक्ति नहीं है। आचार्य निर्णय होगा भगवान् के द्वारा। ऊपर से जो Order आया है वही ठीक है। ऊपर से जो निर्देश (Order) आ रहा है उसे मानना सिर्फ गौड़ीय सम्प्रदाय में ही नहीं बल्कि रामानुज, विष्णुस्वामी व निम्बाकाचार्य सब सम्प्रदायों का ये ही विधान है। अतएव आम्नाय गुरु परम्परा में उक्त व्यवस्था को अवलम्बन करना ही उचित है। अभी हम लोगों की जो गोष्ठी है, उस गोष्ठी में मेरे जो ज्येष्ठ गुरु भाई हैं, उनसे सलाह करके मैंने यही निश्चय किया है कि मेरे चले जाने के पश्चात् श्रीमान् भक्तिबल्लभतीर्थ महाराज Next President अग्रिम आचार्य होंगे। मैं चला गया, हमारे गुरु महाराज चले गए, इसलिये हम लोग स्वेच्छाचारी हो जाएं, यह ठीक नहीं हैं।

भक्त का आनुगत्य ही वैष्णवता है। भक्त कौन है ? भक्त के आनुगत्य में जो भगवान् की प्रीति के लिए तत्पर रहता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। इसलिए भक्त का आनुगत्य करना ही भक्ति प्राप्ति का रास्ता है। भगवद्-कृपा, भक्त-कृपा अनुगामिनी होती है। भक्त की कृपा जिन पर होती है, भगवान् की कृपा भी उन पर ही होती है। यही धारा है। इसी प्रकार का विचार लेकर आप लोगों को चलना चाहिए। यही मेरा आप लोगों से संक्षेप में निवेदन है।

एक और बात मैं बोलता हूँ। हम लोग हरि भजन करने के लिये आए हैं। इसमें तीन रुकावटें हैं।

1. विषय–स्पृहा–कनक, रुपये पैसे के लिये लोभ, हरि भक्ति में पहली बाधा है। भिक्षा का रुपया तुम लोग अपने लिये जमा न करना। इससे हरि भक्ति नहीं होगी। यदि भिक्षा का रुपया हम लोग ले लेंगे, उससे मठ को कुछ हानि नहीं होगी। तुम्हारा ही नुकसान होगा। मठ की रक्षा करेंगे कृष्ण, भक्तगण, वैष्णवगण परन्तु भिक्षा के पैसे जो जमा करने की चेष्टा रखते हैं उनका सारा परमार्थ चूल्हे में चला जाएगा, हरि भजन नहीं होगा। पैसा जमा नहीं करना, जो भी हो उसे सारा मठ रक्षक के पास जमा करना होगा। जब कुछ असुविधा हो तो मठ रक्षक को कहना।

2. और एक हरि भक्ति रुकावट है– स्त्री–संग। स्त्री के साथ स्थूल संग, सूक्ष्म संग, दोनों प्रकार का स्त्री–संग ही हरि भक्ति में बाधक है। साक्षात् स्त्री–संग तो करना ही नहीं चाहिए, ऐसा कि मन में भी उसके बारे में चिन्ता या ध्यान नहीं करना, क्योंकि हम लोग सब कुछ छोड़ कर हरि भजन करने के लिये आए हैं।

3. और एक रुकावट है–प्रतिष्ठा के लिये चेष्टा। गुरुदेव कहा करते थे–

''कनक कामिनी प्रतिष्ठा बाधिनी, छाडियाछे यारे सेइ त' वैष्णव।
सेइ अनासक्त, सेइ शुद्धभक्त, संसार तथाय पाय पराभव।।''

प्रभुपाद जी ने कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा की, बाघिनी (शेरनी) के साथ तुलना की है। प्रतिष्ठा खतरनाक हे, लेकिन प्रतिष्ठा नहीं चाहते हुए जो लोग हरि भजन करते हैं, उनके पास प्रतिष्ठा स्वयं आ जाती है। परंतु तुम इन तीन बाधाओं को त्याग देना। यह बहुत आसानी से नहीं जाती हैं। ये सब चित्त को खींच लेती हैं।

मेरा जाने का समय हो गया। तीर्थ महाराज सब समय नहीं रहते। इसलिये जगमोहन प्रभु पर देखभाल के लिए जिम्मेदारी है।

मेरी हस्पताल में जाने के लिये इच्छा नहीं थी लेकिन वैष्णवों की इच्छा पूर्ति के लिए जा रहा हूँ। मेरी कर्कश कथा के कारण तुम लोग दुख न मानना, मुझे क्षमा करना, जो वैष्णवजन हैं वो लोग मेरे सेव्य हैं। मैं सब की सेवा करने को चाहता हूँ। तुम लोग सब निष्ठा के साथ हरि भजन करना। ''जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।'

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।



अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे

(श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग)

सबसे पहले मैं अपने श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णु पाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी, सभी वैष्णवों, वृन्दादेवी तथा भगवान् श्रीश्री राधागोविंद को स्मरण करता हूँ और उन्हें कोटि–कोटि प्रणाम करता हूँ। इन चारों को स्मरण करने से सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और हृदय में अहैतुकी भक्ति जागृत होती हैं।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति नामक इन ग्रंथो में मेरे श्रीगुरुदेव जी की वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रंथो का नाम भी श्रीगुरुदेव ने ही मुझे बताया था और इस लेख में, मैं जो कुछ भी वर्णन करुँगा, वह उनकी ही प्रेरणा से ही होगा। जो कोई भी इन ग्रंथो में लिखी बातों पर श्रद्धा एवं विश्वास करेगा, इनमें बताये गये मार्ग पर चलेगा, इसमें बताये गये क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति होगी। उस पर भगवद्–कृपा बरसेगी। इन ग्रंथों के शीर्षक को सार्थक करने के लिये ही, मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे यह लेख लिखने की प्रेरणा की है। सभी भक्तजनों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे इन ग्रंथो में लिखी किसी भी बात पर सन्देह न करें। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि संशय करने से अमंगल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

(गीता 4.40)

"जो मूर्ख हैं तथा जिनकी शास्त्रों में श्रद्धा नहीं है, जो शास्त्रों में संदेह करते हैं, वे नीचे गिर जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को न इस लोक में और न ही परलोक में सुख मिलता है।"

देखो! मैं तो सबका मंगल चाहता हूँ। मुझे भगवान् ने इसीलिये यहाँ भेजा है कि मैं सबको हरिनाम कराऊँ। मैं चाहता हूँ कि जिस श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति मुझे हुई है, वह आपको भी हो। इस लेख में कई बातें ऐसी हैं जिनका जिक्र करना मैं इसलिये आवश्यक समझता हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। मेरे गुरुदेव ने मुझे कहा कि कुछ भी मत छुपाओ। सब कुछ बता दो। दूसरा कारण यह है कि इससे भक्तों को प्रेरणा मिलेगी, उनका मार्गदर्शन होगा और वे मुझ में श्रद्धा एवं विश्वास करेंगे। इन बातों को मैं अपने स्वार्थ के लिये नहीं लिख रहा हूँ। मुझे न तो प्रतिष्ठा की चाह है, न धन की और न ही मैं किसी उपाधि का इच्छुक हूँ। मैं तो एक छोटे से गाँव में रहने वाला, एक साधारण व्यक्ति हूँ। मुझमें कोई योग्यता भी नहीं है। जो कुछ भी है, मेरे श्रीगुरुदेव की कृपा है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

आज से लगभग 84 वर्ष पूर्व, 23 अक्टूबर सन् 1930 को मेरा जन्म हुआ था। वह शरद–पूर्णिमा की रात थी। समय था लगभग सवा दस बजे। शरद–पूर्णिमा यानि भगवान् श्रीकृष्ण की रासयात्रा की रात। आज से लगभग 5232 वर्ष पहले, शरद्–पूर्णिमा की इसी रात में, भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसी मधुर बंसी बजाई थी जिसे सुनकर गोपियों की विचित्र गति हो गई थी। सारे विश्व को मोह लेने वाले, मदनमोहन ने, अपनी बाँसुरी पर कामबीज 'क्लीं' की मधुर तान छेड़कर, ब्रजसुंदरियों के प्राण, मन और आत्माओं का अपहरण कर लिया था। अपने प्यारे श्यामसुंदर की विरह–वेदना में, विरह–अग्नि में, उन गोपियों के अशुभ संस्कार जलकर भस्म हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट हुये थे। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि इसका मेरे जीवन से विशेष सबंध है।

सन् 1954 में, मैं राजस्थान के कोटा शहर में कार्यरत था। वहीं पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर, मैंने छः महीने में अठारह लाख 'कृष्णमंत्र' का जाप किया जिससे मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला के दर्शन हुये और भगवान् श्री कृष्ण ने मुझे हरे रंग की साड़ी पहनाई, मेरा शृंगार किया और

मुझे रासलीला में ले गये। वहां उन्होंने मुझे नाम दिया 'ओम अलि'। वहां मैंने अपने उस दिव्य स्वरूप के दर्शन किये और श्रीमती राधा रानी तथा असंख्य गोपियों के दर्शन मुझे हुये। जिस प्रकार ब्रजसुंदरियों को शरद–पूर्णिमा की रात में दर्शन हुये थे, वैसे ही दर्शन मुझे हुये और मेरा उस रात में जन्म लेना सार्थक हुआ। मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हुआ। यह दर्शन कृष्ण मंत्र के पुरश्चरण का फल था। भक्तवत्सल भगवान् ने मुझ अधम पर अहैतुकी कृपा की। ऐसे परमदयालु भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'कृष्ण–मंत्र' जाप करना बहुत कठिन है। जरा सी भूल भी हो गई तो आदमी पागल हो सकता है। कई भक्तों ने मेरी नकल करने की कोशिश की है, पर वे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके। उनका जप पूरा ही नहीं हुआ और एक तो पागल हो गये। इस मंत्र का पुरश्चरण करते हुये मन में काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये और नियमों का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है। इसलिये मेरे गुरुदेव ने, मुझे, शिशु भाव देकर केवल हरिनाम करने का आदेश दिया है। उन्होंने मुझे भविष्य में कोई भी अनुष्ठान या पुरश्चरण करने से मना कर दिया था।

अब तो मैं केवल हरिनाम ही करता हूँ और हरिनाम से मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है। अपने प्राणनाथ गोविंद के चरणों की सेवा करने, उनके नाम का रसास्वादन करने तथा उनके नाम का प्रचार करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। जिन्हें अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनका जीवन ही धन्य है।

यह भगवान् की अहैतुकी कृपा का ही चमत्कार है कि मैं जिसे भी हरिनाम करने को कहता हूँ, वह हरिनाम करने लग जाता है। मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं। उनमें बहुत से संसारी कामनाओं के लिये भी आते हैं पर मैं तो सबको हरिनाम करने के लिये ही कहता हूँ और जब वे मेरी बात मानकर हरिनाम करते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। कई दम्पति ऐसे भी आये जिनके 20 वर्षों से संतान नहीं हुई थी पर हरिनाम करने से उन्हें संतान की प्राप्ति हो गई।

मैं पिछले 40 वर्षों से गरीब लोगों को होम्योपैथी की दवाई मुफ्त दे रहा हूँ। जब शरीर निरोग होगा तभी तो भजन होगा। मैं गंगा जल से आँखों की दवाई बनाकर सबको मुफ्त देता हूँ जिससे लोगों के चश्मे उतर गये, नजर बढ़ गई। मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ, यह शक्ति मुझे केवल और केवल हरिनाम से मिली है। इसीलिये मैं सबको बार–बार यही कहता हूँ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करते रहो। संकीर्तन करते रहो।

यह 'हरे कृष्ण' महामंत्र तारक ब्रह्म नाम है और वेद, उपनिषद्, पुराण और संहिता आदि सात्वत–शास्त्रों के अनुसार कलियुग का महामंत्र है। कलिकाल में यह महामंत्र ही समस्त साधनों का शिरोमणि है। कलियुग पावनावतारी श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी सदा–सर्वदा श्री हरिनाम–संकीर्तन करने का उपदेश दिया है–

"कीर्तनीयः सदा हरिः।"

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सदा कीर्तन करने को कहा है और मेरे श्रीगुरुदेव ने भी मुझे उच्च स्वर में (उच्चारणपूर्वक) हरिनाम करने को कहा है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करना भी संकीर्तन ही है। कोई इसे अकेला भी कर सकता है और सामूहिक रूप से भी कर सकता है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करने वाला अपने को और अपने साथ के श्रोताओं को भी पवित्र कर देता है। पशु–पक्षी, कीट–पतंग, पेड़–पौधे इत्यादि जो बोल नहीं सकते, वे भी हरिनाम को सुनकर भवसागर से तर जाते हैं। शास्त्रों में उच्चारण पूर्वक नाम करने की महिमा अधिक बतलाई गई है। चुपचाप हरिनाम करने की अपेक्षा उच्चारणपूर्वक हरिनाम करना सौ–गुणा श्रेष्ठ है।

यह 'हरेकृष्ण' महामंत्र देवर्षि नारद जी ने अपने गुरु श्रीब्रह्मा जी से प्राप्त किया था। ब्रह्मयामल नाम के ग्रंथ में शिव जी पार्वती को कहते है– "हे महादेवि! कलियुग में हरिनाम के विना कोई भी साधन सरलता से पापों से छुटकारा नहीं दिला सकता। इसलिये हरेकृष्ण महामंत्र को प्रकाशित करना आवश्यक है। 'हरेकृष्ण' महामंत्र में पहले दो बार 'हरेकृष्ण' 'हरेकृष्ण' बोलना चाहिये। उसके बाद दो बार 'कृष्ण' 'कृष्ण' और बाद में दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार दो बार 'हरेराम' 'हरेराम', दो बार 'राम' 'राम' और दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार सभी पापों को विनाश करने वाले श्रीकृष्ण महामंत्र का जप, उच्चारण व कीर्तन करना चाहिये।

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह महामंत्र त्रैकालिक–पापों को नष्ट कर देता है। इस महामंत्र का नित्य जप करने वाला वैष्णव, श्रीश्रीराधाकृष्ण के गोलोक – वृन्दावन धाम को प्राप्त कर लेता है। इस महामंत्र में जो सोलह नाम हैं, वे सम्बोधनात्मक हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती है अतः श्रीराधा ही 'हरा' नाम से कही गई हैं। 'हरा' – शब्द का संबोधन में 'हरे' रूप बनता है। एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुल के आनन्दकंद, कमललोचन, नंदनंदन श्री श्यामसुदंर ही 'कृष्ण' हैं। श्रीकृष्ण अपने रूप–लावण्य से व्रजगोपियों के मन को आनन्दित करते रहते हैं।

इसी कारण वे 'राम' कहे जाते हैं। इस महामंत्र में 'हरे' 'कृष्ण' और 'राम' तीनों नामों का बार–बार उच्चारण होता है।

जो फल सत्ययुग में ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञों का अनुष्ठान करने तथा द्वापर में अर्चना पूजा द्वारा प्राप्त होता है, कलियुग में वही फल एकमात्र हरिनाम–कीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

हर युग का एक तारक–ब्रह्म महामंत्र होता है। अनन्त संहिता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है। सतयुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

नारायण परावेदाः नारायण पराक्षराः।
नारायण परामुक्तिः नारायण परागतिः।।

त्रेतायुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

रामानारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

द्वापर का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।।

कलियुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसलिये समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है। हरिनाम से ही समस्त जगत का उद्धार होता है। हरिनाम सब प्रकार के मंगलों में श्रेष्ठ मंगल स्वरूप है। "नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ" हरिनाम करने से मंगल ही होगा। कैसे भी करो। श्रद्धा से करो अथवा अवहेलना से जो एक बार भी 'कृष्ण' नाम का उच्चारण कर लेता है, कृष्ण नाम उसी समय उसको तार देता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इन नामों में अपनी सभी शक्तियों को भर दिया है। पतित जीवों का उद्धार करने के लिये, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अहैतुकी कृपा करके 'नाम' रूप में अवतीर्ण हुये हैं। भगवन्नाम भगवान् का शब्दावतार है। इस शब्द ध्वनि का अभ्यास करके अर्थात् उच्चारणपूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का जप करके हम भगवान् के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हरिनाम करते करते हम उस दिव्य अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं जिसे पंचम पुरुषार्थ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करना ही इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। यही अवस्था सर्वोच्च सिद्धि की अवस्था है। भगवान् ने तो कृपा कर दी और हमें सरल, सुगम व सहज मार्ग भी बता दिया पर फिर भी हमारी नाम में रुचि नहीं है। इसका एकमात्र कारण है– अपराध। शास्त्रों में हरिनाम के सबंध में दस प्रकार के अपराधों का वर्णन आता है। कई साधकों ने मुझे नामापराधों के बारे में पूछा है अतः मैं संक्षिप्त रूप में उनका वर्णन कर रहा हूँ।

पहला नामापराध है– साधुनिन्दा। श्रीमद्भागवत में साधु के लक्षण बताये गये हैं। दयालु, सहनशील, सबको समान देखने वाला, सच बोलने वाला, विशुद्ध आत्मा, हमेशा दूसरों का हित करने वाला, कामना–वासना से दूर, जितेन्द्रिय, अकिंचन, विनम्र, पवित्र, जितनी जरुरत हो उतना ही भोजन करने वाला, शांतमन वाला, धैर्यवान्, स्थिर, किसी भी वस्तु की कामना न करने वाला, श्रीकृष्ण का शरणागत, भगवान् का भक्त, दूसरों को हरिकथा सुनाने वाला, काम–क्रोध आदि से मुक्त, मान–सम्मान की परवाह न करने वाला, दूसरों को सम्मान देने वाला तथा ज्ञानवाला व्यक्ति ही साधु है। ऐसे साधु की निंदा करना पहला अपराध है।

दूसरा अपराध है शिव आदि देवताओं को भगवान् से स्वतंत्र समझना, भगवान् से अलग समझना। हरिनाम करने वाले साधकों को समझ लेना चाहिये कि गोलोकविहारी श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। वे 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं। बाकी जितने भी देवी–देवता हैं, वे उनके दास–दासियाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने से सभी देवी–देवताओं की पूजा हो जाती है और वे प्रसन्न हो जाते हैं। साधकों को सदा सभी देवी–देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। उन्हें भगवान् का प्रसाद निवेदन करना चाहिये और कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

तीसरा नाम अपराध है–गुरु की अवज्ञा करना। गुरुदेव को आचार्य कहा गया है वे हरिनाम की शिक्षा देते हैं अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

श्रुति–शास्त्रों की निंदा करना चौथा अपराध है। वेदों में भागवत धर्म का वर्णन है। उनमें भगवान् नाम की महिमा बताई गई है। श्रुति–शास्त्र, वेद, उपनिषद्, पुराण ये सब श्रीकृष्ण के श्वास से उत्पन्न हुये हैं और भागवत–तत्व निर्णय में प्रामाणिक हैं। इसलिये इनकी निंदा नहीं करनी चाहिये।

पाँचवाँ अपराध है हरिनाम में अर्थवाद करना। कुछ लोग समझते

हैं कि वेदों में जो हरिनाम की महिमा का वर्णन है, वह काल्पनिक है, नाम की प्रशंसा के लिये है। ऐसी धारणा वाले नामापराधी हैं।

हरिनाम के बल पर पाप करना छठा नामापराध है। कुछ लोग समझते हैं कि हरिनाम प्राप्त करके हमें पाप करने की छूट मिल गई है। इसी धारणा के साथ वे चोरी, ठगी, बदमाशी, डकैती करते हैं तथा झूठ बोलते हैं। वे सोचते हैं कि इन पापकर्मों को करके, हरिनाम कर लेंगे और सारे पाप कट जायेंगे। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। उनकी दुर्गति होती है। इसलिये हरिनाम का सहारा लेकर कभी भी पाप नहीं करना।

जिन व्यक्तियों को हरिनाम में श्रद्धा नहीं है, ऐसे अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करना सातवाँ नामापराध है। जब किसी की हरिनाम में श्रद्धा हो जाये, उसके बाद ही उसे नाम का उपदेश करना चाहिये। श्रद्धावान् व्यक्ति ही हरिनाम करने का असली अधिकारी है।

दूसरे शुभ कर्मों को हरिनाम के बराबर समझना आठवाँ अपराध है। कुछ लोग समझते हैं कि जैसे यज्ञ, दान, तीर्थ–यात्रा आदि शुभ कर्म हैं, शुभकर है, हरिनाम भी वैसी ही चीज है। ऐसे लोग भी नामापराधी हैं।

नौवाँ अपराध है प्रमाद। प्रमाद का अर्थ है– असावधानी, आलस्य, उदासीनता। भजन करते हुये आलस्य करना, उदासीन होना तथा मन का इधर–उधर जाना ही प्रमाद है। एकांत भाव से उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने से, धीरे–धीरे यह अपराध खत्म हो जाता है और हरिनाम का दिव्य रस आने लगता है।

दसवाँ नामापराध है हरिनाम की अगाध महिमा को जानते हुये भी हरिनाम न करना। जो हरिनाम के शरणागत होकर हरिनाम करता है, वही भाग्यवान् है, वही धन्य है।

यहां दस नामापराधों का संक्षेप में वर्णन किया गया है, जो भी साधक कृष्ण–भक्ति में आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें इन अपराधों से अवश्य बचना चाहिये। अपराधों से बचकर हरिनाम करना ही

भजन–साधन में निपुणता है। इसके लिये हरिनाम प्रभु के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिये कि **'हे हरिनाम प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं सदा–सर्वदा नामापराधों से बचकर शुद्ध हरिनाम करता रहूँ।'**

यहां जिन अपराधों का वर्णन हुआ है, इनसे बचने का एकमात्र उपाय भी हरिनाम ही है। निरंतर हरिनाम करते रहने से नामापराध खत्म हो जाता है और अपराध खत्म होने से शुद्ध नाम उदित हो जाता है और अहैतुकी भक्ति जागृत हो जाती है।

जो साधक पूर्ण रूप से नाम पर आश्रित हो जाता है, ऐसे शुद्ध–नामाश्रित व्यक्ति को कभी भी, किसी भी रूप में नामापराध स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि नामाश्रित व्यक्ति की, श्रीहरिनाम सदा ही रक्षा करते हैं। उससे अपराध होगा ही नहीं। जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता तब तक अपराध होने का डर बना रहता है। इसलिये हर वक्त हरिनाम करते रहो।

जिनकी नाम में श्रद्धा है, नाम में जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोत्तम साधक हैं। **भगवद्–प्राप्ति करने के जितने भी साधन हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रय से ही सर्वसिद्धि होती हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है।** नाम का आश्रय लेकर यह पद्धति श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के समय से चली आ रही है। इससे पहले भी प्राचीनकाल में व्रजमण्डल के वैष्णव–संतों ने इसी भजन–प्रणाली के अनुसार भजन किया है। श्री हरिनाम का तत्व किसी सौभाग्यशाली को ही समझ में आता है। जब कोई भाग्यवान् जीव, भगवान् श्रीकृष्ण के किसी नामनिष्ठ भक्त का संग करता है तब उसकी हरिनाम में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

श्रीकृष्ण नाम चिंतामणि है, अनादि है, चिन्मय है। चूंकि श्रीकृष्ण अनादि हैं, दिव्य हैं इसलिये उनका नाम, उनका रूप, उनके गुण तथा उनकी लीलायें भी अनादि एवं दिव्य हैं। श्रीकृष्ण का नाम और उनका रूप एक ही वस्तु है। उनके नाम का स्मरण करने से, उनके नाम का कीर्तन करने से, उनका रूप स्वतः ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

सुमरिए नाम रूप विन देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण का रूप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार उनके नाम में भी यह आकर्षण नित्य विराजमान रहता है। यद्यपि भगवान् के नाम, रूप, गुण व लीला उनसे अलग नहीं है फिर भी उनका नाम सभी का आदि है, सबका मूल है। हरिनाम करते–करते उनका रूप, उनके गुण और उनकी समस्त लीलायें हृदय में स्वतः ही प्रकाशित हो जाती हैं।

सार बात यह है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है और वैष्णवों का एकमात्र धर्म है– हरिनाम करना। आज से 529 वर्ष पूर्व, इस युग के युगधर्म– श्रीहरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। उन्होंने स्वयं हरिनाम करके दिखाया। उनके आदेशानुसार, उनकी शिक्षाओं पर चलकर, आज अनंतकोटि जीव श्रीकृष्ण–प्रेम रूपी महाधन (परमधन) को प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य देव ने हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करने के लिये ही उपदेश क्यों किया ?

श्री चैतन्य चरितामृत में वर्णन है कि जब संन्यासियों के प्रधान प्रकाशानन्द जी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से पूछा कि केशव भारती के शिष्य होकर तथा अनुमोदित सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण करने के बाद भी तुम संन्यासी धर्म का पालन नहीं करके, भावुकों के कर्म करते फिरते हो, संन्यासी होकर भी पागलों की तरह नृत्य–गान करते हो, संकीर्तन करते हो। तुम ऐसा अनुचित व हीन कर्म क्यों करते हो ? तो श्री महाप्रभु जी ने कहा–

"श्रीपाद! मैं इसका कारण बताता हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे मूर्ख देखकर कहा कि तुम मूर्ख हो तथा वेदान्त पढ़ने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। अतः तुम नित्य–निरंतर श्रीकृष्ण मंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन किया करो। वेदांत का निचोड़ यही महामंत्र है। इस महामंत्र का कीर्तन करने से तुम्हारे सभी बंधन समाप्त हो जायेंगे और तुम्हें श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति हो जायेगी।

इस कलिकाल में श्रीकृष्ण के नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। जितने भी मंत्र हैं, जितने भी साधन हैं, उन सबका सार है– हरिनाम। यही बात सभी शास्त्रों ने कही है।"

इस प्रकार अपने श्रीगुरुदेव केशवभारती की आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रतिक्षण कीर्तन करने लगे

एइ आज्ञा पाञा नाम लइ अनुक्षण।

नाम–संकीर्तन के सिवा उन्हें कुछ भी याद नहीं रहा। वे सब कुछ भूल गये। कीर्तन करते–करते कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते, कभी पागलों की तरह सुध–बुध खो देते। उनकी हालत पागल जैसी हो गई। एक दिन उन्होंने अपने श्रीगुरुदेव से कहा कि आपने मुझे कैसा उपदेश किया है। इस मंत्र ने तो मुझे पागल कर दिया है। इस महामंत्र में बहुत शक्ति है। महाप्रभु जी की बात सुनकर उनके श्रीगुरुदेव हंसने लगे और बोले–

कृष्णनाम महामंत्रेर एइत स्वभाव।
जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव।।

अर्थात् श्रीकृष्ण नाम का यही स्वभाव है। जो भी इस महामंत्र का जप करता है, उसमें श्रीकृष्ण प्रेम उत्पन्न हो जाता है। श्रीनाम संकीर्तन का मुख्य फल श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति है पर यह फल उसे ही मिलता है जो उसी शुद्ध–प्रेम की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करता है। इस लोक तथा परलोक के सुख–भोगों की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। ये सब सुख–भोग तो हरिनाम करने से स्वतः ही मिल जायेंगे। हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिये, श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये, श्रीकृष्ण के सुख के लिये हरिनाम करना है। नाम की महिमा असीम है, अपार है। यहां तक कि नवविधा भक्ति की पूर्णता श्रीनाम संकीर्तन से ही होती है–

नवविधा–भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।।

इसलिये हरिनाम ही सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग है।

देखो! भगवान् श्रीकृष्ण का मेरे प्रति वात्सल्य भाव है। इस संबध से, वे मेरे दादा हैं और मैं उनका पोता हूँ, मेरा नाम अनिरुद्ध है और मेरी उम्र है डेढ़ वर्ष। मुझे इस सबंध का पहले कुछ भी पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि मैं कौन हूँ और मेरा भगवान् से क्या संबंध है ? पर मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके मुझे यह संबंध ज्ञान दिया है। इस संबंध में, कोई अपराध नहीं होता। बाकी संबंधों में अपराध होने का भय बना रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे केवल और केवल मात्र हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

करने की आज्ञा दी है और वही मैं कर रहा हूँ। हरे कृष्ण महामंत्र करते–करते मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगता है और मैं अपने दादा (भगवान् श्रीकृष्ण) को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता हूँ। तब भगवान् मुझे दर्शन देते हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी गोदी में चढ़ने के लिये मचल जाता हूँ। रोने लगता हूँ। भगवान् मुझे दोनों हाथों से उठाकर गोदी में ले लेते हैं। मुझे बहुत प्यार करते हैं, दुलारते हैं, पुचकारते हैं, मेरा माथा चूमते हैं, मेरे घुँघराले बालों को सँवारते हैं। मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ और उनकी गोदी में ही रहना चाहता हूँ। थोड़ी देर बाद, वे मुझे रुक्मिणी जी को पकड़ा देते हैं और आप सोने के रथ में सवार होकर सुकर्मा सभा में जाने लगते हैं। रथ का सारथी दारुक रथ लेकर तैयार खड़ा है पर ज्यों ही वे जाने लगते हैं– मैं जोर–जोर से रोने लगता हूँ और उनकी गोदी में चढ़ने की जिद करता हूँ। मुझे रोते हुये देखकर वे रुक जाते हैं और फिर मुझे गोदी में उठा लेते हैं। इस प्रकार बार–बार होता है और उस दिन से वे सुकर्मा सभा में जाने से ही मना कर देते हैं।

कई बार मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करता हूँ। महाप्रभु गंभीरा में सबको हरिनाम की महिमा सुनाते हैं। (भाग एक व दो के पृष्ठ 152 के साथ रंगीन चित्र देखें) गंभीरा में

नित्यानंद प्रभु, श्री अद्वैताचार्य, श्रीगदाधर पंडित, श्री निवासाचार्य, श्रीस्वरुप– दामोदर गोस्वामी, वृन्दावन के छः गोस्वामीगण, देवर्षि नारद, व्यास जी, ब्रह्मा जी तथा शिव जी सब महाप्रभु के मुखारविंद से हरिनाम की महिमा सुन रहे हैं। मेरे श्रील गुरुदेव पूरी गुरु–परम्परा तथा सभी वैष्णव–संत भी वहां विराजमान होते हैं। मैं डेढ़ वर्ष के शिशु के रूप में घुटनों के बल चलकर महाप्रभु जी की गोदी में जाकर बैठ जाता हूँ। (फोटो में देखें) वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। मुझे प्यार करते हैं, मुझे चूमते हैं, दुलारते हैं। मैं गद्गद् हो जाता हूँ। गंभीरा में विराजमान सारा वैष्णव समाज मुझे देखता है। उसी समय मेरे श्री गुरुदेव एक सोने के गिलास में कोई आसव (मधुर पेय) लेकर आते हैं। महाप्रभु उस आसव में से कुछ घूँट पीते हैं और बाकी आसव मुझे पिला देते हैं।

कई बार मैं शिवजी और माँ–पार्वती जी के दर्शन करता हूँ। शिवजी की गोदी में, मैं सांपों से डर जाता हूँ और रोने लगता हूँ। तब माता पार्वती मुझे गोद में लेकर प्यार करती हैं और स्तनपान कराती हैं। उस समय मुझे परम सुख की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार हरिनाम करते–करते मुझे भगवान् एवं उनके भक्तों के दर्शन होते रहते हैं। कभी ब्रह्मा जी, कभी नारद जी, कभी माँ लक्ष्मी, कभी माया देवी के दर्शन मुझे होते हैं और मुझे सबका आशीर्वाद एवं प्यार मिलता है। मैं ये सब इसलिये बता रहा हूँ क्योंकि मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है कि मैं अपने बारे में सब कुछ बता दूँ, कुछ भी छुपा के नहीं रखूं। मैं अपनी बड़ाई के लिये यह सब नहीं बता रहा हूँ। मैं तो आपको हरिनाम की महिमा बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता ? हरिनाम की कृपा से मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये हैं। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे गोलोक धाम के दर्शन भी करवाये हैं।

मैं उम्र में तो डेढ़ वर्ष का शिशु हूँ पर अपने दादा भगवान् श्रीकृष्ण से बड़े–बड़े प्रश्न पूछता हूँ। कभी पूछता हूँ कि तुम्हारे वस्त्र का रंग पीला क्यों हैं ? कभी पूछता हूँ राधारानी की साड़ी का रंग नीला क्यों है ? कभी पूछता हूँ प्रकृति का रंग हरा और समुद्र का पानी नीला क्यों

है ? भगवान् श्रीकृष्ण मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं और कई बार कहते हैं कि तू बड़ा नटखट है, बड़े–बड़े प्रश्न पूछता है। मेरी बातें सुनकर वे मुस्कराते हैं और गोदी में बिठाकर मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

यह संबंध बड़ा दिव्य है। यह भाव अलौकिक है। जबतक संबंध ज्ञान नहीं होता तब तक इन भावों को समझा नहीं जा सकता। भगवान् से हमारा कोई भी संबंध हो सकता है– पिता का, पुत्र का, पति का, सखा का, स्वामी का। जिसका जैसा भाव होगा, उसे वैसा ही संबंध ज्ञान मिलेगा पर यह सब मिलेगा हरिनाम करने से। नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहने से, आगे का रास्ता अपने आप बनता जाता है और श्री गुरुदेव ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंध ज्ञान दे दिया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का जो सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है, उससे बहुत शीघ्र संबंध–ज्ञान हो जायेगा और इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो जायेगी।

यह मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं मुझे बताया है। यह मार्ग आजतक किसी ने नहीं बताया और न ही इसका किसी ग्रंथ में वर्णन है। यह अतिगोपनीय था पर अब मैं सबको यह गोपनीय रहस्य बता रहा हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि तुमने तो मेरी पोल खोलकर रख दी। मैं सब कुछ दे देता हूँ पर अपनी भक्ति नहीं देता क्योंकि मुझे भक्त का गुलाम बनना पड़ता है। मैंने कहा कि जब आपने मुझे इस पृथ्वी पर भेजा ही इसलिये है तो मैं क्यों न बताऊँ ? मैं यह बात सबको बताऊँगा और आपके धाम में ले जाऊँगा। यदि आपने मुझसे हरिनाम का प्रचार नहीं करवाना था तो मुझे यहां भेजा ही क्यों ? मेरी बात सुनकर भगवान् हंस पड़े और बोले – "तू बड़ा चतुर है"।

भगवान् को प्राप्त करने का रहस्य तो मैं आप को बता रहा हूँ पर जो सुकृतिशाली होगा, वही मेरी बात पर विश्वास करेगा। जो सुकृतिशाली नहीं होगा, वह इसे सच ही नहीं मानेगा। यह मार्ग इतना सहज एवं व्यावहारिक है कि कोई भी, कहीं भी, कैसे भी, इस पर चलकर हरिनाम कर सकता है। इसके लिये आपको कुछ

भी विशेष नहीं करना। आप अपने घर, दुकान, कार्यालय, फैक्ट्री, कहीं भी हरिनाम कर सकते हो। जहां भी रहो, जैसी भी परिस्थिति हो, इसे करना बहुत आसान है। यह मार्ग इतना प्रभावशाली है कि इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपको संसार के सुख तो मिलेंगे ही, आपका आध्यात्मिक जीवन भी निखर जायेगा। आपको भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। भगवान् के दर्शन तीन प्रकार हुआ करते हैं – स्वप्न में, छद्म रूप में और साक्षात्–दर्शन। साधक के हृदय की जैसी वृत्ति होगी, उसी वृत्ति के अनुसार उसे दर्शन होगा। यदि साधक की वृत्ति निर्गुणी है तो साक्षात् दर्शन होगा। यदि सतोगुणी वृत्ति है तो छद्म दर्शन होगा और यदि कोई इस क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा तो उसे स्वप्न में तो दर्शन जरूर होंगे।

आप कह सकते हो कि इसका प्रमाण क्या है ? मैं कहता हूँ, करके देख लो। देखो! जो नामनिष्ठ भक्त होता है, वह भगवान् को बहुत प्यारा होता है। भगवान् कभी भी उसकी बात टालते नहीं हैं। हरिनाम की कृपा से, मुझे वाक् सिद्धि प्राप्त है इसलिये मैं सबको हरिनाम करने को कहता हूँ और लोग हरिनाम करने लगते हैं। पिछले वर्ष (18 मार्च, 2013) मैं गोवर्धन के पास चन्द्र सरोवर पर गया था। वहां मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये। उस दिन मेरे साथ आठ भक्त और थे। दो जयपुर के, एक चण्डीगढ़ के, एक दिल्ली के डाक्टर, एक संन्यासी तथा तीन विदेशी भक्त। ये मेरे साथ थे पर इन्हें भगवान् ने साक्षात् दर्शन नहीं दिये क्योंकि उनकी निर्गुणी वृत्ति नहीं है। ये सभी भक्त हरिनाम तो करते हैं पर अभी अधकचरे हैं इसलिये इन्हें दर्शन नहीं हुये। पर जब मैंने भगवान् से प्रार्थना की तो भगवान् ने उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिये। यह सब हरिनाम का चमत्कार है।

हरिनाम की इतनी अगाध महिमा सुनकर और महाप्रभु की आज्ञा का पालन करके आज पूरा विश्व हरिनाम कर रहा है। हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन कर रहा है। आज असंख्य भक्त हरिनाम कर रहे हैं। कोई सोलह माला करता है, कोई बत्तीस माला करता है और बहुत सारे भक्त चौसठ माला (एक लाख हरिनाम)

करते हैं। दो लाख व ढाई लाख हरिनाम नित्य प्रति करने वाले भी हैं पर उनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। कुछेक तो तीन लाख हरिनाम भी प्रतिदिन करते हैं। मेरे पास बहुत से भक्तजन आते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या आपको स्वप्न में भगवान् के दर्शन होते हैं ? क्या हरिनाम करते–करते आपकी आँखो में अश्रु आते हैं ? क्या भगवान् के लिये छटपटाहट होती है ? क्या संसार की आसक्ति कम हुई ? क्या विरह होता है ? क्या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार छूटा या कम हुआ ? उत्तर मिलता है– नहीं।

एक दिन मैंने अपने बाबा भगवान् श्रीकृष्ण से बोला– "बाबा! क्या आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है ?"

मेरा प्रश्न सुनकर बाबा बोले, 'अरे अनिरुद्ध! तू कैसी पागलों जैसी बातें करता रहता है। क्या मेरे नाम में शक्ति नहीं है ?'

"हाँ! आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है। जो भक्त आपका एक लाख, डेढ़ लाख नाम प्रतिदिन जपते हैं उनका राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार तक नहीं गया। फिर आपका नाम जपने से क्या फायदा हुआ ?"

मेरी बात सुनकर बाबा ने कहा– "अरे! तू जो कुछ कह रहा है, वह ठीक ही है लेकिन मेरी बात सुन। जब मैं अवतार लेता हूँ तब जो भी मेरे संपर्क में आता है, उसका उद्धार हो जाता है पर मेरा नाम तो अनंतकोटि ब्राह्मंडों में रहने वाले जीवों का उद्धार कर देता है। इसलिये मेरे से भी अधिक मेरे नाम की महिमा है। मेरे नाम का जप करके मेरे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं। काल, महाकाल भी मुझ से थर–थर काँपते हैं पर मैं अपने भक्तों से डरता हूँ। अब मेरी बात ध्यान से सुन। ये संसार क्या है ? ये संसार दुःखालय है। दुःखों का घर है। जो भक्त एक लाख या डेढ़ लाख हरिनाम प्रतिदिन कर रहे हैं, वे सब हरिनाम के बदले मुझसे इस संसार की वस्तुएं ही मांगते हैं। कोई घर माँगता है, कोई कहता है मेरी बेटी की शादी हो जाये, कोई कहता है मेरे बेटे की नौकरी लग जाये, मेरा करोबार अच्छी तरह चलता रहे। मेरा नाम है चिंतामणि! उससे जो मांगोगे,

वही दे देगा। संसार की वस्तुऐं मांगोगे तो संसार ही मिलेगा। दुःखों के घर में सुख कैसे मिलेगा? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार– ये सब माया का परिवार है। जब कोई अपने स्वार्थ के लिये नाम जप करता है तो माया का परिवार, माया के हथियार उसे प्रताड़ित करते हैं और वह माया द्वारा बुरी तरह सताया जाता है। पर जो मेरे लिये, मेरी प्रसन्नता के लिये नाम–जप करता है, माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती अपितु भगवद्–प्राप्ति में उसकी सहायता करती है। अपने स्वार्थ के लिये नाम–जप करना अविधिपूर्वक है और मेरी प्राप्ति, मेरी प्रसन्नता के लिये जप करना ही विधिपूर्वक जप करना है। नाम जप करने वाले की जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल मिलता है। यदि कोई गोपियों तथा भीलनी जैसे भाव से नाम जप करता है, मुझे बुलाता है, याद करता है तो मैं उससे कभी दूर नहीं रह सकता। पर मुझे चाहता ही कौन है? मुझे चाहने वाला तो कोई विरला ही होता है।"

"अच्छा बाबा! अब ये बताओ कि हमें सुख कैसे मिलेगा?"– मैंने पूछा।

"सुख मिलेगा मेरे भक्तों से तथा मुझसे, क्योंकि मैं सुख का सागर हूँ। गोपियाँ हर पल, हर क्षण मेरे सुख के लिये सब काम करती थीं इसलिये उन्हें हर पल सुख मिलता था। मेरे भक्तों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाओ। मैं अपने भक्तों के हृदयों में रहता हूँ। जब कोई मेरे प्यारे भक्तों को हरिनाम सुनायेगा तो मैं भी सुनूँगा। मेरे प्यारे भक्त हरिनाम सुनेंगे तो उनकी कृपा मिलेगी, उनका आशीर्वाद मिलेगा और मैं हरिनाम सुनूंगा तो मैं गद्‌गद् हो जाऊँगा। मैं खुश हो जाऊँगा तो सुख अपने आप मिलेगा।"

मैंने अपने बाबा (श्रीकृष्ण) से पूछा कि यह बात आपने पहले कभी नहीं बताई तो वे बोले– "तुमने पहले कभी ये बात पूछी नहीं, इसलिये मैंने नहीं बताई। आज पूछी है तो बता दी। अब मैं तुम्हें हरिनाम करने का सर्वोत्तम मार्ग बताता हूँ।"

इस प्रकार कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे हरिनाम

करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग बता दिया। वही मार्ग मैं आपको बता रहा हूँ। हरिनाम करने से पहले वृन्दा देवी (तुलसी महारानी) को प्रणाम करो। वृंदा देवी की प्रसन्नता से ही सब कुछ होगा। तुलसी माँ की प्रसन्नता कैसे होगी–वह इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग एक व दो के पृष्ठ संख्या 32–33 तथा भाग पाँच में पृष्ठ संख्या 29–30 पर) में लिखा है, भक्तगण उसे अवश्य पढ़ें और उसके अनुसार हरिनाम शुरु करें। साथ ही प्रतिदिन तीन प्रार्थनाएं भी करें। (देखें भाग एक व दो पृष्ठ संख्या 30–31 तथा भाग पांच–पृष्ठ संख्या 27–28)

जितने भी नामनिष्ठ हैं, वे भगवान् को अतिप्रिय हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो भगवान् को बहुत सुख मिलता है। इन नामनिष्ठ भक्तों को प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है उनके चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाना। ऐसा करने से भगवान् के प्यारे भक्तों की कृपा भी मिलेगी और भगवान् भी आनन्दित हो जायेंगे। जब भगवान् ही प्रसन्न हो गये तो बाकी क्या बचा ? सब कुछ मिल गया।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्त अनगिनत हैं, असंख्य हैं पर भगवान् ने अहैतुकी कृपा करके मुझे दो ग्रुप बताये हैं जिसका मैं वर्णन करने जा रहा हूँ। इन सबके चरणों में बैठकर, इन्हें हरिनाम सुनाना है पर यह होगा मानसिक रूप से।

पहला ग्रुप है श्रीगुरुदेव का। इस ग्रुप का क्रम इस प्रकार है–

1. श्री गुरुदेव
2. श्रीनृसिंह देव
3. श्रीगौरहरि
4. श्रीकृष्ण
5. श्रीराधा
6. पुरी मंदिर में विराजमान श्री बलदेव, सुभद्रा एवं भगवान् जगन्नाथ
7. श्रीगौरहरि का विरह

8. श्री हरिदास ठाकुर
9. वृन्दावन के षड्–गोस्वामी
10. श्री माधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वर पुरीपाद

इस क्रमानुसार सबको चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। सबसे पहले श्री गुरुदेव जी को, फिर नृसिंह देव जी एवं प्रहलाद जी को, फिर श्री गौरहरि जी को, श्रीकृष्ण जी को, श्रीराधा जी को, भगवान् जगन्नाथ, बलदेव एवं सुभद्राजी (तीनों को चार माला), षड्–गोस्वामियों को चार माला तथा क्रमांक 10 के श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वरपुरी पाद, दोनों को चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार क्रमांक एक से दस तक, चार–चार माला हरिनाम की करने से चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप का क्रम है। यह ग्रुप है देवर्षि नारद जी का।

1. श्री नारद जी
2. श्री सनकादिक जी
3. श्री ब्रह्मा जी
4. श्री शिव जी
5. श्री नित्यानंद प्रभु
6. श्री अद्वैताचार्य जी
7. श्री गदाधर पंडित जी
8. श्रीवास (निवास) जी
9. षड्–गोस्वामी
10. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्री ईश्वरपुरीपाद।

वृन्दावन के षड्–गोस्वामी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद एवं श्री ईश्वरपुरी पाद दोनों ग्रुपों में शामिल हैं। इस क्रमानुसार हर बार चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रुप में भी चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी। इन दोनों ग्रुपों को पूरा करने के बाद अस्सी (40+40=80) माला हरिनाम की हो जायेंगी यानि 1,25,000 हरिनाम पूरा होगा। इस पूरे क्रम को दो बार करने से 160 माला यानि 2,50,000 हरिनाम पूरा हो जायेगा।

तीन बार करने से 3,75,000 तथा चार बार करने से पाँच लाख (5,00,000) हरिनाम पूरा हो जाता है। यह सब भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशानुसार है। जो इसे अपनायेगा उसे भगवान् का दर्शन अवश्य होगा। इस बात की 100 प्रतिशत (शत-प्रतिशत) गारंटी है।

इन दोनों ग्रुपों में जो नाम आये हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इसी ग्रंथ के आमुख नाम के लेख में दिया गया है एवं उनके रंगीन चित्र भी दिये गये हैं। भक्तगण, उसे जरूर पढ़ें।

अब मैं आपको हरिनाम का चमत्कार बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। मेरी उम्र है 85 वर्ष। उम्र के हिसाब से तो मुझे खटिया में पड़ जाना चाहिये पर इस उम्र में भी, मेरे शरीर में बीस वर्ष के नौजवान जैसी शक्ति है। मेरी दृष्टि पांच वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दांत है और मुझे कोई भी रोग नहीं है। मैं हर रोज रात को एक बजे उठकर हरिनाम करता हूँ। पहले मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता था। 24 नवम्बर, 2013 को जब भगवान् ने मुझे यह क्रम बताया तो मैं इस पूरे क्रम को तीन बार करता था और मेरा 3,75,000 हरिनाम प्रतिदिन होता था। अब मैं इस पूरे क्रम को चार बार प्रतिदिन करता हूँ और 24 दिसंबर, 2013 से मैं प्रतिदिन पाँच लाख हरिनाम करता हूँ और यह सब 16-17 घंटों में पूरा हो जाता है। बाकी समय में मैं खाना-पीना, सोना करता हूँ तथा भक्तों से मिलता हूँ। इस जन्म में मैं अबतक लगभग 500 करोड़ हरिनाम कर चुका हूँ। आपको सच नहीं लग रहा न! मैं कहता हूँ, करके देख लो! जब मैं 85 वर्ष का बूढ़ा आदमी पांच लाख हरिनाम कर सकता हूँ तो आप क्यों नहीं कर सकते। पर मैं आपको पांच लाख हरिनाम करने को नहीं कहता। मैं कहता हूँ आप कम से कम पूरे क्रम को एक बार तो करो यानि 80 माला (1,25,000) हरिनाम। इसी से आपको विरह होने लगेगा और इसी जन्म में श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति हो जायेगी।

देखो! हरिनाम में अमृत भरा पड़ा है। इस अमृत को जितना पी सकते हो, पी लो। यह हरिनाम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीचैतन्य

महाप्रभु के रूप में हमें दिया है। हे रसिक व भावुकजनो! श्रीचैतन्य महाप्रभु के मुख का संयोग होने से हरिनाम रूपी यह अमृतरस परिपूर्ण है और इस हरिनाम का रस इसी लोक में, इसी जन्म में सुलभ है। इसलिये जब तक शरीर में प्राण हैं, चेतना है तब तक हर पल, हर सांस में इस अमृत का पान करते रहो। यह मौका फिर नहीं मिलेगा। यह हरिनाम वैष्णवों का परमधन है। परमहंसों का प्राण धन है तथा भक्तों का जीवन धन है। इसलिये मेरे प्यारे भक्तो! इस हरिनाम रस का खूब पान करो। इसे कभी मत छोड़ना। जो नित्य–निरंतर हरिनाम करता है, वे त्रिलोकी में अत्यन्त निर्धन होने पर भी परम धन्य है क्योंकि इस हरिनाम की डोरी से बंधकर, भगवान् को, अपना परमधाम छोड़कर, भक्त को साक्षात् दर्शन देना पड़ता है। हरिनाम की महिमा इससे अधिक और क्या हो सकती है! हरिनाम का आश्रय लेकर, इसे स्वयं करने तथा दूसरों से करवाने वाले– दोनों को ही श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। फिर इस हरिनाम को छोड़कर और कुछ करने से क्या प्रयोजन है ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का यह सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है। इस मार्ग से हरिनाम करने पर, हरिनाम करते रहने की इच्छा बढ़ती जायेगी और जो आनन्द प्राप्त होगा, उस आनंद की कोई सीमा नहीं है। वह आनन्द अलौकिक है, अगाध है, असीमित है, अपरिमित है, अवर्णनीय है और भगवान् का साक्षात्–दर्शन कराने वाला है। इसीलिये मैं सबसे बार–बार कहता हूँ–

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

"गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।"

यह हरिनाम–संकीर्तन व्रजेन्द्रनदंन श्रीकृष्ण के गोलोक धाम का प्रेमधन है। हरिनाम की कृपा से ही श्रीश्रीराधाकृष्ण, राधाकुंड, गोवर्धन, यमुना, कुसुम–सरोवर, मानसी–गंगा, वृन्दावन, वंशीवट, गोकुल, व्रज के वृक्ष–लता–पत्ते–गोप–गोपियाँ, गाय–बछड़े, पशु–पक्षी, भौंरे, वन–उपवन, मुरली तथा बरसाना सबके दर्शन होंगे।

एक दिन मैंने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि माया तो आपकी दासी है। फिर यह आपके भक्तों को प्रताड़ित क्यों करती है ? क्यों उन्हें कष्ट देती है ? आपके आदेश के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता फिर मनुष्यों को सताने के लिये आपने माया को आदेश क्यों दिया ?

मेरी बात सुनकर मेरे बाबा बोले, "अनिरुद्ध! इस प्रश्न का उत्तर आप माया से ही पूछो न!"

भगवान् के आदेश से उसी क्षण माया देवी वहां प्रकट हो गई। मैं उन्हें देखकर हतप्रभ रह गया। सुन्दर स्वरूप, विलक्षण तेज और सबको आकर्षित करने वाली दिव्य आभा। मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। यही भगवान की दैवीशक्ति माया है– यह जानकर मैंने तुरंत माया देवी को प्रणाम किया। मैंने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से माया देवी से पूछा कि आप मनुष्यों को कष्ट क्यों देती हो ? क्यों उन्हें प्रताड़ित करती हो ?

माया देवी ने कहा– "देखो! अनादिकाल से यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। इन चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य की योनि ही कर्म प्रधान है। बाकी सभी योनियाँ भोग भोगने के लिये हैं। इन योनियों में जीव कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है पर मनुष्य योनि में वह कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। उसे कर्म करने की पूरी आज़ादी है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र तो है पर उसे इन सभी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। मनुष्य पाप–पुण्य आदि जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना ही होगा पर दूसरी योनियों में कोई पाप नहीं लगता। मनुष्य को यह जन्म भगवद्–प्राप्ति के लिये मिला है। उसने गर्भ में भगवान् से प्रार्थना की थी कि मैं आपका भजन करूँगा। भगवान् ने उसकी प्रार्थना सुनकर, बिना कारण, उस पर कृपा करके इस संसार में भेज दिया ताकि वह भगवद्–भजन कर सके। पर यह मनुष्य भगवान् को ही भूल गया और अपने सुख की खोज में लग गया। वह अपने स्वामी, जिसका वह नित्यदास है, उसको छोड़कर अपनी दुनियाँ बसाने में लग गया।

वह मेरे स्वामी की सेवा छोड़कर, पति–पत्नि, परिवार की सेवा में लग गया और मेरे स्वामी को भूल गया। इसलिये वह दुःखी है। मेरे स्वामी को प्रसन्न करने की बजाय, उसे सुख देने की बजाय, यह मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में लग जाता है इसलिये मैं उसे परेशान करती हूँ। मैं उसे भ्रमित कर देती हूँ, उसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करती हूँ। कभी भूकंप आता है, कहीं सुनामी सब कुछ मलियामेट कर देती है, कहीं बादलों के फटने से गाँव के गाँव उग्र धाराओं में बह जाते हैं। कहीं सूखा पड़ जाता है, कहीं भुखमरी पैदा हो जाती है। यह सब मेरा ही खेल है। मेरा यह खेल इतना रहस्यमय है कि मनुष्य इसे समझ नहीं पाता और असहाय बनकर रह जाता है। मेरे चंगुल में फँसकर बड़े–बड़े विद्वान, वैज्ञानिक दार्शनिक, कवि तथा साहित्यकार भी यह मान लेते हैं कि यह जीवन केवल मात्र खाने–पीने, सोने तथा मौजमस्ती करने के लिये मिला है और ऐसे लोग, अपने जीवन की अंतिम सांस तक, अपनी इन्द्रियों का तुष्ट करने में लगे रहते हैं। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है।

भगवान् श्री मेरे स्वामी हैं अर्थात् मायापति हैं। उनको प्रसन्न किये बिना, कोई भी जीव मेरे चंगुल से बच नहीं सकता। कोई भी उसे छुड़ा नहीं सकता। इस जीव को वही मेरे चंगुल से छुड़ा सकते हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो वे मुझे आदेश देते हैं कि मैं उनके प्रिय पुत्र (जीव) को मुक्त करूँ और उनके पास ले जाने में उसकी सहायता करूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष, ईर्ष्या ये सब मेरे हथियार हैं– मेरा परिवार है। जब तक जीव मेरे स्वामी को प्रसन्न नहीं करता, उनका भजन नहीं करता तब तक वह इसी प्रकार कष्ट भोगता रहेगा।”

यह कहकर माया देवी अन्तर्धान हो गईं। मायादेवी के इस वार्तालाप से जो बात निकल कर आई है वह यह है कि **यदि आप काम को भगाना चाहते हैं, तो हरिनाम करो। क्रोध को मिटाना चाहते हैं तो हरिनाम करो। राग–द्वेष को समाप्त करना चाहते हैं तो हरिनाम करो। केवल और केवलमात्र हरिनाम करने से भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे और माया मैया हरिनाम में आपकी सहायता करेगी।**

हरिनाम करने से ही अहैतुकी भक्ति हृदय में जागृत हो जायेगी और आपकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेंगे। जैसे एक माँ, अपने नन्हे–मुन्ने बच्चे का पालन–पोषण करती है। उसे स्नान कराती है, सुंदर–सुंदर वस्त्र पहनाती है, उसका श्रृंगार करती है, दुलारती है, पुचकारती है, दूध पिलाती है, उसको किसी की नजर न लग जाये इसलिये काला टीका लगाती है, उसे चूमती है, खेलने के लिये उसे खिलौने देती है, पालने में सुलाती है, लोरी सुनाती है, गोद में बिठाती है, उससे बातें करती हैं। एक माँ यह सब काम निःस्वार्थ भाव से अपने बच्चे को सुख देने के लिये करती है। उसकी रक्षा का भार उठाती है क्योंकि वह बच्चा अपनी मां के आश्रित है, उस पर निर्भर है, उसकी शरणागत है और बच्चा भी अपनी माँ की हर भावना को समझता है, देखता है, अनुभव करता है और उसकी छाती से चिपक जाता है। माँ की गोद में उसे कोई डर नहीं सताता। कोई दुःख नहीं देता और वह ममतामयी माँ को ही अपना सब कुछ समझता है। यह एक उदाहरण है।

जिस प्रकार जब बच्चा मां के शरणागत हो जाता है, उस पर आश्रित होता है तो उसकी सारी जिम्मेवारी माँ उठाती है, ठीक उसी प्रकार यदि यह जीव हरिनाम का आश्रय लेकर भगवान् श्रीकृष्ण रूपी माँ की शरण में चला जाये, उसके हाथों में अपने जीवन की डोर सौंप देता है तो क्या भगवान् उसके सुख में, उसकी खुशी में कोई कमी आने देंगे ? जिस प्रकार माँ–बेटे का रिश्ता है उसी प्रकार भगवान् का अपने भक्त से रिश्ता है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को प्यार करती है, उसी प्रकार भगवान् उससे भी अधिक प्यार अपने प्रिय भक्त को करते हैं और सदा–सदा के लिये अपनी गोदी में बिठा लेते हैं। भगवान् अपने भक्त के समान और किसी को नहीं मानते। उन्हें अपना भक्त सबसे प्रिय होता है। वे हर पल, हर क्षण अपने भक्तों पर दृष्टि रखते हैं, उन पर कृपा बरसाते हैं! यही उनकी भक्तवत्सलता है! यही है उनकी अहैतुकी कृपा! जिस पर भगवद्–कृपा हो जाती है उस पर सभी कृपा करते हैं।

जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।

सबसे पहले श्रीगुरुदेव

हरिनाम करने का, जो क्रम मैंने बताया है, उस क्रम को पढ़कर, सुनकर या देखकर कोई भी साधक प्रश्न कर सकता है कि श्री गुरुदेव वाले ग्रुप में, सबसे पहले श्रीगुरुदेव का नाम क्यों आया है ? क्यों श्रीगुरुदेव के बाद भगवान् का नाम आया है ? इसका उत्तर शास्त्रों में मिलता है।

गुरु कृष्णरूप इन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु रुचे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।।45।।

द्धचैतन्य चरितामृत आदि लीला अध्याय-1ऋ

"सभी शास्त्रों का मत है कि श्रीगुरुदेव भगवान् श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही गुरु रूप में भक्तों का कल्याण करते हैं।"

साक्षाद् हरित्वेन समस्त शास्त्रैः
उक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य,
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम्।।

"श्री गुरुदेव का स्वरूप हरि का ही स्वरूप होता है। ऐसा सभी शास्त्रों में बतलाया गया है। सज्जनपुरुषों ने भी अपने अनुभव द्वारा यही बात कही है। जो अपने प्रभु को अतिशय प्यारे हैं, उन श्रील गुरुदेव के चरण कमलों की मैं वंदना करता हूँ।"

रामायण में लिखा है–

कवच अभेद गुरु पद पूजा।
यही सम विजय उपाय न पूजा।

'श्री गुरुदेव के चरणकमलों को हृदय में धारण करना एक ऐसा कवच है जिसे कोई भी शक्ति भेद नहीं सकती। तोड़ नहीं सकती। बाकी जितने भी कवच हैं उनको भेदा जा सकता है, तोड़ा जा सकता है पर गुरुकवच को तो भगवान् भी नहीं तोड़ सकते। गुरु कवच

अलौकिक है, अतुलनीय है। इसकी शक्ति अमोघ है। अपने किसी पत्र में लव–कुश के प्रसंग में, मैंने इसका वर्णन किया है। पर यह अमोघ कवच मिलेगा कैसे ? इसके लिये एक ही उपाय है– श्रीगुरुदेव की अहैतुकी कृपा या तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करना। जो साधक तीन लाख हरिनाम हर रोज करता है, उसे हरिनाम की कृपा से सब कुछ मिल जाता है। श्री हरिनाम चिन्तामणि में लिखा है–

अग्रे गुरु–पूजा, परे श्रीकृष्ण पूजन।

सबसे पहले गुरु पूजा करनी चाहिये। उसके बाद श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीगुरुदेव की अनुमति लेकर ही श्रीश्रीराधाकृष्ण की पूजा करनी चाहिये।

श्रीगुरुदेव भगवान् के सबसे प्रिय भक्त हैं और भगवान् अपने प्यारे भक्तों को सर्वोपरि मानते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है – मैं हूँ भक्तन को दास, भक्त मेरे मुकुटमणि। अतः श्री गुरुदेव को सबसे पहले याद किया जाता है। सबसे पहले उनके चरण कमलों में प्रार्थना की जाती है तभी श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति होगी।

श्री नरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं–

श्री गुरु चरण पद्म, केवल भक्ति सद्म
वन्दों मुञि सावधान मते।

श्री गुरुदेव के चरण कमल शुद्ध भक्ति की खान हैं

अतः मैं बड़ी सावधानीपूर्वक उनकी वदंना करता हूँ,

याहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाइ
कृष्ण प्राप्ति हय याहाँ हइते।।

श्री गुरुदेव के चरण कमलों की कृपा से भवसागर से पार हुआ जाता है और इन्हीं चरण कमलों की कृपा से श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप में देवर्षि नारद जी का नाम भी सबसे पहले आया है। देवर्षि नारद भक्तशिरोमणि हैं। वे हर वक्त भगवान् का नाम–संकीर्तन करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी की कृपा के बिना हरिनाम संकीर्तन में रुचि हो ही नहीं सकती और जिस पर देवर्षि

नारद जी की कृपा हो गई, समझो, उसकी नैया पार हो गई। नारद जी ने भक्त ध्रुव पर कृपा की। भक्त प्रहलाद पर कृपा की और उन्हें भगवान् के दर्शन करा दिये। बाल्मीकि जी पर कृपा की और उन्हें त्रिकालदर्शी बना दिया। इतना ही नहीं जब–जब भगवान् का अवतार होता है तो देवर्षि नारद उनके जन्म लेने में सहायक होते हैं। नारद जी ने कंस को बताया कि देवकी का आठवां पुत्र उसका काल होगा तो कंस ने आठ लकीरें खींची और कहा कि मैं उसे जन्म लेते ही समाप्त कर दूंगा। पर नारद जी चाहते थे कि कंस के पाप का घड़ा जल्दी भर जाये और भगवान् शीघ्र अवतार लें, इसलिये उन्होंने कंस की बुद्धि को भ्रमित कर दिया और कहा कि देवकी का कोई भी बालक आठवी संतान हो सकता है। अपनी बात को सिद्ध करने के लिये नारद जी ने युक्तिसंगत तर्क भी दिया। फलस्वरूप, नारद जी की बात मानकर कंस ने देवकी के सातों पुत्रों को जन्म लेते ही मौत के घाट उतार दिया। आठवें बालक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर, कंस का वध किया और देवर्षि नारद की इच्छा पूरी की।

इसलिये देवर्षि नारद जी की कृपा बहुत जरूरी है। देवर्षि नारद हम सब पर कृपा करें ताकि हम दृढ़तापूर्वक हरिनाम कर सकें। आइये! देवर्षि नारद के चरणकमलों में नमन करें और उनके चरण कमलों में बैठकर उन्हें उच्चारणपूर्वक हरिनाम सुनायें।

जब हम एकान्त में बैठकर उच्चारणपूर्वक हरिनाम करते हैं, उसे अपने कानों से सुनते हैं और श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाते हैं, तो वह कीर्तन कहलाता है और जब बहुत सारे भक्त एकत्रित होकर उच्चस्वर से हरिनाम करते हैं, तो वह संकीर्तन कहलाता है। कीर्तन और संकीर्तन का फल एक ही है। इसलिये हरिनाम करते रहो।

भगवान् का सब में वास है

एक बार देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि आप कहाँ रहते हो ? भगवान् ने कहा कि मैं जीवमात्र में रहता हूँ। हर एक प्राणी में मेरा वास है। मैं आत्मा रूप से सब प्राणियों में विराजमान रहता हूँ। हर एक जीव अपने कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है और चौरासी लाख योनियों की, उसकी इस यात्रा में, मैं हर योनि में, आत्मा रूप से उसके साथ रहता हूँ। यदि मैं उसके साथ न रहूँ तो उसका शरीर मृतप्राय हो जाये। इसलिये कभी भी, किसी जीव को मारना नहीं चाहिये। किसी जीव की हिंसा करने पर मुझे कष्ट होता है और मैं नाराज हो जाता हूँ।"

भगवान् ने जो बात कही है उसको समझाने के लिये, मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ। मान लो यह शरीर एक गाड़ी है और इस गाड़ी को चलाने वाला ड्राइवर है आत्मा। यदि ड्राइवर ही नहीं होगा तो गाड़ी कैसे चलेगी ? यदि शरीर में आत्मा ही नहीं होगी तो शरीर कैसे काम करेगा ? इस शरीर के जितने भी कर्म हैं, वह तभी तक हैं जब तक उसमें आत्मा विराजमान है। यदि शरीर में आत्मा न हो तो शरीर न चल सकता है, न बोल सकता है, न खा सकता है और न सुन सकता है ? जब कोई मर जाता है तब उसका शरीर तो रहता है पर वह कुछ कर नहीं सकता। इसका मतलब है कि उस शरीर रूपी गाड़ी को चलाने वाला आत्मा रूपी ड्राइवर नहीं होने से वह शरीर किसी काम का नहीं रहा, बेकार हो गया और उसे जला दिया जाता है।

देखो! जितनी भी योनियाँ है, जितने भी जीव हैं, उनमें भगवान् का वास है। जिस स्थान में भगवान् रहते हैं, उसे मंदिर कहते हैं। इस प्रकार जितनी भी योनियाँ हैं चाहे वे पुरुष की योनि हो, पशु की योनि हो, पक्षी की योनि हो, ये सब भगवान् के मंदिर हैं; यदि कोई किसी जीव को मारता है तो वह भगवान् के मंदिर को नष्ट करता है जिससे भगवान् उससे नाराज हो जाते हैं। यदि कोई मेरी भजन-कुटी को

तोड़ देगा तो क्या मैं उससे नाराज नहीं हूँगा ? मुझे दुःख होगा! इसी प्रकार यदि कोई किसी जीव की हत्या करेगा तो उसे उसी जीव की योनि में जन्म लेना होगा और पाप कर्म का फल भोगना पड़ेगा। उदाहरण के लिये, मान लो एक सांप की कुल आयु एक हजार वर्ष की है और इस समय उसकी आयु है दो सौ वर्ष। उस सांप को अभी आठ सौ वर्ष और जीना है। उसका जीवन आठ सौ वर्ष अभी बाकी है। मान लो किसी ने उस सांप को मार दिया अर्थात् भगवान् के मंदिर को तोड़ दिया तो उसको बाकी के आठ सौ साल तक सांप की योनि में जाना पड़ेगा और अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा। देखो! सांप कभी भी, किसी को पहले कभी नहीं काटता। जब हम उसे मारने दौड़ते हैं या उस पर हमारा पाँव पड़ जाता है, तभी वह हमें काटता है। भगवान् ने उसका स्वभाव ही ऐसा बनाया है।

कई भक्तों ने पूछा है कि क्या मच्छर को मारने से भी पाप लगेगा ? मच्छर जब हमें काटता है तब हम मच्छर को मारते हैं। इसका उत्तर यह है कि काटना मच्छर का स्वभाव है। इसमें उसका दोष नहीं है। मच्छर की योनि भोग योनि है और हमारी योनि कर्म योनि है। भोग योनि में पाप नहीं लगता। कर्म योनि में पाप लगेगा। यदि हम किसी प्राणी को जीवित नहीं कर सकते तो उसे मारने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है। मच्छर काटता है तो उसे मारो मत। यदि मारोगे तो भगवान् का मंदिर नष्ट हो जायेगा और वे नाराज हो जायेंगे। मच्छर को मारने की बजाय कोई ऐसा उपाय करो कि मच्छर पास ही न आये। काटे ही नहीं। आजकल बाजार में ऐसी बहुत सी चीजें मिलती हैं जिससे मच्छर दूर रहते हैं। यह एक उदाहरण है। कहने का अभिप्राय है कभी भी हिंसा न करो। कभी किसी को न सताओ, न मारो। सोच विचार करके काम करो।

मैं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। कई बार अनजाने में हमसे कोई पाप हो जाता है, जीव मर जाता है तो उसका दोष नहीं लगता क्योंकि उस जीव को मारने की हमारी इच्छा नहीं थी। हमारे मन में कहीं भी ऐसी धारणा नहीं थी। हम कहीं जा रहे हैं।

पाँव के नीचे कोई चींटी आई और मर गई। हमें पता ही नहीं चला। इसका दोष नहीं लगेगा क्योंकि हमने जान बूझकर उस चींटी को नहीं मारा। हमारे मन में उसे मारने का विचार नहीं था। ऐसे पाप को भगवान् क्षमा कर देते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि इन्द्रियों में 'मन' मैं हूँ। भगवान् कभी नहीं चाहेंगे कि जीव की हत्या हो। इसलिये भगवान् कभी भी, किसी भी जीव को मारने की अनुमति नहीं देते।

यह बात मैंने किसी पत्र में, पहले भी विस्तार से लिखी है फिर भी मैं इस बात को यहां इसलिये दुहरा रहा हूँ ताकि हम सावधान हो जायें, सचेत हो जायें और भगवान् के इन मंदिरो को नष्ट न करें। भगवान को नाराज न करें।

वैष्णव गुरु कौन?

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'

शिष्य का सब कुछ गुरु को प्राप्त होने पर भी वैष्णव गुरु अपने शिष्य के घर के धन इत्यादि सांसारिक मल (रुपया, पैसा आदि) स्वयं ग्रहण नहीं करते। जो लोग गुरु–दक्षिणा ग्रहण करते हैं, वे दक्षिणा मार्ग के द्वारा यम भवन में गिरते हैं। वैष्णव लोग इस प्रकार के यम भवन के यात्री नहीं है। वे उत्तरा मार्ग के पथिक हैं। इसलिये कर्मी ब्राह्मण आदि को दुनिया के वैभव आदि देने की व्यवस्था है। वैष्णव–गुरु अपने शिष्य के हरि विमुख करवाने वाले भोग्य विषय वैभव स्वयं ग्रहण करके शिष्य के आनुगत्य की व उसके मुख की ओर ताकने की अपेक्षा नहीं करते। हाँ, ऐसे वैभव को हरिवैमुख्य जनक जानकर उसका त्याग अवश्य कर देते हैं। शिष्य को प्राकृत अभिमान से मुक्त कराना एवं उसके द्वारा परित्यक्त सांसारिक मल (रुपया–पैसा आदि) स्वयं ग्रहण न करना ही सदाचारी वैष्णव गुरु का कर्तव्य है। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरजी की यही शिक्षा है।

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों का पूरी तरह निःशुल्क वितरण रोककर स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है। ग्रन्थ छपने के बाद पुनः निःशुल्क वितरण प्रारम्भ होगा–ऐसी योजना है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 09837031415

email-harinampress@gmail.com